सद्गुरवे नमः

वैराग्य-प्रिय परम् वन्द्य पूज्यपाद सद्गुरु

श्रीकबीर साहेब

रचित बीजक से

बीजक-शिक्षा

(संक्षिप्त-संग्रह)

टीका-व्याख्या युक्त

संग्रहकर्ता एवं व्याख्याकार

पारख निष्ठ सद्गुरु श्रीरामसूरत साहेब

का चरण-शिष्य

अभिलाषदास

चैत्र शुक्ल रामनवमी वि० २०२० सं०
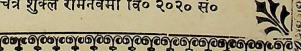
सद्गुरवे नमः

भूमिका

सन्त-जगत् के ज्वलन्त रवि, अखण्ड वैराग्यवान् धर्माचरण सम्पन्न, प्रातःस्मरणीय, परम्पूज्य, दीनबन्धु सन्त सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब के नाम और महत्त्व से आबाल-वृद्ध नर-नारी सब परिचित और प्रभावित हैं। भारतवर्ष के कितने ही नर-नारी, जिज्ञासु एवं मुमुक्षु धर्माचरण सम्पन्न आपके निर्दिष्ट मार्ग पर चलकर कल्याण के भागी हो रहे हैं।

जब कि चारों ओर वर्णाभिमान की भीषणता, मतवादों के पक्ष की गहनता, धर्म की विषमता, एवं हिंसा-वाद के तिमिराच्छन्न से भारत की जनता पतन-पथ की ओर अग्रसर हो रही थी। श्री कबीरसाहेब मार्तण्ड रूप होकर इसी काल में उदित हुए। आपने सबके मत-पंथों को देखा, सबकी परीक्षा की, सबसे केवल गुण ग्रहण किया, दोष किसी का नहीं लिया। किसी के मतवाद से सटकर नहीं चले। चाहे कोई भी हो—सबके दोषों पर आपने कड़ी आलोचना की।

आप अखण्ड ब्रह्मचारी, धर्म-सुधारक, परोपकारी, वैराग्यप्रिय, स्वरूपज्ञानी, जीवन्मुक्त तथा परम् अलौकिक सन्त

थे। बाल्यकाल से ही साधु-भेष से भूषित हो, भारतवर्ष में विचर-विचर कर लोक-कल्याण हित आप शिक्षा देते रहे। आपके हृदय-कमल से निकले हुए अनुभव रूप वचन-समूह 'बीजक' अत्यन्त गम्भीर, रहस्यमय एवं शिक्षाप्रद सद्ग्रन्थ है।

प्रसन्नता का विषय है, आज तक बीजक की अनेक टीकायें हो चुकी हैं और होती ही जाती हैं। परन्तु सर्वश्रेष्ठ अनुभव पूर्ण टीका सद्गुरु श्री पूरण साहेब की ही मानी जाती है। आपकी टीका का आधार लेकर जिन-जिन ने टीकायें बनायी हैं, सर्वोपरि पारख सिद्धान्त बोधक-होने से वे सब टीकायें (पारख-मण्डल में) मान्य हैं।

बीजक का अध्ययन-अध्यापन बड़हरा—सन्त-समाज में तो चलता ही रहता है। इसी बीच बड़हरा-निवासी प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद बोध दाता सद्गुरु श्री रामसूरत साहेब जी की आज्ञा हुई कि जन-साधारण के उपदेश योग्य बीजक के शिक्षाप्रद पदों का संग्रह करके उस पर टीका लिखो। यह बात सन्त और भक्त-समाज को भी रुची और उनकी भी सम्मति हुई तथा आज्ञा को शिरोधार्य करके मैं इस कार्य में प्रवृत्त हुआ।

बीजक के ग्यारहों प्रकरणों में जहाँ-जहाँ अधिक स्पष्ट शिक्षाप्रद पद हैं, वहाँ-वहाँ से संक्षिप्त संग्रह किया गया और

उनको स्वतन्त्र रूप से सात सोपानों में विभाजित किया गया। सातों सोपानों के नाम ये हैं—

(१) संसार की असारता।

(२) चेतन जीवों की प्रशंसा और उपदेश।

(३) इन्द्रिय-मन की प्रबलता और उसका निराकरण।

(४) वचन-सुधार।

(५) हिंसा-मांसाहार और भूत-प्रेतादि का निराकरण।

(६) भ्रम-निराकरण।

(७) सामूहिक-विषय-साखी।

बीजक के शिक्षाओं का यह संक्षिप्त संग्रह है। इसलिये इसका नाम "बीजक शिक्षा संक्षिप्त संग्रह" रखा गया। नाम बहुत बड़ा न होने पावे, इस लक्ष्य से 'बीजक-शिक्षा' नाम को ही प्रधानता दी गयी और 'संक्षिप्त-संग्रह' को गौण रखा गया।

मूल पदों का पहले संक्षिप्त अर्थ किया गया, पुनः यथा स्थान संक्षिप्त-विस्तृत व्याख्या लिखी गयी और अन्त में थोड़े वाक्यों में शिक्षाओं का सार रखा गया। मूलपदों में आये हुए दृष्टान्तों को भी संक्षिप्त रूप से रखा गया है। स्थल-स्थलपर कवित्त सवैया और शब्द, गजलों से भी आलं-

कृत किया गया है। पदों का अर्थ 'पूज्यपाद सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब' के मतानुसार ही हो—ऐसा मैंने यथासम्भव प्रयत्न रखा है। इस प्रकार जो कुछ मेरी साधारण बुद्धि में आया, समाज की सेवा में उपस्थित किया।

सातों सोपानों का संक्षिप्त परिचय।

प्रथम-सोपान संसार की असारता।

घन-घर्षण से प्रकट हुए विद्युत, आकाश से गिरे हुए बर्फ, व्योम-प्रकाशित इन्द्र-धनुष तथा ओस-कण जैसे शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। तैसे उत्पन्न हुए मनुष्य माधुर्यमय कौमार्य अवस्था तथा चमचमाती हुई जवानी को लाङ्घ कर शीघ्र ही काल के गाल में विलीन हो जाते हैं। अतुल-धन, भव्य-मन्दिर, अनुकूल दास-दासी, मनोहर-पुत्र, प्रिय-स्त्री तथा माने हुए रमणीय शरीर को छोड़-छोड़ कर कितने ही बुद्धि के निधान मृत्यु के मुख में पयान कर गये।

अहो! इस निस्सार जीवन-यौवन एवं प्राणी-पदार्थों की अहन्ता-ममता में जीव कितनी बार धोखा खाया और खाता ही जाता है। हड्डी, मांस, मल, मूत्रादि कूड़े-कचड़ों से भरे इस दुर्गन्धमय शरीर का सुख सर्वथा झूठा है। अतएव निस्सार संसार की कामना सर्वथा त्याग कर अविनाशी

स्वस्वरूप चैतन्य में दृढ़ता पूर्वक स्थित हो जाना ही इस जीवन में सार है। अन्यथा दुःख द्वन्द्व मय इस क्षण भंगुर जीवन में कुछ भी सार नहीं है। इत्यादि भाव विस्तार पूर्वक इस प्रथम सोपान 'संसार की असारता' में दर्शाया गया है। 'मानुष जन्म चूकेहु अपराधी, 'भूला लोग कहैं घर मेरा' 'चलहु का टेढ़ो टेढ़ो टेढ़ो' 'फिरहु का फूले फूले फूले' इत्यादि २३ रमैनी, शब्द, कहरा तथा चाचर आदि टीका-व्याख्या युक्त इसमें वर्णित हैं।

द्वितीय-सोपान चेतन जीवों की प्रशंसा और उपदेश।

अविनाशी ज्ञानमय अपना चैतन्य स्वरूप जीव ही सत्य-सार है। स्त्री-पुत्र, घर-धन, शरीर इत्यादि छूट जाने वाले पदार्थों का क्या विश्वास है? स्व-स्वरूप को भूलकर कीर-मर्कट वत् मनुष्य स्वयं माया में फँसा है और स्वयं के चेतने से ही निर्बन्ध होकर कल्याण रूप रह जायगा।

सबके शरीर पृथ्वी आदि चार तत्वों से बने हैं। सबके शरीर में निवास करने वाले चेतन जीव एक समान ज्ञानवर्ण अविनाशी हैं। अतएव जाति-वर्ण का अभिमान करना बिल्कुल भूल है। मनुष्य के गुण और ज्ञान की ही विशेषता है। जाति-वर्ण की नहीं। सद्गुरु ने कहा है—

'एक बुन्द से सृष्टि रची है, को ब्राह्मण को शूद्रा।'

'रजोगुण ब्रह्मा तमोगुण शंकर, सतोगुणी हरि होई।
कहहिं कबीर राम रमि रहिए, हिन्दू तुरुक न कोई॥'
'झूठे गर्भ भुलो मति कोई, हिन्दू तुरुक झूठ कुल दोई।'
'मन मसले की सुधि नहिं जाना, मति भुलान दुइ दीन बखान'

तात्पर्य यह कि चेतन जीव की न कोई जाति है और न जड़-तत्त्वों की कोई जाति है। अतएव अपने को हिन्दू मुसलमान, ब्राह्मण-शूद्र मानकर एक-से-एक वैर-विरोध रखना, दूसरे के प्रति घृणा करना, अपने में अभिमान रखना—यह सब केवल भूल है। हाँ! लोक-समाज अनुसार धर्माचरण पूर्वक वर्ताव, खान-पान की शुद्धि और सुसंग रखना परम् आवश्यक है। लोक-समाज अनुसार व्यवहार रखते हुए भी प्रेम में कोई अन्तर नहीं होना चाहिये। क्योंकि मत-पथ जाति-वर्ण सब कल्पित हैं, हम सब मानव मात्र ही नहीं, जीव-मात्र भाई-भाई हैं। सद्गुरु कहते हैं—

'है बिगरायल ओर का, बिगरो नाहिं बिगारो।
घाव काहि पर घालो, जित देखो तित प्राण हमारो॥''

इत्यादि भाव का विस्तार दूसरे सोपान में वर्णित है।

तृतीय सोपान-मन इन्द्रियों की प्रबलता और उसका निराकरण।

स्वतन्त्र, अखण्ड, तृप्त चैतन्य जीव अपनी भूलवश मन-

इन्द्रियों के अधीन होकर घोर दुःखों को भोग रहा है। सद्गुरु कहते हैं—

'सन्तो ! घर में झगरा भारी।'

रात दिवस मिलि उठि उठि लागें, पाँच ढोटा यक नारी।'
'घरहिम बाबुल बाढ़ल रारि, उठि उठि लागे चपल नारि।'
'अन्तर मध्ये अन्त लेय, झक झोरिक झोरा जीवहिं देय।'
आपन आपन चाहैं भोग, कहु कैसे कुशल परी हैं योग।'

अतएव—

दुर्मति केर दोहागिन मेटै, ढोटहि चाप चपेरे।
कहहिं कबीर सोई जन मेरा, जो घर की रारि निबेरे।

अर्थात् गुरु कबीर का कहना है कि शरीर रूपी घर के इन्द्रिय-मन एवं वासना-इच्छा रूपी झगड़ा को सर्वथा मिटा कर निर्द्वन्द्व शुद्ध स्वरूप में जो स्थित हो गया, वही हमारा अनुयाई पक्का शिष्य है।

अतएव पशु तुल्य केवल कमाना-खाना एवं इन्द्रिय-भोग करना मनुष्य जीवन का लक्ष्य नहीं है। इस जीवन का चरम् लक्ष्य है मन-इन्द्रियों के समस्त विकारों को सर्वथा ध्वंस करके और संसार विषयों की आशा सर्वथा त्यागकर सदाचरण पूर्वक चलते हुए जीवन पर्यन्त स्वरूप-स्थिति के अभ्यास में शान्त रहकर काल क्षेप करना। उपर्युक्त भावों का ही विस्तार तीसरे सोपान में आलंकृत है।

चतुर्थ-सोपान-वचन-सुधार।

पात्र के अनुसार उपदेश देना, जान-बूझकर किसी को दुःख लगने वाली बात न कहना, किसी के मत का अनुचित खण्डन-मण्डन न करना। कटु, हँसी, मखौल, निन्दा, अपमान तथा चुगुली वाली बात किसी से न कहना, अधिक न बोलना। स्वभाव में गम्भीरता और वाक्य-संयम रखना। आवश्यकता पड़ने पर सत्य, प्रिय, हित के वचन अभिमान-रहित उच्चारण करना। दूसरे के कठिन वचनों को निर्विकार भाव से सहना, वाण के समान तीखे वचन सुनकर भी दुखी न होना—इत्यादि बातें विस्तार पूर्वक चतुर्थ-सोपान 'वचन-सुधार' में बतलायी गयी हैं। सद्‌गुरु का कहना है—

साखी—

बाजन दे बाजन्तरी, तू कल कुकुही मत छेर।
तुझे विरानी क्या परी, तू अपनी आप निवेर॥
जिभ्या केरे वन्द दे, बहु बोलन निरुवार।
पारखी से संग करु, गुरुमुख शब्द विचार॥

पंचम-सोपान हिंसा-मांसाहार और भूत-प्रेतादि का निराकरण।

मनुष्य, पशु, पक्षी, कृमि, कीटादि—चारों खानियों के जितने लघु-गुरु देहधारी प्राणी हैं। सब अपने समान स्वजाति जीव हैं एवं सब में जीव एक-सा है। सबको सुख-दुःख भी एक-से होते हैं। अतएव समर्थशाली मनुष्य का

कर्तव्य है कि वह भरसक जीव-हिंसा होने से बचावे और जीव-दया व्रत पालन करे। जो मनुष्य जीव-दया नहीं पालन करता है और जीवों को मारता है, वह नर नहीं खर है, इन्सान नहीं शैतान या हैवान है तथा मानव आकारधारी विकट दानव है। मानव की यही मानवता तथा इन्सान की यही इन्सानियत है कि जैसे वह स्वयं दुःख नहीं चाहता, तैसे दूसरे को भी दुःख न दे। हिन्दू और मुसलमान दोनों की निर्दयता पर सद्‌गुरु का कहना है कि--

"हिन्दु कि दया मेहर तुरकन की। दोनों घट से त्यागी ॥
ई हलाल वे झटका मारैं। आग दुनों घर लागी ॥"

"काजी काज करहु तुम कैसा। घर घर जबह करावहु भैसा॥
बकरी मुरगी किन फुरमाया। किसके कहे तुम छुरी चलाया॥
दर्द न जानहु पीर कहावहु। बैता पढ़ि पढ़ि जग भरमावहु॥"

'साखी—दिन को रहत हैं रोजा, रात हनत हैं गाय।
यह खून वह बन्दगी, क्योंकर खुशी खुदाय ॥'

आपने कहा घट-घट में रमैया राम रम रहा है, फिर तुम किस पर छूरी चलाओगे ?

"पण्डित वेद पुराण पढ़ें सब, मुसलमान कुराना।
कहहिं कबीर दोउ गये नरक में, जिन्ह हरदम रामहि न जाना ॥"

मांसाहार के विषय में आपने बताया---

'जाहिं मांस को पाक कहत हो, ताकी उत्पति सुन भाई।

रज बीरज से मांस उपानी, सो मांस नपाकी तुम खाई ।।"

हिन्दू-मुसलिम-मेल के लिये आपने कहा कि भाई तुम दोनों आपस में क्यों लड़ रहे हो ? राम-खुदा ईश्वर-अल्ला में केवल नाम का फेर है। ईश्वर की कल्पना तो दोनों में एक-सी है। यथा—

भाई रे दुइ जगदीश कहाँ ते आया। कहु कौने बौराया ।।
अल्ला राम करीमा केशव। हरि हजरत नाम धराया ।।
गहना एक कनक ते गहना। यामें भाव न दूना ।।
कहन सुनन को दुइ करि थापे। यक निमाज यक पूजा ।।
वही महादेव वही मुहम्मद। ब्रह्मा आदम कहिये ।।
को हिन्दू को तुरुक कहावै। एक जिमी पर रहिये ।।
वेद कितेब पढ़ें वे कुतबा। वे मोलना वे पाँड़े ।।
बेगर बेगर नाम धराये। यक मिट्टी के भाड़े ।।
कहहिं कबीर वे दोनों भूले। रामहिं किनहु न पाया ।।
ये खशी वे गाय कटावें। बादहि जन्म गँवाया ।।

भूत-प्रेत देवी-देवादि मनुष्य की कल्पना मात्र है। आपने भूत-प्रेत और देवी-देवताओं के मिथ्यात्व पर कहा—

"माटी के करि देवी देवा। काटि काटि जिव देइया जी ।।
जो तोहरा है साँचा देवा। खेत चरत क्यों न लेइया जी ।।"

तात्पर्य यह कि कल्पित भूत-प्रेतादि के पूजने से एवं भावना करने से भूत-प्रेत मन में सिद्ध होते हैं। वास्तव में भूत-प्रेत नहीं होते। कल्पित भूत-प्रेत देवी-देवादिके भरोसे

जीव-वध करोगे, तो उसका बदला तुमको देना पड़ेगा। इस प्रकार पंचम-सोपान में हिंसा-मांसाहार एवं भूत-प्रेतादि का खण्डन करके जीव-दया और शुद्धाचार का निरूपण किया गया है।

षष्ठम-सोपान भ्रम-निराकरण

पृथ्वी जल तेज तथा वायु--ये चार जड़तत्व और इनसे सर्वथा पृथक् अगणित अविनाशी चेतन जीव--इस प्रकार जड़-चेतन रूप ये पाँच ही पदार्थ अनादि, अनन्त एवं स्वतः हैं। इनके ऊपर अन्य कोई शक्ति नहीं है। बीज-वृक्ष, कर्म-देह न्याय जड़-चेतनमय जगत्-सृष्टि अनादि है। जड़-वासना-वश जीव और जड़ (देह) का सम्बन्ध है। मनुष्य-शरीर में कर्म-वासना त्याग कर और गुरु-पारख बोध प्राप्त कर सदाचरण, भक्ति एवं वैराग्य पूर्वक जीवनयापन करते हुए प्रारब्धान्त में सदा के लिये जीव अचल विदेह मुक्त हो जाता है।

स्वरूपबोध-प्राप्ति और स्थिति रहस्य के लिये पारखी सद्गुरु एवं साधु-सन्तों का सत्संग, सेवा भक्ति, सदाचार-पालन परम् कर्तव्य है। संयम, सदाचार, सत्संग, सद्विचार एवं वैराग्यादि साधनों द्वारा अपने मन-इन्द्रियों को पूर्ण नियन्त्रित करके हम अपने आप अखण्ड शुद्ध चेतन्य पारख स्वरूप में अचल प्रतिष्ठित होकर पूर्णकाम एवं कृतकृत्य हो सकते हैं। जिस सत्य को हम बाहर खोजते हैं, वह हमी हैं।

करुणा निधान कबीरदेव का वचन है—

"दिलमा खोज दिलहि मा खोजो। इहै करीमा रामा ॥"

उपर्युक्त भावों का इस छठे सोपान में विस्तृत विवेचन है। सद्गुरु ने अपना सिद्धन्त बीजक में इस प्रकार दर्शाया है—

"एक कहौं तो है नहीं, दोय कहौं तो गारि।
है जैसा रहै तैसा, कहहिं कबीर बिचारि ॥"

अर्थात्—एक अद्वैत ब्रह्म कहता हूँ, तो जड़-चेतन के न्याय से है नहीं और जीव के ऊपर दूसरा कर्ता कहता हूँ, तो वह भी मिथ्या बात है। अतएव गुरु कबीर विचार कर कहते हैं कि जैसा अपना शुद्ध-बुद्ध पारख चैतन्य स्वरूप है, वैसे वह सदैव रहेगा, उसमें कुछ घटी-बढ़ी नहीं हो सकती।

इस साखी में एक (अद्वैत ब्रह्म) और दोय (कर्ता) का निराकरण करके 'है जैसा रहै तैसा' कहकर श्री कबीर साहेब ने अपना सिद्धान्त दर्शाया है। आपका सिद्धान्त क्या है ? इसके उत्तर में आपने ११९ शब्द में कहा है।

'भूल मिटै गुरु मिलैं पारखी, पारख देयँ लखाई।
कहहिं कबीर भूल की औषध, पारख सबकी भाई।'

अर्थात्—अनादि जीव के भूल रूपी रोग की औषध आपने सबके लिये 'पारख' ही बतलाया है। अतएव सद्गुरु श्री कबीर साहेब द्वारा उपदिष्ट सर्वोच्च पारख सिद्धान्त

अपना कर जिज्ञासुको भ्रम से रहित होना चाहिये।

सातवाँ-सोपान सामूहिक विषय साखी

इसमें १६७ साखी चुन कर रखी गयी हैं। इसमें हर विषयों का वर्णन है। जड़-चेतन का निर्णय, अहिंसावाद, संसार की असारता, सत्संग-कुसंग का विवेचन और जन-साधारण उपदेशों का वर्णन करते हुए मन-तरङ्गों से रहित होकर स्वरूपस्थिति-अभ्यास करने का एवं सर्व-आशा-रहित प्रारब्ध वर्तमान पूर्वक स्व-स्वरूप में दृढ़ स्थित होकर जीवन्मुक्तिदशा में विचरने का गुरु कबीर की साखियों द्वारा विशद निरूपण है।

साखी—मन सायर मनसा लहरि, बूड़े बहुत अचेत।
कहहिं कबीर ते बाचिहैं, जाके हृदय विवेक॥
जो तू चाहे मूझको, छाड़ सकल की आश।
मुझ ही ऐसा होय रहो, सब सुख तेरे पास॥

पूज्य-चरण सन्त-महात्माओं तथा प्रेमी सज्जनों से निवेदन है कि ग्रन्थगत त्रुटियों पर क्षमा करते हुए हंसवत् गुण-ग्रहण करने की कृपा करेंगे। यह सद्गुरु की वस्तु आदर और प्रीति पूर्वक सद्गुरु के चरण कमलों में समर्पित करता हूँ।

सद्गुरु सन्तों का अनुचर

अभिलाषदास

सद्गुरवे नमः

बीजक शिक्षा की सूची।

क्र० सं०	विषय	पृष्ठ

क्र० सं० | विषय | पृष्ठ

तृतीयसोपान, इन्द्रिय वासनाओं की प्रबलता एवं निराकरण।

चतुर्थ-सोपान, वचन-सुधार

पंचम सोपान, हिंसा मांसाहार और भूतखानि का निराकरण

क्र०सं०	विषय	पृष्ठ

षष्टम सोपान, भ्रम निराकरण

॥ बीजक-महिमा ॥

यह बीजक ज्ञान कबीर गुरू का, बन्ध नशाने वाला है।
सब जीवों के हित मारग को, स्पष्ट बताने वाला है ॥टेक
सब जीव सदा से भूले ही, विषयों में रमते आये हैं।
उस रमते राम के बन्धन को, कहि विविध 'रमैनी' टाला है ॥१
खानी वाणी के शब्द जाल में, जीव सभी उलझाये हैं।
कहि 'शब्द' सैन अति अनुभवसे, सब बन्धन काटि निकाला है ॥२
विद्वानों के वाणी मद को, हरि 'ज्ञान चौंतिसा' से लीन्हा।
विप्रों की मति-गति शुद्धि हेतु, कहि 'विप्र मतीसी' आला है ॥३
'कहरा' कहि कहर हरे जिव का, कहि 'बसन्त' विषयासक्ति हरे।
मन माया के तम हरे आप, कहि 'चाचर' ज्ञान उजाला है ॥४
अन्तः में स्थिर परम् रमैया राम, 'बेलि' में आप कहे।
खानी बानी की बिरह व्यथा, 'बिरहुली' विवेक विशाला है ॥५
अविनाशी जीव कर्म के वश, जन्मादि हिण्डोले में झूले।
परकरण 'हिण्डोला' कहि विधिवत्, पारख पद दिया निराला है॥६
जड़ साक्ष्य दृश्य से सदा पृथक्, साक्षी चिद्रूप अपाना है।
'साखी' कहि सकल ज्ञान खानी, मत पथ|द्वन्द्वों का काला है ॥७
ग्यारह परकरणों से भूषित, है पारख ज्ञान भरा 'बीजक'।
रविवत् इसके परकाश किरण, तम-मोह नशाने वाला है ॥८
अति गूढ़-अगूढ़ द्विविधि पद्यों, शैली युक्ती से भरा ग्रन्थ।
विद्वान् भी हैं टक्कर खाते, अभिलाष अल्प मति वाला है ॥९
गुरु सन्त पारखी के द्वारा, गुरुमुख पढ़ने से भेद खुलै।
बोधक सूरत की कृपा दृष्टि से, पाया बोध उजाला है ॥१०

॥❀॥ बीजक-शिक्षा-महिमा ॥❀॥

अति मनन भाव से पढ़ो गुनो, यह बीजक-सार निराला है।
सद्गुरु कबीर के बीजक का, यह सार बताने वाला है ॥टेक
संसार-शरीर कुटुम-गृह-धन, ये तुच्छ त्याज्य परिणामी हैं।
पहला सोपान विविध विधि से, यह भाव जँचाने वाला है ॥१
जड़ से चेतन अत्यन्त पृथक्, अविनाशी अगणित नित्य सत्य।
तजि स्वप्न मनोमय स्वतः थीर, दुत्तिय सोपान सुझाला है ॥२
मन-इन्द्रिय पर शम दम हेतुक, सोपान तीसरा दर्शक है।
वाणी-वचनों का शुद्धकरण, चौथा सोपान निराला है ॥३
जीवों की हिंसा मांसहार, अरु भूत-प्रेत का दृढ़ खण्डन।
सोपान पाँचवें में विधिवत्, निर्णय कर धोख निकाला है ॥४
कर्ता व्यापक औतारवाद, वाणी के भ्रम तम शमन हेतु।
षष्टम सोपान पढ़ो देखो, कैसी युक्ती से ढाला है ॥५
नाना प्रकार की सद्शिक्षा, सप्तम-सोपान ज्ञान खानी।
गागर में सागर न्याय पूर्ण, बीजक का सार पियाला है ॥६
अनुवाद, व्याख्या और सारशिक्षा, पद्यों दृष्टान्तों से।
अति रम्य सप्त सीढ़ी मुक्ती, अभिलाष गहाने वाला है ॥७

—: प्रथम-सोपान-महिमा :—

यह जीवन है जल का बबूल।
स्पन्द-वायु जल-कण सरोज।
मोती-सबनम् यौवन सु ओज।।
नभ चाप इन्द्र घन का सुरम्य।
विद्युव-दुति विकसित-सुमन कम्य।।
तरु सरि-तट पतन सु है अमूल ।।यह जी०।।१।।

सागर का तरल तरंग भव्य।
इह जीवन की गति वदत सभ्य।।
गृह धन कुटुम्ब थल के तरंग।
ये शान-बान हों शीघ्र भंग।।
करले अपना कल्याण मूल ।।यह जी०।।२।।

यह नर-तन साधन मुक्ति-द्वार।
तज भोग-रोग धरु गुरु-विचार।।
सोपान-प्रथम में यह विधान।
गुरुवर कबीर का दिव्य ज्ञान।।
हो धीर त्याग जग स्वप्न शूल ।।यह जी०।।३।।

सद्गुरवे नमः

बीजक-शिक्षा

(संक्षिप्त-संग्रह)

टीका-व्याख्या-शिक्षा युक्त
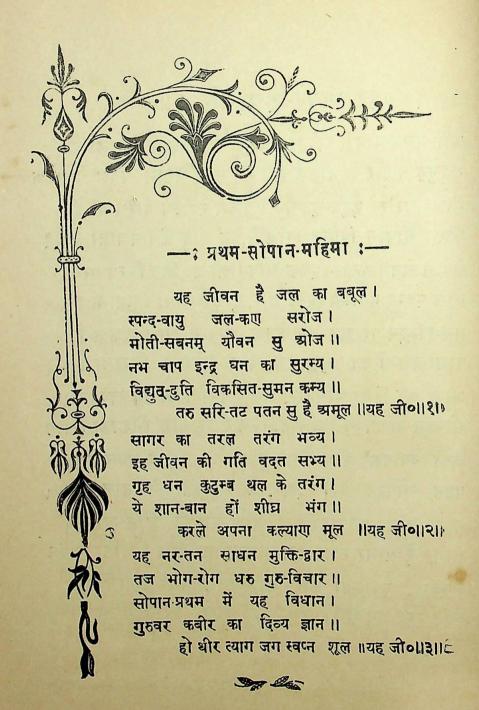
प्रथम-सोपान

संसार की असारता

१—(रमैनी २२ की साखी)

मन्दिर तो है नेह का, मति कोइ पैठो धाय ।
जो कोइ पैठे धाय के, बिन शिर सेती जाय ॥

टीका—नाना प्राणी-पदार्थों से पूर्ण यह माया नगर संसार मोह का मन्दिर है, इसमें कोई दौड़ कर मत घुसो । यदि मोह वश इसमें कोई दौड़ कर घुसेगा, तो सहज ही अपना सब गवाँकर शिर कटा बैठेगा ॥ २२ ॥

व्याख्या—सुन्दर घर, अधिक धन, अनुकूल कुटुम्बी, लावण्यमयी नवयौवन सम्पन्ना मन अनुकूल स्त्री, विद्या-बुद्धि पूर्ण सुन्दर, सुकोमल मन भावन पुत्र एवं मित्र, उच्च पद-प्रतिष्ठा, अपना सर्वाङ्ग नव यौवन सम्पन्न शरीर तथा मन अनुकूल शब्द स्पर्श, रूप, रस और गन्ध इन पंच भोगों के ऐश्वर्य बिल्कुल निःसार, तुच्छ तथा त्याज्य हैं। परन्तु अविद्यावश इनमें जो अनुराग होता है, यही मोह का मन्दिर है। सद्गुरु श्री कबीर साहेब यहाँ मानव मात्र को सावधान करते हैं कि ऐ भाई! इस मोह-मन्दिर में कोई दौड़कर मत घुसो। तात्पर्य यह कि इन प्राणी-पदार्थ रूप सांसारिक भोगों में मोहासक्त मत होओ। नहीं तो मोक्षदायी अनमोल नर-जन्म निःसार बन्धन दायी भोगों की आसक्ति में चला जायगा और मोहासक्ति वश नाना सकाम शुभाशुभ कर्म करके चार खानि के रहट-चक्र रूप यन्त्र पर जन्म-मरण रूपी तीव्र छूरी से बारम्बार अपना शिर कटाया करोगे।

दृष्टान्त—एक विराट जङ्गल था, उस जङ्गल के बीच में एक विशाल खुला मैदान था, उस मैदान के मध्य में एक सुन्दर तालाब और फुलवारी थी तथा फुलवारी में एक विशाल सुन्दर मन्दिर था। मन्दिर में सैकड़ों कमरे थे। हर कमरों में पलङ्ग-मशहरी गद्दे-तकिये तथा खाने, सूँघने, स्पर्श करने, देखने तथा सुनने के अतुल और रमणीय पदार्थ उपस्थित थे। वह मन्दिर ठगों का था, वे ठग सब बड़े चतुर थे। कोमल

और सुन्दर सुकुमार तथा नवयौवन सम्पन्न पुरुष और नव-युवतियाँ वहाँ रहती थीं। उन लोगों का यही काम था कि जो पथिक मन्दिर के पास होकर निकलते थे, उनको वे मन-भावन युवक-युवती मीठे रसिक और प्रेम भरे वचन कहकर तथा हाव-भाव-कटाक्ष करके सुख की आशा देकर मोहासक्त कर लेते थे। पुनः ठग युवक-युवती उन पथिकों को ले जाकर उस मन्दिर को दिखा देते थे। फिर तो पथिक जन दौड़-दौड़ कर उस सुन्दर और विशाल मन्दिर में घुस जाते थे। और मनमानी भोगों को भोगने लगते थे। वहाँ स्वादासक्तों को विविध षट्रस व्यञ्जन मिलते। नवयुवतियों को नवयुवकों का तथा नवयुवकों को नवयुवतियों का समागम मिलता। मोहासक्तों को सुन्दर-सुन्दर बालक-बालिकाओं और मित्रों के आलिंगन मिलते। लोभियों को चाँदी-सोने, हीरे-मोहरे आदि मिलते। बालक-बालिकाओं को खिलौने और मिष्टान्न मिलते। देखने के सिनेमा, नाच, नाटक तथा सरकस आदि मिलते। सुनने के लिये रेडियो, ग्रामोफोन वेश्याओं के मधुर राग मिलते। सूँघने के लिये इत्र, तेल, सुगन्धित फूलों के हार मिलते थे। इन भोगों में सब आसक्त होकर उन्मत्त हो जाते थे। भोगों के नशा से उन्मत्त हुये वे सब प्राणी पलङ्गों पर शयन करने चलते, तो क्या दशा होती कि वहाँ जो पलङ्ग रहते थे, वे पेचदार होते थे। उस पर बैठते ही पेंच घूम जाता था और पलङ्ग उलट जाता था और हर पलङ्ग के नीचे एक

यन्त्र (मशीन) रहता था। जिस पर पड़ते ही धड़ से शिर कटकर अलग हो जाता था। फिर तो ठग लोग उसके सब धन-माल को ले लेते थे। उस मन्दिर में जो जाते थे, उन ठगों के फन्दों में पड़कर सब अपना धन-माल गवाँकर अपना शिर भी कटा डालते थे। इन ठगों के मोह-मन्दिर की दुर्घटना एक सज्जन पुरुष जानता था। वह जङ्गल के चौराहे पर खड़ा होकर उस मोह-मन्दिर की दुर्घटना से बचाने के लिये सब पथिक मनुष्यों को सावधान करता हुआ इसी साखी का भाव कह रहा था—

मन्दिर तो है नेह का, मति कोइ पैठो धाय।
जो कोइ पैठे धाय के, बिन शिर सेती जाय॥

सिद्धान्त—यह संसार ही विराट जङ्गल है, इस संसार के पंच विषय और काम भोग ही मोह का मन्दिर है। संसार के अज्ञानी भोगासक्त कुटुम्बी, नात गोत, सगा-सम्बन्धी एवं मित्रजन हितैषी भाव रखते हुए भी बेचारे ठग बने हैं, जो कि जीवों को मोह-मन्दिर में प्रवेश कराके भोगासक्ति में बाँध देते हैं। फिर तो भोगों में आसक्त हुआ मनुष्य विषय-सुख रूपी पलङ्ग पर आनन्द की नींद लेना चाहता है और विषय-सुख रूपी पलङ्ग का स्पर्श करते ही परिणाम और बन्धन रूपी पेंच घूम जाता है और माना हुआ विषय-सुख ही दुःख रूप बन्धन हो जाता है। तथा जड़ाध्यास रूपी छूरी से मनुष्य

का परमार्थ रूपी शिर कट कर आवागमन रूपी मृत्यु को जीव प्राप्त होता है।

इस मोह-मन्दिर से सद्गुरु श्री कबीर साहेब चेता रहे हैं, वे कहते हैं—

साखी—मन्दिर तो है नेह का, मति कोइ पैठो धाय।
जो कोइ पैठे धाय के, बिन शिर सेती जाय॥

शिक्षासार—इसलिये उत्तम मोक्षदायी नर जन्म पाकर मोह-मन्दिर की फाँसी से सावधान रहना चाहिये। इस संसार का सारा प्रेम असार और बन्धन दायी है।

चेतावनी

दो दिन की फुलवारी जीवन, मन भँवरा मत भूल॥ टेक॥
चटक चाँदनी छटा जवानी, बाढ़ क पानी रे।
सुत नारी धन मान बड़ाई, सेमर को हैं फूल॥ १॥
यह जीवन का कौन भरोसा, श्वास न आये रे।
कुटुम्ब कबीला ले मशान में, जारि करेंगे धूल॥ २॥
बीते समय हाथ पछिताना, तेरे आये रे।
अवसर मिला शीघ्र तू करले, भजन भक्ति सुख मूल॥ ३॥
यह शरीर-संसार सपन-सा, छिन इक मेला रे।
तू अभिलाष विलास विषय तजि, निज स्वरूप में तूल॥ ४॥

२—(रमैनी-२३)

अल्प सुख-दुख आदिउ अन्ता।
मन भुलान मैगर मैं मन्ता॥ १॥

सुख बिसराय मुक्ति कहँ पावै।
परिहरि साँच झूठ निज धावै॥ २ ॥
अनल ज्योति डाहे एक सङ्गा।
नैन नेह जस जरै पतङ्गा॥ ३ ॥
करहु विचार जो सब दुख जाई।
परिहरि झूठा केर सगाई॥ ४ ॥
लालच लागी जनम सिराई।
जरा मरण नियरायल आई॥ ५ ॥

साखी—भरम के बाँधा ई जग। यहि विधि आवै जाय।
मानुष जनम पाय के। नर काहेको जहँड़ाय॥२३

विषय भोगों में माना हुआ किञ्चित् सुख है और भोगों के आदि-अन्त में दुःख-ही-दुःख भरे हुए हैं। परन्तु अज्ञानी मन उन्मत्त हस्ती के समान विषय भोगों में भूला है॥ १ ॥ वैराग्य जनित निर्विषयिक सुख को भूल कर यह मनुष्य मोक्ष कहाँ से पायेगा ? परन्तु भूला मनुष्य तो सत्य चेतन स्वरूप के स्थिति जनित निर्विषयिक सुख (शान्ति) को त्याग कर असत्य देह और दम्पति भोग-सुख को ही अपना स्वरूप या सत्य मानकर उसी का प्रतिक्षण ध्यान करता रहता है॥ २ ॥ आँखों से रूप में मोह करके जैसे पतङ्गी अग्नि की ज्योति में एक सङ्ग होकर अर्थात् अग्नि-ज्योति में कूद कर जल मरती

हैं। तैसे मोहासक्त जीव यौवन, धन, पुत्र, भामिनी, भोग आदि के दो दिन के चमक-दमक को सत्य मान कर और उनमें आसक्त हो विवेक से शून्य होकर दुःख के पात्र हो जाते हैं ॥ ३ ॥ अतएव मायावी असत्य वस्तुओं का मोह त्याग कर हृदय में ऐसा विचार उत्पन्न करो, जिससे जन्मादिक तथा देहोपाधिक समस्त क्लेश समाप्त हो जायँ ॥ ४ ॥ अरे दीवाने मनुष्य ! निःसार भोगों के लालच ही में तुम्हारे अनन्तों नर-जन्म समाप्त हो गये और यह जन्म भी लगभग समाप्त हो गया है, वृद्धावस्था और मृत्यु तुम्हारे निकट आ गयी है, मूढ़ मानव ! अब तो चेत ॥ ५ ॥ अविद्या में फँसे हुए ये संसारी जीव इसी प्रकार जन्मते-मरते रहते हैं। सद्गुरु श्री कबीर साहेब कहते हैं—हे भाग्यवान् मनुष्य ! उत्तम नर-जन्म पाकर इसे तू क्यों व्यर्थ भोगों में खराब कर रहा है ? ॥२३

व्याख्या—भोगों में सुख का नाम मात्र नहीं है, केवल अध्यास वश भोगों में मनुष्य को सुख प्रतीत होता है। जिन भोगों का परिणाम दुःख है, उनको सुख रूप कैसे माना जा सकता है ? विषय भोगों के आदि-मध्य-अन्त (सब ओर) केवल दुःख-ही-दुःख हैं। जो लोग सत्य चेतन की स्थिति त्याग कर असत्य देह-गेहादि में ममता रखते हैं, उन्हें यह सोचना चाहिये कि स्वरूपस्थिति सुख को छोड़ कर मोक्ष नहीं मिल सकता। भोगासक्त मनुष्य को उन्मत्त हाथी और अज्ञानी पतिङ्गे के समान ही माना जा सकता है। मनुष्य

को विवेक से काम करना चाहिये, जिससे उसके सर्व दुःखों का अन्त हो जाय। भविष्य पर सुख की आशा करते-करते अनन्तों नर-जन्म बीत गये, अनादि काल के भूत समय में यह कहा जा सकता है कि जितने पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु के परमाणु होंगे और जितने आकाश में तारे होंगे, इनसे भी अनन्तों गुणा बार हम सब जन्म धारण करके मर चुके हैं। अर्थात् शरीर त्याग चुके हैं। परन्तु आजतक भोगोंसे न शान्ति मिली और न भोग-सुख की आशा त्याग कर विवेक वैराग्य द्वारा हम अपना कल्याण ही किये। आज का भी उत्तम नर-जन्म अण्ट-सण्ट के कार्यों में बीता जा रहा है, जीवन भर अशान्ति का अनुभव किया। बूढ़ापन का भी दौड़ा आ गया है, अब उधर मृत्यु भी मुख फाड़ कर घात करना चाहती है। अहो ! ऐसे अवसर में भी हम अपने दुःख-छुटकारा के लिये प्रयत्न नहीं करते, यह बड़ी अज्ञानता की बात है, इस प्रकार विषयासक्ति में बँधा हुआ प्राणी बारम्बार जन्मता-मरता रहता है। परन्तु कल्याण-साधन करने योग्य उत्तम नर-जन्म को पाकर भी अपने आप को दुःखों का पात्र नहीं बनाना चाहिये। यहाँ मनुष्य सब दुःखों से छूट सकता है।

शिक्षासार—माना हुआ विषय-सुख दुःख रूप है, जन्म-मरण का कष्ट अपरिमित है, जरा और मृत्यु का आक्रमण शीघ्र होने वाला है। विषयासक्ति वश ही मनुष्य संसृति

चक्र में भ्रमता है। अतः शीघ्र अपना कल्याण-साधन कर लेना चाहिये।

३—(रमैनी ४४)

कबहुँ न भयो संग औ साथा।
ऐसहि जन्म गमायउ आछा॥ १॥
बहुरि न पैहो ऐसो थाना।
साधु संगति तुम नहिं पहिचाना॥ २॥
अब तोर होइहैं नरक महँ वासा।
निशिदिन बसेउ लबार के पासा॥ ३॥
साखी—जात सबन कहँ देखिया, कहहिं कबीर पुकार।
चेतवा होय तो चेति ले, नहिं तो दिवसपरतु हैं धार॥

ये संसार के मायावी पदार्थ कभी भी तुम्हारे सङ्ग-साथ न भये, अर्थात् इन वस्तुओं को न तूने लाया है और न परलोक में ले जायेगा। परन्तु इन्हीं क्षण-भङ्गुर पदार्थों के मोह में पड़कर ऐसे कल्याणदायी नर-जन्म को नष्ट कर दिया कि जिससे मोक्ष प्राप्त किया जा सके। अथवा ऐ मानव! तू कभी भी विवेकी सद्गुरु सन्त-महात्माओं का सङ्ग-साथ न किया, यों ही भोग-क्रीड़ा रूपी धूल के खेल में उत्तम नर-जन्म रूप हीरा को खो दिया॥ १॥ सन्तों के सत्संग में तूने अपने सत्य चेतन स्वरूप को परखा नहीं, इधर साधन करने योग्य मोक्षदायी ऐसी उत्तम नर-तन रूपी भूमिका पुनः

शीघ्र तुम्हें मिलेगी भी नहीं। क्योंकि तूने सत्संग द्वारा मानव-गुण लक्षण को जानकर धारण किया नहीं ॥ २ ॥ अतएव तुम्हारा अब पशु, अण्डज तथा उष्मजादि तीन खानि रूप नर्क ही में निवास होगा, क्योंकि तूने जीवन भर बाम-वंचक एवं मन-इन्द्रिय रूपी लबारों के निकट बसा है ॥ ३ ॥ सद्गुरु श्री कबीर साहेब कहते हैं—मन-इन्द्रियों के भोगाध्यास में फँस कर गुरु-ज्ञान विमुख सब जीवों को मैंने नर्क में जाते देखा है। हे मनुष्यो ! सावधान होना हो तो सावधान हो जाओ, नहीं तो बाम-वंचक तथा मन-इन्द्रिय रूपी डाकू नर-तन रूप दिन ही में डाका डाल कर विवेक-विचारादि मनुष्य-गुण रूप धन को लूट रहे हैं ॥ ४४ ॥

व्याख्या—जो लोग उत्तम नर-जन्म को सत्संग में न लगा कर यों ही खो देते हैं, वे बड़ी भूल करते हैं। जो सत्संग में अपने को नहीं परख लेता है। उसे समझना चाहिये कि शीघ्र वह ऐसा उत्तम स्थान न पायेगा। अतः मनुष्य का कर्तव्य है कि इस अनोखा नर-जन्म को पाकर सदाचरण सम्पन्न विवेकी सन्तों का सादर-सप्रेम सत्संग करे, दया, शील, क्षमा, सत्य, धैर्य, विचार, सन्तोष, समता, वैराग्य, भक्ति आदि सद्गुण-सदाचरणों को धारण करे। सत्संग द्वारा अपने यथार्थ पारख स्वरूप को पहचान कर उसमें शान्त होवे। बिना सत्संग के दुःख से छूटना और जीवन का लाभ मिलना असम्भव है। बल्कि जो सत्संग त्याग कर बाम-वंचकों का

कुसंग करते हैं। उनकी बड़ी बुरी गति होती है। बुरे कर्म करके लोग अधोगति में जाते हैं। ये मन-इन्द्रियाँ,ये खानी-वाणी में भूले नर-नारी सब डाकू के समान हैं। ये जीव के कल्याण-साधन रूपी धन को दिन दहाड़े लूट रहे हैं। अतः मनुष्य को सावधान होकर सत्संग का आश्रय लेना चाहिये।

दृष्टान्त—चोरपुरवा नामक एक ग्राम था, उसमें चोर-ही-चोर बसते थे। एक चोर बड़ा विकट था। वह अपने पुत्रों को यह समझाया करे कि जहाँ सन्त बैठे हों तथा जहाँ सत्संग कथा-वार्ता होती हो, वहाँ कभी भी न जाना और न कथा-सत्संग सुनना। क्योंकि सन्तों का सत्संग करने से, उनकी शिक्षा सुनने से चोरी करने से मन हट जायगा। अतः खबरदार ! सत्संग में न बैठना। वह चोर एक रात में राजा के यहाँ चोरी करने चला। मार्ग में एक सज्जन के यहाँ कथा हो रही थी। राजा के घर में जाने का अन्य मार्ग न था। चोर ने सोचा यदि मैं इसी मार्ग से जाऊँगा, तो कथा की कुछ वार्ता अवश्य मेरे कानों में सुनाई पड़ेगी। अतः उसने दोनों कानों में ठूस-ठूस के रूई भर कर चला और जब सत्संग-आश्रम के सामने पहुँचा, तब शीघ्रता पूर्वक भगा। संयोगाधीन उसके एक कान से रूई निकल कर गिर पड़ी और दो बातें उसके कान में चली गयीं। वे बातें ये थीं कि देवता का पैर पृथ्वी पर नहीं पड़ता और उनके परिछाहीं नहीं होती। निदान चोर गया और राजा के घर से माल चुराकर अपने

घर चला आया। सबेरा होने पर राजभवन में चोरी हो गयी है—यह पता चला। राजमन्त्री ने सोचा सम्भव है, चोर-पुरवा का बड़ा चोर आया हो। चोरपुरवा के चोर लोग काली के उपासक थे, समय-समय पर काली की पूजा चढ़ाते थे। अतः परीक्षा लेने के लिये दूसरे दिन आधी रात को मन्त्री ने काली का रूप बना कर चोरपुरवा की ओर बढ़ा, काली के हाथ में खप्पर था, खप्पर में अग्नि जल रही थी, बड़े-बड़े जटा थे, शरीर काला था, रूप महान भयंकर था। काली (मन्त्री) ने जाकर बड़े चोर के द्वार पर पुकारा— ऐ हमारे परम् सेवको ! आओ, आज हमारा प्रत्यक्ष दर्शन कर लो, मैं महाकाली हूँ। तुम लोगों पर प्रसन्न होकर दर्शन देने आयी हूँ। बड़ा चोर घर से निकला और काली के सामने आया तथा भयभीत होकर चरणों पर गिर पड़ा। काली ने कहा—तुम लोग कई महीने हो गये हमारे लिए कड़ाही नहीं चढ़ाये, हमारी पूजा नहीं किये। खबरदार ! अब शीघ्र ही हमारी पूजा चढ़ादे। देख ! हमारी ही कृपा से कल तूने राजा के भवन में से चोरी करके धन ले आया है, मैं कृपा न करती, तो क्या तेरा दाँव लगता ? बता ! हमारी कृपा से राजा का कितना अधिक धन कल रात्रि में लाया है ? चोर हाथ जोड़ कर कहा—हाँ सरकार ! आप की कृपा से हमारा दाँव कल राजा के भवन में अच्छा लग गया था।

इतना सुनते ही मन्त्री का प्रयोजन पूरा हो गया।

अर्थात् परीक्षा कर लिया कि इसी ने धन चुराया है। अतः डाटते हुए मन्त्री रूप काली ने यह कहकर चल दिया कि तुम लोग शीघ्र हमारी पूजा चढ़ादो, अब मैं जाती हूँ। इतने में चोर को—सत्संग में जो दो बातें सुन लिया था कि देवता का पैर पृथ्वी में नहीं पड़ता और उनकी परिछाहीं नहीं होती—इस बात का स्मरण आ गया, तो चोर सोचने लगा, यह तो कोई मनुष्य ही काली का रूप बनाकर मेरी परीक्षा लेने आया था, क्योंकि यदि यह सच्ची काली होती, तो देवी होने से इसका पैर पृथ्वी पर न पड़ता और इसके परिछाहीं भी न होती। परन्तु इसका पैर पृथ्वी पर पड़ता था और जो खप्पर में अग्नि जलती थी, उसके प्रकाश से दूसरी ओर इसकी छाया भी पड़ती थी। अतः मैं धोखा खा गया। अब चोर सोचता है कि प्रातःकाल होते ही राजा हमें पकड़वा लेगा और हमारी बुरी दशा होगी। अतः रात ही को कहीं भाग चलें। ऐसा सोच कर चोर अपने कुटुम्ब के सहित घर का सारा धन लेकर रात-ही-रात दूसरे राज्य में भाग गया और वहाँ (दूसरे राज्य में) जाकर एक घर खरीद कर उसी में कुटुम्ब सहित विश्राम लिया।

वहाँ चोर बैठकर सोचने लगा कि आज तो मुझे राजा पकड़वा लेता, हमारे घर में तलासी लेकर धन भी प्राप्त कर लेता। मेरे को जीवन भर के लिए कारावास का बड़ा दण्ड देता। हमारा जीवन नष्ट हो जाता। अहो ! सत्संग में केवल

दो बातें सुन लेने के नाते ही मुझे ज्ञान हुआ कि देव का पैर पृथ्वी पर नहीं पड़ता और देव के परिछाहीं नहीं होती। इसी ज्ञान से मैंने उस काली बने हुए गुप्तचर (जासूस) के पञ्जे से बच सका। सत्संग की दो बात से ही हमारे जीवन धन की रक्षा हुई, नहीं तो मुझे बड़ा दुःख होता। बाल-बच्चे यत्र-तत्र विकल होकर फिरते। अहो! सत्संग की दो बात से जब मेरा इतना कल्याण हुआ, तब यदि मैं सदैव सन्तों का सत्संग करूँ, तो कितना हमारा कल्याण हो?

यह सोच कर फिर उसी दिन से चोरी करना सर्वथा त्याग कर सन्तों का सत्संग करने लगा और एक सज्जन व्यक्ति हो गया। जब तक वह चोरी करता था, तब तक उसे अन्न-वस्त्र पूरा नहीं आटता था। और जब से चोरी करना छोड़ दिया तब से सत्य की कमाई खाने लगा और सुखी रहने लगा।

उपरोक्त दृष्टान्त से मनुष्य को यह शिक्षा लेनी चाहिये कि सत्संग से मनुष्य का बड़ा लाभ है। विवेकी सन्तों का सत्संग करने से मांस-मद्य, गाँजा-भाँग, बीड़ी-सिगरेट तथा तम्बाकू आदि खाने-पीने के दुर्व्यसन छूट जाते हैं, काम-क्रोधादि दुर्गुण शान्त हो जाते हैं। क्षमा, शान्ति, समता, दया, विवेकादि सद्गुण अपने में आ जाते हैं। पारखी सन्तों के सत्संग से स्वरूपज्ञान प्राप्तकर मोक्ष-लाभ तक प्राप्त हो जाता है। अतः सत्संग से अपना लाभ जानकर सत्संग

करना चाहिये। कोई-कोई इस डर से लड़कों को सत्संग में बैठने नहीं देते कि लड़के साधु हो जायँगे, ये बड़ी भूल है। सत्संग न पाने से लड़के कुसंगी और दुर्व्यसनी-दुराचारी होकर माता-पिता ही को सताते रहते हैं और सत्संगी होने से धर्म-ज्ञान बुद्धि में बस जाते हैं, जिससे लड़के सदाचारी और सद्गुण सम्पन्न होकर माता-पिता के सेविक होते हैं। अतः अपने बाल-बच्चों को सत्संग में ले जाना चाहिये और स्वयं सत्संगी होना चाहिये। दीन कवि कहते हैं—

सवैया

ज्ञान बढ़ै गुनवान की संगत, ध्यान बढ़ै तपसी संगकीने।
मोह बढ़ै परिवार की संगत, लोभ बढ़ै धन में चित दीने॥
क्रोध बढ़ै नर मूढ़ की संगत, काम बढ़ै तिय के संग कीने।
बुद्धि विवेक विचार बढ़ै, कवि 'दीन' सुसज्जन संगत कीने॥

शिक्षासार—उत्तम नर-जन्म पाकर जो सत्संग नहीं करता, वह अपनी बड़ी हानि करता है। अतः मनुष्य को सत्संग करना चाहिये।

४—(रमैनी-४५)

हरणाकुश रावण गौ कंसा।
कृष्ण गये सुर नर मुनि बंसा॥ १॥
ब्रह्मा गये मर्म नहिं जाना।
बड़ सब गये जे रहल सयाना॥ २॥

समुझि न परलि राम की कहानी ।
निर्बक दूध कि सर्बक पानी ॥ ३ ॥
रहि गौ पन्थ थकित भौ पवना ।
दशों दिशा उजारि भौ गवना ॥ ४ ॥
मीन जाल भौ ई संसारा ।
लोह कि नाव पषाण को भारा ॥ ५ ॥
खेवैं सबै मर्म हम जानी ।
तैयो कहैं रहैं उतरानी ॥ ६ ॥

साखी—मछरी मुख जस केंचुवा, मुसवन महँ गिरदान ।
सर्पन माँहि गहेजुआ (ऐसी) जात (देखी) सबन की जान

हिरण्यकश्यपु, रावण और कंस संसार से चले गये, श्री-कृष्ण, देवता, मनुष्य तथा मुनियों के अपार वंशज भी संसार में नहीं रह गये ॥ १ ॥ पारख भेद रहित ही एक दिन ब्रह्मा भी काल के ग्रास हो गये । इस प्रकार जो श्रेष्ठ प्रवीण थे, वे सब मृत्यु के मुख में चले गये ॥ २ ॥ लोगों को राम की कथा समझ न पड़ी कि केवल दूध-ही-दूध है, अथवा सर्वथा पानी-ही-पानी है । अर्थात् सारासार से अज्ञात हो जड़-चेतन मिश्रित कथन करके अनिर्वचनीय या नेति-नेति में विश्राम लिये ॥३॥ खानी-वाणी का कल्पित मार्ग रह गया और प्राणवायु शिथिल हो गया । फिर तो दसों इन्द्रियों को

उजाड़ कर सूक्ष्मप्राणवायु—सूक्ष्म शरीर सहित जीव का प्रयाण (गमन) हो गया ॥ ४ ॥ जीव रूपी मछली के फँसने के लिये यह संसार जाल हो गया । भ्रमरूपी लोह की नौका पर मानन्दी (अहन्ता-ममता) रूपी पाषाण का भार जीव ने लाद लिया ॥५॥ मानन्दी रूपी भार लाद कर भ्रम रूपी नौका को सब लोग खेय रहे हैं और अभिमान करते हैं हम खेवने का भेद जानते हैं । यद्यपि मन-मानन्दी में डूबे जाते हैं, तथापि कहते हैं कि हमारी नौका पार लग रही है, कैसा अन्धेर है ? ॥ ६ ॥

वंसी (लोह के काँटे) में लगे हुए केंचुए को खाने के लोभ वश वंसी से मुख फड़ा कर जैसे मछली अपना प्राण खो देती है, और गिरदान नाम लाल गिरगिट को खाने के लोभ वश चूहा उसे पकड़ने चलता है, परन्तु (सुना जाता है) वह गिरगिट ही फूँक मार देती है और चूहा अन्धा हो जाता है । अथवा जैसे चारा खाने के लोभ वश गिरदान (चूहेदानी) में फँस कर चूहा जीवन नष्ट कर देता है, और जैसे गहेजुआ एक चूहे के समान जन्तु होता है, उसके शरीर पर काँटे होते हैं । परन्तु सर्प चूहा समझ कर उसे पकड़ कर निगल जाता है । निगलते समय गहेजुआ अपने काँटों को समेट लेता है । और जब सर्प के पेट में जाता है, तब अपना काँटा फैला देता है तथा सर्प का पेट फट जाता है और गहेजुआ निकल आता है एवं सर्प का प्राण नष्ट हो जाता है । अथवा

गहेजुआ नाम छछूँदर, सो छछूँदर को चूहा समझ कर सर्प उसे पकड़ता है (सुना जाता है) यदि छछूँदर को सर्प खा लेवे तो मर जाता है और यदि छोड़ देवे तो अन्धा हो जाता है, इस प्रकार लोभ वश सर्प का प्राण नष्ट होता है। यथा—
"भई गति सर्प छछूँदर केरी। लीलत उगिलत पीर घनेरी ॥"

उपरोक्त तीनों दृष्टान्तों के अनुसार ही विषय भोगों के लोभ वश या कल्पना में पड़ कर अज्ञानी मनुष्यों का जीवन नष्ट होता है या जन्मादिक दुःखों के भागी हो रहे हैं ॥ ४५ ॥

व्याख्या—शरीर, धन, बल, राज्य-काज तथा प्रभुत्वादि का अभिमान करने वाले ऐ भूले भाइयो ! किञ्चित् विचार कीजिये, सतयुग समय का हिरण्यकश्यपु कितना बलशाली था, कहा जाता है, सारे संसार को उसने अपने बल से थर्रा दिया, सन्त-भक्तों को बहुत कष्ट दिया। इसी प्रकार त्रेतायुगीय महाप्रतापी रावण कितना विकट योद्धा था ? पृथ्वी-मण्डल के समस्त राजाओं से उसने अपना पानी भराया, इन्द्र को भी परास्त करके जीत लिया। उसके अभिमान का पारावार न था। तैसे ही द्वापरयुगीय राजा कंस कितना शक्तिमान था, जिसका वर्णन करते दाँत खट्टा हो जाता है, इसके भी अभिमान की सीमा नहीं थी।

परन्तु अन्त में हुआ क्या ? जैसे पक्षियों को बाज सहज ही पकड़ कर चीर-फाड़ डालता है, तैसे क्षण-पल में ये बिचारे

चीड़-फाड़ डाले गये। इनके अपार धन, बल और सम्पदा-शासन का आज चिह्न-चिह्न भी नहीं है। यहाँ तक कि महाबली कंस का नाश करने वाले और सोरह हजार एक सौ आठ पटरानियों के साथ रमण करने वाले, अपार यदुकुल से सुशोभित महाप्रतापी श्रीकृष्णजी का भी वह समय नहीं रह गया। तब भला! मनुष्य इन स्वप्न के पदार्थों को दो दिन के लिये पाकर क्यों ऐंठता है? बिल्कुल अज्ञानता है। घर-धन, स्त्री-पुत्र, राज्य-काज तथा शरीर-पंच विषय रूप यह संसार जीव के फँसने के लिये माया जाल है। अज्ञानी प्राणी इसी में फँस-फँस कर मरते हैं। मोह-ममता और अभिमान ही में एक दिन अचानक श्वास निकल जाता है। फिर बड़े-बड़े कहलाने वाले लोगों को भी स्वरूप ज्ञान बिना कूकर-शूकर योनियों में भ्रमना पड़ता है। अतः अभिमान त्याग कर कल्याणार्थ मनुष्य को सावधान हो जाना चाहिये। उपरोक्त मछली, चूहा और सर्प के समान लालची होकर विषय-विवश अपना गला दुःखों में फँसाना अच्छा नहीं है।

शिक्षासार—जीवन की परिणामशीलता और विषय-वासनाओं की प्रबलता देख कर हर क्षण सावधान साधन-रत रहना चाहिये।

चेतावनी

रहना नहिं देश विराना है।

यह संसार कागज की पुड़िया, बूँद पड़े घुल जाना है ॥१॥

यह संसार काँटों की बाड़ी, उलझ उलझ मर जाना है ॥२॥
यह संसार झाड़ अरु झाँखर, आग लगे जर जाना है ॥३॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो, सद्गुरु ज्ञान ठिकाना है ॥४॥

५—(रमैना-४७)

जरा सिन्धु शिशुपाल सँघारा।
सहस्त्रा अर्जुन छल सो मारा ॥ १ ॥
बड़ छल रावण सो गौ बीती।
लङ्का रहल कञ्चन कर भीती ॥ २ ॥
दुर्योधन अभिमाने गयऊ।
पाण्डव केर मर्म नहिं पयऊ ॥ ३ ॥
माया के डिम्भ गयल सब राजा।
उत्तम मध्यम बाजन बाजा ॥ ४ ॥
छौ चकवे बिति धरणि समाना।
एकौ जीव प्रतीत न आना ॥ ५ ॥
कहाँ लौं कहौं अचेतहिं गयऊ।
चेत अचेत झगरा यक भयऊ ॥ ६ ॥

साखी—ई माया जग मोहिनी, मोहिन सब जग झारि।
हरिचन्द सत के कारणे, घर घर शोक बिकाय ४७

बलवान् और अभिमानी राजा जरासन्ध तथा शिशुपाल मार डाला गया। वीर सहस्त्रार्जुन भी छल करने के कारण

दीनवत् मारा गया ॥ १ ॥ बड़ा छली-बली रावण था, परन्तु वह भी समाप्त हो गया । उसकी राजधानी लङ्का के दुर्ग स्वर्ण मय थे, परन्तु उसका भी चिह्न आज नहीं है ॥ २ ॥ अभिमान करते-ही-करते दुर्योधन समाप्त हो गया । उसने पाण्डवों का भेद नहीं जाना कि इनको और श्रीकृष्ण जी रक्षक हैं ॥३॥ माया के अभिमान में अथवा माया के पुत्र (दास) होकर बडे-बडे राजा मिट्टी में मिल गये । केवल उनके सुयश-अयश की बात आज लोगों में चल रही है ॥४॥ उक्त छः चक्रवर्ती समाप्त होकर पृथ्वी में लीन हो गये । परन्तु अज्ञान श्रेणी के एक जीव को भी संसार-शरीर की नश्वरता का विश्वास नहीं होता है, सब को सदा जीने की आशा बनी है ॥५॥ कहाँ तक कहा जाय, अगणित मनुष्य उत्तम नर-जन्म को खोकर और भोगों में लिपट कर असावधानी ही में चले गये । फल एक यही हुआ कि चैतन्य जीव अचेत कल्पना और जड़-भोगों के झगड़ा में पड़कर जन्मादिक सङ्कट भोगता रहता है ॥६॥

कल्पना और विषय रूपी यह माया जगत्-मोहनी है, अतः इस माया ने ज्ञान-हीन संसार के सारे मनुष्यों को नितान्त मोहित कर लिया । यहाँ तक कि प्रतापी राजा हरिश्चन्द्र भी सत्य-रक्षा के कारण काशी नगरी में घर-घर शोकित होकर बिकने को फिरे ।। ४७ ।।

व्याख्या—जरासन्ध, शिशुपाल, रावण, दुर्योधन और

सहस्त्रार्जुन—ये सब बडे बली और अभिमानी थे। परन्तु इनके नष्ट होने में विलम्ब न लगा। अतः किसी को भी अभिमान नहीं करना चाहिये। इन लोगों का दृष्टान्त संक्षिप्त रूप से आगे दिया जाता है।

जरासन्ध

जरासन्ध बड़ा बलवान और दुष्ट राजा था, यह मगध-देश के राजा वृहदर्थ का पुत्र था। राजा वृहदर्थ के प्रथम कोई पुत्रादि न थे। (उनके विषय में कल्पित बातें ऐसी हैं कि) एकबार चण्डकौशिक ऋषि ने प्रसन्न होकर राजा वृहदर्थ को एक आम का फल देकर आशीर्वाद दिया। राजा वृहदर्थ ने उस फल को चीर कर दो भाग करके दोनों रानियों को खिला दिया। अतः दोनों रानियों के गर्भ रह गया तथा समय पूर्ण होने पर दोनों रानी से बालक के शरीर का आधा-आधा भाग पृथक्-पृथक् उत्पन्न हुआ। दोषयुक्त होने से रानी ने उसे फेकवा दिया। एक जरा नामक राक्षसी ने बालक के उन दोनों भागों को पाया। अतः उसने दोनों भागों को एक में जोड़कर और लाकर राजा वृहदर्थ को दे दिया और कहा कि यह पुत्र बड़ा पराक्रमी होगा। तब वृहदर्थ ने उसे रख लिया और उसका नाम जरासन्ध रखा। जरासन्ध की अस्ति और प्राप्ति नामक दो कन्यायें मथुरा नरेशकंस को व्याही थीं। श्रीकृष्ण द्वारा कंस के मारे जाने

पर सत्ताइस इक्षौहिणी सेना लेकर इसने मथुरा पर चढ़ाई की थी। परन्तु उस युद्ध में यह हार गया था, अन्य-अन्य समय में इसने युद्ध करके छियासी राजाओं पर विजय प्राप्त कर उन्हें कैद कर लिया था। युधिष्ठिर के राजसूय-यज्ञ के उपलक्ष में श्रीकृष्ण के संकेतानुसार यह (जरासन्ध) भीम द्वारा द्वन्द्वयुद्ध में मारा गया और बन्दी राजाओं की कैद से मुक्ति हुई।

शिशुपाल

यह चेदिदेश के राजा दमघोष का तथा श्रीकृष्ण की बुआ का लड़का था। इसके भाई का नाम दन्तवक्र और माता का नाम सुप्रभा था। इसके विषय में कुछ कल्पित कथा इस प्रकार प्रचलित है—शिशुपाल जब पैदा हुआ, तब इसके तीन नेत्र और चार भुजायें थीं। ऐसा देखकर सब डर गये। तब आकाशवाणी हुई कि 'डरो मत, यह पुत्र बड़ा बलवान् तथा श्रीमान् होगा।' माता ने कहा—हे देव! कृपा करके यह भी बता दीजिये कि यह पुत्र किसके हाथ मरेगा? आकाशवाणी हुई कि 'जिसके गोद में जाने से पुत्र के दोनों अधिक हाथ गिर जायँगे और तीसरा नेत्र लुप्त हो जायगा। उसी के हाथ से इसकी मृत्यु होगी।'

ऐसा सुनकर माता ने सब के गोद में पुत्र को रखती थी। अनेक राजा उस अद्भुत पुत्र को देखने आये और सब

के गोद में पुत्र को रखा। परन्तु पुत्र का हाथ नहीं गिरा। एकबार श्रीकृष्ण जी बुआ का पुत्र देखने आये, सुप्रभा ने उनके गोद में भी पुत्र को रखा। गोद में रखते ही बालक के दोनों अधिक हाथ गिर गये और तीसरा नेत्र लुप्त हो गया। यह देखकर सुप्रभा डर गयी और कृष्ण से प्रार्थना किया कि भैया! हमारे इस पुत्र के सब दोष क्षमा करना। श्रीकृष्ण ने कहा—"मैं इसके सैकड़ों ऐसे दोष क्षमा कर दूँगा, जिसके बदले में इसे मार डालना चाहिये।"

शिशुपाल बड़ा बलवान् और दुष्ट प्रकृति का मनुष्य था, यह रावण का दूसरा अवतार माना जाता है। यह अपने को क्षत्री और श्रीकृष्ण को अहीर समझता था। यह श्रीकृष्ण की प्रतिष्ठा को नहीं देख सकता था। जब युधिष्ठिर ने राजसूय-यज्ञ किया था, तब उस यज्ञ में श्रीकृष्ण की प्रथम पूजा हुई थी। इसको देखकर शिशुपाल जल गया और भरी सभा में श्रीकृष्ण को कटी-कटी बातें कहने लगा। सैकड़ों गालियाँ देने के पश्चात् श्रीकृष्ण ने चक्र से इसे मार डाला।

शहस्त्रार्जुन

हैहय वंश क्षत्री वर्ण में उत्पन्न एक अर्जुन नामक राजा था। इसने दत्तात्रेय जी की बड़ी सेवा की थी। इस कारण दत्तात्रेय जी की कृपा से इसे शहस्त्र हाथ मिल गये, जिससे यह शत्रुओं में अजेय हो गया और इसे अपने बल का बड़ा घमंड हुआ। एकबार यह बहुत-सी उत्तमोत्तम स्त्रियों को

लेकर नर्मदा नदी में क्रीड़ा कर रहा था। कुतूहल वश इसने अपने हजारों हाथों से नदी की धारा रोक दी। अतः नदी की धारा रुक कर नदी में बाढ़ आ गयी। नदी तट पर संयोगाधीन लंका निवासी महाराजा रावण अपना डेरा डाले पड़ा था। उसका डेरा नदी के बाढ़ में बह गया। इसलिये वह क्रोधित हो शहस्त्रार्जुन से युद्ध करने चला, रावण के सामने आते ही शहस्त्रार्जुन ने उसे पकड़कर बन्दर की भाँति बन्द कर लिया। फिर पीछे दया वश छोड़ दिया। एकबार यह शिकार खेलता हुआ जमदग्नि ऋषि के आश्रम पर पहुँच गया। जमदग्नि ने अपने कामधेनु गौ द्वारा राजा, मन्त्री, सेना—सब का विधिवत् श्रेष्ठ सत्कार किया। यह देखकर जमदग्नि के कामधेनु गौ पर शहस्त्रार्जुन का लोभ हो गया और अपने हैहय वंशीय योद्धाओं को भेजकर बलपूर्वक, जमदग्नि ऋषि से कामधेनु गौ छिनवा लिया। जमदग्नि के पुत्र परशुराम जी उस समय नहीं थे, वे पीछे से आये और यह बात सुनकर बहुत क्रोधित हुए और परशा लेकर शहस्त्रार्जुन को मारने के लिये चल दिये। शहस्त्रार्जुन के नगर के पास पहुँचते तक शहस्त्रार्जुन को ज्ञात हुआ कि परशुराम जी हमें मारने आ रहे हैं, अतएव उसने सत्रह अक्षौहिणी[1] सेना परशु-

---

१ टिप्पणी—अक्षौहिणी संख्या—इक्कीसहजार आठ सौ सत्तर रथ। इक्कीस हजार आठ सौ सत्तर हाथी। पैंसठ हजार छः सौ दश घोड़ा। एक लाख नौ हजार तीन सौ पचास पैदल। इन सब को मिलाकर दो लाख हठारह हजार सात सौ सेना को एक अक्षौहिणी माने हैं।

राम का सामना करने के लिये भेजा। परशुरामजी ने उन सत्रहों अक्षौहिणी सेना को काट डाला। तब शहस्त्रार्जुन क्रोधित होकर स्वयं आया और पाँच सौ बाण एक बार चढ़ाकर परशुराम जी को मारा। परन्तु परशुराम जो उन सब बाणों को एक ही बाण में काट कर शहस्त्रार्जुन के निकट पहुँच गये और परशा से उसके हजारों हाथों को प्रथम काट डाला। शहस्त्र हाथ रहने का जो शहस्त्रार्जुन को अभिमान था, वह तुरन्त नष्ट हो गया। फिर परशुराम जी ने परशा से उसका शिर भी काट डाला और कामधेनु गौ लेकर अपने पिता जमदग्नि को जाकर दिया और सारा वृतान्त कह सुनाया। जमदग्नि ने परशुराम को समझाया कि ऐसा पाप किसी को न करना चाहिये। थोड़ी-सी बात के लिये एक राजा और बहुत-सी सेना को काटना उचित नहीं था। और ब्राह्मणों का अस्त्र तो क्षमा है, ब्राह्मण को कभी युद्ध न करना चाहिये। परन्तु परशुराम जी अपने हठ में ही रह गये और उन्होंने हैहय वंशियों का इक्कीस बार नाश किया।

इस प्रकार महाबली रावण को भी बाँधकर दंड देनेवाला शहस्त्र-हाथ धारण करने का मदी शहस्त्रार्जुन भी न रह गया, वह भी बलिपशु के समान मारा गया। अतएव अभिमान करना बिल्कुल व्यर्थ है।

—:०:—

रावण

इसकी कथा तो प्रसिद्ध ही है, अभिमान ही के कारण श्रीराम द्वारा मारा गया। इसके मिटते देरी न लगी। अतः बहुत बुरा है अभिमान करना।

दुर्योधन

दुर्योधन धृतराष्ट्र के जेष्ठ पुत्र थे, ये भीम के समान अवस्था के थे। भीम का बल-वीर्य देखकर ये जला करते थे। महाभारत के युद्ध में ये ही कौरवदल के अध्यक्ष थे। बाल्य ही अवस्था में खेल-खेलते समय भीम को विष देकर दुर्योधन ने समुद्र में फेकवा दिया था। बासुकी के प्रयत्न से भीम के प्राणों की रक्षा हुई। महाराजा धृतराष्ट्र ने जेष्ठ भतीजे युधिष्ठिर को युवराजा बनाना चाहा, परन्तु ईर्ष्यालु दुर्योधन ने ऐसा न होने दिया। दुर्योधन की राय से धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर आदि पाण्डवों को हस्तिनापुर से निकाल कर वारणावत नामक नगर में भेज दिया। दुर्योधन ने पाण्डवों को जला देने के लक्ष्य से वारणावत नगर में लाक्षागृह (लाह का घर) बनवाया था। परन्तु दुर्योधन की इच्छा न पूर्ण हुई। पाँचों पाण्डव वहाँ से भाग कर पाञ्चाल राज्य में चले गये। इस राज्य के राजा द्रुपद थे। राजा द्रुपद की पुत्री द्रौपदी थी। राजा द्रुपदने द्रौपदी का स्वयंबर ठाना और देश के छोटे-बडे सब राजा निमन्त्रित किये गये

आये और पाँचों पाण्डव भी ब्राह्मण-भेष में वहाँ उपस्थित थे। दुर्योधन आदि सब कौरवों ने एक-एक करके लक्ष्य भेदने का प्रयत्न किया, परन्तु सफलता न प्राप्त हुई। तब ब्राह्मण का छद्म (नकली) भेषधारी अर्जुन ने लक्ष्य भेद किया और द्रौपदी का पाण्डव से विवाह हुआ। द्रुपद के साथ कौरवों की पुरानी शत्रुता थी। अब द्रौपदी के साथ पाण्डवों का विवाह होने से यह शत्रुता कौरव और राजा द्रुपद में और अधिक बढ़ गयी। परन्तु पाण्डवों की बाण-कुशलता सुन कर धृतराष्ट्र प्रसन्न हुए और पाण्डवों को बुलाकर आधा राज्य दे दिया तथा इन्द्रप्रस्थ में उनकी राजधानी बना दी, इन्द्रप्रस्थ में पाण्डवों की राजधानी हो जाने पर पाण्डवों ने राजसूय-यज्ञ किया, जो कि बडे उत्साह के साथ पूर्ण हुआ। यह सब पाण्डवों की कीर्ति दुष्ट दुर्योधन से न सहा जा सका और उसने छली शकुनि से मिलकर जुआ खेलने के लिए युधिष्ठिर को बुलाया। महान् धर्मात्मा होते हुए भी युधिष्ठिर में यह जूआ खेलना रूप महान् दोष था। जिसका परिणाम महान् भयंकर हुआ। अर्थात् शकुनि के छल से राजा युधिष्ठिर जूआ में सब धन-कोष हार गये। अपना राज्य दाँव पर रखा, वह भी हार गये। फिर अपने चारों भाई और स्वयं को तथा पुनः स्त्री (द्रौपदी) को दाँव पर रखा, उन्हें भी हार गये। दुर्योधन की आज्ञा से दुःशासन ने भरी सभा में द्रौपदी का अपमान किया। जूआ में द्रौपदी को हार जाने से सभा में पाण्डव

नीचे शिर किये बैठे रह गये, कुछ बोल न सके। किन्तु द्रौपदी का अनुचित अपमान देखकर भीम ने प्रण किया कि दुःशासन का हृदय और दुर्योधन का जंघा तोड़ कर उसी के रक्त से द्रौपदी का बाल रगूँगा और द्रौपदी ने भी प्रण किया कि जब तक दुर्योधन और दुःशासन के रक्त से अपना बाल न धोऊँगी, तब तक मुझे शान्ति नहीं। यह प्रतिज्ञा महाभारत युद्ध में भीम ने पूर्ण की थी।

धृतराष्ट्र ने अनर्थ हुआ समझ कर द्रौपदी को सान्त्वना देते हुए कहा—बहू ! तू निष्पाप और परम् सुशीला है, मेरे पुत्रों का अपराध क्षमा करना। तू जो वर माँगना चाहे, मुझसे माँग ले। द्रौपदी ने कहा—यदि आप प्रसन्न हैं, तो मेरे पति धर्मराज युधिष्ठिर को दासता से मुक्त कर दें। धृतराष्ट्र ने कहा—उनको मैं मुक्त किया, परन्तु तू और माँग। द्रौपदी ने कहा—हमारे अन्यचारों पतियों को भी दासता से मुक्त कर दें। धृतराष्ट्र ने कहा—एवमस्तु ! कुछ और माँगो। द्रौपदी ने कहा—विशेष हमारा लोभ करना ठीक नहीं। अब मैं कुछ नहीं माँगूंगी। धृतराष्ट्र ने पाँचों पाण्डवों को बुलाकर और जुआ में हारा हुआ सारा धन वापस देकर उन्हें विदा किया। यह बात देख सुन कर दुःशासन, दुर्योधन और शकुनि को बड़ी जलन हुई और धृतराष्ट्र से जाकर कहा कि जीता हुआ सारा धन आप शत्रु को देकर ठीक नहीं किये। आप उन्हें पुनः बुलवाइये और एक बार फिर

उनसे जुआ खेला जायगा। निदान धृतराष्ट्र ने मार्ग में जाते हुए पाण्डव को बुलाकर पुनः जूआ खेलने के लिये प्रेरित किया।

शकुनि ने कहा—अबकी बार जूआ में यह नियम होगा कि (हम या आप) जो हार जाय, वह राज्य छोड़कर मृगचर्म धारण कर बारहवर्ष वनवास करे तथा एक वर्ष किसी नगर में अज्ञात वास करे। यदि उसे कोई पहचान ले, तो वह पुनः बारहवर्ष अज्ञात वास करे। यदि कोई न पहचान सके तो तेरवें वर्ष के अन्त में आने पर राज्य का विभाग करके हम-दोनों (कौरव पाण्डव) राज्य करें। इस बात पर राजी होकर युधिष्ठिर और शकुनि जूआ खेलने लगे और बात-ही-बात में शकुनि ने जीत लिया। तथा मृगचर्म धारण कर पाण्डव वन चले गये।

जब पाण्डवों के वनवास की अवधि समाप्त हुई, तब आ-कर उन्होंने दुर्योधन के पास आधा राज्य लौटाने का प्रस्ताव करने के लिये श्रीकृष्ण को भेजा। श्रीकृष्ण द्वारा बहुत कुछ सम-झाये जाने पर भी दुर्योधन ने न माना और कहा कि बिना युद्ध के तृण बराबर भी पृथ्वी हम पाण्डवों को नहीं दे सकते। अतः दोनों ओर से युद्ध हुआ, उसमें कौरवों का सर्व संहार हुआ। अर्थात् १८ दिन के युद्ध में कौरव दल समाप्त होकर दुर्योधन की जीवन लीला का पाण्डव द्वारा विसर्जन हुआ।

पाण्डव

महाभारत-युद्ध के पश्चात् पाण्डव का एकछत्र राज्य हुआ। परन्तु इनकी अवधि समाप्त होने पर द्रौपदी सहित पाँचों पाण्डव स्वर्ग की आशा से हिमालय पर चले। हिमालय पर पहुँच कर कुछ दूर चलने पर प्रथम हिम (बर्फ) में द्रौपदी गिर कर गल गयीं और पश्चात् क्रमश पाण्डव भी गल गये।

इस प्रकार जरासन्ध, शिशुपाल, शहस्त्रार्जुन, रावण, दुर्योधन तथा पाण्डव—ये छः चक्रवर्ती जब-जब पृथ्वी पर शासक थे, तब-तब इनकी कीर्ति-यश, सम्पत्ति-बल और तेज का कितना बाहुल्य था। परन्तु आज न वे ही हैं, न उनकी सम्पदा और शासन ही हैं।

वेनु, बलि, कंस, दुर्योधन, पृथु, तथा त्रिवृक्रम—स्थान भेद से इस प्रकार भी चक्रवर्ती माने हैं। परन्तु ये सब भी धूल में मिल गये, धन-राज्य शरीर किसी के न रहे। अतएव सब अभिमान त्याग कर भजन में मन लगाना चाहिये।

हरिश्चन्द्र

हरिश्चन्द्र अयोध्या के राजा थे। ये एकबार वन में विहार करने गये। वहाँ एक स्त्री को दुःखों से पीड़ित रोती हुई राजा ने देखा, रोने का कारण पूछने पर उसने कहा कि मेरा नाम कामना है, विश्वामित्र जी की घोर तपस्या के कारण मैं

दुखी हूँ और रो रही हूँ। राजा ने उसे सांत्वना दिया और विश्वामित्र को जाकर तपस्या करने से रोका। राजा ने कहा—हे महात्मन्! शरीर को मत सुखाओ, जो वस्तु चाहो, मैं दे दूँ। ऐसा कहकर राजा अयोध्या नगर में लौट गये। इधर विश्वामित्र को तपस्या से रोकने से बड़ा क्रोध जगा और एक सूअर राजा की फुलवारी तोड़ने के लिये भेजा। वह सूअर जाकर राजा की फुलवारी विध्वंस कर दिया। माली द्वारा पता पाकर राजा आया और सूअर का पीछा किया। सूअर भागते-भागते कई वन लाङ्घ कर कहीं छिप गया। सूअर के पीछे राजा नगर से बहुत दूर निकल गये थे। राजा श्रमित होकर एक नदी में जल पिये और अपने घोड़े को जल पिलाये। इतने में विश्वामित्र जी वृद्ध ब्राह्मण का छद्म वेष बना कर और बनावटी एक कन्या तथा एक वर को लेकर राजा के पास पहुँचे। राजा ने नमस्कार किया। ब्राह्मण ने आशीर्वाद दिया और राजा का परिचय पूछा। राजा ने अपना नाम पता बताया और कहा कि मैं इस समय एक राजसूय-यज्ञ करने का अनुष्ठान किया हूँ। आप भी जो दान चाहें, माँगलें। वृद्ध ब्राह्मण-वेषधारी विश्वामित्र ने वर-कन्या की ओर संकेत करके कहा—यदि देना है, तो यह हमारी कन्या है और इसी वर के साथ इसका विवाह करना है, आप अपने हाथी, घोडे, रत्न, खजाना एवं समस्त राज्य को इसी वर को दे दीजिये। विश्वामित्र की माया से

राजा की बुद्धि प्रथम से ही मोहित हो चुकी थी। अतएव कहा कि हे ब्रह्मन् ? आपने जो कुछ माँगा, मैं वह सब कुछ दे दिया। फिर विश्वामित्र ने कहा—अब कुछ दक्षिणा दीजिये। राजा ने कहा—दक्षिणा क्या दूँ ? विश्वामित्र ने कहा—ढाई भार सोना। राजा ने कहा—एक महीने का हमें अवसर दीजिये। विश्वामित्र ने एक महीने का अवसर दे दिया। राजा वहाँ से राजभवन पर आये और देवी भागवत में लिखा है कि राजा पीछे से बड़ा पश्चाताप किये कि मैं तो ठग गया। परन्तु वचन हार जाने से विवश हो गये।

दक्षिणा चुकाने के लिये रानी-शैव्या और पुत्र रोहित के साथ अयोध्या राज छोड़कर एवं विश्वामित्र को देकर बिकने के लिये राजा हरिश्चन्द्र काशी नगर चल दिये। यह समाचार नगरवासी और राजधानी के लोग पाकर बहुत दुखी होकर विलाप करने लगे और देवी भागवत में लिखा है कि नगरवासियों ने कहा—"अहो ! हमारे धर्म धुरन्धर राजा को इस धूर्त ब्राह्मण ने ठग लिया। यह ब्राह्मण नहीं महा ठग एवं धूर्त है।" इधर राजा काशी नगर में जाकर एक ब्राह्मण के हाथ में रानी-शैव्या और पुत्र-रोहित को वेंच डाला तथा एक चाण्डाल के हाथ में अपने को वेंचा और विश्वामित्र की दक्षिणा चुकाया। शैव्या और रोहित ब्राह्मण के दास होकर रहने लगे तथा हरिश्चन्द्र चाण्डाल के आज्ञानुसार श्मशान पर रहकर मृतक-कर लेने के लिये नियुक्त हुए।

विश्वामित्र की प्रेरणा से एक दिन रोहित को सर्प ने काट लिया और रोहित मर गया। अतएव करुणा-क्रन्दन करते शैव्या रोहित का शव लेकर दाह करने के लिये आधी रात को श्मशान पर पहुँची और वहाँ बैठकर पुत्र को गोद में लेकर विलाप करने लगी। विलाप सुनकर वहाँ के नागरिक आये। उन लोगों ने पूछा तू कौन है? दुःखों की अधिकता से रानी उत्तर न दे सकी। इस प्रकार उत्तर न पाने से नागरिक समझे कि यह कोई राक्षसी है, किसी के पुत्र को मारकर खाने के लिये लायी है। अतएव उन लोगों ने रानी का केश, हाथ इत्यादि पकड़कर घसीटते हुए वहाँ के स्वामी चाण्डाल के पास ले गये। चाण्डाल ने रानी को राक्षसी समझकर हरिश्चन्द्र को आज्ञा दिया कि इसको तलवार लेकर मार डालो। स्त्री-वध करने से हरिश्चन्द्र ने बहुत प्रकार से अस्वीकार किया, परन्तु चाण्डाल क्रोधित होकर कहा—तू हमारा दास है, हमारा अन्न खाता है, तेरे को आज्ञा मानना ही पड़ेगा। अतएव विवश होकर हरिश्चन्द्र शैव्या को मारने के लिये गये। शैव्या ने कहा—मेरे मृतक पुत्र का शव यहाँ रखा है, उसका दाह हम कर दें, तब आप हमें मार देंगे, हरिश्चन्द्र उस शव (मुर्दे) के पास गये। इधर शैव्या विलाप करने लगी और बात-ही-बात में शैव्या और हरिश्चन्द्र का परिचय हो गया और दोनों पुत्र-मरण के दुःख से व्याकुल होकर चिता बनाये और पुत्र रोहित के शव को उसमें रख कर राजा

हरिश्चन्द्र और रानी शैव्या भी उसी चिता में जलने का विचार कर लिये। चिता में आग लगा कर जलना ही चाहते थे कि इन्द्र, धर्म, विश्वामित्र और अनेक देवता आ गये तथा सबों ने राजा-रानी को जलने से रोका और इन्द्र ने रोहित को जिला दिया तथा रानी और पुत्र सहित राजा को स्वर्ग ले चलने के लिये इन्द्र ने कहा। राजा ने कहा—मैं चाण्डाल का दास हूँ, उससे बिना आज्ञा माँगे कैसे स्वर्ग चलूँ। धर्म, इन्द्र आदि ने कहा—यह सब हम लोगों की माया है, तुम्हारी परीक्षा के लिये यह किया गया था। अब परीक्षा की अन्तिम घड़ी है, सब चिन्ता त्यागकर स्वर्ग पधारिये। इस प्रकार कहने से राजा स्वीकार कर लिये और सब-के-सब अयोध्या आये तथा रोहित को अयोध्या का राज देकर आयोध्या-वासियों के सहित राजा हरिश्चन्द्र और रानी शैव्या स्वर्ग लोक चले गये। इस प्रकार कल्पित कथा विस्तार पूर्वक देवी भागवत में लिखी है। यहाँ तो संक्षेप में कहा है।

श्री महाराज राघव साहेब अपने सटीक बीजक में लिखते हैं कि "हरिश्चन्द्र के विषय में कहीं-कहीं पुराणों में ऐसा लिखा है कि स्वप्न में ही यह सब दशा हरिश्चन्द्र की हुई थी। और कहीं लिखा है कि हरिश्चन्द्र ने मानस अश्वमेध किया था, उसमें मानस अश्व की हिंसा भी किया था। परन्तु उसका प्रायश्चित नहीं किया था। उसी हिंसा रूप पाप कर्म का फल हरिश्चन्द्र को भोगना पड़ा था। इससे

मनुष्य को विचारना चाहिये कि हिंसा कैसा अनर्थ का हेतु है ?''

सद्गुरु श्री कबीर साहेब का मन्तव्य हरिश्चन्द्र का यहाँ उदाहरण देने का यह है कि अपने शुद्ध चैतन्य पारख स्वरूप के ज्ञान एवं स्थिति से वंचित होकर स्वर्ग की आशा वश साधारण दान प्रतिग्रह सम्बन्धी सत्यपालन के फेर में पड़कर हरिश्चन्द्र भी माया से ठगा गये। परन्तु ध्यान रहे ! जिस क्षेत्र में हरिश्चन्द्र थे, उन्होंने धैर्य और सत्य का बड़ा ऊँचा आदर्श स्थापित किया है। यद्यपि उनका दृष्टान्त चाहे सर्वथा कल्पित हो। परन्तु उससे धैर्य और सत्यता की शिक्षा ली ही जा सकती है। यहाँ श्री कबीर साहेब का भाव यह है कि जिसे सुख-दुःख, स्वर्ग-नर्क की आशा त्यागकर बोध-वैराग्य एवं निराश वर्तमान पूर्वक मोक्ष लेना है, उसे कल्पित स्वर्ग दायक दान प्रतिग्रहादि की पूर्ति के लिये हरिश्चन्द्र के समान दर-दर भटकने की भी आवश्यकता नहीं है। विवेकी विवेक पूर्वक ही सारा काम करता है।

६—(रमैनी-५२)

गये राम औ गये लछमना।
संग न गई सीता ऐसी धना॥ १॥
जात कौरवे लागु न बारा।
गये भोज जिन्ह साजल धारा॥ २॥

गये पाण्डव कुन्ता ऐसी रानी।
गये सहदेव जिन बुधि मति ठानी ॥ ३ ॥
सर्व सोने की लङ्क उठाई।
चलत बार कछु संग न लाई ॥ ४ ॥
जाकर कुरिया अन्तरिच्छ छाई।
सो हरिश्चन्द्र देखल नहिं जाई ॥ ५ ॥
मूरख मनुसा बहुत सँजोई।
अपने मरे और लग रोई ॥ ६ ॥
ई न जानै अपने मरि जैबै।
टका दश बिढ़ै और लै खैबै ॥ ७ ॥

साखी—अपनी अपनी करि गये, लागि न काहु के साथ।
अपनी करि गये रावणा, अपनी दशरथ नाथ ।५५

इस संसार से लक्ष्मण चले गये, श्रीरामजी भी चले गये। परन्तु सीताजी ऐसी पतिव्रता स्त्री उनके साथ में न जा सकीं ॥ १ ॥ अपार कौरव दल को इस क्षण-भङ्गुर संसार से जाते विलम्ब न लगा। जिन्होंने धारा नगरी को सम्पदा और कला से सजा रखा था, वे भोज राजा भी उसको छोड़ कर परलोक-प्रयाण कर गये ॥ २ ॥ वीर पाण्डु चले गये, कुन्ता ऐसी उनकी रानी चली गयीं। बुद्धि एवं मति के अगाध भण्डार सहदेव जी भी इस संसार में नहीं रह गये ॥ ३ ॥

सर्व लङ्का रावण ने स्वर्णमय उठवाया था। परन्तु मरते समय अपने साथ में किञ्चिन्मात्र भी कोई वस्तु न ले जा सका ॥४॥ जिसका दुर्ग (किला) आकाश चूम रहा था। वह हरिश्चन्द्र आज देखने में नहीं आता ॥ ५ ॥ अहो ! यह मूर्ख मन प्रयत्न पूर्वक बहुत धन इकट्ठा करता है। स्वयं कब्र में पैर लटकाये है, परन्तु भविष्य कुटुम्बियों के लिये रो रहा है ॥६॥ यह नहीं जानता कि एक दिन इन सबों को छोड़कर मुझे भी मर जाना पड़ेगा। दया, क्षमा, सत्य, धैर्य, विचार विवेक, वैराग्य, गुरु-भक्ति, सन्तोष तथा शान्ति मानवता एवं मोक्ष के इन दश सद्गुणों को नष्ट कर भावी कल्याण को तथा जमा रूप भविष्य नर-जन्म को इस अज्ञानी जीव ने खो डाला ॥ ७ ॥

मायावी पदार्थों को अपना-अपना सब मान करके मृत्यु के ग्रास हो गये, परन्तु किसी के सङ्ग ये वस्तुयें न गयीं। राज्य-सम्पत्ति को रावण अपना-अपना कह कर मर गया और पुत्रादि कुटुम्ब के मोह वश उन्हें अपना मानकर राजा दशरथ भी संसार से प्रयाण कर गये, परन्तु विजाति वस्तुयें किसी के साथ न गयीं ॥ ५५ ॥

व्याख्या—श्रीराम, दुर्योधन, भोज, पाण्डु, पाण्डव, रावण, हरिश्चन्द्र तथा दशरथ इत्यादि, इन-इन के राज्य और जीवन काल में इन-इन के अधिकार में जितनी विभूतियाँ थीं, जो प्राणी-पदार्थ थे। वे सब आज बिल्कुल नहीं रह

गये हैं। न वे सब रजवाड़े हैं और न उनकी विभूतियाँ हैं।

पृथ्वी तल में स्थान-स्थान पर बड़े-बड़े ऐसे बहुत टीले (भिट्ट) मिलते हैं, जहाँ ईंटे अधिक मिलती हैं। उनको खोदने पर ईंटों से बनी हुई भित्त और कोठरियाँ तथा कमरे मिलते हैं। सिक्के, मनुष्यों की हड्डियाँ तथा और भी उपयोगी वस्तुयें खोदने से मिलती हैं। इन सब लक्षणों से यही ज्ञात होता है कि वहाँ किसी राजा का दुर्ग (किला) था।

सोचना चाहिये, वहाँ जब वे रजवाड़े रहे होंगे, तब वहाँ की शोभा कितनी विचित्र रही होगी? सैना, सिपाही, चौकीदार, सेवक, सूर-सामन्त, मन्त्री हाथी-घोड़े नाना वाहन, परियों के नृत्य प्रकाश युक्त महल के रमणीय कक्षों में भव्य पलङ्ग, मुलायम गद्दे और दुग्धवत् उज्ज्वल चद्दरों से आवेष्टित सेज्यायें, कोमलाङ्गी नवयुवतियों के संग मनवांछित क्रीड़ा-उपभोग। कोमल-सुन्दर, प्रियभाषी मित्र-मण्डलियों से सुसज्जित राज्य सिंहासन का आनन्द, अपार धन और शासन। अहो! भौतिक सुखोपभोग की कौन-सी सामग्री उन सामर्थ्यशाली नृपालों के पास न रही होगी? सब कुछ रहे होंगे। परन्तु उन नृपालों का और उनके भोगों का, मित्र-मण्डली और नवयुवतियों का तथा और भी अन्यान्य पदार्थों का आज चिन्ह भी तो नहीं है। आज केवल मिट्टी का टीला दीखता है।

अहो ! जब ऐसे बड़े-बड़े रजवाड़े नहीं रह गये, तब छोटे-छोटे मनुष्य थोड़ी सम्पत्ति, शासन और भोग जवानी पर व्यर्थ ही अभिमान करते फिरते हैं। अरे ! इनके लोप होते तनिक भी विलम्ब न लगेगा। जिनमें तुम्हारी ममता हो रही है, वे धन, पुत्र, स्त्री, घर, मित्र, कुटुम्ब इत्यादि तुम्हारे नहीं हैं। चेतन अविनाशी और निराधार होने से किसी का नहीं है और दृष्टिगोचर पदार्थ सब तत्त्व-रचित विजाति होने से किसी के नहीं हैं। अतः संसार के प्राणी-पदार्थों पर अपनी स्ववशता का अभिमान न करो। जो लोग दो-चार अक्षर पढ़-लिख लेते हैं, कहीं चार पैसे की नौकरी पा जाते हैं। कुछ मनुष्यों पर उनका थोड़े दिन के लिये थोड़ा अधिकार हो जाता है। यदि विवेक नहीं है, तो वे फूले नहीं समाते। ज्ञात होता है, उनका पैर पृथ्वी पर अब कभी नहीं पड़ेगा। वे अन्य मनुष्यों को तुच्छ देखते हैं, सबसे ऐंठ कर चलते हैं। सन्त-महात्मा और ज्ञान-भक्ति को व्यर्थ समझते हैं। उनके अभिमान के नशा का पारावार नहीं रहता। परन्तु उनका एक दिन ऐसा आता है कि उन्हें सब छोड़कर इस संसार से चल देना पड़ता है। सुन्दरता और जवानी से पूर्ण उनके शरीर को लोग मिट्टी में दबा देते हैं। बहुत मनुष्यों पर शासन करने वाला एक दिन राख का ढेर हो जाता है। मनुष्य अपने मृत्यु का ध्यान नहीं करता "मैं स्वयं एक दिन नहीं रह जाऊँगा।" बल्कि वह अन्य कुटुम्बियों की ममता में और

उनके निमित्त द्रव्य-संग्रह में जीवन नष्ट कर देता है। परन्तु मनुष्य को सब को छोड़कर एक दिन अकेले ही जाना पड़ता है। कोई बाहरी वस्तु उसके साथ नहीं जाती। सुन्दरदास जी कहते हैं।

—सवैया—

ये मम देश विलायत हैं गज, ये मम मन्दिर ये मम थाती।
ये मम मात पिता पुनि बान्धव, ये मम पूत सु ये ममनाती॥
ये मम कामिनि केलि करै नित, ये मम सेवक हैं दिन राती।
"सुन्दर" ऐसहिं छाँड़ि गयी तब, तेल जरचो सुबुझी जब बाती॥

शिक्षासार—संसार की नश्वरता का ध्यान रखकर हरस्थल पर हरक्षण मनुष्य को मन-माया से सावधान रहकर भजन में रत रहना चाहिये

गजल-चेतावनी

मन में सम्हल के देखो, दो दिन की जिन्दगी है।
यह ओस का बबूला, तन ठहरता नहीं है॥टेक॥
क्षण-क्षण में बदलता ये, क्षण ही में लुप्त होता।
मिट्टी के कच्चे घट में, जल ठहरता कहीं है॥१॥
वायू के झोंक में ज्यों, दीपक की ज्योति नाजुक।
त्यों जिन्दगी तुम्हारी, नापायेदार की है॥२॥
संसार धर्मशाला, सब जीव मुसाफिर ज्यों।

आते हि जाते रहते, कोइ ठहरता नहीं है ॥३॥
धन दार गृह कुटुम्बी, नहिं साथ में चलेंगे।
अच्छी बुरी कमाई, साथी तेरा वही है ॥४॥
दो दिन के जिन्दगी में, मत दाग तू लगाना।
चलना सम्हल सम्हल के, माया नगर यही है ॥५॥
तू चेत ऐ भटकता, परदेश का मुसाफिर।
अभिलाष देश तेरा, संसार यह नहीं है ॥६॥

७—(रमैनी—५६)

दिन दिन जरै जलनी के पाऊ।
गाड़े जाय न उमँगे काहू ॥ १ ॥
कन्धन देय मस्खरी करई।
कहुधौं कौन भाँति निस्तरई ॥ २ ॥
अकर्म करै औ कर्म को धावै।
पढ़ि गुनि वेद जगत समुझावै ॥ ३ ॥
छूँछे परे अकारथ जाई।
कहहिं कबीर चित चेतहु भाई ॥ ४ ॥

भ्रम और विषयाध्यास में जलाने वाली कल्पना तथा प्रमदा के पैर (अधीनता) में लग कर अज्ञानी मनुष्य सदा-सर्वदा जलता रहता है। अज्ञानी सब जीव विषय-वासना में गड़े जा रहे हैं, विवेक हीन कोई भी उससे

उबरते नहीं ॥१॥ विषयासक्त प्रमदा-पुरुष परस्पर आनन्द मान कर गला मिलाकर गाढ़ आलिङ्गन करते हैं। मुख्य बन्धन को ही ये सुख रूप मानते हैं। कहो भला! इन विषयासक्त नर-नारियों का कल्याण कैसे होगा?॥ २॥ प्रत्यक्ष ही बुरा कर्म करते हैं और ध्यान लगाते हैं शुभकर्मों के उत्तम फलों का। अथवा अन्य को निष्काम-कर्म-योग का उपदेश करते हैं और स्वयं सकाम कर्म-कीचड़ में डूबे जाते हैं। वेद का अध्ययन-मनन करके संसारी मनुष्यों को समझाते हैं ॥३॥ परन्तु सद्गुण और सदाचरण से रहित रहने के कारण इनका वेदाध्ययन और शास्त्र-आडोलन खाली-खाली रह जाता है और उसी शास्त्र-ज्ञान के अभिमान वश बद्धज्ञानी होकर कल्याणदायी उत्तम नर-जन्म व्यर्थ में चला जाता है। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—ऐ स्वजाति प्रिय बन्धु! तुम चैतन्य रूप हो, अतः विषय और वाणी अध्यास की नींद से जाग्रत हो जाओ ॥ ४ ॥

व्याख्या—जन्मादिक में भ्रमाने वाला, जीव का सब से बड़ा भारी बन्धन स्त्री के लिये पुरुषों की आसक्ति और पुरुषों के लिये स्त्रियों की आसक्ति—कामवासना है। जो स्त्री-पुरुष जन्मादिक-देहोपाधिक सङ्कटों से सर्वदा के लिये सर्वथा छुटकारा चाहते हैं, उन्हें चाहिये कि वे स्त्री-पुरुष की जो पारस्परिक काम-वासना है, उसको अन्दर-बाहर सब प्रकार जला डालें।

इसी प्रकार मोक्ष में एक बड़ा भारी अवरोधक शास्त्र-ज्ञान है। जो अनेक शास्त्रों का अध्ययन करके शास्त्रों का अधिक ज्ञानी हो जाते हैं और अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य एवं विवेक-वैराग्य भक्ति आदि सदाचरण-सद्गुण नहीं धारण कर पाते, उनका कल्याण नहीं होता—यह तो है ही। परन्तु साथ-साथ यह भी है कि उनका सुधार होना दुस्तर हो जाता है। क्योंकि उन्हें अपने को पूरा ज्ञानी होने का अभिमान रहता है। वे अपने को पूर्ण समझते हैं। फिर उनका सुधार कैसे हो सकता है? सुधार वही कर सकता है, जो अपने में कमी देखे और जो अपने में कमी ही नहीं मानता, वह सुधार क्या करेगा? सद्गुण-सदाचरणों से पूर्ण किन्तु अक्षरी विद्या को कम जानने वाले विवेकियों के प्रति तो उनकी श्रद्धा ही नहीं जग सकती—यह तो है ही। परन्तु उनके प्रति उन्हें उपेक्षा भी रहती है कि कम पढ़ा क्या जाने? किन्तु साधकों को यह ध्यान रखना चाहिये कि शास्त्र-ज्ञान की अपेक्षा संयम-साधन और सद्गुण-सदाचरण बलवान् तथा उच्च हैं। शास्त्र-ज्ञान से हीन किन्तु सद्गुण-सदाचरण से पूर्ण मनुष्य अत्यन्त उच्च है और आचरण-हीन किन्तु शास्त्र-ज्ञान में पारांगत बद्धज्ञानी अत्यन्त तुच्छ—मन का दास है। जो लोग जानकारी और प्रवचन-शक्ति को बहुत बढ़ा लेते हैं और संयम-साधन तथा सद्गुण-सदाचरण से हीन रहते हैं, उनकी उस मनुष्य की दशा हो जाती है, जैसे कोई एक पैर

बहुत अधिक आगे बढ़ादे और दूसरा पैर बिल्कुल पीछे रखे रहे। तो जैसे वह मनुष्य न आगे ही बढ़ पाता है और न पीछे ही हट पाता है, बस बीच ही में गिर पड़ता है। ऐसे ही आचरण-हीन अधिक जानकार वक्ता की दशा होती है। उसका जानकारी और प्रवचन रूपी पैर बहुत आगे बढ़ जाता है और संयम-सदाचरण रूपी पैर बहुत पीछे रह जाता है। वह केवल अधिक जानकारी और प्रवचन-शक्ति ही में अपने को कल्याण रूप समझता है। अतः उसके लिये वह ज्ञान ही कल्याण का बाधक होकर असाध्य रोग हो जाता है। दोहा—ज्ञान घटावे मान मद, ज्ञानहि देत बढ़ाय।

मुक्ति गती पावे यती, कामी रति पल्टाय॥

(भर्तृहरि शतक)

अतः वाच्यज्ञान का अभिमान त्याग कर सत्संग परायण होते हुए सदाचरण-सम्पन्न होना चाहिये।

शिक्षासार—काम और वाणी का अभिमान त्याग कर कल्याण-साधन में डट जाना चाहिये।

८--(रमैनी ६० की साखी)

झूठ झूठा कै डारहू, मिथ्या यह संसार।
तेहि कारण मैं कहत हौं, जाते होय उबार॥६०॥

जगत् की वस्तुयें असत्य हैं अतएव उसे असत्य ही समझकर सर्वथा त्याग दो, क्योंकि इस संसार का सुखानन्द और

सम्बन्ध भी असत्य है। इसके त्यागने के लिए मैं इसलिये कहता हूँ कि जिससे तुम्हारा जगत्-समुद्र से उद्धार हो जाय ॥ ६० ॥

व्याख्या—प्रश्न—सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब के सिद्धान्त में जगत् को मिथ्या नहीं माना गया है और वास्तव में जगत् मिथ्या है भी नहीं। आँख, नाक, कान, जीभ और त्वचा इन पाँच इन्द्रिय तथा मन से दृश्यमान् जगत् कभी भी मिथ्या नहीं हो सकता है। फिर इस साखी में संसार को मिथ्या क्यों कहा गया है?

उत्तर—सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब का भाव शांकर मतानुसार यहाँ जगत् को सर्वथा मिथ्या बतलाने का नहीं है। उन्होंने इसी ग्रन्थ में अन्यत्र कहा है "तहिया होते पवन नहिं पानी। तहिया सृष्टि कौन उत्पानी ॥" अर्थात् सृष्टि को आदि मानने वाले लोगों से साहेब का पूछना है कि जब पवन-पानी आदि तत्त्व प्रथम नहीं थे, तब सृष्टि को क्या लेकर किसने उत्पन्न कर दिया? इस प्रमाण से तत्त्वों को अनादि मानकर जगत् को प्रवाह रूप नित्य साहेब ने माना है। अतः अनादि और नित्य वस्तु मिथ्या नहीं हो सकती। यदि कहिये—फिर विरोधी बातें उन्होंने क्यों लिखा? तो उनका यहाँ का भाव जगत् को मिथ्या बतलाना नहीं है। बल्कि जगत् के जड़ और परिणामी पदार्थों में जो

सुख का मानना है, अथवा जड़ जगत् और चेतन का सम्बन्ध है, उसे ही उन्होंने मिथ्या बतलाया है, ऐसा प्रतीत होता है। जिसका स्वरूप सत्य न हो उसे झूठा कहते हैं, शरीर सरूप से सत्य नहीं है, अतः यह झूठा है, और भोगों में सुख नहीं है, क्योंकि केवल भोग-क्रिया-अभ्यास से सुख प्रतीत होता है और जिसका परिणाम दुःख जनक हो वह सुख रूप नहीं माना जा सकता है, अतः भोगों में सुख मानना मिथ्या है। इसलिये देहादि पदार्थों को झूठा और उसमें सुख मानना को मिथ्या बतला कर उसके राग-भोग को साहेब ने त्याग करने का आदेश दिया है। नीचे की पंक्ति से यह स्पष्ट हो जाता है कि साहेब का भाव संसारासक्ति त्याग कराने का है, संसार को मूलतः मिथ्या बतलाना नहीं। यथा—

" तेहि कारण मैं कहत हौं, जाते होय उबार "

शिक्षासार—नाशवान् वस्तु का प्रेम त्याग कर अविनाशी स्वरूप में रमण करना चाहिये।

४--(रमैनी-- ७८)

मानुष जन्म चूकेहु अपराधी।
यहि तन केर बहुत हैं साझी॥ १॥
तात जननि कहैं पुत्र हमारा।
स्वारथ जानि कीन्ह प्रतिपाला॥ २॥

कामिनि कहै मोर पिउ आही।
बाघिनि रूप गिरासा चाही॥ ३॥
सुत कलत्र रहैं लौ लाई।
यम की नाईं रहैं मुख बाई॥ ४॥
काग गिद्ध दोउ मरण विचारैं।
सौकर श्वान दोउ पन्थ निहारैं॥ ५॥
अग्नि कहै मैं ई तन जारौं।
पानी कहै मैं जरत उबारौं॥ ६॥
धरती कहै मोहिं मिलि जाई।
पवन कहै सङ्ग लेउँ उड़ाई॥ ७॥
तेहि घर को घर कहैं गवाँरा।
सो बैरी होय गरे तुम्हारा॥ ८॥
सो तन तुम आपन कै जानी।
विषय स्वरूप भूलेउ अज्ञानी॥ ९॥

साखी—इतने तन के साझिया, जन्मो भर दुख पाय।
चेतत नाहिं मुग्ध नर बौरे, मोर मोर गोहराय॥७८

अरे पापी! कल्याणदायी उत्तम नरजन्म को पाकर भी तू अपने कल्याण करने से असावधान हो गया। जिस शरीर को तू अपना मान कर कल्याण-साधन से हीन हो रहा है,

उस शरीर के बहुत हिस्सेदार हैं, उनको आगे बतलाते हैं ॥१॥ तुम्हारे शरीर को पिता और माता कहते हैं कि हमारा पुत्र है, अपना स्वार्थ जान करके ही तुम्हारे शरीर का पालन-पोषण उन्होंने किया है ॥ २ ॥ तुम्हारे शरीर को पत्नी कहती है कि ये हमारे पति हैं। परन्तु सिंहनी रूप होकर भोगों में फँसाकर खाना चाहती है ॥ ३ ॥ अपने स्वार्थसिद्धि हेतु पुत्र पौत्रे[1] भी तुमसे:लक्ष्य लगाते हैं। इस प्रकार स्वार्थ साधक कुटुम्बी काल के समान मुख फाड़कर तुम्हें देख रहे हैं ॥ ४ ॥ (मांसाहार करने के लिये) कागड़ा और गिद्ध ये दोनों तुम्हारे शरीर की मरण-कामना करते हैं। और स्यार-कुत्ते दोनों तुम्हारे मृतक-शरीर का मार्ग देख रहे हैं ॥ ५ ॥ तुम्हारे शरीर के मृतक हो जाने पर अग्नि इसे जला देगी और यदि यह तुम्हारा शरीर जल संसर्ग से जलने से बच गया तो जल-जन्तु खा लेंगे अथवा सड़-गल कर नष्ट हो जायगा ॥ ६ ॥ यदि इस तुम्हारी काया को पृथ्वी में खोद-कर गाड़ दिये, तो उसी मिट्टी में मिलकर एक रूप हो जायगी। और जला देने पर तो तुम्हारे शरीर का खाक होकर वायु के साथ में उड़ेंगे, अथवा पृथ्वी के ऊपर पड़े रहने से जीव-जन्तु द्वारा अङ्ग-भङ्ग हो जाने पर तुम्हारे शरीर के अङ्ग, हड्डी

१-कलत्र का शाब्दिक अर्थ स्त्री है, परन्तु यहाँ भाव का अर्थ पौत्र (नाती) है, क्योंकि ऊपर कामिन शब्द का प्रयोग करके स्त्री का वर्णन आ गया है।

इत्यादि वायु के वेग में उड़ेंगे ॥ ७ ॥ अरे मूर्ख ! ऐसे शरीर रूपी घर को तू अपना सच्चा घर मान रहा है। परन्तु यह शरीर तो निपट शत्रु होकर तुम्हारे गले मढ़ गया है ॥ ८ ॥ ऐसे नाना प्राणी-पदार्थों के हिस्से में रहने वाली क्षणभङ्गुर विजाति दुःख रूप काया को तू अपना निश्चित करके माना है अरे नादान ! तू विषय रूप इस काया ही को अपना निश्चित स्वरूप समझ कर अपने दिव्य चैतन्य पारख स्वरूप को भूल गया ॥ ९ ॥

इस शरीर के इतने हिस्सेदार हैं, इस शरीर में बस कर तू जीवन पर्यन्त क्लेश पाता रहता है। ऐ विमोहित पागल मनुष्य ! तिस पर भी तू नहीं चेत करता ? इस शरीर और कुटुम्बियों को मेरा-मेरा कहकर चिल्लाता रहता है ॥ ७८ ॥

व्याख्या— ऐ मोह-मुग्ध मनुष्य ! जिस शरीर को तू अपना मानता है। उसको तो माता-पिता अपना पुत्र मानते हैं और तुम्हारे शरीर से अपनी रक्षा चाहते हैं। स्त्री पति रूप से देखती है और काम-भोग चाहती है। पुत्र-नाती तुम्हारे धन को पाने के लिये तुम्हारी मरण-कामना कर रहे हैं। कागड़ा, गिद्ध, सियार, कुत्ते आदि तुम्हारे शरीर को आहार रूप से देखते हैं। तुम्हारे शरीर के मृतक हो जाने पर पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु इसे अपने-अपने में मिला लेंगे। अहो ! जिस शरीर की इस प्रकार नाना दुर्दशा हो रही है, जो एक क्षण भी अपने स्ववश नहीं है। ऐसे शरीर को भूले भाई

मानते हैं—'यह मेरा है।' अहो ! कितना पागलपन है ? काम, क्रोध, लोभ, मोह, आशा, तृष्णा एवं नाना मानसिक आधियों तथा ज्वर, जूड़ी, कुष्ट आदि नाना शारीरिक व्याधियों से सन्तप्त, नाना प्राणी-पदार्थों की प्रतिकुलता से घिरा हुआ प्रतिक्षण परिवर्तनशील, दुःख रूप, जड़, अपवित्र, एवं नाशवान् काया जो तुम्हारा प्रत्यक्ष शत्रु रूप से उपस्थित होकर तुम्हें दुःख दे रहा है। उसी को तू अपना मानता है। और उसी शरीर के अहन्ता-ममता रूपी नशा में उन्मत्त होकर तू अपने उत्तम नर-जन्म के अवसर को खोकर कल्याण से हीन बना रहता है। शरीराभिमान में फँसकर जो अपना कल्याण-साधन नहीं करता है, वही महान पातकी है। गोस्वामी जी भी कहते हैं—

दोहा—जो न तरै भवसागर, नर समाज अस पाय।
सो कृत निन्दक मन्द मति, आतम हन गति जाय ॥रामा०

माता-पिता स्त्री-पुत्र-पौत्र, मित्र, कुटुम्बीगण एवं चील्ह, गीध, सिंह, स्यार, श्वान, भेड़हा, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु—ये सब तुम्हारे शरीर के हिस्सेदार हैं। अतः सावधान ! इस काया को तू अपना मत मानना, यह विजाति है एवं यह सदैव कष्टदायी है। तू इस शरीर के मोह में पागल हो गया है। अभी भी सावधान नहीं होता और इस शरीर में मैं-मेरी की डींगे हाँकता रहता है। देखो ! ये गोलकों में भरीं बड़ी-बड़ी सुन्दर-सुन्दर आँखे, सुन्दर नाक, दन्त-पंक्ति,

ओष्ठ, गाल आदि से सुशोभित मनोहर, गुलाबी रंग से झल-कता हुआ मुख, ये सुन्दर-सुन्दर कलाइयाँ, ये जवानी के रस से भरी ऊँची-चौड़ी छाती, ये सुन्दर पैर, ये आकर्षक टेढ़ी-मेढ़ी जुल्फें तथा लम्बी-लम्बी अलकावलियों से शोभाय-मान कौमार्य एवं यौवन अवस्था सम्पन्न हृष्ट- पुष्ट शरीर तुम्हारा नहीं है। खूब ध्यान में जमा लो, यह काया तुम्हारी नहीं है, ग्राम से बाहर खेत-खार में पड़ा हुआ जो मिट्टी का ढेला है, वैसे ही यह तुम्हारी काया है। जितनी दूर विला-यत है, उससे भी दूर यह तुम्हारी काया है। अपने शुद्ध चैतन्य स्वरूप का और इस जड़ विजाति शरीर के अत्यन्त पृथक् पने का ध्यान करो, तब पता चलेगा कि मुझसे यह शरीर कितनी दूर है ? शरीर के छूट जाने के पश्चात् इससे कभी भी न मिलोगे। और यह शरीर अभी भी छूट सकता है। यह शरीर जब छूटेगा, तब आज ही के समान वर्तमान रहेगा। अतः शरीर के मोह नींद से जाग कर सत्संग-साधन से अपना कल्याण करो। सुन्दर दास जी कहते हैं—सवैया-

कै यह देह जराइ के छार,
किया कि किया कि किया कि किया है।
कै यह देह जिमी महिं गाड़ि,
दिया कि दिया कि दिया कि दिया है॥
कै यह देह रहै दिन चार,
जिया कि जिया कि जिया कि जिया है।

सुन्दर काल अचानक आइ,

लिया कि लिया कि लिया कि लिया है ॥

अग्नि कहै मैं ई तन जारों । पानी कहै मैं जरत उबारों ॥
धरती कहै मोहि मिल जाई । पवन कहै संग लेउँ उड़ाई ॥

इन दो चौपाइयों से इस बात का स्पष्ट हो जाता है कि सद्गुरु श्री कबीर साहेब इन्हीं चारों को धर्म-गुणयुक्त तत्त्व माने हैं । आकाश को नहीं । 'पाँच तत्त्व का पूतरा' इत्यादि जो अन्यत्र इस ग्रन्थ में आपने कहा है, वह आकाश को धर्म-गुण रहित संज्ञामात्र भाव रख कर लोक-प्रचलित दृष्टि से कहा है । जिसका स्पष्ट इस रमैनी में हो गया है ।

'अग्नि कहैं मैं ई तन जारों ।' इत्यादि पदों का जो यहाँ प्रयोग है, सो अग्नि आदि तत्त्व जड़ हैं, वे जलाने उबारने के लिये क्या कहेंगे ? अतः यहाँ ऐसा तात्पर्य है कि जैसे कोई पुराने घर को देख कर कहता है कि यह घर अब गिरना ही चाहता है । तो विचार करना चाहिये घर में न जीव है और न अन्तःकरण एवं मन है, जो गिरने को चाहेगा । पुराने और टूटे होने के कारण उसके गिरने की सम्भावना हुई, इसलिये लोग कहने लगे कि 'यह घर गिरना चाहता है ।' इसी प्रकार लोक-प्रचलित भाषा में यहाँ श्रीकबीर साहेब ने कहा है कि 'मृतक शरीर को अग्नि आदि अपने में मिलाना चाहते हैं इत्यादि ' दूसरे अर्थ में यहाँ अग्नि से उपासक, जल से कर्मी, धरती से योगी और पवन से दरवेश का प्रयोजन

है। ये लोग देह संयुक्त जीव को अपने काण्डों में भ्रमाना चाहते हैं।

शिक्षासार—यह शरीर और शरीर सम्बन्धी सर्व पदार्थ अपने नहीं हैं। अतः इनकी ममता त्याग कर कल्याण-साधन करना चाहिये।

१०—(शब्द-२१)

राम न रमसि कौन दण्ड लागा।
मरि जैबे का करिबे अभागा॥ १॥
कोइ तीरथ कोइ मुण्डित केशा।
पाखण्ड मन्त्र भरम उपदेशा॥ २॥
विद्या वेद पढ़ि करै हंकारा।
अन्तकाल मुख फाँकै छारा॥ ३॥
दुखित सुखित है कुटुम जेवाँवैं।
मरणवार यकसर दुख पावै॥ ४॥
कहहिं कबीर यह कलिहै खोटी।
जो रहै करवा सो निकरे टोटी॥ ५॥

हे मनुष्य! अपने से भिन्न कल्पित राम की मानन्दी त्याग कर हृदय निवासी स्वस्वरूप रमैयाराम में तू रमण नहीं किया, तेरे को बन्धन (दण्ड) किसने लगाया है? अरे भाग्यहीन! तू एक दिन मर जायगा, फिर मृत्यु पश्चात्

क्या अपना कल्याण-साधन करेगा ? ॥ १ ॥ स्वरूप ज्ञान और स्वस्वरूप की स्थिति त्यागकर कोई तीर्थ-भ्रमण, कोई केश-मुण्डन, पाखण्ड-वेष और भ्रामक मन्त्र तथा कल्पित उपदेश के आधार पर मोक्ष चाहते हैं, परन्तु यह भ्रम है ॥२॥ जो विद्या वेद पढ़कर अहंकार करते हैं। वे भी अन्त समय मुख में धूल फाँकते हैं ॥ ३ ॥ दुखित-सुखित होकर नाना कर्मों को करके जो कुटुम्ब पालन कर रहें हैं। मृत्यु काल में वे अकेले ही दुःख पाते हैं और अपने कर्मों को भोगने के लिए अकेले ही परलोक सिधाते हैं ॥ ४ ॥ सद्गुरु श्री कबीर साहेब कहते हैं—यह अज्ञान कर्म रूप कलि बुरी है। जो घड़े में रहेगा वही टोटी के द्वार से निकलेगा (बुरे कर्म के अनुसार पुनः दुःख मिलेगा।) ॥ ५ ॥

व्याख्या—आज नर जन्म का अवसर बड़ा उत्तम है। इस अनोखा समय में सब कल्पनाओं को त्याग कर अपने हृदय निवासी रमैया राम (स्वस्वरूप) में सन्तुष्ट हो जाना चाहिये। जो आज अपना कल्याण-साधन नहीं करता, वह महान अभागा है। चाहे धन, राज्य, स्त्री, पुत्र, शासन, पद, प्रतिष्ठा, श्रेष्ठ जाति-पाँति, और विद्यादि से मनुष्य सम्पन्न हो, तो भी यदि सत्संग साधन नहीं करता, तो महाभाग्य हीन है। क्योंकि अन्त में एकदिन ये कुटुम्ब, सम्पत्ति तथा शरीरादि छोड़कर मर ही जाना पड़ता है। जीव के साथ यहाँ की कोई वस्तु नहीं जाती। जब श्वास टूट जायगा

और पशु आदि खानियों को जीव प्राप्त होगा। फिर वह अपना कल्याण-साधन क्या करेगा? वहाँ तो दुःख का पात्र होकर पराधीन रहेगा। अतः आज सावधान हो जाना चाहिये।

जो लोग केवल तीर्थ-भ्रमण, मूर्ति-पूजन और नाना कल्पित कर्म-काण्डों से ही अपना मोक्ष मानते हैं। वे भाई भी भूले हैं। उन्हें इन कल्पनाओं को त्यागकर और सत्संग द्वारा स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करके सद्गुरु-सन्तों की भक्ति करते हुए अपना कल्याण-साधन करना चाहिये।

कल्याण इच्छुक ब्रह्मचारी, साधु-भेषधारी, प्रिय साधक बन्धुओं से नम्र-निवेदन

हिन्दी-उर्दू, अंग्रेजी-संस्कृत तथा गुजराती-बङ्गाली-मराठी इत्यादि विविध विद्या। ऋक, यजु, साम और अथर्व चार वेद। योग, सांख्य, वेदान्त, मीमांसा, न्याय तथा वैशेषिक आदि छः शास्त्र तथा अन्य-अन्य साहित्यों को पढ़ कर जो अभिमान करते हैं। वे भाई लोग भी ठीक नहीं करते हैं। क्योंकि केवल विविध विद्याओं का ज्ञाता होने से, वेद-शास्त्र पढ़ लेने से हृदय की अविद्या का नाश नहीं होता और अविद्या के नाश पूर्वक स्वरूप स्थिति हुए बिना न जीवन में शान्ति आती है और न तो शरीरान्त पश्चात् विदेह मोक्ष मिलता है।

हमारे अधिकांश प्रिय साधक भाई और साधु-सन्यासी जनों का प्रायः यह लक्ष्य रहता है कि "यदि अधिक-अधिक कई विद्यायें पढ़ ली जायँगी। तो जनता में धर्म-प्रचार करने की अच्छी शक्ति आ जायगी और जो कम पढ़ा-लिखा है वह अपना और अन्य का क्या सुधार-उद्धार करेगा?" तो विद्या तो पढ़ना ही चाहिये, परन्तु यह समझना चाहिये कि परमार्थ-क्षेत्र में शुद्ध विवेकवान् सन्तों का सत्संग और साधन की ही विशेषता है। सत्संग, साधन, सदाचरण और सद्गुणों से युक्त होकर मनुष्य अपना भी कल्याण कर सकता है और अन्य का भी कल्याण कर सकता है। और सत्संग-सद्साधन, सदाचरण तथा सद्गुण से हीन होकर केवल शास्त्र-ज्ञान से न उसका अपना कल्याण होगा न वह दूसरे का ही कल्याण-सुधार कर सकता है। आचरण-हीन विद्वान् की शिक्षा का प्रभाव जनता पर नहीं पड़ता। और बिना अधिक शिक्षा दिये ही आचरण-सम्पन्न साधक का रहस्य ही देखकर लोग प्रभावित होकर कल्याण-साधन में लग जाते हैं। यहाँ कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि बिल्कुल पढ़ना ही नहीं चाहिये। पढ़ना चाहिये, परन्तु उतना ही पढ़ना चाहिये कि जिससे स्वरूप-ज्ञान बोधक ग्रन्थों को अध्ययन करने की शक्ति प्राप्त हो जाय। और जब वह अपने कल्याण-साधक बातों को जानने योग्य ग्रन्थों को पढ़ लेने लगे, तब विद्या की पढ़ाई छोड़ दे। कल्याण इच्छुक साधु-साधकों को विविध-

विद्या और अनन्त शास्त्र पढ़ कर विद्वान् और आचार्य बनने का मोह छोड़ देना चाहिये। क्योंकि उन्हें सत्संग, पारख-ज्ञान-स्वरूपज्ञान, सद्साधन और सद्गुण धारण कर दुःख-मुक्त होना है। न कि विद्वान्-आचार्य बनना है।

जो लोग अधिक विद्या के फेर में पड़ते हैं, उनके मन में विद्या के प्रति तृष्णा उत्पन्न हो जाती है। नम्र सन्तों का सत्संग और उनकी सेवा करके अपना कल्याण-साधन करना उन्हें प्रायः नहीं रुचता। वे वहीं जाते हैं, जहाँ सुन्दर वाक्य-रचना पूर्वक वाणियों की धारावाहिकता का पकवान् खाया जाता हो। चाहे वह वाणी सद्भाव से सर्वथा हीन हो। जो साधक अधिक विद्या-अध्ययन में अपना समय बिताते हैं, वे नाना शास्त्रों के भ्रम में पड़कर डामाडोल हो जाते हैं। फिर उनका कोई निश्चित सिद्धान्त नहीं रह जाता और यदि कोई सिद्धान्त का आश्रय पकड़ते भी हैं। तो भी पारखज्ञान से रहित खानी-वाणी कृत वन में भटकना उनका नहीं छूटता।

विद्या, अग्नि, भोजन, व्यवहार तथा संग—ये सब मध्यवर्तीय ही ग्रहण करने योग्य हैं। कम अधिक होने में सब प्रकार हानिप्रद हैं।

कहीं कोई स्मृति या शास्त्र का प्रमाण लेकर यह कहना कि "संस्कृत देव-भाषा है। अतः इसे जीवन पर्यन्त पढ़ते रहने से मोक्ष हो जायगा।" तो यह केवल भ्रम है। अज्ञान वर्धक अंग्रेजी आदि भाषाओं से संस्कृत अवश्य ही अनन्तों गुणा

धर्म की दृष्टि से श्रेष्ठ भाषा है। परन्तु हिन्दी भी कम धार्मिक नहीं है। निर्विवाद बात तो यह है कि जिस भाषा के ग्रन्थों में जड़ से भिन्न अविनाशी चेतन का ज्ञान हो, सद्गुण सदाचरणों की प्राप्ति हो, पारखज्ञान झलके और सब भ्रम का अन्त हो। वही भाषा साहित्य पढ़ने योग्य है। ऐसे सरल ग्रन्थ हिन्दी ही में अधिक प्राप्त होते हैं कि जो पारख बोध संयुक्त हों। और केवल संस्कृत भाषा के सब ग्रन्थ रटने ही योग्य नहीं हैं। संस्कृत ही में देखिये चार्वाक आदि नास्तिक मत के ग्रन्थ बने हैं। जो सर्वथा त्यागनीय हैं। अतः जिस भाषा साहित्य से सब भ्रम मिटकर स्वरूपज्ञान प्राप्त हो, वही श्रेष्ठ पढ़ने योग्य है। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराज ने कहा है—

दोहा—भाषा शाखा है सही, संस्कृत है मूल।
मूल धूल में मिल गया, शाखा में फल फूल॥ १॥
का भाषा का संस्कृत, विभव चाहिये साँच।
काम तो आवै कामरी, का लै करी कमाच॥ २॥

अर्थात्—भाषा डगाली अवश्य है और संस्कृत जड़ है। परन्तु जड़ तो धूल में मिल जाती है और डगाली ही में फल-फूल होता है। अतः डगाली (हिन्दी-भाषा) की विशेषता है॥१॥ चाहे भाषा हो चाहे संस्कृत हो, निर्णीत सिद्धान्त सत्य होना चाहिये। नित्य काम में तो मोटी कमरी आती

है। फिर बहुत ऊँचा महीन वस्त्र लेकर क्या करना है ? अतः हिन्दी को यहाँ गोस्वामी जी ने विशेषता दिया है ॥२॥

मनुष्य का समय अमूल्य, अनोखा और अत्यन्त अल्प है। अतः जीवन पर्यन्त केवल विद्यारण्य में न भटक कर सत्संग-सद्साधन द्वारा अपना कल्याण करना चाहिये। यथार्थ विद्या वही है जिससे अविद्या मिट जाय। अविद्या का लक्षण पतञ्जलिजी ने इस प्रकार बताया है—

अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या
(योग दर्शन साधन पाद—२ सूत्र—५)

अर्थात्—शरीरादि अनित्य, अपवित्र, दुःख तथा जड़ में क्रम से नित्य, पवित्र, सुख और चेतन भाव का बोध होना—अविद्या है।

इस अविद्या का नाश प्रबल बोध-वैराग्य और सर्व सद्गुण-सदाचरण सम्पन्न होकर अखण्ड साधन करने से होता है। इस प्रमाण से यही प्रतीत होता है कि अविद्या का अर्थात् देहाभिमान का नाश करके जो स्वस्वरूप में स्थित हो गया, वही यथार्थ विद्वान् है और उसके स्वरूपज्ञान-साधन ही यथार्थ विद्या हैं।

स्वामी श्री शंकराचार्यजी कृत चर्पटमञ्जरी में उदाहरण आता है। स्वामी शंकराचार्यजी काशी में थे, एक बार

प्रातःकाल गंगा स्नान करने जा रहे थे। एक वृद्ध पण्डित को "डुकृञ् करणे" धातु रटते देखा। फिर आप स्वामीजी ने यह श्लोक बनाकर उच्चारण किया—श्लोक—

प्राप्ते सन्निहते मरणे, नहिं नहिं रक्षति डुकृञ् करणे।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढ़मते॥

अर्थात्—'मृत्यु तेरे निकट आ गयी है, फिर अन्त अवस्था में यह "डुकृञ्करणे" धातु तेरी रक्षा नहीं करेगी। हे मूर्ख बुद्धि मनुष्य! इस दन्त-खटाखट को त्याग कर तू गोविन्द भगवान् का भजन कर॥'

यहाँ यह भी प्रमाद नहीं लाना चाहिये कि "मैं तो अभी नवयुवक हूँ, बुड्ढा नहीं हुआ हूँ। अभी हमारी मृत्यु दूर है।" इस जीवन का क्या ठिकाना है? कब मृत्यु आ जाय, क्या पता है? अतः सब प्रमाद को त्याग कर सत्संग-साधन में कल्याण इच्छुक को डट जाना चाहिये। देखिये, चाणक्य नीति में लिखा है—श्लोक—

अनन्त शास्त्रं, बहुलाश्च विद्या, अल्पश्च कालो बहु विघ्नताच।
यत्सार भूतंतदुपासनीयं, हंसो यथा क्षीर मिवाम्बुमध्यात्॥

(चाणक्य निति अध्याय १५ श्लोक १०)

अर्थात्—'अनन्तों शास्त्र हैं, बहुत विद्या हैं, समय थोड़ा है, बाधायें बहुत हैं। इसलिए मनुष्य को जल के बीच से क्षीर ग्राही हंस के समान सार-ग्रहण करने वाला होना चाहिये।'

प्रिय साधक बन्धुओं से नम्र-निवेदन है कि वे पूर्वोक्त बातों पर गम्भीर विवेक करें और अपने समय-शक्ति का सदुपयोग करके अर्थात् कल्याण-साधन और सत्संग करके जीवन लाभ—जीवन्मुक्ति स्थिति प्राप्त करें।

जो लोग नाना पापादि कर्म करके कुटुम्ब को खिलाते-पिलाते और रक्षा करते हैं। उन्हें सावधान हो जाना चाहिये। जब प्राण छूटने लगेगा। तब उन्हें स्वयं दुख भोगना पड़ेगा। और पाप कर्मों के वश होकर शरीर त्यागकर अकेले ही नाना योनियों में दुःख भोगने जायँगे। परलोक में कोई कुटुम्ब जीव का साथी नहीं होगा। इसके विषय में वाल्मीकि जी का प्रचलित उदाहरण यहाँ मनन कीजिये—

एक रत्नाकर नामक मनुष्य था। यह जङ्गल में रहता था। जो कोई मिल जाय उसको मार कर उसका धन छीन लाता था। यही इसका नित्य का काम था। यह महान हिंसकी और डाकू था। एक बार कई महात्मा उसी मार्ग से होकर निकले। रत्नाकर ने डाटकर कहा—अपना-अपना दण्ड कमण्डलु सब रख दो। महात्माओं ने कहा—ऐसा आप क्यों कहते हैं? रत्नाकर ने कहा—यही हमारे और हमारे कुटुम्बियों के जीवन-निर्वाह का आधार है। मैं नित्य लोगों को मार कर धन छीनता हूँ और उसी से कुटुम्ब पालता हूँ। महात्माओं ने कहा—आपके अन्याय युक्त धन को तो घर वाले सब खाते हैं। परन्तु वे सब आप के पाप को भी बँटा-

येंगे ? रत्नाकर ने कहा—यह तो मैंने कुटुम्बियों से नहीं पूछा है, महात्माओं ने कहा–पूँछ आओ। फिर सब महात्माओं को एक-एक वृक्ष में बाँधकर रत्नाकर जाकर माता-पिता स्त्री-पुत्र, भाई-बन्धु सब से पूछा। परन्तु पापकर्मों में हिस्सा लेने को किसी ने नहीं कहा। तब यह बात जाकर रत्नाकर ने सन्तों से कहा। फिर सन्तों ने उन्हें समझाया—देखो ! आज के पाप कर्मों के दुःखरूपी फलों को परलोक में न कुटुम्बी बँटायेंगे और न यह तुम्हारा शरीर बँटायेगा। क्योंकि पर-लोक जाते समय कुटुम्ब-शरीर सब छूट जायँगे। इसलिए पाप कर्मों का सर्वथा त्याग कर सत्संग-भजन करके आप अपना जीवन सुधारिये। व्यर्थ में क्यों पाप का मोट बाँध रहे हैं ? इतना सुनकर रत्नाकर ने सन्तों से क्षमा माँगी और घर-कुटुम्ब त्याग कर सत्संग द्वारा अपना जीवन सुधार लिया। यहाँ तक कि एक व्याध महान् पापाचारी व्यक्ति (रत्नाकर) सत्संग द्वारा सन्त और परम् कवि श्रीबाल्मीकि जी महाराज हो गये। उन्होंने फिर श्रीरामजी के जीवन चरित्र का महारामायण ग्रन्थ बनाया। बाल्मीकि के विषय में यह चौपाई प्रसिद्ध है—

"उल्टा नाम जपत जग जाना।
बाल्मीकि भये ब्रह्म समाना॥

अतः पाप कर्म त्याग कर सत्कर्म में प्रवृत्त होना चाहिये। जो घड़ा में रहता है, वही टोंटी द्वारा निकलता है। अतएव

अन्तःकरण रूप घड़े में बुरी वासनायें भरी रहने से बारम्बार दुःख रूप योनियों में जीव का भ्रमण होता है।

शिक्षासार—नाना भ्रम कल्पना, धन, कुटुम्ब और विद्या बुद्धि का अभिमान त्याग कर मनुष्य को अपने चेतन स्वरूप में स्थित करना चाहिये।

भजन-चेतावनी

मनुज तन पाय सुसंग न कीन्हें ॥ टेक ॥

अजर अमर निर्मल उर चेतन, तेहि विवेक से कबहुँ न चीन्हें ॥१

पर दुख हरे न पर अघ त्यागे, धर्म-दान में चित नहिं दीन्हें ॥२

निशिदिन भोग लोलुपी नाचत, पचत विषय मद पीन्हें ॥३

सन्तन संग प्रेम सेवकाई, ह्वै विनम्र गुरु भक्ति न कीन्हें ॥४

सद्गतिसे अभिलाष विमुख ह्वै, पुनि पुनि पशुपक्षी तन लीन्हें ॥५

११—(शब्द-६१)

मरिहो रे तन का लै करिहो।
प्राण छूटे बाहर ले डरिहो ॥ १ ॥
काया बिगुर्चन अनबनि भाँती।
कोइ जारै कोइ गाड़ै माटी ॥ २ ॥
हिन्दु ले जारे तुरुक लै गाड़ै।
यहि विधि अन्त दुनों घर छाड़े ॥ ३ ॥
कर्म फाँस यम जाल पसारा।
जस धीमर मछरी गहि मारा ॥ ४ ॥

राम बिना नर होइहैं कैसा।
बाट माँझ गोबरौरा जैसा ॥ ५ ॥
कहहिं कबीर पाछे पछतैहो।
या घर से जब वा घर जैहो ॥ ६ ॥

अरे मनुष्य ! जब तू मर जायगा, अर्थात् तेरे प्राण का वियोग हो जायगा, तब इस काया को लेकर क्या करेगा ? इस शरीर का एक अङ्ग भी तो तेरे साथ नहीं जायगा। तुम्हारे प्राण छूटने के पश्चात् तुम्हारी काया को बाहर ले जाकर लोग फेंक देंगे ॥ १ ॥ यह शरीर तो धोखा रूप है, सत्य नहीं है, कच्चे मसाला से अटपट प्रकार से बना हुआ नाशवान् है। प्राण-त्याग होने पर इसको कोई जला डालते हैं और कोई मिट्टी में गाड़ देते हैं ॥ २ ॥ अधिकांश हिन्दू लोग जला डालते हैं और मुसल्मान लोग गाड़ देते हैं। इस प्रकार अन्त अवस्था में (शरीर छूटने पर) हिन्दू-तुरुक दोनों घर वाले इस शरीर को त्याग देते हैं ॥ ३ ॥ जैसे गोड़िया मछलियों को पकड़ कर मार डालता है। तैसे भ्रमिक या मन रूपी यमराज ने नाना कर्म फाँस रूपी जाल पसार कर और जीवों को फँसा कर अज्ञान-बन्धन में छोड़ रखा है ॥ ४ ॥ कल्पित कर्ता न प्राप्त होने से एवं निज हृदय निवासी चैतन्य स्वरूप राम के परिचय बिना हे मनुष्य ! तुम्हारी कैसी दशा होगी कि जैसे मार्ग में मल-कीट की दशा

होती है ॥ ५ ॥ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—ऐ मनुष्य ! अभी क्या, तू पीछे पश्चाताप करेगा। जब इस स्ववश स्वतन्त्र, मोक्ष-साधन योग्य नर-शरीर रूपी घर को त्याग कर विवशरूप इतर त्रय खानि रूपी घर में जायगा ॥६॥

व्याख्या—मनुष्यो ! इस बात का विचार करो कि जब अविनाशी जीव इस काया से निकल जाता है, तब यह काया कोई काम में नहीं आती है। यह शरीर बिगुर्चन अर्थात् धोखा रूप है। क्योंकि जिस शरीर में लोग अपना अधिकार मानते हैं, वह एक क्षण भी स्ववश नहीं है, न चाहते हुए सुन्दर कुमार-अवस्था का रूपान्तर होकर जवानी आ जाती है। अज्ञानी मन को सुखदायिनी जवानी मन के पराधीन होकर बदल जाती है और बुढ़ापा आ घेरता है। न चाहते हुए सुन्दरता-कोमलता और स्वास्थ्य का नाश हो जाता है, अनइच्छित अनेक रोग रूप शत्रु धावा बोल देते हैं। बुढ़ापा-मृत्यु आ जाती है। अहो ! फिर यह अपनी कहाँ है ? इस शरीर में लोग सुख मानते हैं, परन्तु यह सर्वथा भ्रम है। यह शरीर तो सर्वदा-सर्वत्र दुःखों से पूर्ण है। आधि-व्याधि-उपाधि, जन्म-मरण-गर्भवास एवं समस्त दुःखों की प्राप्ति इसी शरीर के कारण से ही होती है। अतः यह शरीर केवल दुःख रूप है। इस शरीर को लोग पवित्र एवं रमणीय मानते हैं। परन्तु विचार कीजिये हड्डी, मांस, चर्म, रक्त, वीर्य, गीड़ एवं मल-मूत्रों से पूर्ण इस शरीर को

कौन विवेकी पवित्र और रमणीय मानेगा ? कोई नहीं। अतः यह शरीर केवल अपवित्र और भयंकर है। यद्यपि यह सब जानते हैं कि यह शरीर एक दिन नष्ट हो जायगा। परन्तु विरले विवेकी के अतिरिक्त स्वाभाविक सबको भासता है कि यह शरीर सदा रहेगा (मैं सदा जीऊँगा) परन्तु यह शरीर तो प्रत्यक्ष ही नाशवान् है। बालक, कुमार, नवयुवक तथा वृद्ध—सबका शरीर छूटता है। अतः यह भी नहीं विश्वास किया जा सकता कि यह श्वास जो आया है, इसके पश्चात् दूसरा आयेगा ही। श्वास आया-आया न आया तो अपनी क्या स्वाधीनता है ? फिर ऐसे अनस्थिर-क्षण-भङ्गुर शरीर को सत्य, नित्य सिवा पागल के और कौन मानेगा ? अतएव जड़,विजाति, पराधीन, दुःख रूप, अपवित्र-भयंकर और क्षण-भङ्गुर,नाशवान् काया में स्वाधीनता, सुख, पवित्र, रमणीय और सत्य रूप मानने से ही यह काया धोखा रूप है।

यह शरीर बिल्कुल कच्चे साज से बेढङ्गे प्रकार से बना है। अन्त में यह जला देने लायक, फेंक देने लायक या गाड़ देने लायक ही होता है। अन्य किसी काम में नहीं आता। इस मन रूपी बहेलिये ने सकाम शुभाशुभ कर्म रूपी जाल को फैलाकर जीवों को बाँध रखा है और बारम्बार देह-प्राप्ति रूपी कष्ट को देता रहता है। जब तक स्वरूपज्ञान प्राप्त होकर सदाचरण पूर्वक उसमें स्थिति न होगी, तब तक यम रूप

मन के साथ पड़कर जीव देहोपाधिक एवं जन्मादिक कष्ट भोगा ही करेगा। स्वरूपज्ञान के बिना मार्ग के गोबरौरा के समान ही जीव की दशा है। गोबरौरा एक मल का कीड़ा का नाम है, यह सदा गोबर या मल की गोलियाँ बनाता रहता है और उस मल की गोली को लुड़काता रहता है। जब कहीं यह किसी के रास्ते में पड़ जाता है, तो मनुष्य, पशु आदि का पैर लग जाने से गोली छूट जाती है और वह उड़कर पुनः मल की दूसरी गोली बनाता है। कभी-कभी तो मार्ग में जाने वाले प्राणियों के पैर लग जाने से प्राण को भी खो बैठता है। इसी प्रकार यह जीव गोबरौरा के तुल्य है। यह कर्म-वासना-वश बारम्बार मल-मांसमय शरीर रूपी गोली को बनाता है और संसार में जीवन भर इसे लुड़काता फिरता है। अर्थात् इस शरीर को लेकर नाना क्रिया करता रहता है। निदान काल के मार्ग में पड़ा हुआ मल-कीट रूप जीव का गोली रूप शरीर काल के ठोकर लगने से जीव से छूट कर पृथक् हो जाता है और जीव रूप मल-कीट (गोबरौरा) दूसरा शरीर रूप मल की गोली बनाता है। शरीर का प्रेमी हो जाने से यह जीव मल-कीट (गोबरौरा) के समान है। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब यहाँ चेतावनी देते हैं कि इस धोखा रूप मल-कोश शरीर का अभिमान त्यागकर आज शुभ अवसर में अपना कल्याण कर लो; अन्यथा पीछे दुःख के पात्र होओगे।

शिक्षासार—जिस शरीर पर जीव को बड़ा अभिमान है, वह अपना नहीं है। अतः शरीराभिमान गलित करके स्वरूपस्थिति करना चाहिये।

चेतावनी-भजन

ये जिन्दगी तुम्हारी, दो दिन कि चाँदनी है।
मत भूल ऐ मुसाफिर, करले भजन तु अपना ॥ टेक ॥
ये धन कुटुम क मेला, ये रस भरी जवानी।
इसमें न फूल प्यारे, ये रैन के हैं सपना ॥ १ ॥
मन के भुलावे में तू, आकाश नापता है।
नहिं आदि अन्त मन का, झूठी तेरी कल्पना ॥ २ ॥
जो आज दिन है तेरा, वह कल नहीं रहेगा।
हो सावधान प्यारे, नहिं तो दुखों में तपना ॥ ३ ॥
अभिलाष होश में आ, बीता समय न आवै।
कर शीघ्र मोक्ष-साधन, निजरूप जाप जपना ॥ ४ ॥

१२—(शब्द-७२)

चलहु का टेढ़ो टेढ़ो टेढ़ो ॥ १ ॥
दशहू द्वार नरक भरि बूड़े।
तू गन्धी को बेड़ो ॥ २ ॥
फूटे नैन हृदय नहीं सूझे।
मति एको नहिं जानी ॥ ३ ॥
काम क्रोध तृष्णा के माते।

बूड़ि मुये बिनु पानी ॥ ४ ॥
जो जारे तन भस्म होय धुरि ।
गाड़े किर मिट खाई ॥ ५ ॥
सीकर श्वान काग का भोजन ।
तन की यही बड़ाई ॥ ६ ॥
चेति न देखु मुग्ध नर बौरे ।
तोहि ते काल न दूरी ॥ ७ ॥
कोटिन यतन करो यह तन की ।
अन्त अवस्था धूरी ॥ ८ ॥
बालू के घरवा में बैठे ।
चेतत नाहिं अयाना ॥ ९ ॥
कहहिं कबीर एक राम भजे बिनु ।
बूड़े बहुत सयाना ॥ १० ॥

तन-धनादि के मद में उन्मत्त होकर ऐ मनुष्य ! तू टेढ़ा होकर क्यों चलता है ? ॥ १ ॥ नाक, कान, आँख, गुदा तथा उपस्थादि दशों छिद्र नर्क से परिपूर्ण हैं । अहो देहा-भिमानी ! तू तो दुर्गन्धी का जहाज हो रहा है ॥२॥ अपवित्र, जड़, दुःखरूप तथा नाशवान् धन, धाम, शरीरादि को प्रत्यक्ष देखता हुआ तू इसका अभिमान करता है, अतः तुम्हारे बाहर के नेत्र फूट गये हैं और अन्तर विचार से भी नहीं सूझता । कल्याणदायी तूने एक विचार भी नहीं

जाना ॥ ३ ॥ काम, क्रोध, तथा तृष्णा में मस्त होकर मिथ्या अभिमान में बिना विचार तू बूड़ मरा ॥ ४ ॥ अरे भूला पथिक ! जो शरीर अन्त समय अग्नि में जला देने से राख होकर धूल में मिल जाता है। और पृथ्वी में गाड़ देने से कीड़े और मिट्टी खा लेते हैं ॥५॥ तथा बाहर फेक देने से यह शरीर शृगाल, कुत्ता और कौआ का भोजन हो जाता है। इस तेरे प्रिय शरीर को यही विशेषता है ॥६॥ सावधान होकर देख तो विमोहित पागल मनुष्य ! तेरे से मृत्यु दूर नहीं है ॥७॥ अरे ! इस शरीर को सुरक्षित रखने के लिये करोड़ों यत्न क्यों न करो। परन्तु अन्तिम अवस्था में यह धूल में मिल ही जायगा ॥ ८॥ बालू के घर के समान कच्चे साज से बने हुए इस क्षण-भङ्गुर मिट्टी की काया में तू बैठा है, पता नहीं यह कब ढह जाय। अरे अज्ञानी ! तिसपर भी तू चेत नहीं करता ॥ ९ ॥ सद्गुरु श्री कबीरसाहेब कहते हैं—एक कल्पना-अनुमान त्याग कर हृदयस्थ ज्ञानस्वरूप राम का परिचय प्राप्त कर उसके मनन-चिन्तन बिना बुद्धि के बहुत चतुर मनुष्य अज्ञान और असावधानी के समुद्र में डूब गये ॥ १० ॥

व्याख्या—इस शरीर का अभिमान करके टेढ़े-टेढ़े नहीं चलना चाहिये। क्योंकि यह शरीर तुम्हारा नित्य एकरस नहीं रहेगा। जिस आँख से तुम दूसरे को गुरेर कर देखते हो, वह तुम्हारी आँख एक दिन जल जायगी या सड़ जायगी।

जिस उगुँली को तुम दूसरे पर उठाते हो, उसकी भी वही सड़ गल और जल जाने की दशा एक दिन प्राप्त होगी। अरे मनुष्य ! यह शरीर तो रोगों का शिकार और मृत्यु का आहार है। दो दिन के जवानी और तन्दुरुस्ती में भूलना बिल्कुल अज्ञानता है। एक कवि ने कैसा सुन्दर कहा है—

कवित्त—

ताने सामियाने जे जरी[1] के नमगीर[2] ताने,
तानै चौक चाँदनी विचित्र छत्र ताने हैं।
शेर सम शिर ताने शमशेर[3] कर ताने,
तिय सो नजर ताने मद सो मताने हैं॥
ये तो सब ताने अन्त आनि धरि ताने सबै,
तब तो दिजेश मानो कछू ये न ताने हैं।
दीपक से बुताने मानो दक्षिण पायताने ताने,
ताने एक चादर ते सोवत उताने हैं॥१॥

यह तुम्हारा शरीर दुर्गन्धी से भरा है, दोनों आँखें दोनों नाक के छिद्र, दोनों कान,मुख, गुदा और उपस्थ तथा एक छिद्र लोगों ने शिर के ऊपर तालू में माना है, इन सबको मिलाकर दश द्वार हुए। मुख्य रूप से नौ द्वार और शरीर के अनन्तों छिद्र, ये सब-के-सब नर्क से बिल्कुल बूड़े हुए हैं, यह शरीर दुर्गन्धी का पिटारा है। यह शरीर अत्यन्त

१-सोनहलावस्त्र, २-चँदोवा (वितान), ३-तलवार।

भयंकर और अपवित्र है। भावयुक्त इस शरीर की वास्तविकता का स्मरण करते ही विवेकवान् को इसके प्रति घृणा उत्पन्न हो जाती है।

जैसे एक घर हो, उसमें हड्डियों की भित्त और छाजन हो। मांस के गाढ़ापन से छाया हो और चाम से ऊपर मढ़ा हो। उस घर में कई ताखे, इलेमारियाँ और जँगले हों। सब में मल-मूत्रादि कचड़े भरे हों, उस घर की कोठरियों में मल, मूत्र, पीब, वीर्य, पसीना, गीड़ इत्यादि दुर्गन्धित वस्तुयें भरी हों। उसमें अग्नि की गर्मी व्याप्त हो, सर्प-बिच्छू आदि अनेक विषैले जंतुओं से पूर्ण हो। उसमें जितने द्वार हों, सब बहुत सँकरे हों और द्वारों में से किसी से मल, किसी से मूत्र, किसी से गीड़, किसी से बलगम इत्यादि निकलते हों। उस घर में बिल्कुल अंधकार हो। फिर उसी घर में यदि कोई तुम्हें रहने को कहे, तो तुम एक घण्टा भी उसमें सहर्ष न रहोगे। यदि कोई बलपूर्वक तुम्हें उसमें ठेले, तो भी तुम उसमें से निकल कर भागने का भरसक प्रयत्न करोगे।

ठीक पूर्वोक्त उदाहरण अनुसार ही यह शरीर है। यह हड्डियों से ठटा है, मांस से छाया है, चाम से मढ़ा है, इसमें मल, मूत्र, रक्त, पीब, वीर्य इत्यादि भरे हैं। ताख इलेमारी रूप नाक, कान, गुदा, उपस्थादि में नर्क भरे हैं, इसमें मानसिक सन्ताप की जलन व्याप्त है, काम, क्रोध,

लोभ, मोहादि तथा शारीरिक रोग रूप महान विषैले सर्प-बिच्छू इसमें उपस्थित हैं। इसमें इन्द्रिय रूपी द्वारों से नित्य नर्क बहते हैं। फिर भी इसमें हम आनन्द मानकर नित्य रहते हैं। अहो! कितनी मोह की महिमा प्रबल है, कितना बड़ा अविद्या का आवरण है? इस शरीर का वास अच्छा नहीं है, इसमें रहना अत्यन्त बुरा है। इसमें बसकर हमें तो सदा इस काया की घृणा और तृस्कार करना चाहिये। इससे घबरा कर उपराम होकर रात-दिन ऐसे कर्मों में सलग्न रहना चाहिये कि अबकी इस शरीर के छूट जाने पर पुनः इस दुःख पूर्ण, अशुद्ध कचड़ा रूप शरीर में न आना पड़े। अर्थात् इसी जन्म में शरीर के धरने-छोड़ने और गर्भ में बारम्बार सोने से छुट्टी मिल कर सर्वदा के लिये सर्वथा अचल मोक्ष प्राप्त हो जाय। इस शरीरमें मनुष्य की घृणा न होकर बल्कि जो आनन्द आभास होता है, यह केवल अनादि से इसमें रहते-रहते इसकी आसक्ति दृढ़ हो गयी है—इसलिये। इस दुःखालय नर्ककुण्ड शरीर के अध्यासी हो जाने से हमें इसकी बुराई नहीं ज्ञात होती है। जैसे मल में रहने वाले कीड़े को मल ही अच्छा लगता है, नीम के कीड़े को नीम ही प्रिय भासता है। भङ्गी को मल-मूत्र उठाते-उठाते उसे मल-मूत्रों से कोई अधिक घृणा नहीं रह जाती है, उसका स्वभाव ही वैसा बन जाता है। ठीक इसी प्रकार इस जीव का इस मल पूर्ण शरीर में रहते-रहते इसका अध्यास दृढ़ हो गया है और इसको इसी

मैले शरीर में ही आनन्द भासता है। इसीलिये विषयासक्त देहाभिमानी जीवों को विवेकियों ने नर्कानन्द कहा है।

अज्ञानी मनुष्य के विवेक विचार रूपी अन्तर दृष्टि तो है ही नहीं, जिससे उसे इस शरीर की दुःखरूपता, निःसारता, अपवित्रता का ज्ञान हो। साथ-साथ यह बात है कि इसके बाहर के चर्म के जो दोनों नेत्र हैं, वे भी फूट गये हैं। क्योंकि मल-मूत्र, हड्डी, मांस, रक्त, वीर्य एवं कचड़े से बने हुए इस शरीर को आँखों से देखते हुए भी इसे रमणीय मानता है। इस मांस के पिण्ड पर जीव का कितना मोह है? परन्तु यह शरीर रमणीय कहाँ है? यह तो महान् भयानक है। कूड़ा-कचड़ा से बना है। वास्तविक बात तो यह है कि यह शरीर ही यमपुरी है, मन यमराजा है, यह शरीर ही दुःखालय है और यही नर्क कुण्ड है। परन्तु मनुष्य मोह के वश इस शरीर का अभिमान करके काम, क्रोध और भोगों की तृष्णा में उन्मत्त रहता है।

अरे नादान मन! जिस शरीर का अभिमान करके तू छाती ऊँची करके चलता है, विविध केशपासों को सजाता है, उत्तम-उत्तम फैसनदार वस्त्रों-अलंकारों से शरीर को आकर्षक बनाता है। जवानी के रस भरे मद से प्रमत्त हो रहा है। वह शरीर आजकल में राख होगा या किसी गड्ढे में पड़ा-पड़ा सड़ जायगा, कीड़े-दीमक खा लेंगे। यदि कहीं तेरा शरीर मर जाने पर बाहर जङ्गल इत्यादि में पड़ा रहा या

कोई फेक दिया, तो स्यार, श्वान, कौआ और चील्ह खा लेंगे। अहो ! तेरे शरीर की यही बड़ाई है। परन्तु तू इस शरीर के मद में पागल हो गया है। यह ध्यान रखो ! तुम्हारे शरीर को अब शीघ्र काल खाना चाहता है। चाहे कितनी औषधियों का उपयोग करो, चाहे बन्दर-ग्रन्थि लगवाओ, चाहे डाक्टर-शिविलसर्जन घर में हर क्षण बैठाये रहो, चाहे स्वयं शिविलसर्जन बन जाओ, चाहे विज्ञान का प्रोफेसर हो जाओ अर्थात् करोड़ों उपाय करो, परन्तु अन्त में तुम्हारी काया धूल में मिल जायगी। यह बिल्कुल निश्चित बात है। इसमें किञ्चितमात्र भी सन्देह नहीं है। तू बालू का घर बनाकर कच्चे घड़े में पानी भर कर और पानी के फेन को नित्य एकरस स्थिर रखना चाहता है। यह तुम्हारी बेसमझी ही तो है। ठीक ऐसे ही इस काया को तुम स्थिर नहीं रख सकते हो।

साखी—चहुँ दिशि पक्का कोट था, मन्दिर नगर मँझार।
खिरकी खिरकी पाहरू, गजबन्दा दरबार॥ १॥
चहुँ दिशि तो योधा खड़े, हाथ लिये हथियार।
सब ही यह तन देखते, काल ले गया मार॥ २॥
आस पास योधा खड़े, सबै बजावैं गाल।
मञ्झ महल से ले चला, ऐसा परबल काळ॥ ३॥

(साखी-संग्रह)

शिक्षासार—इस जड़, अपवित्र, दुःखरूप, नाशवान् काया से अपने को पृथक् शुद्ध चैतन्य पारखरूप जानकर इस काया के अध्यास से रहित होकर स्वस्वरूप में शान्त होना चाहिये।

१३—(शब्द- ७३)

फिरहु का फूले फूले फूले ॥ १ ॥
जब दश मास उर्ध मुख होते।
सो दिन काहेक भूले ॥ २ ॥
ज्यों माखी सहते नहिं बिहुरे।
सोचि सोचि धन कीन्हा ॥ ३ ॥
मुये पीछे लेहु-लेहु करें सब।
भूत रहन कस दीन्हा ॥ ४ ॥
देहरि लो वर नारि सङ्ग है।
आगे सङ्ग सुहेला ॥ ५ ॥
मृतक थान लो सङ्ग खटोला।
फिर पुनि हंस अकेला ॥ ६ ॥
जारे देह भस्म होय जाई।
गाड़े माटी खाई ॥ ७ ॥
काँचे कुम्भ उदक ज्यों भरिया।
तन की यही बड़ाई ॥ ८ ॥

राम न रमसि मोह के माते।
परेहु काल वश कूवा ॥ ९ ॥
कहहिं कबीर नर आप बँधायो।
ज्यों नलिनी भ्रम सूवा ॥ १० ॥

घर, सम्पत्ति, कुटुम्ब, विद्या, कीर्ति तथा शरीर आदि के मद वश क्या फूले-फूले फिरते हो ? ॥ १ ॥ जब दस महीने माता के गर्भाग्नि में उल्टा मुख किये जलते थे। वह दिन क्यों भूल गये ? ॥ २ ॥ जैसे मधुमक्खियाँ नाना कष्ट सहन कर शहद इकट्ठा करती हैं, 'नहिं बिहुरे' अर्थात् प्रायः पुनः खाने को नहीं पातीं, शहद निकालने वाले निकाल ले जाते हैं, मक्खियाँ हाथ मलकर रह जाती हैं। इसी प्रकार चिन्ता कर-करके प्रयत्न पूर्वक मनुष्य धन इकट्ठा करता है ॥ ३ ॥ परन्तु उसके मर जाने पर कुटुम्बी और सगा लोग लेहु-लेहु करके सब दौड़ते हैं, अर्थात् सब अपना-अपना कह-कर उस धन को छीनते हैं, भला सम्पत्ति के लोभी उसकी सम्पत्ति को सुरक्षित कैसे रहने देंगे ? अन्त में उसके शरीर को भी जला देते हैं ॥ ४ ॥ घर के ड्योढ़ी तक श्रेष्ठ स्त्री साथ में जाती है। आगे श्मशान-भूमि तक रथी के साथ भाई-बन्धु एवं मित्रगण जाते हैं । फिर परलोक यात्रा में तो अकेला चेतन ही जाता है ॥ ५-६ ॥ यदि इस शरीर को जला दिया गया, तो राख हो जाता है। और यदि पृथ्वी में गाड़ दिया गया, तो मिट्टी खा लेती है ॥ ७ ॥ कच्चे

मिट्टी के घड़े में जैसे जल भर दिया जाय, तो वह तुरन्त गल जाता है। इसी प्रकार यह शरीर अत्यन्त मरणधर्मा—विनाशशील है। इस शरीर की यही विशेषता है॥ ८॥ अरे विषयासक्ति में उन्मत्त मनुष्य! तूने सर्व कल्पना का त्याग करके हृदय निवासी रमैयाराम चैतन्य पारख स्वरूप में शान्त नहीं हुआ। भ्रमिक और मन काल के वश होकर जीवन भर अज्ञान कूयें में पड़ा रहा॥ ९॥ सद्गुरु श्रीकबीर साहेब कहते हैं—इस मनुष्य ने अपने आप को बन्धनों में स्वयं बँधा लिया। जैसे भ्रमवश शुकपक्षी नलिका यन्त्र में स्वयं बँधा गया॥ १०॥

व्याख्या—धन-विभव, कुटुम्ब, जवानी तथा मान-बड़ाई आदि पाकर अभिमान नहीं करना चाहिये। क्योंकि इन सबों से जीव का कोई कल्याण होने वाला नहीं है। ये सब अत्यन्त क्षण-भङ्गुर हैं, धन का संग्रह, कुटुम्बियों का मेल, जवानी की प्राप्ति, मान-बड़ाई की उपलब्धि—ये सब नित्य नहीं हैं। वायु के झोंके में रही हुई दीपक-ज्योति के समान ही ये शीघ्र बुझ जाने वाले हैं। संसार के पदार्थों पर दृष्टि डालिये तो सभी पदार्थ आप को बदलते-नाश होते दीखेंगे। निर्धन शीघ्र धनवान् और धनवान् शीघ्र निर्धन हो जाता है। एक-दो कुटुम्ब वाला कभी पचासों कुटुम्बियों से पूर्ण हो जाता है। जिसके घर में पचासों कुटुम्बी हैं, स्त्री-पुत्र, भाई-बन्धु से घर भरा है, उसके घर में कभी एक-ही-दो

प्राणी रह जाते हैं, कभी सब-के-सब समाप्त हो जाते हैं। बर्फ से कमल के नष्ट होने के समान जवानी तो बहुत ही शीघ्रता पूर्वक ढह कर वृद्धावस्था आ जाती है। पूज्यनीय व्यक्ति भी इस संसार में अपमान और अनादर पाता है। अतः यहाँ की सभी वस्तुयें नाशवान् हैं। यहाँ तक कि असंख्यों वृक्षों से घनीभूत महावन भी किसी दिन सर्वथा ध्वंस होकर सतमहले मन्दिरों और अगणित ध्वजाओं से सुशोभित महा-नगर हो जाता है। और महा-नगर भी किसी दिन नष्ट होकर मरुस्थल (रेगिस्तान) या वन तथा जल का अथाह-स्थल हो जाता है। बड़े-बड़े शासन, बड़े-बड़े ऐश्वर्य, बड़े-बड़े शूरवीर, विज्ञानी और यशस्वी भी एकाएक काल के गाल में चले जाते हैं। फिर किस वस्तु का मनुष्य अभिमान करता है ? 'आज जन्म-दिवस एवं वर्ष-गाँठ है, आज पुत्र तथा पुत्री का विवाह है, आज त्योहार है, आज उत्सव है। आज शुभ्र चाँदनी की छटा तथा प्रशस्त छत के एकान्त एवं रम्य स्थल में नववधू का प्रारम्भिक मिलान है। आज मित्र मण्डलियों के समागम का आनन्द लूटना है— अहो ! इन्हीं अमङ्गलमय कार्यों में मनुष्य क्षणिक आमोद-प्रमोद वश भूलकर शीघ्र ही मृत्यु के मुख में चला जाता है। जो प्रत्यक्ष फाँसी है, उसी को अविद्यावशी मनुष्य आनन्द-प्रद मानता है।

भला ! जन्म-दिवस पर प्रसन्नता और उत्सव मानना

चाहिये कि शोक ? हर जन्म-दिवस पर उत्तम नर-जन्म का एक वर्ष समाप्त हो जाया करता है। वह तो प्रत्यक्ष ही शोक करने लायक है। मोहान्ध मनुष्य ज्योतिषियों से जन्म-पत्रिका बनवाता है, शुभाशुभ फल पूछता है। कितनी अज्ञानता है ? अरे ! यह जन्म-पत्रिका है कि शोक-पत्रिका है ? मनुष्य जी-जान से सुख को खोजता है और दुःख से भागता है। परन्तु बिना सत्संग-भक्ति तथा परमार्थ-साधन के दुःखों से पीछा छुड़ा लेना अपने कपार पर सींग जमाना है। लोग स्त्री-स्पर्श, कुटुम्ब-मेल और धन-संग्रह को समझते हैं, नित्य रहेगा। परन्तु इनका वियोग तो क्षण-पल में होता है। फिर इनका क्या अभिमान ?

अरे मनुष्य ! उस समय का स्मरण कर। जब तू नौ-दस महीने माता के गर्भ में उल्टे लटका था। जहाँ (माता के पेट में) चारों ओर से चर्म की दीवारें हैं, हड्डियों से घेरा है, मांस और मल से ठसाठस भरा है, नसों से कसा है, गर्मी की तड़ाका लगती है, अत्यन्त सँकरा-संकुचित स्थान है। जो एक-डेढ़ पाव भोजन में भर जाता है। उसी सँकरे स्थान में दुर्गन्धित झिल्ली से लपेटा हुआ हाथ-पैर कसा हुआ तथा शिर वक्षस्थल (छाती) की ओर झुकाया हुआ, अग्नि-ज्वाला और मल-मूत्रों के उष्ण एवं दुर्गन्ध से संतप्त औंधा मुख किये नौ या दस महीने तू बिताया। गर्भवास में कितना दुःख भोगा ? परन्तु वह सब दुःख तू क्यों भूल

गया ? जब तू बाहर उत्पन्न हुआ, तेरे को माया-मोह ने घेर लिया, तू उसी माया में आज मस्त है। गर्भवास के कठिन दुःख से छूटने के लिये प्रयत्न नहीं करता। परन्तु ध्यान रख ! यदि जीते जी सत्संग और परमार्थ-साधन से तू अपना कल्याण नहीं कर लिया, तो दो दिन में वही पूर्वोक्त दशा (गर्भवास का दुःख) तुम्हारे लिये पुनः रखी है।

मनुष्य चिन्ता-प्रयत्न तथा नाना पाप कर्म करके धन इकट्ठा करता है। न उसे सन्त-सेवा तथा परोपकार ही में लगा पाता है और न तो न्याय से भोग ही कर पाता है। केवल मधु-मक्खियों की भाँति इकट्ठा करता रहता है। फिर क्या होता है ? एक दिन मर जाता है और स्वार्थ-सगे कुटुम्बी एवं नात-गोत सब उस धन को यत्र-तत्र लूट लेते हैं। बहुत मनुष्यों को देखा जाता है, उनके कई हजार रुपये तिजोरियों में बन्द हैं, बैंक में रुपये जमा हैं और पुत्र-पौत्र भी कोई आगे-पीछे नहीं है। वे सब-के-सब रुपये अनावश्यक हैं। परन्तु फिर भी वे उन रुपयों से सन्त-सेवा, परोपकार, धर्म-दान दिल खोलकर नहीं कर लेते। वे रुपये न उनके इस जीवन में काम आयेंगे और न परलोक में एक कौड़ी ले जायेंगे। परन्तु फिर भी उनका दुर्भाग्य उन्हें उन रुपयों को धर्म में नहीं लगाने देता है। उनकी वही वाली दशा होती है कि "सूम का धन चाण्डाल खाँय" अर्थात् उनके

जीते जी चोर-डाकू या ऐरे-गैरे कुटुम्बी एवं नात-गोत उस धन को लूट लेते हैं तथा उनके मर जाने पर तो अवश्य सब धन छीना-छोरी करके लोग ले लेते हैं। ऐसे लोगों को अपने धन का सदुपयोग करना चाहिये। अर्थात् अनर्थ से बचा-कर धर्म में धन खर्च करके आज सुयश कमाना चाहिये। और परलोक में सुखी होना चाहिये। सुन्दर दास जी कहते हैं—

कवित्त—

माया जोरि जोरि नर राखत यतन करि,
　　कहत है एक दिन मेरे काम आइहैं।
तोहि तो मरत कछु बेरनहिं लागे शठ,
　　देखत-हि-देखत बबूल सो बिलाइहैं॥
धन तो धरोहि रहे चलत न कौड़ी गहे,
　　रीते हाथ जैसे आयो तैसे पुनि जाइहैं॥
करिले सुकृत यहि बेरिया न आवे फेरि,
　　'सुन्दर' कहत नर पुनि पछिताइहैं॥

देखो! उपर्युक्त रीति से जैसे धन तुम्हारे हाथ अन्त में नहीं लगता, तैसे कुटुम्बी भी तुम्हारे नहीं हैं। तुम्हारे मर जाने पर मृतक शरीर के साथ घर के द्वार तक ही प्यारी-स्त्री जायगी और श्मशान भूमि तक सङ्गी-मित्र गण जायँगे। परन्तु परलोक में तो तुम्हें अकेला ही जाना पड़ेगा। वहाँ तुम्हारा किया धरा धर्म की साथी होगा। इस न्याय से यह बात निश्चय होती है कि जिनके पास पुत्र-पौत्रादि न

हों और उनके अधिक धन है, तो उसे धर्म में लगा देना चाहिये ही। परन्तु जिनके पुत्र-पौत्रादि सब कुटुम्बी घर में भरे हों, उन्हें भी अपने धन से जहाँ तक बन सके, अधिक-से-अधिक धर्म करना चाहिये। क्योंकि चाहे पुत्र-पौत्र हों और चाहे न हों, मृत्यु पश्चात् तो कोई साथ नहीं देता, जीव को अकेले ही परलोक में जाना पड़ता है। अतः कुटुम्ब की आशा और धन का मोह त्याग कर धर्म करना ही मनुष्य का परम् कर्तव्य है।

यदि समझो धन साथ नहीं जायगा, कुटुम्ब साथ नहीं जायँगे, तो शरीर तो साथी होगा ही, तो यह भी तुम्हारी बड़ी भारी भूल है। एक दिन इस शरीर से प्राण-वियोग अवश्य होगा और फिर लोग इस शरीर को जला देंगे, तो राख हो जायगा तथा गाड़ देंगे तो मिट्टी खा जायगी। पानी से भरे हुए मिट्टी के कच्चे घट के समान भला यह क्षण-भङ्गर नाशवान् शरीर स्थिर कैसे रहेगा ? इस शरीर का अन्तिमधर्म—नाश हो जाना ही है। इसी से विवेकवान् इसको मरणधर्मा कहते हैं। अतः इस नाशवान् शरीर की आशा अभी छोड़ दो, नहीं तो अन्त में धोखा खाओगे।

अरे मोह में पागल मनुष्य ! इस जड़-शरीर से भिन्न हृदय-गुहा में विराजमान् अपने दिव्य ज्ञान चैतन्य पारख स्वरूप को तूने न जाना। इस मांस-पिण्ड काया ही को अपना स्वरूप मान बैठा। उस अनन्त शान्त-समुद्र चेतन

स्व-स्वरूप में नहीं रमा, जीवन पर्यन्त इस निन्द्य, अशुद्ध शरीर में आसक्त रहा। तू काल के वश होकर अज्ञान कूयें में पड़ा है। मन ही काल है, यह सुख-आशा का कोट बना कर जीव को पतन कर देता है। "आज मैंने अपने पुरुषार्थ से इतना धन इकट्ठा किया है, मुझे जवानी, धन, स्त्री और भोग प्राप्त हैं, उन्हें मैं निरन्तर भोगूँगा। अमुक शत्रु को मारा है, अभी अमुक को पराजित करना है, अमुक हमारे मित्र हैं, अमुक हमारे शत्रु हैं, पुत्र-पुत्री का विवाह अभी देखना है, यह-यह काम हमें करने हैं और यह-यह भोग भोगने हैं"—इत्यादि मन की कल्पनाओं के वश होकर भजन करने योग्य नर-जन्म नष्ट करके गर्भवास तथा जन्मादिक कूयें में बार-बार जीव पड़ता रहता है। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—हे मनुष्य! इन छूटने वाले मायावी पदार्थों को अपना मान-मान कर तू अपने आप फँसा है। तेरे को कोई अन्य बाँधने वाला नहीं है। यदि तू चाहे तो कोई तेरे को बाँध नहीं सकता। ठीक उसी प्रकार तू अपने अज्ञान से बँधा है, जैसे नलिका यन्त्र में सुख-आशा वश अपने आप शुक-पक्षी फँस जाता है।

इसका उदाहरण ऐसा है कि शुक-पक्षी को फँसाने के लिये नलिका नाम एक चरखी होती है। शुक (सुग्गा) फँसाने वाला बधिक उसे ले जाकर जहाँ शुक-पक्षी अधिक रहते हैं, वहाँ रख देता है। और उसके ऊपर लाल मिर्ची लगा

देता है। शुक-पक्षी लाल मिर्ची को देखते ही उसके लोभ-वश आता है और चरखी में पावदान लगा रहता है, उसी पावदान पर पैर रख कर लाल मिर्ची को खाना चाहता है। परन्तु पावदान पर पैर रखते ही चरखी घूम जाती है और शुक-पक्षी नीचे लटक जाता है। पुनः वह दूसरे पावदान पर पैर रख कर मिर्ची खाना चाहता है। परन्तु वही दशा पुनः होती है। अर्थात् चरखी घूम जाती है और पक्षी निचे लटक जाता है। इस प्रकार न मिर्ची खा पाता है और मोह-वश न चरखी छोड़ पाता है। निदान उसी चरखी में वह फँस जाता है। इसी प्रकार स्त्री-पुत्र-धन तथा शरीरादि के मोह वश जीव स्वयं फँसा है।

शिक्षासार—मनुष्यो! धन, कुटुम्ब और शरीर की ममता त्याग कर धर्म-परमार्थ करो, यही तुम्हारा सच्चा साथी है। और तुम्हारा कोई साथी नहीं है।

श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—

चेतावनी-भजन

चलत बिरियाँ हमका ओढ़ावें चदरिया॥

प्रान राम जब निकसन लागे, उलटि गई दोउ नैन पुतरिया॥
भीतर से जब बाहर लाये, छूटि गई सब महल अटरिया॥
चार जने मिल खाट उठाइन, रोवत लै चले डगर डगरिया॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो, संग चली वह सूखी लकरिया॥

१४–(शब्द-८५)

भूला लोग कहैं घर मेरा ॥ १ ॥
जा घर में तू भूला डोलै।
सो घर नाहीं तेरा ॥ २ ॥
हाथी घोड़ा बैल बाहना।
संग्रह कियो घनेरा ॥ ३ ॥
बस्ती माँ से दियो खदेरा।
जङ्गल कियो बसेरा ॥ ४ ॥
गाँठी बाँधि खर्च नहिं पठयो।
बहुरि न कीयो फेरा ॥ ५ ॥
बीबी बाहर हरम महल में।
बीच मियाँ का डेरा ॥ ६ ॥
नौ मन सूत अरुझि नहिं सुरझै।
जन्म जन्म उरझेरा ॥ ७ ॥
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो।
यह पद का करहु निबेरा ॥ ८ ॥

काष्ट, पत्थर, मिट्टी तथा चूना इत्यादि का घर बनाकर भूले भाई कहते हैं यह घर हमारा है ॥ १ ॥ परन्तु जिस घर में तू अभिमान करके भूला-भूला फिरता है, वह घर तुम्हारा नहीं है ॥ २ ॥ हाथी, घोड़ा, बैल, सवारी तू

बहुत इकट्ठा कर लिया है ॥ ३ ॥ परन्तु सावधान ! एक दिन तू इस गाँव एवं नगर में से खदेड़ दिया जायगा और जङ्गल में तुम्हारा निवास होगा। तात्पर्य यह है कि जब तुम्हारा शरीर छूट जायगा, तब बस्ती में से तुम्हारे शरीर को निकाल कर लोग जङ्गल में ले जाकर जला, गाड़ या फेक देंगे। अथवा बस्ती रूप नर-शरीर में से बिना धर्म-परमार्थ किये ही जब तू खदेड़ दिया जायगा, तब अज्ञानता वश-पशु, अण्डज, उष्मज इन त्रय खानि रूप जङ्गल में तू निवास पायेगा ॥ ४ ॥ जब तू पशु आदि खानियों में जायेगा, तब जिन कुटुम्बियों के मोह-मद वश तू नाना अपकर्म करके धर्म-हीन हो रहा है, उन कुटुम्बियों के लिए द्रव्य बाँध-बाँध कर वहाँ से खर्च नहीं भेजेगा। और उन कुटुम्बियों का कुशल-समाचार लेने के लिए न तो तू ही लौट कर आयेगा। अथवा जिन कुटुन्बियों के मोह-वश तू नाना शुभाशुभ कर्म करके द्रव्य इकट्ठा किया था। तुम्हारे पशु आदि खानियों में जाने के पश्चात् वे कुटुम्बीगण तुम्हारे लिए द्रव्य बाँधकर नहीं भेजेंगे और न तुम्हीं आकर ले जाओगे ॥ ५ ॥ जैसे कोई बीवी अर्थात् विवाहिता स्त्री को बाहर निकाल देवे और हरम एवं वेश्या को लाकर घर में रख लेवे और उसी में विश्राम मानकर सुख चाहे, तो यह अज्ञानता ही है। इसी प्रकार जो बीबी अर्थात् वृत्ति-मन है, उसे बाहर जगत् दृश्यों में जीव ने निकाल दिया और हरम अर्थात

कल्पना, भास, अध्यास एवं विषयासक्ति को बाहर से लाकर अन्तःकरण में टिका लिया और उसी में जीव विश्राम लेकर सुख चाहता है, तो सुख कैसे होगा ? ॥ ६ ॥ पञ्चविषय चतुष्टय अन्तःकरण इस नौ मन में सूत अर्थात् चेतन जीव उलझ गया, बिना गुरु पारख उससे सुलझता नहीं । बल्कि जन्म-जन्म अधिक-अधिक उलझता ही जाता है ॥ ७ ॥ सद्गुरु श्री कबीर साहेब कहते हैं—हे सन्तो ! सुनो, इस भ्रम का निरुवार करो, अथवा इस मनुष्य पद का विचार करो यां अपने चेतन पद को पञ्च विषय चतुष्टय अन्तःकरणादि से पृथक् समझो और उसी में रमण करो ॥ ८ ॥

व्याख्या—भाइयो ! जो तुम ईंट, पत्थर, लोह, काष्ट, सीमेंट, मिट्टी तथा चूना इत्यादि से एक महला, दो महला तथा सतमहला भवन बनाकर उसे अपना मान रहे हो । यह तुम्हारी बड़ी भारी भूल है । कमरे, ओसारे, आँगन, छत तथा द्वार के आकर्षक दृश्य देखकर जो तुम मोह-मुग्ध हो जाते हो । मन्दिर की उचाई, चूने की पोताई और भित्त की चिकनाई देखकर और उसे अपने बाहुबल का फल मान कर ममता करते हो । वह तुम्हारा नहीं है । ईंट, पत्थर, लोहा, लकड़ी, मिट्टी इत्यादि का ढाँचा रूप घर को जो अपना मानते हो, वह तुम्हारा नहीं है। न वह ढाँचा तुम्हारा है और न वह पृथ्वी तुम्हारी है जिस पर घर का ढाँचा खड़ा है । जिस घर-मन्दिर को तुम अपना मानते हो, उसमें सैकड़ों

छिपकली, चूहे, मकड़ी, साँप, बिच्छू तथा सहस्त्रों मक्खियाँ-मच्छड़ एवं अन्यान्य जीव रहते हैं। वे सब उसे अपना मानते हैं। यह तुम मत समझो कि यह घर मेरा है। वास्तव में न वह घर तुम्हारा है और न उन जीवों का है। उसमें ममता मत बनाओ। जिस महल-मन्दिर में तुम भूल रहे हो, वह तुम्हारा नहीं है। वह तो थोड़े दिन के लिए सराय है।

दृष्टान्त—कहा जाता है, सद्गुरु श्री कबीरसाहेब एक समय विचरण करते हुए बलखबुखारे देश में पहुँच गये। वहाँ का शाह सिकन्दर नामक राजा राज्य करता था। उसके राजभवन में निर्भयता पूर्वक श्रीकबीरसाहेब घुसने लगे। इतने में द्वारपाल ने दौड़कर रोका और कहा महाराज! यह राज-भवन है, इसमें बिना बादशाह की आज्ञा के कोई नहीं जा सकता। साहेब ने कहा—भाई! दो घण्टे हमें इस धर्मशाला में विश्राम कर लेने दीजिए, फिर चले जायँगे। द्वारपाल ने पुनः कहा—महाराज! यह धर्मशाला नहीं राज-भवन है। साहेब ने कहा—मैं तो इसे धर्मशाला ही समझता हूँ। द्वारपाल ने फिर कहा—महात्मन्! आप कैसे हैं? यह धर्मशाला नहीं, राजभवन है। साहेब ने कहा—अच्छा! यह बतलाओ, आज यहाँ कौन बादशाह है? द्वारपाल—शाह-सिकन्दर। श्रीकबीरसाहेब—इसके पहले कौन था? द्वारपाल—शाह महोदय के पिता। साहेब—उसके पहले कौन था? द्वारपाल—परपिता, फिर पर पितामह, पुनः परपिता-

मह के पिता इत्यादि, इसी प्रकार अगणित बादशाह पूर्व में हो गये। साहेब—इस बादशाह के पश्चात् कौन रहेगा? द्वारपाल—शाह सिकन्दर का पुत्र। साहेब—उसके पश्चात् कौन बादशाह होगा? द्वारपाल—शाह सिकन्दर का पौत्र फिर परपौत्र—इस प्रकार आगे के वंशज बादशाह होते रहेंगे। साहेब—यहाँ मन्त्री, नौकर सब वही-वही सदा काल रहते हैं क्या? द्वारपाल— नहीं, मन्त्री, नौकर सब प्रवाह रूप एक के पश्चात् एक आते-जाते रहते हैं। तब श्रीकबीरसाहेब ने कहा—इसी को तो धर्मशाला कहते हैं। जहाँ एक आवे और एक जावे, कोई सदा काल न रहे, वही तो धर्मशाला है और आने-जाने वाले यात्री हैं।

यह ज्ञान भरी बात सुनकर द्वारपाल स्तम्भित हो रहा। संयोगाधीन उसी के पीछे आड़ में इन सब बातों को शाह सिकन्दर खड़ा-खड़ा सुन रहा था। साहेब के इन वाक्यों को सुनकर उसके शुभ-सञ्चित चमक पड़े और आकर साहेब के पैरों पर गिर पड़ा तथा साहेब को राजमहल में ले जाकर स्वागत किया और साहेब के उपदेश पाकर कुछ दिन में राज-पाट त्याग कर वैराग्य दशा धारण कर सद्गुरु श्रीकबीर साहेब का सदा के लिए शिष्य हो गया। सुल्ताना शाह सिकन्दर का प्रशंसक एक भजन प्रसिद्ध है, उसे यहाँ दिया जाता है।

—:o:—

भजन

सुल्ताना बलख बुखारे दा ॥

शाही तजकर लिया फकीरी, सद्गुरु नाम पियारे दा ॥टेक॥
तब थे खाते लुकमा उमदा, मिसरी कन्द छुहारे दा ॥
अब तो रूखा-सूखा-टूका, खाते साँझ सकारे दा ॥१॥
जा तन पहने खासा मलमल, तीन टङ्क नौ तारे दा ॥
अब तो बोझ उठावन लागे, गुदड़ दसमन भारे दा ॥२॥
चुनि-चुनि कलियाँ सेज बिछाते, फूलों न्यारे-न्यारे दा ॥
अब धरती पर सोवन लागे, कङ्कर नहीं बुहारे दा ॥३॥
जिनके सङ्ग कटक दल बादल, झण्डा जरी किनारे दा ॥
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, फक्कड़ हुआ अखारे दा ॥४॥

उपरोक्त दृष्टान्त का सारांश यह है कि जिस घर में तुम अभिमान करते हो, वह तुम्हारा नहीं है, वह धर्मशाला है। जिन कुटुम्बियों को अपना मानते हो, वे भी तुम्हारे नहीं हैं, वे सब यात्री हैं। थोड़े समय के लिए उन लोगों का संगम हो गया है और अपने-अपने समय पर सब वियुक्त होकर जहाँ-तहाँ हो जायँगे।

हाथी, घोड़ा, बैलगाड़ी, रथ, पालकी, साइकिल, मोटर तथा वायुयान आदि जो तूने बहुत-बहुत सुख के साधन इकट्ठा किया है, इनका सुख भी निःसार है और इनसे एक दिन अवश्य वियोग हो जायगा। यह मस्त हाथियों की

चाल, घोड़े की टाप, रथ और बैलगाड़ियों की खनखनाहट, पालकी की मन्द गति, साइकिल और मोटरों की सनसना-हट एवं घरघराहट तथा यह वायुयान का तीव्रगामित्व और इन-इन सवारियों का आनन्द-अनुभव नित्य-स्थिर नहीं है, इनके वियोग-काल का भी चिन्तन किया करो और अभि-मान की गर्मी ठण्ढा किया करो, नहीं अन्त में दुर्गति रखी है।

एक दिन यह तुम्हारा शरीर छूट जायगा, धर्म-परमार्थ रूप शुभ कर्म यहाँ न करने से, पशु-पक्षी, कृमि-कीटादि खानियों में जाना पड़ेगा। फिर आज के कुटुम्ब, धन, घर इत्यादि में से कोई वहाँ सहायक नहीं होगा। यहाँ एक दृष्टान्त दिया जाता है इसे मनन कर ममता त्याग कर धर्म करो।

दृष्टान्त—एक बार पार्वती जी को साथ में लिये शिव जी चले जा रहे थे। एक बाजार में होते हुए वे जाने लगे। वहाँ क्या देखते हैं कि एक महाजन की ऊँची दूकान है, दूकान पर कई नौकरों के साथ महाजन बैठा है, महाजन नवयुवक है। इतने में एक बकरा कूदकर दूकान पर चढ़ गया और वहाँ एक अन्न की ढेरी में खाने लगा। इतने में नव-युवक महाजन ने उस बकरे के मुख को पकड़ कर कई मुक्का मारा और मुख से अन्न भी निकाल लिया तथा कान पकड़ कर सामने बधिक के यहाँ ले गया और मारे क्रोध से बधिक

से कहा कि इसे अभी मार डालो और मारकर इसके कलेजा को हमी को देना। आज बिना इसका कलेजा पका कर खाये मुझे शान्ति नहीं है। यह सब चरित्र शिव जी खड़े-खड़े देख रहे थे, यह सब देखकर अन्त में शिव जी हँसने लगे। पार्वती ने कहा—आप क्यों हँस रहे हैं ? शिवजी ने कहा—यह बकरा इस युवक महाजन का पिता है। इसने जीवन भर ठगी-बेइमानी करके तथा रात-दिन कमा-कमा कर बहुत-सा द्रव्य इकट्ठा किया और बड़ा भारी मकान तथा ऊँची दूकान बनवाया, इस पुत्र की ममता में इसने जीवन समाप्त कर दिया। परन्तु धर्म-परमार्थ में कभी भी दिल खोलकर पैसा नहीं खर्च किया। अतः अपने अपकर्म वश यह बकरा हो गया है। इसे दूकान पर चढ़ने का अभ्यास था। अतः इसी कारण यह दौड़कर दूकान पर चढ़ गया और स्वभाव वश अन्न खाने लगा। परन्तु उसके युवक पुत्र ने क्रोध करके उसे मारा भी और मुख से अन्न भी निकाल लिया तथा बधिक के हाथ में देकर उसे बध करने का आदेश दिया, उसी का कलेजा खाना चाहता है। यही सब देख-समझकर मुझे हँसी आ गई कि जिस पुत्र के लिए इस पापी पिता ने शुभाशुभ का ध्यान न करके जीवन भर धन कमाकर इसको धनवान् और सुखी किया, वही पुत्र उसका कोई सहायक नहीं बल्कि मार डालने पर तत्पर हो गया। यद्यपि यह दृष्टान्त कल्पित है, क्योंकि पूर्व जन्म का स्मरण होना अस-

क्य है, मात्र इस दृष्टान्त से यही शिक्षा लेनी चाहिये कि अपना कल्याण-साधन छोड़कर जो पुत्र-पौत्रादि के भविष्य-सुख के लिए जीवन नष्ट कर देते हैं। वे कितनी भूल करते हैं ? मर जाने पर एक कौड़ी भी कमाया धन तुम्हारे काम में न आयेगा। अतः आज सावधान हो जाओ।

सत्संग, सन्त-सेवा, भक्ति, दया, शील, क्षमा, सन्तोष, ब्रह्मचर्य, वैराग्य तथा धर्म-परमार्थ जो जीव का (लोक-परलोक) हर जगह साथी है, उसको मनुष्य ने हृदय से भूल गया है और अज्ञान, काम, क्रोध, लोभ, मोह, आशा-तृष्णा, भोग-कामना तथा हिंसा, चोरी, व्यभिचार, झूठ तथा अभक्ष्य-भक्षणादि जो पाप कर्म जीव को (लोक-परलोक) हर स्थान पर दुःख देते रहते हैं, उसको मनुष्य ने हृदय में लाकर बसा लिया है। इसी भोग-कामना, अज्ञान, भ्रम तथा दुराचरण में अनादि से जीव आसक्त है और जन्म-जन्म अधिक-अधिक आसक्त होता ही जाता है। अतएव इन बन्धनों से छूटकर अपने कल्याण के लिए मनुष्य को आज ही सावधान हो जाना चाहिये और सत्संग करना चाहिये।

शिक्षासार—घर, द्वार, धन, कुटुम्ब, अपने नहीं हैं। अतः धोखा में मत भूलो, अपना भजन-सत्संग करके उद्धार करो।

शब्द-चेतावनी

गुमानी मन पाप को बीज कियो रे ॥टेक॥

जीव वधे अरु आमिष खाये, पुनि मदिरा को घूँट पियो रे ॥१

पर धन हरे त्रिया पर भोगे, पर दुर्गुण में चित्त दियो रे ॥२
पर सुख देखि जले निशिवासर, पर दुख देखिके मोद लियो रे ॥३
मुक्तिद्वार अभिलाष पाय शठ, हठ वश यम के द्वार गियो रे ॥४

१५—(शब्द-६१)

तन धरि सुखिया काहु न देखा ।
जो देखा सो दुखिया ॥ १ ॥
उदय अस्त की बात कहत हैं ।
सब का किया विवेका ॥ २ ॥
बाटे-बाटे सब कोइ दुखिया ।
क्या गेही वैरागी ॥ ३ ॥
शुक्राचार्य दुख ही के कारण ।
गर्भहि माया त्यागी ॥ ४ ॥
योगी जङ्गम ते अति दुखिया ।
तापस के दुख दूना ॥ ५ ॥
आशा तृष्णा सब घट व्यापी ।
कोई महल नहिं सूना ॥ ६ ॥
साँच कहों तो सब जग खीजे ।
झूठ कहा ना जाई ॥ ७ ॥
कहहिं कबीर तेई भौ दुखिया ।
जिन्ह यह राह चलाई ॥ ८ ॥

शरीर को धारण करके किसी को सुखी नहीं देखा गया। जिनको देखा गया वे सब (प्राणी मात्र) दुखी हैं ॥१॥ जहाँ से सूर्य उगता है और जहाँ तक डूबता है अर्थात् सारे संसार की बात कहता हूँ। सबको मैंने विवेक दृष्टि से देखा, तो सब दुखिया हैं। अथवा उदय-अस्त अर्थात् सूर्य की गति तथा सूर्य-चन्द्र का ग्रहण और भूत-भविष्य की बात बतलाने वाले ज्योतिषी, विज्ञानी इत्यादि भी दुःखों से पीड़ित हैं ॥२॥ क्या गृहस्थ और क्या विवेक-रहित भेष-धारी वैरागी, प्रकार भेद से सब कोई दुखिया हैं ॥३॥ देखिये ! पुराणों में विदित है कि शुकदेव जी ने जगत् को दुःख रूप समझने के कारण गर्भवास में से ही माया का त्याग कर दिया। अथवा दुःखों का हेतु समझ कर शुकदेव जी ने माया का गर्भ (अभिमान) त्याग दिया ॥४॥ साम्प्र-दायिकता वश योगी-जङ्गमादि भी अत्यन्त दुखिया हैं। और तपसियों का तो सबसे दूना दुःख है ॥५॥ स्वरूपज्ञान रहित जहाँ तक प्राणी हैं, तहाँ तक स्वर्गादिक आशा और भोगा-दिक तृष्णा तथा मान-कीर्ति इत्यादि की कामना सब के अन्तःकरण में व्याप्त है। पारख विचार-हीन कोई अन्तःकरण दुःखों से रहित नहीं है ॥६॥ सत्य बात कहता हूँ तो संसार के सब लोग क्रुद्ध होते हैं, और असत्य तो कहा नहीं जा सकता ॥७॥ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं कि वे ही प्रथम दुखिया हुए और अन्य को भी दुखिया किए, जिन्होंने यह

खानी-वाणी का मार्ग संसार में चलाया ॥८॥

व्याख्या—यह शरीर क्लेशों से पूर्ण है, इसमें केवल दुःख-ही-दुःख भरे हैं। इस शरीर की रचना जब से आरम्भ होती है और जब तक इसका विनाश होता है (हर समय) यह दुःखों से पीड़ित रहता है।

अतः शरीर धर कर अज्ञानी जीव (कोई) सुखी नहीं हो सकते। दैहिक, दैविक और भौतिक ताप सदा जलाते ही रहते हैं। गृहस्थ तो इन सब दुःखों में दुःखी ही हैं। परन्तु जो गृहस्थी त्याग कर वैरागी-साधु भी हो जाते हैं, जब तक उनकी सर्व अज्ञानता-भ्रम मिटकर प्रबल वैराग्य और स्वरूप स्थिति नहीं हो जाती, तब तक वे भी दुःख के चपेटे से नहीं बचते। इन सब दुःखों को देखकर ही माया का मद त्याग कर शुकदेव जी ने बाल्यपन से ही विरक्ति मार्ग का अवलंबन किया। अथवा इनके विषय में ऐसा दृष्टान्त प्रसिद्ध है कि—

शुकदेव जी जब माता के गर्भ में आये, तभी से इन्हें जगत्-दुःखों का ज्ञान होने लगा। धीरे-धीरे इनका ज्ञान गर्भ-वास ही में बढ़ गया। जगत्-दुःखों की चिन्ता ही में ये सोरह वर्ष तक गर्भ से नहीं निकले। बहुत प्रार्थना करनेपर ये गर्भ से बाहर आये। परन्तु तुरन्त वन को भाग चले, माता-पिता का मुख देखना तक भी नहीं अच्छा माना कि कहीं हमें माता-पिता का मोह न लग जाय। वन जाते समय पिता वेदव्यास ने लौटा लाने के लिए बहुत पीछा

किया। परन्तु वे लौटे नहीं और जीवन भर अखंड विरक्त रहे। ऐसी उनकी कथा कल्पित है। परन्तु यह कथा सर्वथा सत्य नहीं हो सकती, क्योंकि गर्भ में यथार्थ ज्ञान क्या होगा? बल्कि माया का गर्भ (अभिमान) उन्होंने त्याग दिया।

सारांश यहाँ यह लेना है कि जगत् में दुःख ही देखकर शुकदेव जी ने बाल्यपन से वैराग्य मार्ग धारण किया। योगी लोग नेती-धोती क्रिया करने और षट्-चक्र बेधने में रात-दिन दुखी हैं, जङ्गम सम्प्रदाय वाले अपने कर्मों में विकल हैं। तपसी लोग जलशयन, पञ्चअग्नि तापन इत्यादि असह पीड़ा उठा रहे हैं। इन सभी लोगों के मन में सिद्धि-प्राप्ति कर्ता-प्राप्ति और स्वर्ग-भोगादि-प्राप्ति की कामना धधक रही है।

"स्त्री, पुत्र, धन, भोग तथा शरीर-ममता रूपी खानी जाल और कर्ता-धर्ता तथा देव-देवी की कल्पना और नाना भ्रमिक मत-पन्थ-ग्रन्थ एवं विजाति भास, अध्यास रूपी वाणी जाल। ये खानी-वाणी जाल में फँसने से ही सब जीव दुखी हैं। यदि इनको सर्वथा त्याग कर पारखी सन्त-गुरु के सत्संग द्वारा स्वरूप-परिचय प्राप्त करें, तो उपर्युक्त दुःख सहज ही में मिट जायँ"—यदि इस प्रकार सच्ची बात कही जाती है, तो खानी-वाणी के अध्यासी सब जीव क्रोधित होते हैं। परन्तु 'संग्रह-त्याग न बिनु पहिचाने' के न्याया-नुसार जिज्ञासु जीवों के दुःख-निवृत्ति के लिए कहना ही

पड़ता है। असत्य बोला भी नहीं जा सकता। अतः गुरु कहते हैं। वे ही स्वयं दुखिया हुए और अन्य के दुःख को भी बढ़ाये कि जिन्होंने इस खानी-वाणी के मार्ग को पुष्ट किया।

प्रश्न—इस शब्द में श्रीकबीरसाहेब कहते हैं कि "तन धरि सुखिया काहु न देखा।" अथवा "बाटे-बाटे सब कोइ दुखिया, क्या ग्रेही वैरागी।" इन पदों से यह ज्ञात होता है कि सन्त जन भी सुखी नहीं हैं। इनके पीछे भी दुःख लगा है।

उत्तर—मन-इन्द्रिय पूर्ण जीतकर जो अपने अखंड स्वरूप में सन्तुष्ट हैं, पूरे सन्त हैं। वे पूर्ण सुखी हैं। उन्हें दुखिया नहीं माना जा सकता। जो ग्रेही के साथ वैरागी को भी इस पद में दुखिया कहा गया है वह वैरागी पद यथार्थ वैराग्यवान का वाचक नहीं है। वह कल्पना-श्रम और विषय का अनुशरण करने वाले नाम मात्र भेषधारी का वाचक है। ऐसा कहीं नहीं कहा है कि "क्या ग्रेही और क्या यथार्थ वैराग्यवान् सन्त—सब दुखिया हैं।" बल्कि साहेब ने स्वयं कहा है कि "जो तू चाहे मूझको, छाड़ सकल की आश।

मुझ ही ऐसा होय रहो, सब सुख तेरे पास॥

या—दुख से तबही बाँचिहो, जब सकलो जारि जाय॥बीजक॥"

यदि दुःख से कोई बच ही न सकता, तो ऐसी शिक्षा स्वयं क्यों देते? अतः यहाँ यथार्थ वैराग्यवान् सन्त को

दुखिया नहीं कहा गया है। श्रीपूरणसाहेब जी कहे हैं—

तन धरि सुखिया कोइ नहीं, सब कोइ दुखिया लोग।
बिन वैराग ठहरै नहीं, कहाँ ज्ञान कहाँ योग॥

तथा-काल पीर तिनकी मिटी, जिनको दृढ़ वैराग्य।
तेहि बिन जिव सब दुखित अति, पचि-पचि मरहिं अभाग

अतः सच्चे वैराग्यवान् सन्त दुःख से मुक्त हैं। यदि कहिये वैराग्यवान् सन्तों के भी ज्वर-जूड़ी तथा शिर-दर्द आदि शारीरिक कष्ट होते हैं। तो यह कहना ठीक है। परन्तु यह पूर्व जन्मकृत प्रारब्धिक कष्ट है। शरीर के सुख-दुःख विवशता पूर्वक ज्ञानी-अज्ञानी सभी को भोगना पड़ता है। इसीलिए तो जीवन्मुक्त पुरुष को विदेह मोक्ष की आवश्यकता है। परन्तु अज्ञान, भोग-कामना और जगदासक्ति रूप जन्म-मरण का बीज नष्ट हो जाने से यथार्थ वैराग्यवान् सन्त दुःखों से सर्वथा मुक्त हो जाते हैं। प्रारब्ध शरीर शान्त होते-होते सदैव के लिये दुःख रहित मोक्ष हो जायँगे। अतः संसार में एक यथार्थ वैराग्यवान् सन्त ही सुखी हैं।

शिक्षासार—देहाभिमान ही दुःखों का कारण है। अतः देहाभिमान और कल्पना त्याग कर सुखी होना चाहिये।

शब्द

सुखी कोइ बिरले ज्ञानी सन्त ॥टेक॥

विषयन त्यागि इन्द्रियन जीते, मन को मारि रहत एकन्त ॥१
दैंव समान युवती को समझत, रहत सदा उपराम अनन्त।२

चाह कामना आशा तृष्णा, मन संकल्प करत सब अन्त ॥३
जड़ तन से निज रूप पृथक करि, दुख सुख हर्ष शोक गत तंत ॥४
तजि अभिलाष आश जग तनकी, जीवन्मुक्त स्ववश विचरंत ॥५

१६--(शब्द - ८६)

काको रोवौं गयल बहुतेरा ।
बहुतक मुवल फिरल नहिं फेरा ॥ १ ॥
जबहम रोया तब तुम न सँभारा ।
गर्भवास की बात विचारा ॥ २ ॥
अब तैं रोया क्या तैं पाया ।
केहि कारण अब मोहि रोवाया ॥ ३ ॥
कहहिं कबीर सुनो सन्तो भाई ।
काल के बसो परो मति कोई ॥ ४ ॥

किनको समझाऊँ और किनके-किनके लिये कष्टित होऊँ, बहुत-से माया के चक्र में पड़कर दुःख के पात्र हुए। बहुत-से लोग परमार्थ जीवन से रहित होकर जड़ाध्यासरूपी मृत्यु को प्राप्त हुए, उनको मैंने अनेक प्रकार से समझा-बुझा कर परमार्थ की ओर फेरना चाहा, परन्तु वे लोग इधर नहीं फिरे, माया के गुलाम हो गये ॥ १ ॥ जब मैंने अपने दया स्वभाव वश तेरे को समझाया, तब तो तूने सँभारा नहीं—शिक्षा माना नहीं। और जिससे पुनः गर्भवास की प्राप्ति हो उसी कामिनी-कल्पना की बात तूने विचारा, अर्थात् गुरुमार्ग त्याग कर

विषय और वाणी का गुलाम हुआ ॥ २ ॥ माया में भलीभाँति फँसकर और उसके परिणाम सरूप दुःखों को प्राप्त होकर अब तू रोता है, तो क्या पाता है ? पहले तो कहा नहीं माना, अब अपने दुःखों को सुनाकर किस लिये मेरे को दुखित करता है ॥ ३ ॥ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—ऐ सन्तो ! ऐ भाई जिज्ञासुओ ! कामिनी-कल्पना और मनरूपी काल के वश कोई मत पड़ो । नहीं तो बड़ा दुःख मिलेगा ॥ ४ ॥

व्याख्या—अनेकों भक्त, ब्रह्मचारी और साधु-वेषधारी साधु-गुरु के समाज में रहते हैं । उनमें सच्चे-कच्चे सब मिले रहते हैं । जो सच्चे होते हैं, वे जीवन भर परमार्थ-साधन करते हुए सद्गुरु की शरण में डटे रहते हैं और जो कच्चे होते हैं, वे थोड़े ही दिनों में सद्गुरु-शरण और सन्त-समाज त्यागकर तथा ब्रह्मचर्य और वैराग्य-त्याग को तिलाञ्जलि देकर विषयासक्त-गृहस्थ हो जाते हैं । इसी प्रकार एक जिज्ञासु परमार्थ मार्ग से गिर गया ।

तब किसी सज्जनने सद्गुरु से कहा—सद्गुरु ! बड़े सोच की बात है, अमुक जिज्ञासु परमार्थ-मार्ग त्याग कर संसारी हो गया, उसे किसी प्रकार समझा-बुझा कर सीधे मार्ग पर लाना चाहिये । तब सद्गुरु ने कहा—किनके-किनके लिये मैं रोऊं-कल्पित होऊँ । एक वही नहीं, अनेकों कच्चे साधक 'अधजल सती न्याय' परमार्थ-पथ त्याग कर माया के गुलाम हो गये । बहुत-से लोग परमार्थ-जीवन से मरगये, अनेकों साधु-भेषधारी,

ब्रह्मचारी और भक्त विवेकी साधु-गुरु से विमुख हो माया के गुलाम हो गये। यदि कहिये आप समझाये नहीं, तो ऐसी बात नहीं है। मैंने परमार्थ की ओर घुमाने के लिये बहुत-बहुत समझाया। परन्तु उन लोगों को हमारी सद्-शिक्षा ही विष रूप लगने लगी 'जाहि कहौं हित आपना, सो उठि बैरी होय।' तब मैंने भी सोच लिया 'जो जिव झाँकि न ऊपजे, तो काहि पुकार कबीर।'

जो गुरु-शरण त्यागकर परमार्थ मार्ग से गिरते हैं, उनकी बड़ी अवदशा होती है, सो संसार में विदित है। यद्यपि वे चाहें तो पुनः उठ सकते हैं और अपने परमार्थ को सँभाल कर अपना कल्याण कर सकते हैं। परन्तु परमार्थ से गिरे हुए व्यक्तियों को प्रायः उठते नहीं देखा जाता। वह जिज्ञासु जो परमार्थ-पथ त्याग कर संसार में गिर गया था। उसको भोगासक्ति और अज्ञान के परिणाम वश संसार में बड़ा दुःख मिला। सन्त-समाज सहित श्रीसद्गुरुदेवजी एक बार एक रम्यस्थल में शान्त बैठे थे। इतने में वह आकर श्रीसद्गुरु के चरणों पर गिर कर रोने लगा और अपने विषयासक्ति जनित दुःखों को सुनाने लगा। तब श्रीसद्गुरुदेवजी ने कहा—भाई! जब तू परमार्थ-पथ से शिथिल होने लगा था और मेरी शिक्षा के उल्टे चलने लगा था। तभी तेरे ऊपर मैंने करुणादृष्टि करके समझाया था, बहुत-बहुत कहा था कि देखो! साधु-गुरु के न्याय-विरुद्ध मत चलो। जो सुख परमार्थ में मिलेगा, वह सुख स्वार्थ और

भोगों में कभी नहीं मिलेगा। विचारशील सन्त-समाज में जब तुमसे रहा नहीं जाता, तब सकामी-संसारी जीवों के घेरे में पड़कर तुम्हारी दशा खराब हो जायगी। मन-इन्द्रियों को जीतने में सुख है, इसके भोग और आसक्ति में पड़ने में सुख नहीं है, इत्यादि बहुत-बहुत ज्ञान की बातें मैंने तेरे को समझाया था। परन्तु उन बातों पर तूने किञ्चित् भी ध्यान नहीं दिया, तनिक भी हमारी बात नहीं माना। और जिससे तुम्हारा अधःपतन हो, फिर भी गर्भवास हो, नाना नीचयोनियों में भ्रमना पड़े और जिससे इसी जीवन में सब अवदशा तुम्हारी हो जाय। उन्हीं कल्पना, कामिनी और अज्ञान-भोग को तू-ने धारण करने का विचार किया और उसी को अन्त में धारण किया। अब उस अज्ञान-भोग और माया जाल में पड़कर जब बहुत कष्टित हुआ, तब मेरे पास आकर रोता है, तो इस रोने से तू क्या पाता है? अब तो स्त्री, पुत्र, घर, धन, कुल, कुटुम्ब तथा भोगादि की अहन्ता-ममता में भलीभाँति जकड़ गया है। तो केवल दुःखों से पीड़ित होकर रोने से क्या लाभ है? अपने दुखड़ा को रो-रो करके मुझको भी क्यों कष्टित करता है?

"अपने जाल बिछाय के, आप फँसे मतिमन्द।
कहाँ रोग कहाँ औषधी, कैसे मिले अनन्द॥"

अतएव यदि अपना कल्याण चाहते हो, तो संसार की आसक्ति ममता जीतकर फिर से परमार्थ-मार्ग पर आ जाओ और दुःखों से पीड़ित होकर केवल रोने से कुछ लाभ नहीं है।

इतना कह चुकने पर श्रीसद्गुरु पतित-मनुष्य का संकेत करते हुए अपने शिष्य मण्डलियों एवं सन्त-समाज से कहने लगे—ऐ भाई सन्तो ! तथा शिष्य गणो ! खूब सावधान रहो। इस मनुष्य की भाँति कोई कष्टदायी काल के वश मत पड़ो। कामिनी, मन सम्भव कल्पना, अनुमान, धोखा, मान-मद, काम, क्रोध इत्यादि ही काल हैं। इनसे हर समय बचे रहो।

शिक्षासार—जिज्ञासु को कभी भी प्रमाद धारण कर सत्संग अथवा साधन-सावधानी से दूर नहीं होना चाहिये। सदैव सत्संग में निवास कर अथवा साधन-सावधानी में रत रहकर अपना कल्याण करना चाहिये।

शब्द-चेतावनी

हमारे मन मोह-मया बिसराओ ॥ टेक ॥

जेहिको त्यागि विरक्तिको धारे, तेहि पुनि किमि ललचाओ।
विषयन को विष सम करि जानो, इन्द्रिन जीति रहाओ ॥१
सुत दारा गृह कुटुम कबीला, इनसे प्रेम हटाओ।
रचि कै स्वाँग सती कर प्रथमै, ताप देखि न हँसाओ ॥२
धरि कै भेष पुनीत साधु कर, जो मन भोग लुभाओ।
तो निज गरा काटि मरि जाओ, पर जग मुख न दिखाओ ॥३
ह्वै कै विमुख भोग विषयन से, विरति विवेक बढ़ाओ।
सन्मुख मरण वीर की शोभा, दृढ़ अभिलाष रहाओ ॥४

१७—(शब्द—६६)

अब कहँ चलेउ अकेले मीता ।
उठहु न करहु घरहु की चिन्ता ॥ १ ॥
खीर खाँड़ घृत पिण्ड सँवारा ।
सो तन लै बाहर कै डारा ॥ २ ॥
जो शिर रचि रचि बाँधेउ पागा ।
सो शिर रतन बिडारत कागा ॥ ३ ॥
हाड़ जरै जस जंगल लकड़ी ।
केश जरै जस घास की पूली ॥ ४ ॥
आवत संग न जात सँगाती ।
काह भये दल बाँधल हाथी ॥ ५ ॥
माया के रस लेइ न पाया ।
अन्तर यम बिलारि होय धाया ॥ ६ ॥
कहहि कबीर नर अजहुँ न जागा ।
यम कर मुगदर माँझ शिर लागा ॥ ७ ॥

अन्त अवस्था का संकेत करते हुए साहेब कहते हैं—ऐ मित्र ! घर, धन, कुटुम्ब एवं अपने प्रिय स्नेहियों को छोड़ कर अकेले अब कहाँ चल दिये ? उठिये, जरा अपने घर की चिन्ता कीजिये ॥१॥ खीर, मिष्टान्न तथा घी इत्यादि खा-कर जिस शरीर को तू ने भली भाँति पुष्ट किया था, उस

तुम्हारे सुरक्षित शरीर को कुटुम्बीगण ले जाकर बाहर जङ्गल में डाल दिये ॥२॥ जिस शरीर में विविध रचना युक्त तू सुन्दर पाग बाँधता था। उस उत्तम माने हुये शिर को जंगल में कागड़ा (कौए) फोड़-फोड़ करके इधर-उधर बिथेर रहे हैं ॥३॥ तुम्हारे शरीर का दाह-संस्कार करने पर हाड़ तो जंगल की सूखी लकड़ियों की भाँति जल जाता है। और केश घास के गट्ठे के समान भस्म हो जाते हैं ॥४॥ न आते समय साथ में आये हैं और न जाते समय साथ में जायेंगे। फिर सेना और हाथी इत्यादि बाँधने से भी तुम्हारा कौन-सा प्रयोजन सिद्ध हुआ ? कुछ नहीं ॥५॥ मन भर माया-भोग के स्वाद को तू लेने नहीं पाया। और बीच ही में तुझ मनुष्य रूपी चूहे पर बिलार रूप होकर मौत ने धावा बोल दिया ॥६॥ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—यह मनुष्य आज उत्तम अवसर पाकर अथवा मरणासन्न होने पर भी सावधान नहीं हुआ। इतने में काल का मुगदर इसके शिर पर बैठ गया और यह फिर चौरासी का कीड़ा हुआ ॥७॥

व्याख्या—इस ९९ शब्द से अनुमान किया जाता है कि एक राजा बड़ा सम्पदाशाली धन, पुत्र, स्त्री, पृथ्वी-राज्य भोगों से सम्पन्न नव यौवन अवस्था को प्राप्त बड़ा आनन्दित हो रहा था। उसे अपने धन, सम्पत्ति, यौवन-अवस्था तथा स्त्री, पुत्र, मित्र इत्यादि प्राणी-पदार्थों का बड़ा अभिमान था। उसे सत्संग में कोई प्रेम तो न था, परन्तु संयो-

गाधीन सद्गुरु श्री कबीरसाहेब को वह कई बार मिला। साहेब उस राजा को जब-जब मिले, तब-तब संसार माया भोग की असारता दर्शाकर सत्संग की ओर सुझाव दिये। परन्तु राज्य, धन एवं यौवन के मद में पड़ा राजा अधिक ध्यान नहीं देता। बल्कि कहने लगता—महाराज! हमारे राज्य-काज मित्र-गोष्ठी अधिक हैं, उनके सम्हालने में हमें बड़ी चिन्ता रहती है। कहीं समवयस्क मन मुग्धकर मित्रों के साथ आनन्द लूटने का ध्यान होता है, कहीं शत्रु को मारने की हृदय में खलबली होती है। महाराज! हमें सत्संग करने का अवसर ही कहाँ है? संयोगाधीन ऐसा हुआ कि थोड़े ही दिन में उस राजा की मृत्यु हो गई। श्रीकबीरसाहेब जब उस राजा की मृत्यु होना सुने, तब उस राजा को लक्ष्य बना कर सब जीवों के हितार्थ कहने लगे—

अहो मित्र! अब तुम अकेले कहाँ चल बसे? तुम तो कहते थे हमारे स्त्री, पुत्र, अनेकों मित्र तथा दास-दासी हैं। तो उनको छोड़कर आज क्यों अकेले हो गये? जिनसे तुमने गाढ़ा प्रेम किया था, जिस स्त्री, पुत्र और मित्र को तू अपने हृदय से अति प्यार करता था, प्राण से अधिक प्रिय मानता था। हाय! चलते समय उन्हें तू अपने साथ में नहीं लिया। तुम तो कहते थे हमें अपने राज्य-काज की रक्षा के लिए बड़ी चिन्ता है, सत्संग करने का अवसर नहीं है। अहो भाई! अब क्यों नहीं उठकर घर की चिन्ता करते हो?

तुम्हारे स्त्री, पुत्र, मित्र तथा बन्धु-बान्धव सब रो रहे हैं। तुम्हारे घर की परिस्थिति बिगड़ रही है। उठो भला ! अपने प्रेमियों को हृदय से लगाकर चुप करो, प्यार करो और घर को सम्हालो।

अज्ञानी मनुष्य धन, पुत्र, स्त्री इत्यादि के मारे अभिमान वश इतना इटलाता फिरता है कि मानो अब इनका कभी वियोग होगा ही नहीं। परन्तु क्या कभी सदा संयोग ही बना रहता है। संयोग के पश्चात् वियोग, सुख के पश्चात् दुःख, जन्म के पश्चात् मृत्यु, जवानी के पश्चात् बुढ़ापा का आना अवश्यम्भावी है।

खीर, हलुआ, मेवा, मिष्टान्न, घी, दूध इत्यादि खूब खा-खाकर जिस शरीर को परिपुष्ट किया गया था। जीव निकल जाने के पश्चात् उसी काया को भाई-बिरादर लोग बाहर डाल देते हैं। जो शरीर अभी एक घण्टे के पहले राज्य सिंहासन पर विराजमान था, सब लोग उस शरीर की कांति को देखकर मोहित हो रहे थे, उसका प्यार करते थे, उसके सामने हाथ जोड़ कर खड़े रहते थे। अहो ! जीव के निकल जाने पर अभी उसका निरादर हो गया। वह सिंहासन से उतार कर पृथ्वी पर लेटा दिया गया। और इतने में भी कुशल नहीं है। जो शरीर अभी एक घण्टे के प्रथम सिंहासन-आसीन था, वही अब मिट्टी के गड्ढे में डाला जा रहा है या आग में जलाया जा रहा है तथा पानी में डुबाया जा

रहा है। कैसा भयानक परिणाम इस काया का होता है। हाय रे अविद्या वशी जीव! तिस पर भी तू इस शरीर की आसक्ति में पचता रहता है। सदा जीने, जवान बने रहने और भोगने की आशा कभी छूटती ही नहीं, मनुष्य कितना मोह-मुग्ध है? बालों को काला बनाये रखने के लिये खिजाब का प्रयोग करता है, सदा जवान बने रहने के लिये बन्दर-ग्रन्थि (बन्दरों की नसें अपने शरीर के भीतर) लगवाता है। परन्तु यह विडम्बना मात्र नहीं तो और क्या है? परिणामी काया का परिणाम अवश्य होगा, आज हो या कल। सुन्दरदासजी कहते हैं—

अज्ञान का कवित्त—

मेरो देह मेरो गेह मेरो परिवार सब,
मेरो धन माल मैं तो बहु विधि भारो हूँ।
मेरे सब सेवक हुकुम कोउ मेटै नाहिं,
मेरी युवती को मैं तो अधिक पियारो हूँ॥
मेरो बंस ऊँचो मेरो बाप दादा ऐसे भये,
करत बड़ाई मैं तो जगत उजारो हूँ।
'सुन्दर' कहत मेरो मेरो कर जाने शठ,
ऐसो नहिं जाने मैं तो कालहूँ को चारो हूँ॥
देहको स्वरूप तौलौं जीवको निवास जौलों,
सब कोऊ आदर करत मनमान है।
टेढ़ी पाग बाँधि बारबारही मरोरे मूँछ,
बाँह उसकारे अति धरत गुमान है॥

देश-देश हीके लोग आइ के हजूर होहिं,
बैठकर तखत कहावै शुल्तान है।
'सुन्दर' कहत जब चेतना निकसि गई,
वही देह ताकी कोऊ मानत न आन है॥

जिस शिर में रच-रच कर पाग (पगड़ी) बाँधते थे, सहिबानी टोपी लगाते थे, विविध प्रकार के टेढ़ी-मेढ़ी जुल्फें सँवारते थे। (मृतक शरीर के बाहर पड़े रहने पर) उसी रत्न तुल्य शिर को अब कौए फोड़-फोड़ कर इधर-उधर बिथेर रहे हैं। उत्तम-उत्तम, मोटे-पतले, छींटदार, छापदार, गोटे-पट्टेदार, कालरदार, किनारदार इत्यादि वस्त्रों से और कलाई घड़ी, बूट जूते तथा विविध फैसन युक्त अलंकारों से संपन्न कान्तिमान नवयौवन शरीर चिता पर रखा हुआ अग्निकुण्ड में लो ! अब भस्म हो रहा है। वे पुष्ट-पुष्ट हड्डियाँ वन की लकड़ियों की भाँति जल रही हैं और वे लम्बी-लम्बी काली-काली तथा घुघुराली जुल्फें घास के गट्ठों की भाँति स्वाहा हो रहीं हैं। कहा है—साखी—

ऊँचा महल चुनाइया, सुबरन कली बुलाय।
ते मन्दिर खाली परे, रहे मसाना जाय॥१॥
मलमल खासा पहरते, खाते नागर पान।
टेढ़े होकर चालते करते बहुत गुमान॥२॥
महलन माही पौढ़ते परिमल अङ्ग लगाय।
ते सुपने दीसे नहीं देखत गये बिलाय॥३॥

(साखी संग्रह)

ऐ भूले हुए शरीरासक्त भाइयो ! इस शरीर की भयंकर परिणामशीलता को गम्भीरता पूर्वक देखो। इस शत्रु रूप शरीराभिमान को मारो। यह शरीर कृतघ्न है, जीव के साथ यह परलोक में नहीं जाता। जीव इसे हरक्षण स्ववश रखना चाहता है और यह हर क्षण विवश होता जाता है। जीव चाहता है, शरीर सदा निरोगी और सुखी रहे, परन्तु यह सदा रोगी और दुखी बना रहता है। जीव चाहता है, शरीर कुमार और यौवन अवस्था ही में सदा बना रहे, परन्तु यह अधेड़ और वृद्ध हो जाता है। जीव चाहता है, यह शरीर सर्वांग सुन्दर और सम्पन्न रहे, परन्तु इस शरीर में एक-न-एक कमी लगी ही रहती है। जीव चाहता है, शरीर की इन्द्रियाँ अत्यन्त शक्तिशाली हों, भोग क्रियाओं में शिथिल न हों, परन्तु इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं। जीव चाहता है, शरीर सदा बना रहे, परन्तु यह कुछ ही दिनों में नष्ट हो जाता है। सब दुःख, सब बन्धन, सब चिन्ता-शोक और क्लेश इस शरीर द्वारा ही प्राप्त होते हैं। अतः शरीर की आशा प्रथम ही त्याग कर हमें सुखी हो जाना चाहिये। जब तक इस शरीर को हृदय से तृण के समान नहीं त्यागा जायगा, तब तक दुःखों का अन्त नहीं होगा।

दास-दासी सेना-शासन तथा हाथी, घोड़े, वायुयान, रथ, पालकी, मोटर, साइकिल—इन सबों को एकत्र करके भी क्या अपना कल्याण होगा ? आते समय में न साथ आये हैं और न

जाते समय में साथ जायेंगे। स्वप्न के समान दो दिन के लिए इनका मिलना है। इन सब वस्तुओं से तुम्हारा कौन-सा मुख्य प्रयोजन पूर्ण होगा? बल्कि आसक्ति-ममता बनाकर ये सब दुःख एवं बन्धन देनेवाले हैं। इन पानी के बुल बुले के समान पदार्थों को सत्य मानकर व्यर्थ ही तुम अभिमान करते हो।

मनुष्य धन, पुत्र, स्त्री एकत्र करता है, शत्रुओं को मारकर निष्कण्टक विषयों का उपभोग करना ही चाहता है कि इतने में उसे काल उठा ले जाता है। और वह चें-पें करके रह जाता है। इस संसार में लोगों की सुख की आशा-ही-आशा मात्र रहती है और निष्कण्टक सुख कभी भी नहीं मिलता। सदैव दुःखों का सामना करना पड़ता है। मनुष्य सोचता है—इस वर्ष सूखा-दाहा पड़ गया है, अन्न नहीं हुआ है, कष्ट है। आगे वर्ष हम सुखी हो जायँगे। परन्तु आगे वर्ष में क्या होता है, बैल मर जाता है, उसे खरीदना पड़ता है। फिर मनुष्य सोचता है—इस वर्ष बैल खरीदना पड़ा, बड़ी तंगी हो गई है। आगे वर्ष में हम सुखी हो जायँगे। फिर आगे वर्ष में क्या होता है कि पुत्र-पुत्री का विवाह आ पड़ता है, फिर उसके खर्च में तंगी आ जाती है। इसी प्रकार किसी वर्ष घर बनवाना पड़ता है, किसी वर्ष घर के प्राणी बीमार हो जाते हैं और उनके औषध में अधिक खर्च हो जाता है तो कभी कुछ हो जाता है, कभी कुछ। इस प्रकार मनुष्य को कभी भी सुख-सुविधा नहीं मिलती। स्त्री के प्रेम,

हास्य, विलास और लालित्य बहुत ही थोड़े दिन रहते हैं, फिर नष्ट हो जाते हैं। अपने शरीर की जवानी और भोगों को भोगने योग्य इन्द्रियाँ, ये भी शीघ्र नष्ट हो जाती हैं। भोगों को भोगने की नित्य नवीन-नवीन तृष्णा बनी रहती है, भोगों को छक कर भोगने को मनुष्य नहीं पाता, इतने में मनुष्य रूप चूहे को मृत्यु रूपी बिल्ली दौड़ कर खा जाती है।

सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—ऐसा उत्तम मोक्षदायी नर-जन्म पाकर भी यह जीव सावधान होकर अपना कल्याण नहीं करता। अथवा यह मनुष्य समझता है कि हम भी किसी दिन मरेंगे। परन्तु फिर भी होश में नहीं आता। अन्य लोगों को बुड्ढा, रोगी होते और मरते देखकर भी मनुष्य अपने लिये चेत नहीं करता। सत्संग-भजन के लिये हर्ज नहीं कर पाता। दान-धर्म, सन्त-सेवादि के लिये खर्च नहीं कर पाता। परन्तु अन्त में सब को छोड़ कर विवशतापूर्वक चल देता है। देखते-देखते काल के गाल में मनुष्य लीन हो जाता है। किसी कवि ने एक बड़ा सुन्दर भजन कहा है, जो लोगों में प्रचलित भी है, उसे यहाँ दिया जाता है, मनन कीजिये—

गजल—

ऐश के सामान सब इक दिन पड़े रह जायँगे।
यार मेरी लाश पर, रोते खड़े रह जायँगे॥ टेक॥

ये फकत अपने ही ऊपर, बात कुछ छेड़ी नहीं ।
बादशाहों के भी ये, झण्डे गड़े रह जायँगे ॥ १ ॥
जिनकी शोहरत की जहाँ में, शोर है चारों तरफ ।
उनकी ताजों में भी ये, हीरे जड़े रह जायँगे ॥ २ ॥
मालोजर घर कुछ भी तेरा, साथ जावेगा नहीं ।
ताक में रक्खे ये, सोने के कड़े रह जायँगे ॥ ३ ॥
हा ! सितम नर तन को पा, सत्संग कछु कीन्हा नहीं ।
रूप के दिल में यही अरमा भरे रह जायँगे ॥ ४ ॥

शिक्षासार—माया का सब रङ्ग एक दिन भङ्ग हो जाता है। अतः इस जीवन में सत्संग-भजन करना ही सार है।

१८—(शब्द-१०६)

भँवरे[1] उड़े बग बैठे आई ।
रैन गई दिवसो चलि जाई ॥ १ ॥
हल हल काँपे बाला जीव ।
ना जानों का करिहैं पीव ॥ २ ॥
काँचे बासन टिके न पानी ।
उड़ि गये हंस काया कुम्हिलानी ॥ ३ ॥
काग उड़ावत भुजा पिरानी ।
कहहिं कबीर यह कथा सिरानी ॥ ४ ॥

१—काले भँवरों के समान केश के कालेपन अर्थात् युवा-अवस्था चली गयी । उज्ज्वल बगुलों के समान केश के सफेदपन अर्थात् वृद्ध अवस्था आ गयी ।

विषयासक्ति ही में जवानी चली गयी और वृद्ध-अवस्था आ गयी। शिश्न-उदर भोग में पशु, अण्डज तथा उष्मज—त्रय खानि रूप रात्रि तो बीत ही जाती है। उसी पशु-भोग में तुम्हारा दिवस अर्थात् ज्ञान रूप नर-जन्म भी चला जा रहा है ॥ १ ॥ बालकवत् अज्ञानी जीव पाप-कर्मों से भयभीत होकर थर्राता और कम्पायमान् होता है। कि पता नहीं दैव हमारी क्या दशा करेगा ? ॥ २ ॥ मिट्टी के कच्चे बर्तन में जैसे जल स्थिर नहीं रह सकता, इसी प्रकार इस नाशवान् काया में जीव सदा टिक नहीं सकता। समय पूरा होने पर चेतन उड़ जाता है और शरीर मुरझा कर कान्ति-हीन हो जाता है ॥३॥ अहो ! मन-इन्द्रिय रूप कागड़ों को पंच विषय भोगरूप अशुद्ध पदार्थों में उड़ाते-उड़ाते यह नर-जन्म रूप हाथ (कल्याण-साधन करने का सहारा) जर-जर होकर नष्ट हो गया। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—एक दिन यह नर-जन्म की जीवन-कहानी समाप्त हो गयी और गति-मुक्ति भी केवल वचनों में रह गयी ॥ ४ ॥

व्याख्या—दुःख रूपी, मलिन एवं तुच्छ विषय भोगों में उन्मत्त होकर और नाना प्रपंचों में फँसकर कल्याण-साधन करने योग्य यौवन-अवस्था मनुष्य समाप्त कर देता है। यहाँ तक कि उसी विषयासक्ति में और घर-कुटुम्ब सम्हालने की चिन्ता में अत्यन्त जर-जर अवस्था आ जाती है तथा मृत्यु के निकट तक हो जाता है, तब तक भी मनुष्य की भोग-

कामना नहीं छूटती और बाह्य प्रपंचों को नहीं त्यागता। शूकर-कूकर पशु-पक्षी तथा कृमि-कीटादि इतर त्रययोंनि रूप भोग खानियों में प्राणी केवल पेट पालता है और इन्द्रियों के भोगों को भोगता है। अहो ! इन्हीं शिश्न-उदर के भोगों में फँसकर मोक्षदायी नर-जन्म भी प्राणी खो देता है। यह कितने शोक की बात है ! यह नर-जन्म विषय-भोगों को भोगने के लिये नहीं मिला है। इससे तो विवेक-वैराग्यादि सद्गुण-साधनों को धारण करके मनुष्य मोक्ष पद पा सकता है। पाप कर्मों को कर लेने के पश्चात् दैव गोसैंया कह कर शिर पटकना केवल अज्ञानता के सिवा और क्या है ? कोई दुःख आ पड़ने पर अपने कर्मों का फल न मानकर "ये दुःख हमें ईश्वर ने दिया या दैव के कोप से ये सङ्कट मुझे प्राप्त हुआ।" इत्यादि मानना केवल भूल-ही-भूल है। अतः कोई दुःख आ पड़ने पर यह सिद्धांत मनुष्य को अपने सामने स्थिर करना चाहिये "ना काहुक कोइ सुख दुख दाता। निज कृत कर्म भोग सुन भ्राता॥" मनुष्य कहीं भी चला जाय पाप-कर्म के भोगों को उसे अवश्य भोगना पड़ता है। अन्य कोई सुख-दुःख का दाता नहीं हैं, साखी—विषय सुक्ख दुख देत है, दुख दाता नहिं कोय। विषय जीत संसार में, नहिं दुख सपन्यो होय॥ भवयान॥

मिट्टी के कच्चे बर्तन में जैसे जल नहीं ठहरता, इसी प्रकार इस कच्चे साज से बनी हुई काया में जीव सदा नहीं

रहता। अज्ञानी मनुष्य को इस काया का बड़ा भरोसा है, इससे यह अचल और अनन्त सुखों को भोगना चाहता है और इसको सदा रखना चाहता है। परन्तु यह केवल भूल है। यह शरीर तो पानी के बुलबुले समान, चलती रेल की छाया के सदृश और ओस कण के तुल्य शीघ्र ही नष्ट होने वाला पदार्थ है। प्रिय बन्धु ! जिस शरीर पर तुम्हें बड़ा अभिमान है, वह शरीर अब अधिक दिन नहीं रह सकता है। फिर तो शरीर के नष्ट होते ही धन, पुत्र, घर, मित्र तथा बन्धु-बान्धओं का तुम्हारा सदा के लिए वियोग हो जायगा। अतः इन सबों का आशा-भरोसा आज ही से छोड़ कर अपने कल्याण-साधन में लग जाओ। नहीं तो बड़ा अनर्थ होगा।

श्री भर्तृहरि जी कहते हैं—छप्पय—

जौ लौं देह निरोग और जौ लौं न जरा तन।
अरु जौ लौं बलवान आयु अरु इन्द्रिन के गन॥
तौ लौं निज कल्यान करन को यत्न विचारत।
वह पण्डित वह धीर वीर जो प्रथम सम्हारत॥
फिर होत कहा जर-जर भये, जप तप संयम नहिं बनत।
भव काम उठ्यो निज भवन जब, तब क्यों कर कूपहिं खनत॥

कौए सदा विष्ठा को प्रिय मानते हैं, यहाँ मन-इन्द्रियाँ ही कौए हैं और मैथुनादि मनः कल्पित पंच विषय भोग ही विष्ठा है। यह जीव मन-इन्द्रिय रूप कागड़ों को भोग रूपी

विष्ठा में उड़ाता रहता है। तात्पर्य यह है कि मन-इन्द्रियों से मनुष्य सदा मलिन भोगों को भोगता रहता है। इसी काक-विष्ठवत् भोगों में अपने जीवन को खपा देता है। और यह जीवन-लीला एक दिन समाप्त हो जाती है। नर-जन्म मोक्ष-साधन करने के लिए मिला था। परन्तु मोक्ष-साधन करना केवल वचन में रह जाता है। विषयासक्ति वश जीव पुनः चौरासी को प्राप्त होता है।

शिक्षासार—मृत्यु को अपने शिर पर जानकर विषयासक्ति, प्रपञ्चासक्ति और देहासक्ति त्याग कर सत्संग में प्रवेश होकर शीघ्र अपने कल्याण कृत साधनों में डट जाना चाहिये। नहीं तो बड़ी खेदमय परिस्थिति आयेगी।

शब्द-चेतावनी

काह भरोस क्षणिक तन केरो ॥टेक॥
छिन छिन होत और कै और,इक छिन स्ववश न तेरो ॥१॥
घन घमंड जल बुन्द तड़ित सम, विनशत लगत न देरो ॥२॥
बाल युवा वृद्धापन में ह्वै, रोग ग्रसित दुख ढेरो ।३॥
तजि अभिलाष देह की आशा, इह छिन भजन करेरो ॥४॥

१8 —(शब्द—१०७)

खसम बिनु तेलो को बैल भयो ॥ १ ॥
बैठत नाहिं साधु की संगत।

नाधे जन्म गयो ॥ २ ॥
बहि-बहि मरहु पचहु निज स्वारथ ।
यम को दण्ड सह्यो ॥ ३ ॥
धन दारा सुत राज काज हित ।
माथे भार गह्यो ॥ ४ ॥
खसमहिं छाड़ि विषय रंग राते ।
पाप के बोज बोयो ॥ ५ ॥
झूठी मुक्ति नर आश जीवन की ।
उन्ह प्रेत को जूठ खयो ॥ ६ ॥
लख चौरासी जीव जन्तु में ।
सायर जात बह्यो ॥ ७ ॥
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो ।
उन्ह श्वान की पूँछ गह्यो ॥ ८ ॥

कल्पित कर्ता अनुपलब्धि से अथवा निज चैतन्य पारख स्वरूप-पति के परिचय बिना प्राणी तेली के बैल के समान हो गया है ॥१॥ सन्तों की संगति में नहीं बैठता । संसार-प्रपञ्च में ही आसक्त होकर जीवन नष्ट कर देता है ॥२॥ अपने लौकिक स्वार्थ हित नाना उद्यम में भ्रम-भ्रम करके मरता है और कष्टित होता है, बाम-बंचक प्रपञ्चासक्त एवं मन-इन्द्रिय कल्पना तथा गर्भवास रूप यम का बारंबार दुःख

सहता है ॥३॥ द्रव्य, स्त्री, पुत्र एवं राज-काज के लिये इसने अपने शिर पर सबका बोझा रख लिया है ॥४॥ सबका निश्चय, कथनकर्ता, सबका ज्ञाता हृदय-गुहा (गुफा) निवासी जो अपना चैतन्य स्वरूप-पति है, उसको भूलकर मनुष्य विषय के स्नेह में आसक्त हो गया। और असत्य-भाषण, हिंसा, व्यभिचारादि रूप पाप का बीज बो लिया। अथवा गर्भवास रूप पाप का बीज जो विषयासक्ति है, उसे पुनः निज अन्तःकरण रूपी खेत में बो लिया ॥ ५ ॥ हवन यज्ञ, तीर्थाटन, कर्म, धर्मादि करके कल्पित कर्ता में मिलकर मोक्ष की आशा जो किये बैठे हो, हे मनुष्यो ! यह जीवों के मोक्ष की आशा झूठी ही है। तूने उन जड़ाध्यासियों के कल्पित वाक्यों को ग्रहण कर लिया है। तात्पर्य—कर्म-धर्मादि करते हुए भी बिना स्वरूप-ज्ञान और स्वरूप-स्थिति के मोक्ष नहीं होता ॥ ६ ॥ मनुष्य, पिण्डज, अण्डज और उष्मज—इन चार राशि (खानि) रूप समुद्र में विषयासक्ति का लक्ष्य करने से सब जीव बहे जा रहे हैं ॥७॥ सद्गुरु श्रीकबीर साहेब कहते हैं—हे सन्तो, सुनो ! इन मनुष्यों ने उस कल्पना का पक्ष पकड़ा है, जिसमें बहुत-से लोग भ्रम गये ॥८॥

व्याख्या—सबके हृदय में निवास करने वाला ज्ञान मात्र, अजर, अमर, अखंड जो अपना चैतन्य पारख स्वरूप है, वही अपने आप अपना मालिक है, जब तक उस निज

चैतन्य पारख स्वरूप का यथार्थ ज्ञान सद्गुरु द्वारा नहीं प्राप्त होता, तब तक यह जीव नाना मत-पन्थ के भ्रामक वाणियों में और स्त्री, पुत्र, घर, धन तथा विषयासक्ति में तेली के बैल के समान रात-दिन नधा हुआ खानी-वाणी का चक्कर काटा करता है। घर, धन, स्त्री आदि में अधिक आसक्ति होने से उसी में रात-दिन मनुष्य लिप्त रहता है।

विवेकशील परोपकारी सन्तों की संगत में नहीं बैठता है। कहता है—"हमारे गृहस्थी का काम-काज नष्ट होता है, हमें अमुक मित्र से मिलना है, अमुक शत्रु को मारना है। अमुक स्थान पर जाना है, हमें सत्संग करने की छुट्टी ही कहाँ है? हम साधु-वैरागी तो हैं नहीं, हम तो गृहस्थ हैं, हमारा जीवन-निर्वाह तो गृहस्थी करने से ही होगा, नहीं कमायेंगे, तो क्या खायेंगे? इन सन्त महात्माओं का भी पेट हम लोगों के गृहस्थी करने से ही तो भरेगा। ये लोग भी तो हमारी आशा किये बैठे हैं। फिर हमें सत्संग करने का अवसर ही कहाँ है?" अहो! यह कितनी बड़ी अज्ञानता की बात है? यह कोई थोड़े कहता है कि रात-दिन केवल सब-के-सब सत्संग ही किया करो और गृहस्थी का काम-काज न करो। "मेरे ही गृहस्थी करने से सन्तों का भी पेट भरता है" ऐसा व्यंग-वचन कहने वाले भाई लोग वैसे ही होते हैं, कि अपने जीवन में सम्भवतः एक सन्त को भी आदर पूर्वक वे न सेवा किये होंगे। जो कभी सन्तों की

सेवा नहीं करता, वही ऐसा कहता है और जो सन्तों का सेवक है, सन्तों के अपार महत्त्व को जानता है। वह भला! भूल कर भी ऐसा कब कह सकता है? वह तो समझता है कि विवेकवान् सन्तों द्वारा जो हम गृहस्थों का अपार उपकार होता है, उसके बदले में हम लोगों की ओर से तुच्छ तन, धन, वस्त्रादि से जो उनकी सेवा होती है, वह लाखों भाग से भी कम है। क्योंकि सन्तों का दिया हुआ ज्ञान अविनाशी सुखदायी है और हम लोगों की सेवा नाशवान्[1] है।

नाच, सिनेम, तमाशा देखने, अनावश्य शहर-बाजार टलहने, प्रपंच-पंचायत करने, प्रपंच-वार्ता करने, आल्हा सुनने, सगा-सम्बन्धियों के यहाँ जाने इत्यादि के लिये मनुष्यों को समय मिल जाता है, तब गृहस्थी का कोई काम नहीं बिगड़ता, परन्तु यदि वह सन्तों के पास बैठने लगे, उनके दर्शन-पर्शन निमित्त जाने लगे, तो गृहस्थी का सब काम-काज बिगड़ने लगता है। अहो! मनुष्य कितना भूला है? अपने रक्षक से भागा-भागा फिरता है और भक्षक से लिपटा रहना चाहता है। रात-दिन संसार-प्रपंचों में नधा रहता है और इसी में जीवन खो बैठता है। मनुष्य को समझना चाहिये कि सत्संग द्वारा ही दुःखों से छुटकारा मिलता है और परम् पद की प्राप्ति होती है।

१—नाश मान तन सेवा तुम्हरी. बोध अनाशी चीजै।
लाभ अचल पद मिला तुमहि जब, समता कौन करीजै ॥भवयान।

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी ने कहा है —

सत्संगत दुर्लभ संसारा। निमिष दण्ड भर एको बारा ॥
बिन संतोष न काम नशाहीं। काम अछत सुख सपन्यो नाहीं॥

दोहा—सन्त संग अपवर्ग कर, कामी भव कर पन्थ।
　　श्रुति पुराण कवि कोविद, कहहिं सकल सद्ग्रन्थ ॥
　　एक घड़ी आधी घड़ी, आधी में पुनि आध।
　　तुलसी संगत सन्त की, हरै कोटि अपराध ॥

विश्राम सागर में लिखा है—

दोहा—सन्त मिलन को जाइये, तजि माया अभिमान।
　　ज्यों ज्यों पग आगे धरे, कोटिन यज्ञ समान ॥

अतः जीवन दुःख-रहित और उच्च बनाने के लिये विवेकी सन्तों का सत्संग अवश्य करना चाहिये।

अधिकांश मनुष्यों के जीवन का ध्येय हो जाता है केवल पेट भरना और इन्द्रियों का भोग-भोगना तथा घर, धन एवं कुटुम्ब की ममता में जीवन को समाप्त कर देना। अहो ! मनुष्य इसी में रात-दिन बह कर मरता है और हर्ष-शोक में सदैव फूलता-पचकता रहता है। सद्गुरु से ज्ञान प्राप्त कर सत्संग-साधन द्वारा अपना कल्याण करना मनुष्य बिल्कुल भूल गया है। अतः इसी कारण इसे बारम्बार गर्भवास की प्राप्ति होती है, जन्म-मरण के कष्टों को भोगता है। स्त्री, पुत्र, मित्र, सम्पत्ति, घर, जमीन तथा राज-काज—इन्हीं के

सम्हालने में मनुष्य बाजार का टट्टू बना रहता है। शिर तोड़ बोझा उठाता है। शान्तिदायी कार्य सत्संगादि एक घण्टा भी नहीं करता। इन स्त्री, पुत्रादि से विदाई के दिन का किञ्चित् भी स्मरण नहीं करता है। स्त्री-पुत्रादि की निर्ममता पूर्वक उचित सुरक्षा करते हुए मनुष्य को उस दिन के लिये प्रबन्ध कर लेना चाहिये कि जिस दिन इन धन-कुटुम्बियों को छोड़कर परलोक जाने की तैयारी करने लगेगा। उसके शरीर को लोग उत्तर-दक्षिण करके पृथ्वी पर सुला देंगे। इतने में श्वास टूट जायेगा और वह सबको त्याग कर केवल अपने शुभाशुभ कर्मों को लेकर गमन कर देगा। शरीर तो नाशवान् है ही, एक दिन मृत्यु अवश्य होगी। अतः आसक्ति नींद से आज ही चेत जाना चाहिये।

हृदय निवासी जो अपना चैतन्य स्वरूप है, वही अपने आप अपना मालिक है, वह भूल में पड़कर चाहे अपने को जन्मादिक दुःखों में सदैव डाले रहे और चाहे सत्संग सत्य-साधन द्वारा अपने को मोक्ष कर लेवे। उसके ऊपर और कोई उसका मालिक कर्ता नहीं है। उस अपने दिव्य चैतन्य पारख स्वरूप को मनुष्य भूल कर मलिन दुःख पूर्ण विषय भोगों की और अशुद्ध शरीर की आसक्ति में लीन हो रहा है। अपने आप की भूल वश मनुष्य वही कर्तव्य करता है, जिससे इसकी नर्क-यातन हो। मनुष्य को होश में आना चाहिये, पारखी सद्गुरु और सन्तों का सत्संग करके अपने स्वरूप को पहचा-

नना चाहिये और अपनी उच्चता का ध्यान करना चाहिये। अपने आपको भूलकर विषय-भोगों और कल्पित देवी-देवादि को ही श्रेष्ठ मान कर उनकी दासता करना और अपने को विषयासक्ति और कल्पना तथा तज्जनित जन्मादिक गड्ढे में डाले रहना उचित नहीं है।

तीर्थ-भ्रमण करके, व्रत-उपवास करके, नेती, धोती इत्यादि क्रिया करके, जलशयन पञ्च अग्नि तापन आदि तपस्या करके, यज्ञ-दान करके, मूर्ति पूजन करके, स्वर्ग की कल्पना करके तथा कल्पित कर्तार में मिलकर जो समझते हैं कि हमारा मोक्ष हो जायगा। यह बिल्कुल भूल है। इनमें से कुछ तो साधारण अन्तःकरण-शुद्धि अर्थ धर्म-कार्य हैं और कुछ केवल भ्रम हैं। बिना पारखी सद्गुरु सन्तों से स्वरूप बोध प्राप्त किये तथा सद्गुण युक्त उस स्वरूप में स्थिति हुए मोक्ष होना सम्भव नहीं है। केवल भूले लोगों की कल्पना ग्रहण करने से ही उपरोक्त भ्रम होता है। इसी खानी-वाणी की कल्पना में संसार के सब जीव चारखानि रूप महासमुद्र में अनादि काल से निरन्तर बहते जाते हैं। कोई बिरले विवेकी इससे पार होते हैं। कुत्ते की पूँछ पकड़ कर कोई समुद्र नहीं पार कर सकता, इसी प्रकार कल्पना और मन का आधार लेकर जो संसार से तरना चहते हैं, वे भूल में हैं। अतः सत्संग द्वारा समझ कर वास-वंचक, मन-कल्पना के फन्दों से दूर होकर स्वरूपस्थ होना चाहिये।

शिक्षासार—संसार की प्रपंचासक्ति को त्याग कर सत्संग करो, तब शान्ति मिलेगी ।

शब्द चेतावनी

कौन गुमान भजन को भूले ॥ टेक ॥

जेहि तन में तुम वास करत हो, इकदिन होइहैं धूले ॥ १ ॥
सुत नारी कोइ साथ न जइहैं, जाहि फिरत हो फूले ॥ २ ॥
ऊत्तम जनम अकारथ बीतत, मदमाया में शूले ॥ ३ ॥
कह अभिलाष मूढ़ता कारण, पुनि पुनि भव में झूले ॥ ४ ॥

२०—(कहरा—५)

राम नाम भजु राम नाम भजु ।
चेतु देखु मन माही हो ॥ १ ॥
लच्छ करोरि जोरि धन गाड़े ।
चलत डोलावत बाहीं हो ॥ २ ॥
दादा बाबा औ पर पाजा ।
जिनके यह भुइँ भाँड़े हो ॥ ३ ॥
आँधर भये हियहु की फूटी ।
तिन्ह काहे सब छाड़े हो ॥ ४ ॥
ई संसार असार को धन्धा ।
अन्तकाल कोइ नाहीं हो ॥ ५ ॥
उपजत विनशत वार न लागे ।

ज्यों बादर की छाँही हो ॥ ६ ॥
नाता गोता कुल कुटुम्ब सब।
इन्ह कर कौन बड़ाई हो ॥ ७ ॥
कहहिं कबीर यक राम भजे बिन।
बूड़ी सब चतुराई हो ॥ ८

वाच्य मात्र केवल सगुण-निर्गुण की रटन का हठ त्याग कर हृदय निवासी स्वस्वरूप रमैया राम का निरन्तर चिन्तन करो। और हे भाई सावधान होकर अपने मन में देखो ! ॥१॥ नाना कर्म करके लाखों-करोड़ों रुपयादि-धन जोड़ कर जो पृथ्वी में गाड़ रखे हो। और उसी के अभिमान वश अपना हाथ डोलाते चलते हो, यह उचित नहीं है, यह तुम्हारे साथ सदा न रहेगा, यदि यह सदा रहता तो— ॥२॥ पिता-पितामह और परपितामह, जिनकी यह पृथ्वी, बर्तन, घर, सम्पत्ति थी ॥३॥ वे सब इन सबों को क्यों छोड़ गये ? बाहर के नेत्र से भी तुम अन्धे हो और विवेक-विचार रूपी भीतर के भी नेत्र तुम्हारे फूट गये हैं। जो सब को छोड़-छोड़कर जाते देख कर भी अपने लिये मृत्यु का भय नहीं करते हो ॥४॥ हे भाई ! यह संसार तो असत्य का धन्धा है। अन्त समय (मृत्यु काल) में कोई साथ नहीं देता ॥५॥ बादल की छाया की भाँति इन सांसारिक पदार्थों को उत्पन्न-नाश होते विलम्ब नहीं लगता ॥६॥ सगा-संबंधी

एवं कुल-कुटुम्बादि, इन नाशवान् पदार्थों की भी कौन-सी श्रेष्ठता है ? ॥७॥ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—खानी-वाणी की कल्पना त्याग कर हृदय निवासी निज पारख चैतन्य स्वरूप राम की स्थिति बिना मनुष्य की सब बुद्धि-मानी डूब गयी ॥८॥

व्याख्या—नाना प्रकार की जो मानव-कृत कल्पित-कल्पनायें हैं, उनको त्याग कर पारखी सद्गुरु और सन्त-महात्माओं का सत्संग करके अपने स्वरूप का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। तत्पश्चात् सद्-साधन द्वारा मनः-कल्पित भोगों और विजाति-वासनाओं का पूर्ण त्याग कर उस स्वतः पारख स्वरूप में निरन्तर दृढ़ स्थित होना चाहिये। मुख्य यही मानव-जीवन का ध्येय है। हे मनुष्य ! मन में जाग्रत होकर देखो ! तुम्हारा जीवन-ध्येय स्वार्थ नहीं परमार्थ है, भोग नहीं मोक्ष है। क्योंकि तुम जड़-शरीर नहीं चैतन्य पारख स्वरूप हो। जो लोग नाना न्याय-अन्याय कर्म करके अधिक धन संचय करते हैं, सन्मार्ग में न खर्च करके शहस्त्र, लाख, करोड़, अरब, खरब या पद्म, शंख द्रव्य जोड़ कर पृथ्वी में गाड़ लेते हैं और उसका वे बड़ा अभिमान करते हैं, धन-मद में चूर होकर अपने हाथों को बहुत चमकाते फिरते हैं। वे ठीक नहीं करते हैं। क्योंकि उनका यह अभिमान करना उचित नहीं है। माया तो छलिया है, यह आती है और चली जाती है या माया के

रहते-रहते ही अपना जीवन समाप्त हो सकता है। भला! इस नाशवान् जीवन-धन का क्या भरोसा? "यह तन धन की कौन बड़ाई। देखत अँखिया में मटिया मिलाई॥" यदि मनुष्य के धन है, तो उसे परोपकार में, गरीब-दुखियों की सहायता में और सन्तों की सेवा में खर्च करके उसका सदुपयोग करना चाहिये। जिससे जीवन में सुयश की प्राप्ति और परलोक में अनन्त लाभ है। और अभिमान करना तो बिल्कुल व्यर्थ है। कंकर, पत्थर, मिट्टी और कागज रूप द्रव्य का किंचिन्मात्र भी महत्त्व नहीं है। जो लाख-करोड़ रुपया गाड़ रखे हो, उसको छोड़ कर हाथ डोलाते-डोलाते मर जाओगे।

मनुष्यो! चेत में आओ, तुम्हारे पिता, पर पिता और पितामह, जिनका बहुत बोलबाला था। वे पृथ्वी, घर, धन और कुटुम्बियों को छोड़ कर क्यों चले गये? क्या तुम्हारे समान उन लोगों को घर, सम्पत्ति और कुटुम्ब में मोह-ममता न थी? क्या वे इन पदार्थों को छोड़ना चाहते थे? कदापि नहीं। परन्तु काल के ऊपर तो किसी का वश नहीं है। समय पूरा होने पर न चाहते हुए भी काल के गाल में सबको जाना पड़ता है। एक-दो, दस-पचास और हजार-लाख नहीं, हम लोगों की अनन्तों पीढ़ियाँ बीत चुकीं। हम लोग अनन्तों बार जन्म लेकर मर चुके (शरीर त्याग चुके), अनेक बार हमलोग अपने पिता, पितामह और परपितामह

के भी पिता--पर पिता हो चुके हैं। स्वप्न तुल्य क्षणिक जीवन को धारण कर शीघ्र-शीघ्र जीव का गमनागमन होता रहता है। किसी कवि ने कहा है—"दिन-रात मुसाफिर जात चला।" अर्थात् रात-दिन प्राणी पथिकवत् आते-जाते रहते हैं। अहो ! ऐसे मार्ग रूप संसार में नाशवान् वस्तुओं की अहन्ता-ममता करनी कितनी भूल है ?

जो जन्मा है वह मरेगा, जो मिला है वह बिछुड़ेगा, यह बात विचारणीय है। परन्तु फिर भी मनुष्य इन बातों को गम्भीरता पूर्वक विचार कर जीवन में नहीं उतारता। इसलिये ऐसा प्रतीत होता है कि इसके भीतर के विवेक-विचार रूपी नेत्र फूट गये हैं और सब धन-कुम्टुबों को छोड़कर पूर्वज लोग चले गये और वर्तमान के लोग भी चले जा रहे हैं। ऐसा बाहरी आँखों से देखते हुए भी अपने ऊपर वही बात नहीं समझता कि हम भी एकदिन सब छोड़कर मरेंगे (परलोक जायेंगे), अतः इस अज्ञानी मनुष्य के बाहरी चर्म-चक्षु भी फूट गये हैं।

इस संसार के सब व्यवहार असार हैं। इसकी वास्तविकता का स्पष्टीकरण अन्त में होता है। मनुष्य अन्त में समझता है कि इस संसार के व्यवहार बिल्कुल असत्य हैं, सारहीन हैं, इनसबों में सुख नहीं है। बल्कि संसार के सब व्यवहार, सब सम्बन्ध, सब उपभोग, सब आनन्दोल्लास दुःख से भरे हैं। मनुष्यों को पुत्र-उत्पत्ति में बड़ा आनन्द और अह्लाद की प्राप्ति होती है, वह बड़ा उत्साह मनाता है। परन्तु वे पुत्र-उत्पत्ति

के उत्साह-दिवस शीघ्र ही समाप्त हो जाते हैं। फिर पुत्र के बीमार होने पर और उसके मर जाने पर उससे कहीं अनेकों गुणा कष्ट होता है कि जितना पुत्र-उत्पन्न में आनन्द माना गया था।

वैवाहिक उत्सव का दिन—नाच-बाजा-गायन के मनोरञ्जन। रात को दिन के समान करने वाले अनेक गैस और विजलियों की गहन पंक्तिबद्ध जगमगाहट। स्थल-स्थल पर वर-वधू के सामने नेहछू की वर्षा, पउनी और नेगहरुओं के प्रशंसक तथा आशीर्वादात्मक शब्दों का गुञ्जार। नारी-समूहों का हास्य, विनोद तथा काम-रस भरे गायन का कलरव। पण्डित एवं विद्वानों का आशीर्वाद सूचक माङ्गलिक-मन्त्रों की भरमार। वर-वधू का स्थल-स्थल पर लोकाचार, मित्रमण्डलियों और सालों का हास्य-विनोद का आनन्द। वर-वधू का आनन्द-होड़ पूर्वक पास-क्रीडा तथा रूप, सौंदर्य, माधुर्य और अङ्ग-लालित्य से शोभायमान अपनी अठारह-बीस या पचीस वर्ष की नवयौवन अवस्था में षोड़सी नवबधू का अपूर्व-प्रारम्भिक मिलान—यह सब वैवाहिक उत्सव और आनन्द के दिन केवल थोड़े समय रहते हैं। उसके पश्चात् सब प्राणी-पदार्थ जहाँ-तहाँ हो जाते हैं। न नाच-गायन के मनोरञ्जन रहते, न गैस और विजलियों की पंक्तिबद्ध जगमगाहट रहती और न कोई भी उत्साह-उल्लास और उमङ्ग ही रहता है।

भर्तृहरि जी कहते हैं—छप्पय—

चन्द्र चाँदनी रम्य रम्य वन भूमि पुहुप युत।
त्यों ही अति रमणीक मित्र मिलवो है अद्भुत॥
वनिता के मृदु बोल महा रमणीक विराजत।
मानिन मुख रमणीक दृगन आँसुन झर साजत॥
ये कहे परम् रमणीक सब सब कोऊ चित में चहत।
पर इन विनाश जब देखिये तब इनमें कछु ना रहत॥

सोरह अठारह वर्षीय कुमार अवस्था में तथा पचीस-तीस वर्षीय यौवन अवस्था में जिसका शरीर सौंदर्य, लावण्य और माधुर्य से पूर्ण सर्वाङ्ग-सुडौल और हरा-भरा देखा गया था। उसी को कुछ दिन के पश्चात् देखा जाता है, उसके शरीर में घोर रूपान्तर हो गया है। हाथ-पैर और मुख में मोटी-मोटी नसें निकल आयीं हैं। शरीर की हड्डियाँ दिखाई देती हैं, गड्ढे के समान गाल पिचक गये हैं, खोड़र की भाँति आँखें बैठ गयी हैं। दाँत टूटने लगे हैं, केश उजले हो गये हैं। छाती बैठ गई है। सारे शरीर पर झुर्रियाँ पड़ गयी हैं। शरीर के चाम ढीले पड़ गये हैं। वह कुमार और जवानी के आनन्द-रस का एक चिन्ह भी उस पर नहीं झलकता है। वह रस-हीन, कान्ति-हीन और उमंग-हीन हो गया है। फिर थोड़े ही दिनों में उसी व्यक्ति का कमर टेढ़ा हो जाता है, आँख से दीखता नहीं, कान से सुनाता नहीं।

उस पर वृद्धपन का खूब दौरदौरा आ जाता है। कुछ दिन में शक्ति-हीन, रोगिष्ट हो अपने मल-मूत्रों में सने हुए चारपाई पर पड़ा रहता है। अपने आप उसे उठ-बैठ पाना दुर्लभ हो जाता है। मल-मूत्रों से सना हुआ चारपाई में पड़ा हुआ वह वही व्यक्ति है, जो सोरह-अठारह वर्षीय कुमार-अवस्था में तथा पचीस-तीस वर्षीय यौवन-अवस्था में उछलता, कूदता था। अपने अंगों की सुन्दरता और अंगपूर्णता को निहार-निहार कर तथा अपने मुख और बालों की छवि दर्पण में देख-देख कर परम प्रसन्न और उन्मादित होता था।

"पग-पग चलत गुनत तन सूरति अहं अहं हर्षाऊ ॥"

फिर दस-पाँच दिन में मर जाने पर उसी व्यक्ति को चिता की ढेरी में रख कर दहकती अग्नि में जलाते हैं तथा पानी में फेंकते हैं या मिट्टी के गड्ढे में दबा देते हैं।

किसी नवयौवन स्त्री-पुरुष के फैसनदार रूप को दूर से देखकर अज्ञानी मनुष्यों का चित्त उधर अधिक आकर्षित हो जाता है, क्योंकि वह रूप बड़ा सुन्दर और आकर्षक लगता है। परन्तु मनुष्य जब उन युवक-युवतियों के निकट जाकर देखता है, तब उतनी सुन्दरता और आकर्षण नहीं प्रतीत होता। और यदि उन युवक-युवतियों के वस्त्राभूषणों को अलग करके उनके शरीर मात्र को देखे, तो १६ आने में १४ आने सुन्दरता और आकर्षण का अभाव मिलेगा। केवल दो आने सुन्दरता दर्शेगी। परन्तु यदि अपनी

विवेक-दृष्टि से उन युवक-युवतियों के चाम को उधेड़ कर भीतर देखे, तो उसे क्या मिलेगा ? केवल हड्डी, मांस, रक्त, मल, मूत्र, गीड़ और मज्जा इत्यादि दुर्गन्धित पदार्थ। वहाँ सुन्दरता और आकर्षण का सर्वथा अभाव दर्शेगा। बल्कि उन युवक-युवतियों के शरीरों में अपवित्रता, दुःखरूपता और भयंकरता का बोध होगा। अहो ! इन्हीं असार मांस-चाम के पुतलों पर अविद्या वशी जीव पतिंगेवत् जलते हैं।

मोतीवत् शीतल ओस-कण से पूर्ण, मन्द-सुगन्ध-स्पन्द वायु से सरस प्रातःकाल का दृश्य कितना सुहावन और शोभायमान होता है ? परन्तु तप्त सूर्य किरणों से जलता हुआ भूमिपृष्ठ और तीव्र गतिवान् वायु-बवण्डरों से दोपहर का दृश्य कितना रस-हीन अनसुहाता लगता है ? मनमोदकर कालेजी जीवन, पद-प्रतिष्ठा, मान-सम्मान, शासन-अधिकार, यौवन, धन, मित्र-मिलाप तथा सुख-संयोग—ये सदा नहीं रहते, बल्कि बहुत अल्प समय रहते हैं।

मृत्यु को हृदय से लगाये हुए ही जीवन का जन्म होता है, युवा के पश्चात् बुढ़ापा, निरोग के पश्चात् रोग, संयोग के पश्चात् वियोग, हर्ष के पश्चात् शोक तथा सुख के पश्चात् दुःख लगे ही रहते हैं। संसार के सब पदार्थों की यही दशा है। केले-प्याज के छिलके निकालते जाइये अन्त में कुछ न मिलेगा। इसी प्रकार जीवन के प्रत्येक वस्तु-प्राणियों के संयोग, सुख, सम्मान और परिस्थितियों का विचार करते

जाइये, फिर अन्त में आप के हाथ कुछ न लगेगा। इसी से श्री कबीरसाहेब कहते हैं कि संसार का सब धन्धा असार है, इसकी पूरी कसौटी उस दिन होती है, जिस दिन मनुष्यकी मृत्यु होने लगती है। उस दिन जीवनलीला का अन्तिम दृश्य समाप्त होकर पूरे जीवन का अन्त हो जाता है। फिर इस माने हुए संसार को हम भूल जाते हैं और दूसरे मानंदी कृत संसार में जन्म लेते हैं तथा अपने पूर्व-रचित शुभाशुभ कर्मों के सुख-दुःख फलों को भोगते हैं।

बादल की छाया जैसे क्षण-क्षण नष्ट होती रहती है, तैसे धन, पुत्र, स्त्री एवं शरीरादि सांसारिक पदार्थों के नाश होते विलम्ब नहीं लगता। जैसे समुद्र में फेन और झाग उठते हैं तथा नष्ट होते हैं, तैसे संसार में प्राणियों के नाना शरीरों और नाना पदार्थों की रचना होती है और नाश होता है। अतः इन सांसारिक पदार्थों का और इस शरीर का एक क्षण के लिये आशा-भरोसा करना अज्ञानता के सिवा और कुछ नहीं है। नात, गोत, कुल, कुटुम्बों का भी मनुष्य क्या अभिमान करता है? इनके मिलते-बिछुड़ते भी क्या देर है?

श्री भर्तृहरिजी वैराग्य शतक में कहते हैं—

बहुत रहत जेहि धाम तहाँ एकहि को राखत।
एक रहत जेहि ठौर तहाँ बहुतक अभिलाषत॥

फेर एक हूँ नाहिं करी तहँ राज दुराजी।
काली के संग काल रची चौपड़ की बाजी ॥
दिन रात उभय पासा लिये यहि विधि सो क्रीड़ा करत।
सब प्राणी सोवत मोह में मिलत चलत बिछुड़त मरत॥

इसलिये श्रीकबीरसाहेब कहे हैं—साखी

काल करै सो आज कर, आज करै सो अब्ब।
पल में परलय होयगी, बहुरि करोगे कब्ब ॥

विद्या, धन, बल, शासन, अधिकार, स्वामित्व, विज्ञान-शोध, कला-कौशल इत्यादि मनुष्य कुछ भी प्राप्त कर ले, परन्तु नाशवान् शरीर से भिन्न अविनाशी चैतन्य स्वतः स्वरूप के ज्ञान और उसमें स्थिति-प्राप्ति बिना उसकी सब बुद्धिमानी डूब जाती है। क्योंकि मनुष्य की बाहरी सब वस्तुयें शरीर के साथ छूट जाती हैं, एक स्वरूप-ज्ञान स्वरूप-स्थिति ही मनुष्य को अविचल मोक्ष दाता है। अतः माया का अभिमान त्याग कर मनुष्यों को सत्संग द्वारा स्वतः स्वरूप का ज्ञान प्राप्तकर सद्गुण युक्त उसमें स्थिति बनानी चाहिये।

सिक्षासार—संसार-शरीर की निःसारता और नश्वरता देखकर शीघ्र अपने कल्याण-साधन में जुट जाना चाहिये।

शब्द-चेतावनी

धरम बिन कौन तुम्हारो संग ॥ टेक ॥
धन सुत नारि साथ न जइहैं, कंचन काया होइहैं भंग ॥ १

मन अनुकूल मित्र छूटि जइहैं, मिटि जइहैं सब मन का रंग ॥ २
नात गोत कोइ काम न अइहैं, पद अधिकार छुटै सब अंग ॥ ३
कह अभिलाष साथ सब झूठा, कर्म शुभाशुभ तुम्हरो संग ॥ ४

२१—(कहरा—६)

राम नाम बिनु राम नाम बिनु ।
मिथ्या जन्म गमायो हो ॥ १ ॥
सेमर सेइ सुवा ज्यों जहड़े ।
ऊन परे पछिताई हो ॥ २ ॥
जैसे मदमी गाँठि अर्थ दै ।
घरहु कि अकिल गमाई हो ॥ ३ ॥
स्वादे वोद्र भरै धौं कैसे ।
ओसे प्यास न जाई हो ॥ ४ ॥
दर्ब हीन जैसे पुरुषारथ ।
मन ही माहि तवाई हो ॥ ५ ॥
गाँठी रतन मर्म नहिं जाने ।
पारख लीन्हा छोरी हो ॥ ६ ॥
कहहिं कबीर यह औसर बीते ।
रतन न मिलै बहोरी हो ॥ ७ ॥

हृदय-गुहा निवासी स्वतः चैतन्य पारख स्वरूप राम के ज्ञान बिना केवल राम-नाम-रटन की हठता करके हे मनुष्य !

तूने व्यर्थ ही में उत्तम नर-जन्म खो दिया। अथवा केवल राम-नाम-रटन के असारत्व को न जानने से मोक्ष-साधन करने योग्य नर-जन्म तूने अनावश्यक नष्ट कर दिया ॥ १ ॥ जैसे मिष्ट फल की आशा वश शुक पक्षी ने सुन्दर सेमर-फूल का सेवन करके खराब हुआ। अर्थात् सेमर के फल में से जब निःसार भूई उड़ी, तब वह पश्चाताप करके रह गया ॥ २ ॥ और मदिरा पीने वाला अपने पास का पैसा देकर अशुद्ध, नशीला तथा तामसी मदिरा पीकर जैसे अपने पास की बुद्धि खो दिया। तैसे स्वरूप-ज्ञान को छोड़ कर खानी-वाणी के प्रपंचों में आसक्त होकर मनुष्यों की दशा होती है ॥ ३ ॥ भला! केवल स्वाद मात्र से पेट कैसे भरेगा? कहीं ओस चाटने से भी प्यास जाती है? ॥ ४ ॥ दरिद्र मनुष्य जैसे कितना ही कार्य-कुशल हो। परन्तु द्रव्य बिना उसे पश्चाताप करके रह जाना पड़ता है। तैसे पारख ज्ञान बिना मनुष्यों की दशा है ॥ ५ ॥ रत्न रूप चैतन्य जीव के विषय-कल्पना की ग्रन्थि (आसक्ति) पड़ गयी है। परन्तु सद्गुरु बिना कोई यह भेद जानता नहीं। पारखी सद्गुरु का दिया हुआ पारखज्ञान जिस घट में प्राप्त हुआ, वह पारखज्ञान से सब जड़ासक्ति ग्रन्थि को खोल कर मुक्त हो गया ॥ ६ ॥ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—यह मानव जन्म का उत्तम समय बीत जाने पर पारख बोध द्वारा रत्न रूप स्वरूप-ज्ञान फिर नहीं मिलेगा ॥ ७ ॥

व्याख्या—स्वरूप-ज्ञान और स्वरूप-स्थिति के विवेक-

वैराग्यादि साधन आदि न प्राप्त करके केवल नाम-जप और अनेक कल्पित साधन से ही जो लोग अपना कल्याण मानते हैं, वे लोग भूले हैं। जब तक यथार्थ सद्गुरु से मिलकर स्वरूप-ज्ञान पारख-बोध नहीं प्राप्त हो जाता, तब तक अविद्या ग्रन्थि नहीं छूटती। यह समझना चाहिये कि कल्याण की प्राप्ति सद्गुरु की भक्ति, स्वरूप-ज्ञान और स्वरूप-स्थिति प्राप्त होने पर ही होती है। अतः जब सच्चे पारखी सद्गुरु मिल जाँय, तब सब कल्पनाओं का त्याग करना परम आवश्यक है।

जो लोग धन, पुत्र, स्त्री और जवानी को अपने सुख का साधन मानते हैं, वे घनघोर अन्धकार में हैं। ये कुटुम्ब और मित्रों का मेल, ये धन-भोग का संयोग, ये विद्या-पद युक्त नवयौवन शरीर बिल्कुल निःसार सेमर फूल के समान हैं। जैसे शुक-पक्षी सेमर के उत्तम सुहावन फूल को देखकर उससे अपने सुख की बड़ी आशा करता है और उसकी रक्षा करता है। परन्तु अन्त में होता क्या है? सेमर के फल में जब वह सुखरूप मधुर आहार-प्राप्ति की आशा वश अपनी चोंच मारता है, तब उसमें से मधुर स्वाद युक्त आहार न निकल कर ऊन अर्थात् भुई निकलती है। इस प्रकार संसार के सब भोग-वस्तुओं तथा शरीरादि की दशा है। इस शरीर को देखिए! वस्त्राभूषणों से सजा हुआ अज्ञानी मनुष्य को दूर से आकर्षक और सुखरूप लगता है। परन्तु वस्त्र-

आभूषणों को पृथक् कर दीजिये, विवेक से चाम को अलग कर दीजिये। फिर हाड़, मांस, मल, मूत्र और रक्त—येही इस सुन्दर-सुखरूप माने हुए शरीर में दृश्यमान होंगे। तीन ताप से सदैव तपने वाला हाड़-मांस मल-मूत्र का पुन्ज जड़-नाशवान् शरीर सेमर के फूल के समान निःसार नहीं तो क्या है? इसी प्रकार धन-कामिनी और नाना भोग भी निःसार हैं।

जो लोग मदिरा पीते हैं, वे बड़ी भूल करते हैं। एक तो पास का पैसा देते हैं। दूसरे उस अशुद्ध तामसी मदिरा को पीकर धर्म-कर्म को स्वाहा करके निज मानव-बुद्धि को भी नष्ट कर देते हैं। इसी प्रकार जो लोग काम-विषय आदि नाना मनःकल्पित भोगों में लीन रहते हैं, उनको भी यही दशा होती है। अर्थात् वे लोग धन-सम्पत्ति एवं अपने शरीर का बल-वीर्य देकर और अशुद्ध भुलावन रूप भोगों को भोग कर अपने कल्याणदायी मानव-बुद्धि को नष्ट कर देते हैं। विषय-भोग मदिरा से भी अधिक पागल बना देने वाला अनर्थकारी है। विषय-वासना का भूत जिस मनुष्य पर हरक्षण सवार रहता है, उसे लोक-परलोक, धर्म-कर्म, सन्त-गुरु, पोथी-पुराण तथा भला-बुरा कुछ भी नहीं दीखता है। वह केवल भोगों में आनन्द मानने वाला उन्मत्तों की भाँति सबकी अवहेलना करता रहता है। उसे यह क्षणभङ्गुर दुःखपूर्ण जीवन सुखरूप और सत्य भासता है, वह इस शरीर रूपी मल-मूत्रों में ही

पड़ा रहना चाहता है। अतः यह भोग मदिरा से भी अधिक बुद्धि नाशक है।

विचार करना चाहिये स्वाद मात्र से किसी का भी पेट नहीं भर सकता और ओस (शीत) के चाटने से प्यास नहीं बुझ सकती। इसी प्रकार भोगों के भोगने से कभी भी मन तृप्त नहीं हो सकता।

दृष्टान्त—श्रीरामचन्द्रजी के पूर्वज रघुकुल वंशीय राजा ययाति की कथा आती है कि उन्होंने कई सौ कोमलाङ्गी ललनाओं के साथ दस शहस्त्र वर्ष भोगों को भोगा। परन्तु भोगों से मन न भरा और वे वृद्ध हो गये। तब राजा ययाति ने अपने पुत्रों से जवानी माँगी कि कोई पुत्र हमारा बुढ़ापा लेकर अपनी जवानी हमें दे दे और मैं फिर से भोगों को भोगकर मनवांछित तृप्ति को प्राप्त करूँ। कोई पुत्र अपनी जवानी देने को स्वीकार न किया। अन्त में बड़े पुत्र ने अपनी जवानी देने को स्वीकार कर लिया। निदान पिता का बुढ़ापा लेकर बड़े पुत्र ने अपनी जवानी दे दी। फिर राजा ययाति नवीन पाये हुए जवानी से पुनः दस शहस्त्र वर्ष तक कई सौ रानियों से भोग-विलास किये, परन्तु सुख-शान्ति के अतिरिक्त अग्नि में पेट्रोल छोड़ने के समान उनकी भोगों की तृष्णा शहस्त्रों गुणा अधिक बढ़ गयी। फिर विकल होकर और भोगों से सुख की आशा त्याग कर राजा ययाति ने अपने पुत्र की जवानी लौटाकर और अपना बुढ़ापा लेकर

जङ्गल में तपस्या करने चले गये और भोगों को सर्वथा त्याग कर ब्रह्मचर्य और संयमिक जीवन से रहने लगे। फिर उन्हें कुछ दिन में शान्ति आयी।

यह दृष्टान्त कल्पित है, दस या बीस शहस्त्र वर्ष मनुष्य का जीवन मानना ही मिथ्या है। वेदों में भी लिखा है—"जीवेम शरदः शतम" अर्थात् 'मैं सौ वर्ष जीऊँ।' और एक मनुष्य की जवानी दूसरा ले ले और अपना बुढ़ापा दूसरे को दे दे, यह भी प्रत्यक्ष अनुभव से विरोधी बात है। बाँट से अन्न तौला जाता है, बाँट खाया नहीं जाता। दृष्टान्त का सब अंश नहीं लिया जाता केवल सारांश लिया जाता है।

यहाँ तात्पर्य यह लेना है कि अनेक नवयुवतियों के साथ जीवन पर्यन्त भोगों में लगे रहने पर भी मनुष्य की तृप्ति नहीं होती। बल्कि तृष्णा और दुःख अधिक बढ़ जाते हैं। स्वाद से जैसे पेट नहीं भरता और ओस चाटने से जैसे प्यास नहीं जाती, तैसे भोगों से मन सन्तुष्ट नहीं होता। इसलिये भोग-क्रिया और भोग-वासनाओं को त्याग कर स्वरूप-ज्ञान में सन्तुष्ट होना चाहिये।

कोई व्यापार करने का अच्छा ढंग जानता हो तथा अन्य और भी अनेक कार्यों के करने में निपुण हो। परन्तु पास में पैसा न होने से उसे हृदय ही में पश्चाताप करके रह जाना पड़ता है। इसी प्रकार जो शास्त्र-ज्ञान से और विद्याध्ययन के बल से शास्त्र-ज्ञान वैराग्य और सद्गुणों का

शैलीयुक्त स्पष्ट निर्णय कर देते हैं। परन्तु यथार्थ स्वरूपज्ञान और अभ्यास पूर्वक सदाचरण-संयम न होने से वे बारम्बार मन-इन्द्रियों के दास होते रहते हैं। और भोग-पास में शोकाकुल सदा पड़े रहते हैं। उनका शास्त्र-ज्ञान कुछ सहायक नहीं होता। केवल अक्षरी विद्या का ज्ञाता, शास्त्र-ज्ञानी जड़-चेतन की ग्रन्थि का यथार्थ भेद नहीं जानता। वह तो कोई पारखी ही पारख ज्ञान के बल से जड़-चेतन की ग्रन्थि को छुड़ा कर अर्थात् अपने चेतन स्वरूप को जड़ भोगों की वासनाओं और मिश्रित व्यापक भाव से मुक्त कर रहित हो जाते हैं।

मनुष्यो ! पारखी सन्त-सद्गुरु का सत्संग भक्ति करके और स्वरूप ज्ञान तथा सदाचरण प्राप्त कर कल्याण-साधन करने का यह नर-जन्म का अचूक समय है। यदि तुम निःसार भोगों में फँसकर इस अवसर में चूक जाओगे। तो फिर से स्वरूप-स्थिति (मोक्ष) रूप रत्न मिलना दुर्लभ हो जायगा। जैसे समुद्र में राई का दाना यदि छूट जाय, तो पुनः मिलना असम्भव-सा हो जाता है। इसी प्रकार नर-जन्म के कल्याण-साधन करने योग्य समय को जिसने भोगों में फँस कर बिता दिया, वह संसार रूप समुद्र में अपने स्वरूप स्थिति को खो बैठा।

शिक्षासार—विषयों से मन सन्तुष्ट नहीं हो सकता,

वाच्य ज्ञान से कल्याण नहीं होता। अतः विषय त्याग कर साधन-सम्पन्न होना चाहिये।

शब्द-चेतावनी

भजन विन मानुष जनम गयो ॥ टेक ॥

खायो पियो विषय सुख भोग्यो, पशुवत् जनम छयो ॥१॥
इन्द्रिन दल्यो न मन को मार्यो, नहिं सत्संग कयो ॥२॥
जीवन लाभ विषय सुख मान्यो, पाप को बीज बयो ॥३॥
सींग पूछ बिन दोय पग संयुत, मानुष पशू भयो ॥४॥
तदपि चतुर अभिलाष कहत निज, यह आश्चर्य ठयो ॥५॥

२२--(कहरा--६)

ऐसनि देह निरालप बौरे।
मुवल छुवै नहि कोई हो ॥ १ ॥
डण्डवाकि डोरिया तोरि लराइनि।
जो कोटिन धन होई हो ॥ २ ॥
ऊर्ध निश्वासा उपजि तरासा।
हँकराइन परिवारा हो ॥ ३ ॥
जो कोइ आवैं वेगि चलावै।
पल एक रहनि न पाई हो ॥ ४ ॥
चन्दन चीर चतुर सब लेपैं।
गरे गज मुक्ता को हारा हो ॥ ५ ॥

चौसठ गीध मुये तन लूटैं।
जम्बुकन ओद्र बिदारा हो ॥ ६ ॥
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो।
ज्ञान हीन मति हीना हो ॥ ७ ॥
यक यक दिना याहि गति सबकी।
कहा राव कहा दीना हो ॥ ८ ॥

हे पागल मनुष्य ! जिस शरीर में तू अत्यन्त आसक्त है, वह तो निरालप अर्थात् अति क्षण-भंगुर और अशुद्ध है। मर जाने पर उसे कोई छूने की इच्छा नहीं करता ॥१॥ चाहे तुम्हारे करोड़ों की सम्पदा हो। परन्तु मरने पर कमर-करधनी की लड़ियों को तोड़ लेंगे, और क्या कहें ? ॥२॥ मृत्यु काल में ऊपर को तीव्र गति से श्वास जब चलने लगा, तब मनुष्य को कष्ट और भय हुआ कि अब मैं मर जाऊँगा। अतः मोह वश देखने के लिये उसने कुटुम्बियों को बुलाया ॥३॥ परन्तु मर जाने पर जो कोई आते हैं, वे शीघ्र श्मशान-भूमि में दाह-कर्म करने के लिये ले चलने को कहते हैं। क्षण मात्र भी मृतक-शव घर में नहीं रहने पाता ॥४॥ चतुर लोग जो सुन्दर वस्त्र धारण करते थे, चन्दन का लेपन करते थे। गले में गजमुक्ता आदि रत्नों के हार पहनते थे ॥५॥ अहो ! उनके मृतक तन को चारों ओर से चील्ह-गीध नोच-नोच कर खा रहे हैं। और सियारों ने पेट फाड़ डाला है ॥६॥

सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—हे सन्तो ! सुनो, जो यथार्थ ज्ञान और बुद्धि से रहित हैं ॥७॥ चाहे कोई राजा हो और चाहे कोई रंक हो । एक-एक दिन सबकी यही दशा होती है ॥८॥

व्याख्या—जिसकी बुद्धि ठीक-ठेकाने पर न हो, उसे पागल कहते हैं । जिन्हें सद्गुरु का यथार्थ स्वरूपज्ञान नहीं प्राप्त है, वे सब मनुष्य अशुद्ध, जड़, दुःखरूप, नाशवान् काया ही को अपना रूप मानते हैं। अतः ऐसे देहाभिमानियों को साहेब ने यहाँ पागल कहा है । मोहवश लोग इस शरीर में बड़ी ममता करते हैं । परन्तु यह बड़ी भूल है । यह काया तो निरा (बिल्कुल) अल्प (थोड़ा) अर्थात् बिल्कुल थोड़े समय रहने वाला है । इस शरीर में यही महान विशेषता है कि इससे भजन-साधन करके मनुष्य अपना कल्याण (मोक्ष) प्राप्त कर सकता है । इसके अतिरिक्त इस शरीर में कोई श्रेष्ठता नहीं है । यह शरीर अत्यन्त चञ्चल, नाशवान् है ही, साथ-साथ यह अत्यन्त जड़ है, इस शरीर में चेतन का वास होने से ही यह चेतन-सा भासता है । अन्यथा यह तो मिट्टी, जल, अग्नि तथा वायु का समूह निराजड़ है । यह शरीर दुःख-रूपता में सबसे बड़ा है, संसार में ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है कि जो शरीर के समान दुःख रूप हो । सर्प, बिच्छू, शत्रु और विष को लोग बड़ा दुःख रूप मानते हैं, परन्तु यदि शरीर न हो, तो सर्प, बिच्छू, शत्रु और विष का आक्रमण

किस पर होवे ? निराधार चेतन को तो कोई स्पर्श ही नहीं कर सकता। अतः दुःख रूप शरीर का सम्बन्ध होने से ही बाहरी सब दुःखों का आक्रमण होता है। तीन ताप इसी काया में व्यापते हैं। यह शरीर फोड़ा के तुल्य है। फोड़ा को दबाने से पीड़ा होती है और रक्त-मवाद निकलते हैं। तैसे इस शरीर में जहाँ कहीं ठोकर लगता है, तो पीड़ा होती है और रक्त आदि निकलते हैं। यह शरीर दुःख रूप तो है ही, साथ-साथ यह अशुद्ध भी बड़ा है। संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो शरीर के समान अशुद्ध हो। सबसे महान अशुद्ध अर्थात् अपवित्र और घृणा करने योग्य यह शरीर ही है। यह शरीर इतना अशुद्ध है कि मर जाने पर इसको कोई छूना नहीं चाहता है। जो मित्र गाढ़ आलिङ्गन करके गला मिला कर चलते थे, जो भाई-बन्धु प्रेम के साथ पास बैठते थे, जो स्त्री हृदय से लिपट जाती थी। अहो ! वे ही लोग चेतन जीव के निकल जाने पर उस शरीर को देखकर डरते हैं, घृणा मानते हैं। यदि एक रात उस मृतक शरीर को घर में रखना हुआ, तो सबको बड़ा भय लगता है। रात भर उसकी रक्षा करने के लिये कोई शीघ्र नहीं तैयार होता है। दो-तीन मनुष्य फर्सा, कुल्हाड़ी लेकर रात भर रखाने के लिये साहस बाँधते हैं। वे लोग सोचते हैं, कहीं यह मृतक मनुष्य भूत बनकर हम लोगों को दबोच न डाले, यह कितनी अज्ञानता है ? जीते जी जो प्रेम करता था, मर जाने पर वह दुःख क्यों देगा ?

फिर वहाँ से तो चेतन निकल कर दूसरा शरीर धारण करने खानियों में गया। वहाँ तो केवल मिट्टी रूप हाड़-मांस का ढाँचा पड़ा है। वह क्या कर सकता है ?

डण्डवा कहते हैं कमर को, डोरिया का भाव करधन है और लराइन का अर्थ लड़िया है। तात्पर्य यह है कि कमर-करधन की लड़ियों को भी सम्बन्धी लोग मृतक समय में तोड़ लेंगे, चाहे करोड़ोंकी सम्पदा उसके रही हो। जो लोग पैसा-पैसा रात-दिन जोड़ते रहते हैं, माया ही को सत्य समझते हैं और विवेकियों की सेवा में, दुखियों की सहायता में तथा अन्य शुभ कर्मों में धन खर्च नहीं करते। वे बहुत भूले हैं। वे जब मरने लगेंगे, तब एक कौड़ी भी साथ में नहीं ले जायँगे। द्रव्य की ममता वश मृत्यु काल में उन्हें बड़ा कष्ट होगा। अतः उन्हें चाहिये कि वे अपने धन का सदुपयोग कर लें। देखो ! मनुष्य के मरने पर उसके शरीर पर का छल्ला-मुदरी या करधनी इत्यादि कुटुम्बी गण उतार लेते हैं। फिर भी देह के साथ कुछ रहने भी दें, तो भी जीव के साथ परलोक में सिवा उसके शुभाशुभ कर्म-वासना के अन्य क्या जाने वाला है ?

जब मनुष्य का मृत्युकाल आता है, श्री पूरणसाहेब ने त्रिजा में वहाँ का सुन्दर दृश्य खींचा है। उसे यहाँ उद्धृत किये देते हैं—"हे सन्तो ! जब चोला छूटने का समय आता है, तब उर्ध्वश्वास जीव का चलने लगा और नाड़ी छूटने लगी,

सो घबराया— 'अरे! मेरी स्त्री को बुलाओ, मेरे पुत्र को मेरे सामने लाओ, मेरे भाई-बन्धु को बुलाओ, भाई-बन्धो ! मेरी मेहरी को सम्हालो। इसकी लाज तुम्हारे को है। मेरी बेटी-बेटा तुम्हारे जिम्मे हैं। मेरा धन-दौलत सब सम्हालो। मेरा नाम मत डुबाना। दौलत खोना मत, मैं मरता हूँ। अब मेरी मेहरी का लाड़ और हठ कौन पुरावेगा ? और अब मेरी मेहरी मेरे नजर नहीं आने की।' ऐसा शोक करते-करते नाड़ी आकर्षण हुई, सो हाथ की नाड़ी कण्ठ में और पाँव की नाड़ी पेड़ू में आई। तब कण्ठ रुका तो आँख का इशारा करने लगा। फिर आँख की नाड़ी जब आकर्षण होने लगी तब तारे टूटने लगे। आँख के सामने चाँद, सूर्य, अग्नि और बिजली की-सी चमक होने लगी। और ब्रह्माण्ड में नाना प्रकार के नाद उठे। तब जीव घबराया और नाना प्रकार के अध्यास उठे, तैसी अवस्था भयी। उपरान्त सब नाड़ी हृदय-स्थान में आई सोई नाड़ी की ग्रन्थि खुली और सुषुप्ति अवस्था हुई, फिर चोला छूटा और सुषुमना नाड़ी जीव को ले उड़ी, सो जहाँ आशा वहाँ बासा पाया। अब जो कोई आते हैं, सो कहते हैं, जल्दी मसान में ले चलो। सो छिन भर भी रहने न पाया, जल्दी से ले जाय के जराय दिये।"

(त्रिजा से)

पूर्वोक्त बातों को विचार करके देखिये मोहासक्त प्राणी को मृत्युकाल में कितना कष्ट होता है ? जिस घर को उसने

अपना मुख्य घर माना था, जिस खेत, द्रव्य, बाग और पशु-पक्षी तथा मनुष्यों को अपना करके दृढ़ माना था, मोह-ममता किये था। वे सब आँख के सामने देखते-देखते विवशता पूर्वक छूटते हैं। वह समझता है, इन सबों से अब हमारा सदा के लिये बिछोह हो रहा है। हाय! ये मेरे प्यारे कुटुम्बी, प्यारी स्त्री और प्रिय धन मकान अब मुझे कभी देखने को न मिलेंगे। इस प्रकार असह मनोवेदनाओं को सहकर वह प्राण त्याग कर देता है और घर वाले माथा कूट-कूट कर रोते हैं। सुन्दरदास जी कहते हैं—

मातु तो पुकार छाती कूटि-कूटि रोवति है,
बाप हूँ कहत मेरो नन्दन कहाँ गयो।
भैया हूँ कहत आज बाँह मेरी टूरि भई,
बहिन कहत मेरो वीर दुख दै गयो॥
कामिनी कहत मेरो शीश शिरताज कहाँ,
मित्र हूँ कहत यार प्यार सो भुला गयो।
सुन्दर कहत कोऊ ताहि नहिं जानि सकै,
बोलत हुतो सो यह छिनमें कहाँ गयो॥

हे मनुष्यो! यह दशा आप लोगों पर भी आयेगी और अब शीघ्र आने वाली है। इस शरीर का कुछ विश्वास नहीं है। शीघ्र ही इसकी ममता छोड़ कर अपने अविनाशी चेतन स्वरूप में स्थित हो जाओ।

हे शरीरासक्त भाइयो ! इन सब बातों को ध्यान पूर्वक समझ लो। जीव के निकल जाने पर उस प्रेमी के मृतक शरीर को कोई एक क्षण भी रखना नहीं चाहता। जो कोई उसे देखने आते हैं, वे यही कहते हैं—'ऐ भैया ! बोलता चेतन जिससे काम था, वह तो निकल गया। अब मिट्टी पड़ी है, इसका कफन-दफन कर दो। अब मुर्दा को घर में देर तक रखना ठीक नहीं है।' अहो ! चेतन के रहने पर जो शरीर प्रिय था, चेतन के निकल जाने पर अब वही भारू हो रहा है। उसे लोग शीघ्र लेजाकर जला डालते हैं या मिट्टी में गाड़ देते तथा जल में फेंक देते हैं।

जो लोग बड़े चतुर बनते हैं, कोकशास्त्र पढ़कर चौरासी आसन पूर्वक ललना-भोग करते हैं। कहते हैं "बिन कोका के रति करे सो नर पशू समान। अर्थात् जो बिना कोक-शास्त्र के पढ़े रति करता है, वह पशु है और जो कोकशास्त्र द्वारा काम-क्रीड़ा का चौरासी आसन जान कर काम-भोग करता है, वह बड़ा बुद्धिमान है।" मैं तो कहता हूँ वह और महान पशु है, जो कोकशास्त्र के कामोत्तेजक प्रसंग और चौरासी आसन रूप घी को नारी-प्रसंग रूप अग्नि में डाल-कर शीघ्र जल मरता है।

इस प्रकार काम-क्रीड़ा में प्रवीण अपने को चतुर मानने वाले भाई जो सुन्दर-सुन्दर रेशमी या उत्तम-उत्तम मोटे-पतले, गोटे-पट्टेदार, किनारदार, चुनावदार, छापदार तथा

कालरदार आदि आकर्षक वस्त्रों को पहनते थे। चन्दन, इत्र और अन्यान्य सुगन्धित द्रव्यों का अनुलेपन करते थे। और गजमुक्ता, सोना और अनेक रत्नों के हार पहनते थे। फैसन दार बालों के अलबटें झाड़ते थे। हर क्षण अपने शरीर को फैसनदार वस्तुओं से आकर्षक बनाये रखने के प्रयत्न में लगे रहते थे। हाय ! उनके मृतक शरीर के जंगल या नदी तट इत्यादि पर पड़े रहने से (उनके शरीर को) झुण्ड-के-झुण्ड चील्ह-गीध एकत्र होकर चारों ओर से चोचों से नोच रहे हैं, अहो ! गोलकों में भरी हुई वे बड़ी-बड़ी रस भरी कमल के समान आँखें, जिससे काम-भाव पूर्वक मृगनयनियों को अवलोकते थे। वह ऊँचा वक्ष (छाती) जो सदा तान कर चलते थे। वह उज्ज्वल दन्त-पक्तियों से शोभायमान शंख सदृश चिकने और गोल-कपोल से सम्पन्न, पान के लालिमा से लालित्य अधर से सुसज्जित साँवरे-गोरे कमल के समान चन्द्र मुख। जिसको क्षण-क्षण दर्पण में देख-देख कर मोह-मुग्ध होते रहते थे। अर्थात् वस्त्रालंकारों से सम्पन्न सुन्दर कलाइयाँ, ऊँचा वक्ष, कमलवत् आँख-मुख आदि को दर्पण में निहार-निहार कर जो शरीर का अभिमान भरते थे, शरीर में अहंकार करके "वाह रे हम" अथवा "मैं देह हूँ" इत्यादि मस्ती में चूर रहते थे। अहो ! वे ही आँख, वक्ष, मुख, अधर तथा गाल इत्यादि चील्ह-गीध, कौआ एवं श्वान द्वारा नोचे जा रहे हैं। वस्त्रालंकारों तथा शुभ्र हार मण्डल

से शोभायमान् रूप-यौवन सम्पन्ना मृगनयनियों के माने हुए कमलवत् कोमल काया के मांस का (मृतक होने पर श्मशान में) चील्ह-गीध आदि आस्वादन ले रहे हैं। गम्भीर नाभि-युक्त चिकने सुन्दर पेट को सियार ने फाड़ डाला है। उसमें से आँते, मांस और मल को इधर-उधर विथेर कर यथेष्ट आहार कर रहे हैं। अहो! ऐसे निन्दनीय तुच्छ अशुद्ध काया पर जीव का इतना अभिमान? शोक! शोक!! शोक!!!

हाड़, मांस, मल, मूत्रों एवं अशुद्ध पदार्थों से भरे हुए ये नर-नारियों के शरीर महान अशौच तथा मुर्दा रूप जड़ हैं। आँख, नाक, कान आदि से गीड़ तथा अधोद्वार से मल-मूत्र और अनन्त रोम-कूपों से अशुद्ध पसीने निकलते रहते हैं। आधि-व्याधि से सन्तप्त ये नर-नारियों के शरीरों की विषयी लोगों ने व्यर्थ ही प्रशंसा की है। वास्तव में इस शरीर में न रूपत्व है न लावण्य है और न यह कोमल एवं कमल सदृश है। यह तो महा अशुद्ध भयंकर रूप, दुःखप्रद, परिणामी तथा नाशवान् है। अतएव इसका अभिमान त्याग देना ही उचित है।

चाहे कोई राजा हो और चाहे कोई रंक हो, जो यथार्थ ज्ञान और बुद्धि से हीन है। एक-एक दिन उन सबकी यही दशा होती है। तात्पर्य यह है कि अज्ञानी प्राणी बारम्बार इस मल-मांस मय काया को छोड़ते हैं और पुनः ग्रहण करते हैं। उनकी यह अवदशा तब तक नहीं छूटती जब तक वे

देहाभिमान शत्रु को मार कर अपने चैतन्य स्वरूप में दृढ़ता पूर्वक नहीं स्थित हो जाते।

जो देहाभिमानी है, उसके देह की यह दुर्दशा दिखला कर उसे देहाभिमान से मुक्त होने के लिये साहेब ने संकेत किया है। और जो देहाभिमान से रहित होकर जीवन्मुक्त हो चुका है, उसके शरीर की चाहे जो दशा हो, उसे फिर कोई हानि-लाभ नहीं रहता। क्योंकि उसने देह से अपना राग हटा लिया है।

भजन—चेतावनी

मान हमारी कहना मनुवा, मान हमारी कहना रे ॥ टेक ॥
यह संसार सराय पथिक तू, बहुत अल्प दिन रहना रे।
इनकी ममता क्या तू करता, इनसे क्या है लहना रे ॥१॥
रेल कि छाया हाट को मेला, ज्यों पानी को बहना रे।
तैसे धन जन जीवन तेरा, रहे न स्थिर रहना रे ॥२॥
ले-ले जनम अनन्तों युग से, पड़ा विविध दुख सहना रे।
अवसर आज मोक्ष साधन कर, यही जनम नर गहना रे ॥३॥
जो चूकेगा पछितायेगा, फेरि दुखों में दहना रे।
तजि माया अभिलाष भजन कर, एक दिवस है मरना रे ॥४॥

शिक्षासार—अन्त में तुम्हारा कोई साथी नहीं है, अपना सत्संग भजन करके कल्याण करो।

—:o:—

२३—(चाचर—२)

जारो जग का नेहरा, मन बौरा हो ॥ १ ॥
जामें सोग सन्ताप, समुझि मन बौरा हो ॥ २ ॥
तन धन से क्या गर्भसी, मन बौरा हो ॥ ३ ॥
भस्म कीन्ह जाके साज, समुझि मन बौरा हो ॥ ४ ॥
बिना नेव का देव घरा, मन बौरा हो ॥ ५ ॥
बिन कहगिल की ईंट, समुझि मन बौरा हो ॥ ६ ॥
कालबूत की हस्तिनी, मन बौरा हो ॥ ७ ॥
चित्र रच्यो जगदीश, समुझि मन बौरा हो ॥ ८ ॥
काम अन्ध गज वशि परे, मन बौरा हो ॥ ९ ॥
अंकुश सहियो शीश, समुझि मन बौरा हो ॥१०॥
मर्कट मूठी स्वाद की, मन बौरा हो ॥११॥
लीन्हो भुजा पसारि, समुझि मन बौरा हो ॥१२॥
छूटन की संशय परी, मन बौरा हो ॥१३॥
घर घर नाचेउ द्वार, समुझि मन बौरा हो ॥१४॥
ऊँच नीच समझेउ नहीं, मन बौरा हो ॥१५॥
घर घर खायो डाँग, समुझि मन बौरा हो ॥१६॥
ज्यों सुवना नलिनी गह्यो, मन बौरा हो ॥१७॥
ऐसो भरम विचार, समुझि मन बौरा हो ॥१८॥
पढ़े गुने क्या कीजिये, मन बौरा हो ॥१९॥

अन्त बिलैया खाय, समुझि मन बौरा हो ॥२०॥
सूने घर का पाहुना, मन बौरा हो ॥२१॥
ज्यों आवै त्यों जाय, समुझि मन बौरा हो ॥२२॥
नहाने को तीरथ घना, मन बौरा हो ॥२३॥
पुजबे को बहु देव, समुझि मन बौरा हो ॥२४॥
बिनु पानी नर बूड़हीं, मन बौरा हो ॥२५॥
तुम टेकेहु राम जहाज, समुझि मन बौरा हो ॥२६॥
कहहिं कबोर जग भर्मिया, मन बौरा हो ॥२७॥
तुम छाड़हु हरि की सेव, समुझि मन बौरा हो ॥२८॥

हे पागल मन ! संसार का मोह तेरे फँसने के लिये भयंकर जाल है ॥१॥ जिस संसारासक्ति में अनेक शोक-चिन्तायें हैं, उसे सत्संग में समझकर हे पागल मन ! जला डाल ॥२॥ हे पागल मन ! तू इस शरीर और सम्पत्ति का क्या अभिमान करता है ? ॥३॥ जिस शरीर और धन की सब सामग्री एक दिन अग्नि में राख हो जायगी। हे पागल मन ! उसे समझ के छोड़ ॥४॥ हे मन बावले ! विना नीव का यह तुम्हारा शरीर रूपी देवालय है ॥५॥ और हे पागल मन ! बिना गिलावा (गारा) के ईंट की दीवार जैसे विल्कुल निर्बल होती है, तैसे तू इस शरीर को अतिक्षण भंगुर समझकर ममता त्याग कर॥ ६ ॥ काले कागज की बनी हुई हस्तिनी को देखकर जैसे काम-मद से अन्धा हुआ हाथी उस पर चढ़-

कर बाँधा जाता है। फिर वह अपने शिर पर पीलवान का अंकुश और भाला सहता है। वैसे ही कालदूत की हस्तिनी रूपी मृगनयनी को मन रूपी संसार के मालिक ने आकर्षक-सुखदायी बना (मान) रखा है। उस मृगनयनी (प्रमदा) को देखकर कामासक्ति में मतवाला हाथी रूप उन्मत्त मनुष्य उसका गाढ़ स्पर्श करके जगदासक्ति में बाँधा जाता है। और स्त्री-सम्पर्क जनित विविध कष्टों को जीव अपने ऊपर सहता है ॥ ७, ८, ९, १० ॥ चना से भरी हुई सुराही में बन्दर हाथ डाल कर जैसे स्वाद वश मुट्ठी नहीं छोड़ता और इतने में हाथ फैलाकर कलन्दर उसे पकड़ लेता है। फिर बन्दर को उसके हाथ से छूटने का शोक होता है। (परन्तु वह शोक करना व्यर्थ है) फिर तो कलन्दर के हाथ पड़कर उसे घर-घर और द्वार-द्वार नाचना और डण्डा खाना पड़ता है। इसी प्रकार हे पागल मन ! विषय भोगों के स्वाद वश तूने स्त्री-पुत्रादि माया जाल को हाथ फैलाकर पकड़ लिया है। यद्यपि हे पागल मन ! तेरे को दुःखों से छूटने की चिन्ता होती है, तथापि तू दुःखदायी कर्तव्यों (विषयासक्ति) को नहीं छोड़ता। संसार की ममता वश अन्त में तेरे को घर-घर और द्वार-द्वार नाचना पड़ता है। सबकी चाकरी चिरउरी करनी पड़ती है। हे पागल मन ! तू आज जाति-पाँति का बड़ा अभिमान करता है। परन्तु ऊँच-नीच तूने कुछ नहीं समझा। अर्थात् अनादि-काल से तू अनेक बार पशु-पक्षी, कृमि-कीट तथा शूकर-कूकर

ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य तथा शूद्रादि सब कुछ हुआ। और पशु-आदि खानियों में डण्डा सहा। हे पागल मन ! इस बात को समझ और अभिमान त्याग कर ॥ ११, १२, १३, १४, १५, १६ ॥ जैसे लाल मिर्ची के लोभ वश नलिका यन्त्र को पकड़ कर शुक-पक्षी स्वयं फँस जाता है और मनुष्य द्वारा पिंजड़े में बन्द कर लिया जाता है। फिर मनुष्य द्वारा राम-नाम आदि वह कुछ भी पढ़ लेवे, तो उसका क्या लाभ होता है ? अवसर आने पर अन्त में तो उसे बिलार झपट कर खा ही लेती है। इसी प्रकार हे पागल मन ! विचार करके देख, तू विषय-सुख-भ्रम वश भोगासक्ति धारण कर सरीर रूप पिंजड़े में फंस गया है। बिना वैराग्य-त्याग और सदाचरण के पढ़े-गुने भी क्या होता है ? अन्त में खानी-वाणी की कल्पना रूपी बिलैया तो जीव-चूहे को खा ही जाती है। वहाँ शास्त्रज्ञान कुछ काम नहीं देता ॥ १७, १८, १९, २० ॥ सूने घर में जैसे पहुना आकर पुनः ज्यों-का-त्यों (बिना आदर-सत्कार के) लौट जाता है। तैसे हे पागल मन ! तू खानी-वाणी के नाना भोगों और कल्पनाओं में टक्टर मार-मार कर छूँछे हाथ रह जाता है, कुछ तेरी तृप्ति नहीं होती। बारम्बार जन्मा-मरा करता है। हे पागल मन ! इस बात को समझ ॥ २१, २२ ॥ हे पागल मन ! तूने स्नान निमित्त अनेकों तीर्थ और पूजने के लिये बहुत-से देवता की कल्पना कर लिया है। परन्तु सत्संग रूपी तीर्थ और स्वतः चैतन्य रूपी देव या सन्त-सद्गुरु रूपी देव

को भूल गया ॥ २३, २४ ॥ बिना विचार के मनुष्य संसार-सागर में डूब रहे हैं, हे पागल मन ! इस बात को समझ कि तूने संसार-सागर से तरने के लिये कल्पित यान का आधार लिया है। और यथार्थ सत्संग-जहाज को भूल गया ॥ २५, २६॥ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—सारा संसार इस पागल मन की कल्पना में भ्रमित है। हे बावले मन ! तू सत्संग में समझ और खानी-वाणी की कल्पना रूपी माया का संग्रह त्याग कर ॥ २७, २८ ॥

व्याख्या—स्त्री, पुत्र, मित्र, धन, घर तथा संसार के नाना पदार्थों और प्राणियों में मनुष्य मोह करता है। इस अज्ञानी मनुष्य को पतनशील संसार के क्षणिक प्रेम में आनन्द का अनुभव होता है। परन्तु यह संसार का मोह तो महाजाल है और इस मोह के कारण ही सब शोक-चिन्ताओं की उत्पत्ति होती है। गोस्वामीजीने कहा है—

मोह सकल व्याधिन कर मूला। तेहिं ते पुनि उपजै बहु शूला ॥

लोग आपत्ति ही को सम्पत्ति मानते हैं। संसार रूपी महानदी के प्रबल-प्रवाह में सब प्राणी-पदार्थ डूबते-उतराते और वेग पूर्वक बहते चले जाते हैं। उन्हीं प्राणी-पदार्थों से हम सुख की आशा करते हैं, उन्हीं का हम मोह करते हैं, उनकी ममता करके अपने पास उन्हें सदा रखना चाहते हैं। यह पागलपन ही तो है। भला ! जो संसार के प्राणी-पदार्थ स्ववश-स्थिर नहीं हैं, उनसे कौन-से सुख की आशा की जा सकती है ?

इस शरीर और सम्पत्ति का भी मनुष्य क्या अभिमान करता है ? उजेली रात्रि के समान इनका बीत जाना स्वाभाविक है। आँख, नाक, गाल, हाथ, पैर, छाती, पेट, कटि तथा नितम्ब और केश सहित यह शरीर एक दिन भस्म हो जायगा, फिर सुन्दर काया राख की ढेरी दिखेगी। और ये घर, खेत, बाग, हाथी, घोड़ा, बैल, सोना-चाँदी तथा नाना रत्नों के सहित जो तुम धन माने हो, इनके नष्ट होते भी अधिक विलम्ब क्या है ? जिसको तुम धन मानते हो वह तो कङ्कर-पत्थर है। उसका अभिमान तुम क्या करते हो ? शरीर रहे तक नैराश्यता पूर्वक केवल जीवन-निर्वाह ले लेना चाहिये और सत्संग-साधन करके अपना कल्याण करना चाहिये। अन्यथा इस संसार की कोई वस्तु प्रियकर और प्रशंसनीय नहीं है। एक तो चाहे जैसी कोई वस्तु हो, वह एक दिन अवश्य छूट जायगी। दूसरे विचार करके देखिये ! संसार की सभी वस्तुयें तुच्छ हैं। जहाँ तक पृथ्वी-मण्डल बाग, वन, पर्वत, शहर, ग्राम, सोना, चाँदी, हीरे तथा रुपयादि हैं, सब मिट्टी हैं। जहाँ तक स्त्री-पुरुष के शरीर हैं, सब हाड़-मांस, मल-मूत्र के हैं। संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो मोह युक्त ग्रहण करने योग्य हो।

बिना नीव का मन्दिर और बिना गिलावा की ईंट-भित्त के समान ही क्षण-विनाशी यह काया है। इन्द्र-धनुष के समान देखने में सुन्दर और प्रतिक्षण परिवर्तनशील

यह काया है। यह काया ओस-कण, जल-बुदबुदा, विद्युत-प्रभा और वायु के झोंके में रखे हुए दीप-ज्योति के समान ही शीघ्र नाश होने वाली है। ऐसी नाशवान् काया का तनिक भी अभिमान नहीं करना चाहिये। इस चाचर में शरीर की नश्वरता पर बिना नींव का मन्दिर और बिना गिलावा की ईंट-भित्त, ये दो उदाहरण दिये गये हैं। आगे माया में फँसने का चार उदाहरण देते हैं, पहला उदाहरण हाथी का है।

जिस जंगल में अधिक हाथी रहते हैं, हाथी फँसाने वाले वहाँ हाथी फँसाने जाते हैं। जहाँ हाथियाँ अधिक आया करती हैं, वहाँ पहले से एक बड़ा भारी गड्ढा खोद डालते हैं। जिसमें कि हाथी समा सके। उस गड्ढे के ऊपर साधारण टाटी रखकर पतले तह की मिट्टी चला देते हैं और घास-फूस उस पर डाल देते हैं। पश्चात् काले कागज की एक हथिनी बनाकर उस गड्ढे के ऊपर रखे हुए टाटी पर रख देते हैं। इस कागज की हथिनी को ही दृष्टान्त में साहेब जी ने कालबूत की हस्तिनी कहा है और सिद्धांत में स्त्री का भाव है। दूसरे समय में जब हाथी आता है, तब वह भ्रम वश उस कागज की हथिनी को सत्य हथिनी समझता है और उससे भोग करने के लिये आतुर हो जाता है। अतः वह स्पर्श हेतु उस कागज की हथिनी पर चढ़ता है और चढ़ते ही कागज की हथिनी तथा टाटी सब टूट जाती

है और वह हाथी उसी गहरे गड्ढे में गिर पड़ता है। फिर उसमें से वह स्वयं नहीं निकल सकता। चार-छः दिन उसी में पड़ा-पड़ा जब निर्बल हो जाता है। तब उसको फँसाने वाले गड्ढे की एक ओर पृथ्वी खोद कर और मार्ग बनाकर पास के सिखाये हुए हाथी से उस हाथी को बँधवा कर निकाल लेते हैं। फिर जन्म भर के लिये उस हाथी को पीलवान के हाथ में पड़कर अंकुश (गजबाँक) और भाला-डण्डा अपने ऊपर सहना पड़ता है और सवारी ढोना तथा परवश रहना पड़ता है।

यह संसार गहन-जंगल है, विषयासक्त मनुष्य उन्मत्त हाथी है। उसको फँसाने वाला मन ही वधिक है। यह मन-बधिक संसार-जङ्गल में प्रवृत्ति का गड्ढा खोदकर उस पर सुख की आशा रूपी हरी-हरी टट्टी बिछाकर स्त्री रूपी कालबूत की हस्तिनी रख देता है। संसार-जङ्गल में विचरता हुआ विषयासक्त रूप उन्मत्त हस्ती सुख की आशा रूप हरी-हरी टट्टी से सुसज्जित स्त्री रूप हस्तिनी को देखकर मोह-मुग्ध तथा कामान्ध हो जाता है। और स्त्री का गाढ़ आलिंगन करने लगता है। और उसके आलिंगन करते ही प्रवृत्ति रूप गहरे गड्ढे में गिर कर मनुष्य फँस जाता है और वह सुख-दायिनी प्रतीत होती हुई स्त्री दुःखदायिनी हो जाती है। फिर तो मन रूपी पीलवान का तीन-ताप और संसार-बंधन रूप नाना क्लेश प्रद अंकुश जीवन पर्यन्त सहता रहता है।

और पुनर्जन्म में भी विषयासक्ति जनित क्लेशों को सहता है।

दूसरा उदाहरण बन्दर का है। बन्दर के फँसाने वाले कलन्दर पतले मुख की सुराही (घड़ा) रखते हैं। उसमें चना डाल कर रख देते हैं और सुराही के आस-पास भी चना बिथेर देते हैं। बन्दर आता है और पृथ्वी पर बिथरे हुए चने को प्रथम खाता है, पुनः सुराही में रखे हुए चने को खाने के लिये उसमें हाथ डालता है और मुट्ठी में चना भर कर सुराही से निकालना चाहता है। परन्तु सुराही का मुख पतला होने से चने से भरी हुई मुट्ठी नहीं निकलती है और चना के स्वाद वश मुट्ठी खोल कर हाथ निकालता नहीं। अतः अपनी अज्ञानता वश वह स्वयं उसमें फँसा हुआ फड़-फड़ाता है। इतने में कलन्दर आकर उसे युक्ति पूर्वक पकड़ लेता है। फिर तो कलन्दर के हाथ पड़कर जीवन पर्यन्त बन्दर को द्वार-द्वार नाचना पड़ता है और डण्डा खाना पड़ता है।

विषयासक्त मनुष्य बन्दर है, और उसे फँसाने वाला मन ही कलन्दर है। स्त्री, पुत्र, घर, धन, शरीर और अनु-मान-कल्पनादि सकरी सुराही है। इसमें विषय-सुख रूप चना मन बधिक ने डाल रखा है। अर्थात् मन ने मान रखा है कि स्त्री आदि में अचल विषय-सुख मिलेगा, अतः विषया-

सक्त मनुष्य विषय-सुख को पकड़ रखा है, विषयासक्ति वश यद्यपि स्त्री-पुत्रादि के मोह में फँसकर नाना कष्ट पाता है, तथापि विषय-सुख को छोड़ना नहीं चाहता। फिर तो विषयासक्त जीव रूप बन्दर मन रूप कलन्दर के हाथ पड़ा नीच-ऊँच नाना योनियों में डण्डा खाता रहता है।

हे भूले भाइयो ! जो तुम आज जाति-पाँति का अभिमान करते हो, अपने से दूसरे को छोटा समझते हो। यह तुम्हारी बिल्कुल भूल है। भला ! अनादिकाल से इस चारों खानि के रहँट-चक्र में भ्रमते हुए तूने ऊँच-नीच का कुछ भी विचार न किया। हे अभिमानी ! तू कभी ब्राह्मण हुआ, कभी क्षत्री हुआ, कभी वैश्य हुआ और कभी तू शूद्र हुआ है। कभी तो तू चाण्डाल (डोम) और चमार हुआ है। कभी इसाई और मुसलमान हुआ है। फिर तेरे को जाति का अभिमान क्यों है ? तू तो कई बार धनी हुआ, तो कई बार निर्धनी हुआ, राजा-रंक तू सब कुछ हुआ है। कई बार तू सर्वाङ्ग सुन्दर स्वस्थ हुआ और कई बार कुरूप निर्बल लूला, लंगड़ा, काना, अन्धा, कोढ़ी और अपाहिज हो चुका है।

हे जीव ! तू अविनाशी होने से कौन-सी देह नहीं धरा और कौन-सा दुःख नहीं भोगा है ? तू कई बार स्त्री का शरीर धारण करके बच्चा उत्पन्न करने की असह वेदना सहा है। कई बार तू बैल-भैंसा होकर माघ महीने की जल-वृष्टि और झञ्झावात मय कठिन ठण्ढी की रात में माल से भरी

हुई गाड़ियों को खींचा है और ऊपर से गाड़ीवानों के डण्डे सहा है। गाय-भैंस बनकर कई बार तू अहीरों के डण्डे सहा है। गाय, भैंस, बकरा, मुरगा और मछली बन कर निर्दयी कसाइयों तथा मांसाहारियों के हाथ तू कई बार छूरी, तलवार और डण्डा, जाल आदि से मारा गया है। तू कई बार शूकर, कूकर, पशु-पक्षी, सर्प-बिच्छू और सिंह आदि का शरीर धर कर भयभीत होकर जीवन बिताते हुए अन्त में मारा गया है। तू कई बार कृमि-कीटादि होकर एक के द्वारा एक चबाया गया है। जीते जलाया गया है। तू कई बार फाँसी के तख्ते पर लटका है। अहो ! हे मोह में पागल मनुष्य ! तू कौन-सी देह नहीं धरा और तू कौन-से कष्ट नहीं सहा ? इन विषयों की आसक्ति ने, इस संसार के मजा ने और इस दुष्ट मन के धोखा ने तेरी सब अवदशा करा चुकी है। आज भी अभिमान त्यागो और इनके फन्दाओं से बच कर सद्गुरु के सत्संग से ज्ञान प्राप्त कर अपना कल्याण करो, इन दुःखों से मोक्ष लो, जिससे यह यम-यातना रूप जन्म-मरण का अन्त हो जावे।

तीसरा उदाहरण शुक-पक्षी (सुग्गा) का है (इसकी कथा क्रम संख्या १३ और शब्द ७३ वें की व्याख्या में लिख दिया गया है, वहाँ देखो) लाल मिर्ची के लोभ वश जैसे नलिका यन्त्र में फँसकर शुक-पक्षी सदा के लिये पिंजड़े में बन्द हो जाता है। तैसे विषय-सुखों के लोभवश सांसारिक प्राणी-पदार्थों

में फँसकर जन्म-मरण अथवा शरीर रूप पिजड़े में जीव सदा पड़ा रहता है।

जैसे मनुष्य द्वारा शुक-पक्षी के राम-नाम आदि पढ़ लेने पर भी (कर्म भूमि मनुष्य तन न होने से) उसका कुछ कल्याण नहीं होता। क्योंकि उसका वह भाव नहीं जानता। अवसर पाने पर अन्त में उसको बिलाई झपट कर खा लेती है। इस प्रकार विषयासक्त नर-नारी यदि बहुत कुछ पढ़ लें, तो भी उससे उनका कुछ कल्याण नहीं होता। क्योंकि सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, शौच, इन्द्रिय-मन का निग्रह और दया, शील, विवेक वैराग्यादि सदाचार-सद्गुणों के बिना शास्त्र-ज्ञान कल्याण में कुछ भी सहायक नहीं होता, बल्कि वह शास्त्र-ज्ञान ही मान-मद का कारण बनकर जीव को पतन कर देता है। अन्त में उन्हें खानी-वाणी की कल्पना-भोगासक्ति रूप बिलाई खा ही लेती है। अतः विद्या और शास्त्र-ज्ञान का भी मद त्यागकर निर्मानता पूर्वक पारखी सन्तों का सत्संग करके अपना कल्याण करना चाहिये।

साहेब ने चौथा उदाहरण 'सूने घर के पाहुन' का दिया है। जैसे शून्य घर में पहुना जाकर ज्यों-का-त्यों बिना आदर-सत्कार पाये लौट आता है। इसी प्रकार स्त्री-पुत्र, धन-घर और देवी-देव तथा स्वर्गादि की आशा करके मनुष्य जीवन खपा देता है। परन्तु खानी-वाणी के पसारा में इसे कुछ नहीं मिलता केवल धोखा-भ्रम और बन्धन मिलते हैं। यदि सांसारिक पदार्थ

दुःख-हारी होते तो जीव का दुःख अब तक कब न समाप्त हो गया होता। परन्तु संसार के पदार्थों से दुःख-निवृत्ति और सुख-प्राप्ति की केवल आशा-ही-आशा मात्र है। फल कुछ नहीं। सबसे श्रेष्ठ तीर्थ सत्संग है, कहा है—

मुद मंगल मय संत समाजू। जो जग जङ्गम तीरथ राजू॥
सत्संगत संसृति कहँ नावा। चढ़ै तो पार होय सति भावा॥
जहाँ सन्त तहँ तीरथ वासू। जहाँ राम तहँ अवध निवासू॥
सत्संगत मुद मंगल मूला। सोई फल सिधि सब साधन फूला॥
(रामायण)

पूर्वोक्त सर्वोत्तम तीर्थ-सत्सङ्ग को लोग त्यागकर स्नान करके पाप से तरने के लिये नाना तीर्थ बना लिये हैं और पूजने के लिये नाना कल्पित देवताओं की कल्पना करके मनुष्य सर्वोत्तम देव सद्गुरुदेव से विमुख होकर बिना जल के ही अज्ञान समुद्र में गोते लगा रहे हैं। जगत् की नाना भ्रमना और नाना परोक्ष कर्ता-धर्ता की कल्पना त्याग दो और जो तुम केवल राम-नाम का जहाज बना कर अज्ञान-समुद्र से तरने की हठता करते हो, तो इस हठता को भी छोड़ दो और हृदय-निवासी रमैया राम जो स्वतः चैतन्य स्वरूप है, सद्गुरु द्वारा उसका परिचय प्राप्त कर उसी में स्थिति बनाओ। राम को हृदय में खोजो, बाहर खोजने से न पाओगे।

"कहहिं कबीर खोजै असमाना।"
"हृदय बसे तेहि राम न जाना।" बीजक॥

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराज कहते हैं—

दोहा—कहत सकल घट राम मय, तो खोजत केहि काज।
तुलसी कह यह कुमति सुनि, उर आवत अतिलाज॥
अलख कहैं देखन चहैं, ऐसे परम प्रवीन।
तुलसी जग उपदेशहीं, बनि बुध अबुध मलीन॥
निज नैनन दीसत नहीं, गहे आँधरे बाँह।
कहत मोह वश तेहि अधम, परम हमारे नाँह॥
जहाँ तोष तहँ राम हैं, राम तोष नहिं भेद।
तुलसी पेखि गहत नहिं, सहत विविध विधि खेद॥सत०

सुन्दर दास जी कहते हैं—सवैया—

कोउक जात प्रयाग बनारस। कोउ गया जगन्नाथहिं धावै॥
कोउ मथुरा बदरी हरिद्वार सु। कोउ गङ्गा कुरुक्षेत्र नहावै॥
कोउक पुष्कर है पँच तीरथ। दौरिंहि दौरि जु द्वारिका आवै॥
"सुन्दर" बित्त गड़्यो घरमाँहि सु। बाहिर ढूढ़त क्यूँ करि पावै॥

अन्तर चेतना की जो वास्तविक माँग है, उस शान्ति-सुख की प्राप्ति के लिये हम बाह्य-प्रत्यक्ष विषयों में टक्कर मारते हैं। परन्तु वहाँ से जब शान्ति-सुख नहीं मिलता, तब बाह्य-परोक्ष ईश्वर, ब्रह्म, खुदा, राम, रहीम की कल्पना करके भरसक उनकी खोज करते हैं। परन्तु जब उनसे भी निराश हो जाते हैं और बाह्य प्रत्यक्ष-परोक्ष खानी-वाणी से सर्वथा विमुख होकर अन्तर अपरोक्ष स्व-स्वरूप का गहन अध्ययन करते हैं, तब जो हमें मिलना चाहिये, वह अपने आप मिल जाता है।

वास्तव में न राम-रहीम हमसे कहीं बाहर हैं और न तो सुख ही हमसे कहीं पृथक् है। अपना स्वरूप ही राम या रहीम है और बाह्य-वासनाओं को सर्वथा त्याग कर उक्त स्व-स्वरूप में ही पूर्ण सन्तुष्ट हो जाना परम् सुख है। परन्तु स्व-स्वरूप चैतन्य की भूल वश बाह्य विषय और कल्पना रूपी मृगतृष्णा में हम चक्कर काटते रहते हैं। जिसका फल यह होता है कि हमारा कभी भी कल्याण नहीं होता। अतएव बाह्य विषय-कल्पनाओं को त्याग कर हमें स्व-स्वरूप में ही सन्तुष्ट होना चाहिये। सद्गुरु श्री विशाल साहेब कहते हैं—

साखी—सबै काम को छोड़िकै, रहै आप में आप।
　　पारख पाय अनाथगत, मिटै जगत दुख पाप॥
　　सब काजन को काज यह, सब जापन को जाप।
　　सब ज्ञानन को ज्ञान यह, जेहि ते पुनः न ताप॥
　　सब बेदन को बेद यह, सब शास्त्रन को शास्त्र।
　　जेहि की रचना सब रचे, तेहि तजि सबहिं अशास्त्र॥
　　चैतन्य जीव बिन ना कछू, जहँ तक जेते मान्य।
　　लै लै याहि अधार सब, कलिपत मग भरमान्य॥
　　मुख बिन बानी न बने, बिना भये नर देह।
　　नहीं स्वयं अनुभव कोई, सबका कल्पक येह॥
　　सब रहस्य को रहस्य यह, सब धामन को धाम।
　　जेहिते मिलै स्वरूप को, वह उपाय बर काम॥
　　जग परताप कबीर का, जो पारख सिद्धान्त।

निराधार पद प्राप्ति करि, जहाँ न संसृत भ्रान्त ॥
विशालदास गुरु पद शरण, स्वस्वरूप धन प्राप्ति ।
मिल गयो अज्ञान दुख, पुनः दरिद्र न व्याप्ति ॥

(मुक्तिद्वार शान्तिशतक ११४ से १२६)

शिक्षासार—भोगों की कामना और संसार का मोह त्यागकर अपने स्वरूप-ज्ञान में निरन्तर रमण करो ।

शब्द

जग में जीवनो दिन चार ॥ टेक ॥

रूप यौवन युक्त आयुष, लसत ललिता दार ।
सुमुख सुत अनुकूल सुख, नहिं इनहिं किंचित सार ॥१॥
गृह कुटुम्ब शरीर सम्पति, मान सुख अधिकार ।
बाढ़ जल सम उभय दिश को, कौन इन इतबार ॥२॥
मोक्ष साधन करन को तोहि, मिल्यो नर तन द्वार ।
काक इव तेहि भोग लोलुप, भ्रमत कीन्हों ख्वार ॥३
जग सबन्ध शरीर वैभव, नाशवान असार ।
ह्वै विमुख अभिलाष जग से, आप में थिति सार ॥४॥
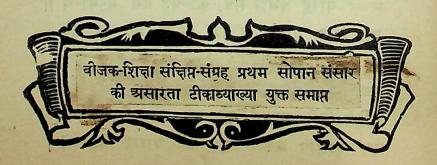
।। सोपान-फल ।।

देखा विचार कर जग असार

सब मन का मद हो गया भंग ।
छा गया विरति का विशद रंग ।।
धन यौवन नारी गृह कुटुम्बु ।
लख लिया सरज-कण विचल अम्बु ।।
अब मोह मया हो गया छार ।। देखा० ।। १ ।।

श्रोणित पुरीष त्वक् अस्ति रूप ।
क्षण-भंग, दुःख, जड़, अशुचि कूप ।।
भ्रम रूप, नहीं के तुल्य देह ।
हो गयी यथारथ दृष्टि येह ।।
मैं चेतन सत् जड़-देह-पार ।। देखा० ।। २ ।।

दुःखालय दावानल महान ।
यमसदन संसरण अशमशान ।।
जग-देह-गेह मन-भव सुताप ।
सब से विराग ले थीर आप ।।
धनि-धनि कबीर गुरु का पुकार ।। देखा० ।। ३ ।।

॥ द्वितीय-सोपान-महिमा ॥

चैतन्य अमर जड़-तत्त्व पार।

जल तेज वायु थल तत्त्व चार।
स्वाभाविक जड़ता का सकार॥
गुण धर्म शक्ति क्रिय मेलकार।
षट् भेद युक्त सृष्टी विकार॥
तजि आदि अन्त जग निरअधार॥ चैत० ॥१॥

गुण-ज्ञान, धर्म है ज्ञान, शक्ति भी-।
ज्ञान, ज्ञान ही है अकार॥
क्रिय-मेल वासना के अधार।
तजि वास क्रिया-गत निर अधार॥
यह जीव ज्ञान-ही-ज्ञान सार॥ चैत० ॥२॥

है नर-तन-प्राप्त जो जीव सार।
अधिकारी है वह मुक्ति द्वार॥
सत्संग् साधन कर हो सुपार।
सोपान दूसरे में विचार॥
जड़-चेतन की ग्रन्थी निवार॥ चैत० ॥३॥

सद्गुरवे नमः

बीजक-शिक्षा

(संक्षिप्त-संग्रह)

टीका-व्याख्या-शिक्षा युक्त

द्वितीय सोपान
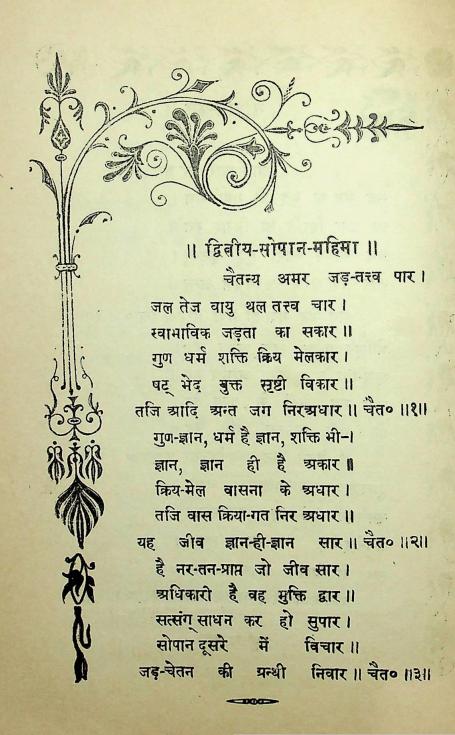
चेतन जीवों की प्रशंसा और उपदेश

२४—(रमैनी—८४)

ये जियरा तैं अपने दुखहि सम्हार ।
जेहि दुख व्यापि रहा संसार ॥ १ ॥
माया मोह बँधा सब लोई ।
अल्प लाभ मूल गौ खोई ॥ २ ॥
मोर तोर में सबै बिगुर्चा ।
जननी गर्भ बोद्र मा सूता ॥ ३ ॥
बहुतक खेल खेलैं बहु रूपा ।
जन भँवरा अस गये बहूता ॥ ४ ॥

उपजि विनशि फिर जोइनी आवै।
सुख का लेश सपने नहिं पावै ॥ ५ ॥
दुख सन्ताप कष्ट बहु पावै।
सो न मिला जो जरत बुझावै ॥ ६ ॥
मोर तोर में जरै जग सारा।
धृग स्वारथ झूठा हंकारा ॥ ७ ॥
झूठी आश रही जग लागी।
इन्हते भागि बहुरि पुनि आगी ॥ ८ ॥
जेहि हित के राखेउ सब लोई।
सो सयान बाँचा नहिं कोई ॥ ९ ॥

साखी—आपु आपु चेतै नहीं। कहौं तो रुसवा होय।
कइहिं कबीर जो आपुन जागै। निरास्ति आस्ति न होय ८४

जिन त्रयताप तथा जन्मादिक क्लेशों से अखिल विश्व के प्राणी विकल हैं। हे चैतन्य जीव! उन दुःखों से तू अपने को बचा ले ॥ १ ॥ स्त्री-पुत्र, भोग-विषयादि माया की आसक्ति वश संसार के सब लोग बँधे हैं। मनःकल्पित किञ्चित् विषय-सुख में लाभ मानकर मूल-तत्त्व (स्वरूप-स्थिति-मोक्ष) को नष्ट कर रहे हैं ॥२॥ राग-द्वेष की मानंदी में सब जीव धोखा खा कर माता के जठर-ज्वाला में बार-म्बार सो रहे हैं ॥३॥ बहुरुपिया की भाँति नाना भेष धारण

कर और नाना क्रीड़ा करके कमल फूल में मोह वश भँवरा के फँसने के समान अज्ञान और विषयासक्ति में फँसकर बहुत से अपने को चतुर मानने वाले लोग संसार-सागर में बह गये ॥४॥ उत्पन्न होकर और मर कर बारम्बार प्राणी खानियों को प्राप्त होते हैं। सुख का किञ्चिन्मात्र दर्शन स्वप्न में भी नहीं पाते ॥५॥ बल्कि त्रयताप रूप दुःख, मानसिक सन्ताप और अनेक क्लेशों में जलते रहते हैं। वे पारखी सद्गुरु या वह स्वरूप ज्ञान नहीं मिलता, जो त्रयताप से जलते हुए जीव को शान्त कर दे ॥६॥ राग-द्वेष में संसार के सारे प्राणी जल रहे हैं। हे मनुष्य ! तेरे स्वार्थपरता और मिथ्या अहंकार पर धिक्कार है ॥७॥ जगत्-जीवों को भोगों से सुखों की झूठी ही आशा लग रही है। यदि यह जीव इस भोग-विषय मोटी माया से भागता है तो पुनः पारख-हीन नाना मत-पथ और कल्पना रूपी आग में जलता है ॥८॥ जिस विषय-भोग और अनुमान कल्पना को सब लोगों ने अपना हितकारी मान रखा है। वे बुद्धि के सयाने कोई भी गर्भ-दुःख से बचे नहीं, बिना पारख ॥९॥

अपने आप यह मनुष्य सावधान होता नहीं और मैं कहता हूँ तो क्रोधित होता है। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—जो यह जीव अपने आप नहीं जाग्रत होता, तो भी असत्य सत्य नहीं हो सकता ॥८४॥

व्याख्या—'ये जियरा तैं अपने दुखहिं सम्हार'—इसका अर्थ कोई महाशय ऐसा लगाते हैं कि "सद्गुरु श्री-कबीरसाहेब ने जीव को दुःख रूपी कहा है। अतः अपना जीव भाव छोड़कर ब्रह्म भाव मानने से ही कल्याण होगा।" यह उनका अर्थ लगाना महान् अनर्गल प्रतीत होता है। श्रीकबीरसाहेब ने तो जीव को अविनाशी स्वरूप से निराधार शुद्ध और दुःख-रहित माना है। केवल अनादि-अज्ञान वश दुःखों का आवरण जीव पर है, तिस आवरण को त्याग कर जीव सदा के लिये निःसंग मोक्ष है। उन्होंने जीव की बारम्बार प्रशंसा की है, यथा—'एक जीव कित कहौं बखानी।' 'जो जानहु जिव आपना।' 'जो जानहु सो जीव।' 'जाग्रत रूपी जीव है।' इत्यादि। श्रीकबीरसाहेब ने अद्वैतात्म-ब्रह्मवाद खण्डन करके जीववाद पुष्ट किया है—"सो पद गहो जाहि ते सद्गति पार ब्रह्म सो न्यारा ॥बीजक॥" इसका विस्तार छठे सोपान में देखिये।

साहेब का कहना है, हे जीव! तुम्हारा स्वरूप दुःख-सुख द्वन्द्वों से रहित सर्वथा शुद्ध होते हुए अनादि अज्ञान वश तीन ताप से सन्तप्त शरीर रूप भट्ठी में पड़े दुःख भोग रहे हो। रहा! अनादि काल से आज तक जितने शरीर धारण कर दुःखों को तू ने भोगा, उसका तो अन्त हो गया है। अतः उन दुःखों को मिटाने के लिये तुम्हें प्रयत्न नहीं करना है। और जो वर्तमान में शरीर धारण होकर उपस्थित

है, यह प्रबल प्रारब्ध रूप होने से इसके सुख-दुःख विवशता पूर्वक भोगने हैं। परन्तु इसके भी दुःख-सुख भोग कर एक दिन आप ही समाप्त हो जाँयगे। अतः इस (प्रारब्ध) के दुःखों को मिटाने के लिये भी प्रयत्न नहीं करना है। केवल जो दुःख अभी नहीं आया है, जो इस शरीर के छूट जाने के पश्चात् भविष्य में नवीन-नवीन शरीर धारण करके दुःख भोगने हैं। उनको मिटाने का प्रयत्न करो। उन दुःखों का बीज केवल विषयासक्ति और स्वरूप की भूल है। अतः इसे मिटा कर दुःख रहित होओ। स्वरूप-ज्ञान से स्वरूप-भूल मिट जायगी और विवेक-वैराग्य से विषयासक्ति मिट जायगी। फिर विजाति वासना-रहित स्व-स्वरूप में स्थित हो जानेपर भावी दुःखों से तुम सर्वदा के लिये सर्वथा मुक्त हो जाओगे। अनेक औषधियों और वैज्ञानिक प्रयोगों से इन (मानसिक-संताप और भावी जन्मादिक) दुःखों का नाश नहीं होता। इनके मिटाने के लिये विवेक-वैराग्य और स्वरूप-ज्ञान ही साधन हैं।

मनुष्य माया के मोह में मुग्ध होकर बँधा है। स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, मित्र, धन, मकान, पृथ्वी, बाग, विद्या, पद-प्रतिष्ठा और मान-मर्यादा तथा अपने शरीर की चिकनाई-मोटाई जवानी इत्यादि देखकर इनसे सुखों की प्राप्ति समझता है और इसी कारण इन पदार्थों में रागवान् बनकर नाना विषय-बन्धनों में उलझता रहता है। परन्तु जिन मायावी पदार्थों में मनुष्य

सुखमान कर और राग करके बँध जाता है। उनमें तृण मात्र भी सुख और लाभ नहीं है। जो लोग अपना कल्याण-साधन त्याग कर संसार के प्राणी-पदार्थों में ममतालु होकर विषयासक्त रहते हैं। वे नर जन्म के फल मोक्ष-प्राप्ति को खो बैठते हैं और नाना दुःखों के भागी हो जाते हैं। चाहे इन दुःखों के बदले में वे विषय-सुख-भोग रूप लाभ मानें, परन्तु वह भी बहुत अल्प है और वह अल्प विषय-सुख-लाभ भी भ्रम मात्र है, सत्य नहीं है।

कोई कहे कि हम एक कौड़ी गुड़ खाने को देंगे परन्तु जो गुड़ खायेगा। छूरी लेकर हम उसके शरीर में सैकड़ों घाव कर देंगे यदि कोई मनुष्य स्वादासक्ति वश एक कौड़ी गुड़ खाकर उस मनुष्य द्वारा सैकड़ों घाव अपने शरीर में करवा लेवे, तो वह पागल ही माना जायगा। जैसे यह सैकड़ों घाव के असह पीड़ा के बदले एक कौड़ी गुड़ का लाभ है। तैसे इच्छा-वासना, जन्म-मरण देहोपाधि के बदले यह भ्रम मात्र किञ्चित् विषय-सुख का लाभ है। इसी विषयासक्ति वश चारों खानियों के तन-मन कृत नाना दुःखों की प्राप्ति होती है। और जिनमें आसक्त होकर मनुष्य दुःखों का भागी होता है। वे विषय-भोग और प्राणी-पदार्थ सब अन्त में छूट जाते हैं।

राग और द्वेष दुःखों की जड़ हैं, इसी के वश होकर बारम्बार अशुद्ध झिल्ली में लिपट कर माता के प्रज्वलित गर्भ में लेटना पड़ता है। गर्भवास के असह वेदना को सहना

पड़ता है। पुनः कठिन मार्ग द्वारा उत्पन्न होना पड़ता है, पुनः मरना पड़ता है और पुनः दुःख रूप योनियों में आना पड़ता है। अहो ! दुःखपूर्ण जन्म-मरण-गर्भवास के चक्र पर हमें बारम्बार घूमना पड़ता है।

तालाब के कमल-फूलों की सुगन्धी में मस्त होकर भँवरा विचरता हुआ सायंकाल-समय किसी कमल-फूल में जाकर बैठ गया और उसके सुगन्ध-रस में विभोर हो गया। सूर्य के अस्त होते ही कमल का फूल सम्पुट हो (सिकुड़) गया, उसी कमल में भँवरा बन्द हो गया। अब भँवरा सोचता है—"बिना फूल काटे इसमें से मैं जा नहीं पाउँगा और सुखदायी फूल को काटना भी ठीक नहीं है। अतः इसी कमल-फूल में रात भर आनन्द करूँ, फिर तो प्रातः काल पुष्प स्वयं खिल जायगा। तब मैं भी चल दूँगा।" इस प्रकार विचार कर भँवरा उसी में मस्त पड़ा रहा। फिर प्रातः काल क्या हुआ कि जङ्गल से हाथियों के झुण्ड आ गये और कमल-फूल को किसी हाथी ने तोड़कर मुख में रख लिया और दाँतों से पीस डाला तथा उसी में भँवरा के प्राण नाश हो गये।

अहो ! जो भँवरा कठिन-कठिन काष्टों को काट डालते हैं, वे कोमल कमल-फूल न काट सकें ? परन्तु आसक्ति ऐसी वस्तु ही है कि वह परिणाम ज्ञान से हीन निर्बल बना कर दुर्गति करा देती है।

तालाब संसार है, कमल-फूल स्त्री-पुत्र, धन-घर, शरीर और इन्द्रियों के विषयभोग हैं। प्राणी भँवरा हैं। सो ये प्राणी रूप भँवरे अनेक विषयों में मस्त होकर भावी दुःखों के आक्रमण का विचार नहीं करते और एक दिन काल के गाल में चले जाते हैं। विषयासक्ति वश बारम्बार जन्म लेते हैं, मरते हैं और गर्भवास को प्राप्त होते हैं, इस प्रकार संसार रहँटचक्र में सुख का किञ्चिन्मात्र दर्शन ये जीव स्वप्न में भी नहीं पाते। प्राणी की सुख की केवल आशा-ही-आशा मात्र रहती है। इस बात का अनुभव सबको है कि कोई सुखी नहीं है। अविद्या वश चाहे न प्रतीत हो, परन्तु दुःखसे तो सब घिरे हैं। यह मनुष्य किसी को वैरी मान कर उससे वैर-विरोध, झगडा-लड़ाई इत्यादि करके रात-दिन जलता रहता है और किसी को अपना मानकर उनमें मोह बना कर, अहं-मम मानकर, उनकी स्वार्थ-सिद्धि के लिये नाना शुभाशुभ कर्मों को करता रहता है। उनके संयोग-वियोग में फूलता-पचकता रहता है। परन्तु इस मनुष्य का (जड़ पदार्थों का) अभिमान करना मिथ्या है। इसके माने हुए धन-कुटुम्ब-शरीरादि अन्त में एक दिन शून्य हो जायेंगे।

अज्ञानी मनुष्य धन-कुटुम्ब में आसक्त होकर स्वार्थ का गुलाम हो गया है। परमार्थ का स्वप्न में भी ध्यान नहीं करता। परन्तु यह भली-भाँति सोच लेना चाहिये कि परमार्थ ही को ग्रहण करने से मनुष्य सर्व दुःखों से सर्वदा के

लिये सर्वथा मुक्त हो सकता है। परमार्थ से वञ्चित होकर इन धन-कुटुम्ब और मन-इन्द्रियों के स्वार्थ ने ही जीव को नर्कों में डुबा रखा है।

इस स्वार्थ-भोग और दुःखमय संसार बन्धनों से अज्ञानी मनुष्य स्वयं नहीं चेत करता और विवेकवान् यदि इसे चेता कर परमार्थ में लगाने का प्रयत्न करते हैं, तो यह रुष्ट होता है। इसे अमृत तुल्य ज्ञान ही विषवत् भासता है। यद्यपि जिनके मद और मोह वश यह जीव सत्संग-ज्ञान और कल्याण-साधन से हीन हो रहा है। वे स्त्री-पुत्र, धन-शरीर और स्वार्थ-भोगादि निरास्ति (असत्य) हैं, वे अस्ति (सत्य) कभी भी नहीं हो सकते। परन्तु मोह और स्वार्थकी महिमा प्रबल है। धिक्कार है मनुष्य तेरे स्वार्थ और अभिमान पर !

शिक्षासार—सब काम छोड़कर अपने आप को जन्मादिक कठिन दुःखों से बचाओ।

२५—(शब्द—३३)

हंसा प्यारे सरवर तजि कहँ जाय ॥ १ ॥
जेहि सरवर बीच मोतिया चुगत होते।
बहु विधि केलि कराय ॥ २ ॥
सूखे ताल पुरइन जल छाड़े।
कमल गये कुम्हिलाय ॥ ३ ॥

कहहिं कबीर जो अबकी बिछुरे।
बहुरि मिलो कब आय ॥ ४ ॥

हे प्रिय चेतन जीव ! शरीर त्यागकर कहाँ जाओगे ? ॥१॥ जिस शरीर-इन्द्रियों में आनन्द मानकर विषय-भोग रूपी मोती चुगते थे। और अनेक प्रकार क्रीड़ा करते थे ॥२॥ वह शरीर रूपी सरोवर सूख गया अर्थात् वृद्धावस्था आ गयी, कमल पत्तेवत् चमकती हुई सुन्दर त्वचायें रक्त-मांस रूप जल को छोड़ दिये हैं और हृदय, नेत्र तथा मुख रूप कमल सूख गये हैं ॥३॥ सन्त श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—हे जीव ! बिना कल्याण-साधन किये अबकी बार शरीर को जब छोड़ दोगे। तब पुनः नर शरीर में आकर साधु-सङ्ग और ज्ञान-साधन द्वारा अपने स्वतः पारख स्वरूप में कब स्थित होओगे ? ॥४॥

व्याख्या—बात कहाँ तक सत्य है ? यह मुझे स्वयं अनुभव नहीं है। परन्तु लोगों में यह प्रचलित है कि दूध और जल एक में मिलाकर यदि रख दिया जाय, तो हंस उसमें अपनी चोंच मार देता है और दूध पृथक् हो जाता है, जल पृथक् हो जाता है। फिर जल को त्याग कर वह दूध पी लेता है। दृष्टान्त चाहे कल्पित हो, परन्तु सिद्धांत तो सत्य ही है। सिद्धान्त यह है—

मनुष्य शरीर में आया हुआ चेतन जीव हंस के तुल्य है[1]। यह जल-दुग्धवत् जड़-चेतन, सत्य-असत्य और बन्ध-मोक्ष का निर्णय कर सकता है। जड़, असत्य और बन्धनों को त्याग कर सदैव के लिये दुःखों से छूटकर मुक्त हो सकता है। परन्तु इस कार्य में विरले-विरले ही पुरुष लगते हैं। अन्यथा अन्य सब मनुष्य कल्याण-साधन करने योग्य उत्तम नर-तन को पाकर भी पशुवत् भोगों में आसक्त होकर मोक्ष-प्राप्ति का अवसर नष्ट कर देते हैं।

जहाँ तक हंस (जीव) ने अपनी मानन्दी (ममता) टिका लिया है, वही इसका सरोवर है। स्त्री-पुत्र, घर-धन और मुख्य रूप से यह शरीर ही हंस चेतन का निवास-स्थल सरोवर है। यह नर-शरीर कल्याण-साधन करने योग्य है। इस उत्तम काया को भोगों में और संसार के ममता में फँसा कर नहीं नष्ट करना चाहिये। सद्ज्ञान-सद्साधन द्वारा कल्याण न प्राप्त कर यदि इस ममता-भोग ही में जीवन समाप्त

१.—हंस अज्ञानी है और इस दृष्टान्तानुसार उसमें केवल जड़ पदार्थ (दूध-जल) को ही पृथक् करने की शक्ति है। परन्तु मनुष्य तो ज्ञानी है और जड़-चेतन बन्धमोक्ष का विवेचक है। इसलिये हंस से मनुष्य बहुत बड़ा है। केवल एक अंग का उदाहरण घटाने के लिये हंस के समान चेतन को कहा गया है। जैसे घुँघुची से सोना तौला जाता है। वजन में बराबर है। परन्तु मूल्य में बड़ा भारी अन्तर है।

कर हंस ने शरीर त्याग किया, तो पुनः दुःख रूप शरीर-सरवर की प्राप्ति अवश्य होगी।

जिस शरीर रूपी सरवर में अविद्या वश हंस-चेतन विविध-क्रीड़ा कर रहा है, नाना प्रकार के भोगों को भोग रहा है। वह शरीर एकदिन जरजर हो जायगा। स्त्री, धन, मकान और जवानी को पाकर मनुष्य नाना विषय-वासनाओं में उन्मत्त रहता है। अपने मुख, आँख, कपोल, दन्तपंक्ति वक्ष (छाती) कलाई, उरु (जँघा) पैर तथा अँगुलियों के गुच्छों को और तने हुए चिकने चाम को देखकर बड़ा आनन्दित-अह्लादित होता है। वह मन-ही-मन बारम्बार यही सोचता है, "इस नवयौवन सम्पन्न सुन्दर शरीर से नवयुवती-स्त्री के आलिङ्गन से ही परम्-सुख मिलेगा।" अतः वह बारम्बार पाँचों ज्ञान इन्द्रियों (आँख, नाक, कान, जीभ और त्वचा) से उसी प्रमदा के विषय-रस को भोगना चाहता है और भोगता है। आँख से उसके रूप देखने में सुख मानता है। नाक से उसके सुगन्धित द्रव्यों से अनुलेपित मुख, मस्तक आदि के सूँघने में मस्त रहता है। कान से उसके विषय भरे मीठे मुस्कराहट युक्त शब्दों के सुनने में सलग्न रहता है। जिह्वा से उसके अधर-रस पान में और चर्म (शिश्न) से उसके स्पर्श में जीवन लाभ मानता है। सिनेमा, नाच तथा नर-नारियों के विविध रूप, विविध सुगन्ध, अनेकों प्रकार शब्द, भाँति-भाँति के षट्रस

और विविध स्पर्शों में मनुष्य अपने नवयौवन शरीर-इन्द्रियों से नाना भोग-क्रीड़ा कर रहा है।

अहो! वृद्धावस्था आजाने पर विषय-रस से भरा हुआ नवयौवन शरीर सूख जाता है। मांस के पुट्ठे गल जाते हैं। मांस को त्वचा छोड़ देती है और सिकुड़ जाती है, त्वचा के ऊपर से रक्त की लाली जाती रहती है, सारी त्वचा में झुर्रियाँ पड़ जाती हैं। कमल के समान प्रफुल्लित हृदय सूख जाता है। ऊँची छाती बैठ जाती है, चिकने पेट में अधिक सिकुड़न हो जाती है। सुन्दर और गोल-गोल कलाइयाँ सूख जाती हैं, उसमें मोटी-मोटी नसें निकल आती हैं। कमर टेढ़ा-हो जाता है, पैर की सुन्दरता नष्ट होकर उसमें भी मोटी-मोटी नसें दिखलाई देती हैं। चन्द्रमा के समान मुख तो सूखकर भूने भाँटा के समान हो जाता है। उज्ज्वल दन्त-पंक्ति नष्ट होकर मुख तो पक्षी के खोढ़र सदृश भासता है, गाल पिचक जाते हैं। कमल के तुल्य सुन्दर-सुन्दर आँखे महान् भद्दी हो जाती हैं, गोलकों में बैठकर धँस जाती हैं। आँख से स्पष्ट नहीं दीखता, कान से साफ नहीं सुनाई पड़ता, मुख से स्पष्ट शब्द नहीं निकलता, पैर से अधिक चल नहीं सकते, हाथ से अपना सारा काम नहीं कर सकते, शरीर के रक्त वीर्य और ओज नष्ट हो गये हैं। शिश्न इन्द्रिय मूत्र-त्याग करने के अतिरिक्त सर्वथा निकम्मी हो गयी है। जवानी अवस्था का विषय-रस भरा उमङ्ग, उछल-कूद और विविध

विषय-क्रीड़ा स्वप्न के समान हो गये हैं। विषय-भोग भोगने की इच्छा तो वही है, जैसे जवानी में थी, तृष्णा तो बल्कि नित्य ताजीतवानी ही होती चली जा रही है। परन्तु हाय! क्या किया जाय? सारा शरीर और सब इन्द्रियाँ अब शक्ति-हीन हो गयी हैं। अतएव अब तो मन मार-मार करके दिल को दमोस-दमोस करके रखना पड़ता है। हे जवानी के नशे में भूले हुए मित्रो! चेत करो! एक दिन यह दशा आप पर रखी है। या तो जवनी ही में काल खा लेगा या तो यह (वृद्धावस्था) अवश्य ही आयेगी।

अतः जवानी अवस्था ही में मनुष्य को चेत जाना चाहिये और अपने चंचल मन-इन्द्रियों को स्थिर करके तथा सत्संग द्वारा ज्ञान-साधन प्राप्त कर जीवन-उद्धार कर लेना चाहिये। मनुष्य शरीर इसीलिये मिला है कि साधन करके मन-इन्द्रियों को वश कर स्वतन्त्र, निराधार, निरालम्ब, निःसंग मोक्ष पद प्राप्त किया जाय।

जब तक हम नाना प्रकार के मनःकल्पित अनावश्यक अनर्थकारी विषय-भोगों में अपने मन-इन्द्रियों को लगाये रहेंगे। तब तक हमारी भूख कभी नहीं मिट सकती। तब तक हम सर्वथा दुःखों से रहित स्वतन्त्र, स्ववश, सन्तुष्ट, सुखी, शान्त, श्रेष्ठ और सम्पन्न नहीं हो सकते। इसका उदाहरण प्रत्यक्ष सब भोगी जीव हैं। अनादिकाल से नाना आकर्षक-सुन्दर माने हुए नर-नारियों के रूपों को देखा

गया। परन्तु रूप देखने की इच्छा नहीं बुझी। इसी प्रकार अनादि काल से षट्रस-स्वाद, नाना सुचारु गन्ध, विविध अनुकूल शब्द और कोमलांगिनियों के स्पर्श हम सब अनादि काल से अनन्तों बार भोग चुके हैं। परन्तु न चखने की इच्छा मिटी, न सूँघने से मन छका, न सुनने से और न स्पर्श करने से ही तृप्ति हुई। तात्पर्य यह है कि भोगों को भोगने से मन-इन्द्रियों में भोगों की तृष्णा बढ़ती ही जाती है। भोग से मन कभी नहीं सन्तुष्ट होता। मन-इन्द्रियाँ तभी सन्तुष्ट होंगी। जब भोगों की निःसारता दुःख रूपता इत्यादि समझकर उसे सर्वथा मन, वच और कर्म से त्याग दिया जायगा। और जब ये मन-इन्द्रियोंके भोग सर्वथा त्याग दिये जायँगे। तब सब दुःख पराधीनता और आधार कटकर चेतन दुःख रहित, स्वतन्त्र, स्ववश, सन्तुष्ट, निराधार, निरालम्ब, मोक्ष हो जायगा। जितना ही प्राणी-पदार्थों से अपनी आवश्यकता कम कर देता है उतना ही मनुष्य मुक्त होता चला जाता है। जब प्राणी-पदार्थों की आवश्यकता-आशा से सर्वथा रहित होकर मनुष्य अपने आप चेतन स्वरूप में सन्तुष्ट हो जायगा। तब यह सर्वथा स्वाधीन, मुक्त हो जायगा।

इसी कार्य को करने के लिये मनुष्य को बुद्धिमान्, विद्वान्, अनुभवी, पराक्रमी और पुरुषार्थी होना चाहिये। इसी में नर-जन्म और जवानी सफल है। अन्यथा अबकी

बार यदि इतनी योग्यता प्राप्त करके भी अपना कल्याण नहीं किया गया, तो फिर कब करेंगे ? अज्ञान-भोग में फँसे हुए मरने पर पता नहीं कब इस जीव को नर-तन मिले और नर-तन मिलने पर भी पता नहीं कब विवेक सम्पन्न पारखी सद्गुरु मिलें और इसकी कब कल्याण करने की इच्छा हो ? अतः आज ही अपने कल्याण-साधन में डट जना चाहिये।

शिक्षासार—इस कच्ची काया का कोई भरोसा नहीं है। शीघ्र अपना कल्याण-साधन कर लेना चाहिये। नहीं पीछे पश्चात्ताप करके रह जाना पड़ेगा।

भजन—चेतावनी

कहत यह तन को मेरो-मेरो ॥ टेक ॥
पग कटि उदर वक्ष कर ग्रीवा, चक्षु घ्राण आनन को तेरो ॥१
छित जल अनल वायु की रचना, मृतक होत तनको नहिं देरो ॥२
वैरी रूप लगो तन तुम्हरे, सब सन्ताप शूल को ढेरो ॥३
त्यागन योग्य अशुचि तन निश्चय, त्यागि सुखी ह्वै जाहु सवेरो
तू चेतन अभिलाष असंगी, तन अशुद्ध दुखप्रद जड़ केरो ॥५

२६—(शब्द—७६)

आपन पौ आपुहि बिसर्‍यो ॥ १ ॥
जैसे श्वान काँच मन्दिर में।
भरमित भूसि मर्‍यो ॥ २ ॥
ज्यों केहरि बपु निरखि कूप जल।

प्रतिमा देखि पर्‌यो ॥ ३ ॥
वैसे ही गज फटिक शिला में।
दशनन आनि अर्‌यो ॥ ४
मर्कट मूठि स्वाद नहिं बिहुरे।
घर घर रटत फिर्‌यो ॥ ५ ॥
कहहिं कबीर नलिनी के सुवना।
तोहिं कौने पकर्‌यो ॥ ६ ॥

अपने आप ज्ञान स्वरूप को चेतन आप ही भूल गया ॥१॥ काँच के मन्दिर में घुसा हुआ कुत्ता जैसे अपने प्रतिबिम्ब को भ्रम वश अन्य कुत्ता मानकर जाति-स्वभाव-वश भूकते ही मरा ॥२॥ जैसे सिंह कूयें के जल में अपने शरीर की प्रतिछाया देखकर और अपना वैरी मानकर, उसको मारने के लिये कुयें में कूदकर अपनी जान गँवा दिया ॥३॥ उसी प्रकार स्वच्छ स्फटिक शिला में अपना प्रतिबिम्ब देख कर और उसे अपना प्रतिद्वन्द्वी समझकर हाथी आकर दाँत अड़ाया और मूर्खता वश उससे लड़कर जान खोया ॥४॥ चना रखे हुए सकरी सुराही में स्वाद वश अपनी मुट्ठी बाँध कर बन्दर पुनः नहीं बच सका अर्थात् चना के स्वाद वश बन्दर कलन्दर द्वारा पकड़ा गया और कलन्दर के संकेतानुसार नाचता हुआ घर-घर दाँत निपोरता फिरा ॥५॥ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—हे नलिका-यन्त्र में फँसने

वाले शुक-पक्षी ! (सुग्गा) तेरे को किसने पकड़ रखा है ? अर्थात् तू ही नलिका-यन्त्र में लगी हुई लाल मिर्ची खाने के लोभ वश स्वयं अपने आप को बँधा[1] लिया ॥६॥

व्याख्या—पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु—इन चार तत्त्वों से बने हुए इस शरीर रूपी घर में जो रहने वाला है, जो तू-तू और मैं-मैं करता रहता है, जो सबका ज्ञाता ज्ञान-मात्र है। वह अनादि काल से अपने आप को भूलकर इस देह को ही अपना स्वरूप मानकर जन्मादिक पीड़ाओं में पड़ा है। अपने आप को यथार्थ जानने की विवेक-शक्ति इस नर-जन्म में प्राप्त होती है। विवेकवान् पारखी सन्तों के संग से पारख निर्णीत सद्ग्रन्थों के अध्ययन से और अपने हृदय में विवेक उत्पन्न करके—इन तीन साधनों से मनुष्य अपने आप चेतन स्वरूप को यथार्थ जान सकता है। परन्तु सन्त, सद्-ग्रन्थ और अपने सद् विवेक का दुरुपयोग करके मनुष्य पुनः-पुनः अपने चेतन स्वरूप को भूलता रहता है। इस नर-शरीर में आकर वह बारम्बार अपने को भूल कर कैसे माया में फँसता रहता है—इस बात को कई दृष्टान्त देकर आगे श्री कबीर साहेब ने समझाया है। उसे मनन कीजिये।

प्रथम दृष्टान्त आपने श्वान और काँच-मन्दिर का दिया है। अर्थात् एक काँच का मन्दिर था। एक कुत्ता उस मन्दिर में घुस गया। वह कुत्ता जब उसमें प्रवेश करता है, तब जिधर

१. फँसे आपही आपसे लोभ करके, न इनको फँसाया है कोई पकड़के। निर्मल०

ही देखता है, उधर ही स्वच्छ काँच की भित्त में अपना प्रति-विम्ब (परिछाहीं) देखने में आता है। वह अज्ञानी कुत्ता उस प्रतिविम्ब को "कोई अन्य सत्य कुत्ता है।" ऐसा जान कर भूँकने लगा। क्योंकि कुत्ते अपने स्वजातीय कुत्तों से प्रायः वैर रखते हैं। अतः उस निज प्रतिविम्ब को सत्य कुत्ता मान कर शक्ति चले तक वह भूँकता ही रहा। फिर शक्ति-हत होनेपर कुत्ता गिर पड़ा और मर गया।

इसी प्रकार नाना मत की वाणी रूपी काँच के मन्दिर में विद्वान् रूप श्वान बन्द होकर भ्रमवश अपने आप यथार्थ स्वरूप को भूल जाता है। अथवा अन्तःकरण रूप काँच के मन्दिर में चेतनजीव रूप श्वान घुस कर अपने चेतनत्व का अन्तःकरण के भासवृत्तियों में आरोपण कर और मानव कृत कल्पित वाणी द्वारा सुने हुए ईश-ब्रह्मादि की कल्पना रूप प्रतिविम्ब को सत्यमानकर अपने आपके महत्त्व को भूल गया। अथवा शरीर पञ्च विषय रूप काँच के मन्दिर में चेतनजीव रूप श्वान घुस कर अपनी स्थिरता को उन्हीं पंच भोगों में आरोपण कर अपने आप को भूल गया।

यहाँ ऐसी शंका हो सकती है कि जो प्रथम सावधान हो, फिर पीछे से कोई कारण वश भूल जाय। तो कहा जा सकता है कि अमुक-अमुक कारणों से यह अपने आपको भूल गया और जो अनादिकाल से भूला-ही-भूला है। उसको ऐसा कहते नहीं बनता कि यह इन कारणों से भूल गया है। भूल

गया क्या ? वह तो सदा से भूला ही है—इस शंका का यह समाधान है कि—

चेतनजीव अनादिकाल से अपने आप को भूला-ही-भूला है—यह तो सर्वथा सत्य है। परन्तु अपने आप चेत में आने के साधन इस नर-जन्म में प्राप्त होते हैं। किन्तु जीव अनादि स्वभाव-वश पुनः-पुनः वैसे ही भूलता रहता है, जैसे प्रथम अनादि से भूलते आया है। वह किस प्रकार भूलता रहता है? उसको श्वान, सिंह तथा हस्ती आदि अनेक प्रमाणों द्वारा यहाँ साहेब ने समझाया है। "श्वान, सिंह और हस्ती आदि के समान चेतन अपने आप को भूल गया"—यह कहने का तात्पर्य यहाँ यह है कि इन उदाहरणों के समान चेतन अपने आपको अनादिकाल से भूलता ही रहता है।

दूसरा उदाहरण आपने सिंह का दिया है। उसका कल्पित दृष्टान्त इस प्रकार है—एक वन में एक सिंह रहता था। वह पशुओं को मार कर नित्य खाता था और आवश्यकता से अधिक भी पशुओं को मार डालता था। वन के सब पशु इकट्ठा होकर आपस में विचार किये और सिंह से जाकर निवेदन किये—'हे स्वामिन्! आप इस वन के राजा हैं। हम सब आपकी प्रजा हैं। भोजन के समय आपको खोजकर पशु मारना पड़ता है और आप के आहार के अतिरिक्त अनावश्यकीय भी पशु मारे जाते हैं। जिससे एक तो आप को परिश्रम पड़ता है, दूसरे अनावश्यक आप की प्रजा अधिक नष्ट

होती है। अतः हम लोगों का विचार है कि हम सब (पशुयें) एक-एक करके नित्य आपके पास निश्चित समय पर आया करें और आप बिना परिश्रम आहार किया करें। इस प्रकार प्रतिष्ठा युक्त वचनों को सुनकर सिंह बहुत प्रसन्न हुआ और उसी दिन से अधिक पशुओं को मारना छोड़कर अपने स्थान पर पड़ा रहता था। इधर सब पशु क्रम (पारी) बाँध कर एक-एक सिंह के आहार निमित्त जाने लगे। एक दिन एक शशा (खरगोश) की पारी आयी। उसके घर वाले सब रोने लगे। शशा ने अपने कुटुम्बियों से कहा—तुम सब घबराओ मत। मैं आज सिंह को मारकर ही लौटूँगा। उसके घरवालों को यह विश्वास नहीं पड़ा। क्योंकि कहाँ महान् शक्तिशाली सिंह और कहाँ साधारण शशा ! परन्तु "आज सिंह को मारकर ही लौटूँगा" ऐसा अनुष्ठान कर शशा चल पड़ा और सिंह के निश्चित समय से अधिक विलम्ब पश्चात् उसके पास उपस्थित हुआ। इधर भूख-वश सिंह तो अत्यन्त क्रोध से रक्तवर्ण हो रहा था और शशा के पहुँचते ही सिंह ने गर्जना पूर्वक कहा—दुष्ट शशा ! तू ने इतना विलम्ब क्यों किया ? शशा गिड़गिड़ाते हुए आर्तस्वर से बोला—प्रभो ! हमारी जाति छोटे आकार-प्रकार की होती है। मैंने सोचा, यदि मैं अकेला चलूँगा, तो मेरे शरीर से सरकार की भूख नहीं जायगी। अतः मैंने अपने साथ अपने भाई को भी ले लिया। मार्ग में आही रहा था कि एक कूयें के पास एक

सिंह मिला और उसने डाट कर कहा— ऐजी ! तुम दोनों खड़े हो जाओ। तुम दोनों को मैं खाऊँगा। मैंने कहा—हम दोनों भाई अपने राजा साहेब के आहार निमित्त जा रहे हैं। अतः कृपया आप हम लोगों को मत छेड़िये। तब उस सिंह ने कहा—इस वन का राजा तो मैं हूँ। फिर दूसरा राजा यहाँ कहाँ से आ गया ? अतः या तो तुम दोनों को मैं खा जाऊँगा, या तो तुम में से एक हमारे पास रहो और एक जाकर उस राजा बने हुए सिंह को बुला लाओ। वह हमसे लड़कर युद्ध में जब जीत जाय, तब यहाँ का राज्य करे। ऐसा कहकर मेरे भाई को उसने पकड़ लिया है और आपसे युद्ध करने के लिये मेरे को सन्देशक रूप से आपको बुलाने भेजा है। हे प्रभो ! इस वादाविवाद और झंझट में मुझे विलम्ब हो गया। अब मैं आपके समक्ष उपस्थित हूँ। प्रसन्नता पूर्वक मेरे को खा लीजिये। परन्तु हे प्रभो ! राजा का धर्म तो यही है कि प्रथम शत्रु को परास्त करे। फिर दूसरा कार्य करे।

इतना वचन सुनकर अभिमान और क्रोध से जलजलाते हुए सिंह ने शशा से कहा—अच्छा, चल ! मेरे को उस वैरी को दिखा। शशा ने कहा—सरकार ! जहाँ वह रहता है, वह स्थान यहाँ से दूर है। अतः आप के साथ आप के समान शीघ्रता पूर्वक मैं नहीं चल पाऊँगा। अतः अपनी पीठ पर आप मुझे बिठला लीजिये, तो मार्ग शीघ्र समाप्त होगा। इतना सुनकर सिंह ने उसको अपनी पीठ पर बैठा कर दहा-

इते हुए चल दिया। शशा ने उस सिंह को एक कूयें के निकट ले गया। जिसमें स्वच्छ जल भरा हुआ था। शशा ने कहा—सरकार ! आप का शत्रु (सिंह) इसी कूयें में रहता है। कूयें के पास चलिये, मैं दिखाऊँ। जब सिंह जाकर कूयें में झाँका (देखा) तो उसकी परिछाहीं उसमें दिखाई पड़ी और सिंह के गर्दन पर बैठे हुए शशा की परिछाहीं सिंह की परिछाहीं से दबी हुई दीख पड़ी। क्योंकि परिछाहीं उल्टी ही पड़ती है। सिंह को निश्चय हो गया कि हमारे ही समान सिंह इस शशा के भाई को दबाकर कूयें में खड़ा है। अतः उसने क्रोधातुर होकर घोर गर्जना किया। उसकी गर्जना का शब्द कूयें में भर कर प्रतिध्वनि हुई, जिससे उसे यह प्रतीत हुआ कि कूयें में रहने वाले सिंह ने भी गर्जना की है। अतः वैरी को मारने के लिये सिंह कूयें में कूद पड़ा और सिंह के कूदते समय शशा चतुरता पूर्वक सिंह की पीठ से पृथ्वी पर कूद पड़ा। उधर कूयें के गहरे जल में डूब कर मूर्खता पूर्वक सिंह ने अपने प्राणों को खो बैठा और इधर प्रसन्नता पूर्वक यह सन्देश शशा ने अपने घर वालों और सब पशुओं से जाकर कहा।

मनुष्य की भाँति शशा सिंहादि पशुयें बात-व्यवहार नहीं कर सकते। अतः सिद्धांत की पुष्टि अर्थ ही इस शशा-सिंह के दृष्टान्त की कल्पना की गयी है। सिद्धांत यह है

कि अपने से पृथक् विषय भोग कर्तादि की कल्पना करके यह सिंहवत् जीव भूलता रहता है।

पूर्वोक्त प्रकार से ही तीसरा उदाहरण हाथी का है। जो इस प्रकार है—एक वन में एक मोटा-ताजा बड़ा मस्त हाथी रहता था। उसके मांस को देख कर एक सियार और एक लोमड़ी—दोनों के मुख में पानी भर आया और वे दोनों सोचने लगे कि इसका मांस कैसे खाने को मिले ? निदान एक युक्ति सोचकर दोनों विनम्र भाव से जाकर हाथी का नमस्कार किये और उससे कहे—प्रभो ! आप इस वन के राजा बनाने योग्य हैं। अतः हम सब आप को राजा बनाना चाहते हैं। इतना वचन सुनकर हाथी प्रसन्नता में फूलता हुआ कहा—तो क्या चाहिये, हमारे योग्य जो कार्य हो, सो कहिये। उन दोनों ने कहा—प्रभो ! यहाँ के पर्वत में एक आप ही के समान मस्त हाथी रहता है। यह नीति है कि अपने राज्य में अपना प्रतिद्वन्द्वी नहीं रहने देना चाहिये। अतः कृपया आप उससे युद्ध करके उसे परास्त कर दें, तब आप की राजगद्दी हो। हाथी अभिमान में मस्त होकर चला। सियार और लोमड़ी दोनों ने हाथी को लाकर एक स्फटिक शिला के पर्वत का संकेत करके कहा—इसी में आप का शत्रु रहता है। उन्मत्त हाथी जब स्फटिक शिला के पास गया, तो उस काँचवत् स्फटिक शिला में अपना प्रतिविम्ब दिखाई पड़ा। इसने उस प्रति-

विम्ब ही को दूसरा हाथी मानकर घोर गर्जन किया। फिर तो इसके शब्द की प्रतिध्वनि होकर इसे भी सुनाई पड़ी। अब इसे भली भाँति निश्चय हो गया कि यही हमारा वैरी है और बिना सोचे-विचारे उस प्रतिविम्ब से लड़ने लगा और पत्थर में दन्त-मस्तक मार-मार कर अन्त में प्राण खो दिया। फिर तो सियार-लोमड़ी का महीनों का भोजन हो गया।

इसी प्रकार यह चेतन देहाभिमान वश विषयों में टक्कर मार-मार कर जड़ाध्यासी हो रहा है।

चौथा उदाहरण बन्दर का है, जो स्वाद वश मुट्ठी न खोलने से सुराही में हाथ फँसाकर कलन्दर द्वारा पकड़ा गया। इसी प्रकार अपने को भूलकर चेतन मोह वश अपने आप ही विषयों को ग्रहण कर पराधीन शरीर रूप कारावास में बन्द है। (इसका उदाहरण क्रम संख्या २३ चाचर २ के 'मर्कट मूठी स्वाद की मन बौरा हो।' इसकी व्याख्या में देखिये।)

पाँचवाँ उदाहरण शुक-पक्षी का है, जो लाल मिर्ची खाने के लोभ वश आप ही नलिका-यन्त्र में भ्रम वश बँध गया और पराधीन हो पिंजड़े रूप कारावास में पड़ा। इसी प्रकार चेतन मनुष्य विषयों के मोह में पड़कर बँध कर शरीर रूपी पिंजड़े में पड़ा है। (इसका उदाहरण क्रम संख्या १३ और शब्द ७३ की अन्तिम व्याख्या में देखिये।)

श्वान को काँच-मन्दिर में, सिंह को कूयें में, हाथी को स्फटिक शिला में, बन्दर को सुराही में तथा शुक-पक्षी को नलिका-यन्त्र में किसी ने विवशता पूर्वक (जबरदस्ती) नहीं फँसाया है। वे सब अपने मद-अभिमान वश और मान-प्रतिष्ठा तथा सुखों की कामना करके प्रसन्नता पूर्वक स्वयं अपनी जान नष्ट किये, अथवा बाँधे गये। इसी प्रकार यह चेतन मनुष्य विषयों के लोभ वश प्रसन्नता पूर्वक संसार में फँस कर जन्मादिक पीड़ाओं को प्राप्त होता है।

शिक्षासार—मोह और भोगासक्ति वश मनुष्य स्वयं बन्धनों में बँधा है। अतः उसे जाग्रत होकर अपना उद्धार करना चाहिये।

२८—(शब्द—७६)

कहहु हो अम्मर कासों लागा।
चेतन हारा चेत सुभागा ॥ १ ॥
अम्मर मध्ये दीसे तारा।
यक चेता यक चेतावन हारा ॥ २ ॥
जो खोजो सो उहवाँ नाहीं।
सो तो आहि अमर पद माँहीं ॥ ३ ॥
कहहिं कबीर पद बूझै सोई।
मुख हृदया जाके एकै होई ॥ ४ ॥

हे अविनाशी चेतन ! कहो भला, तू किसमें मोहित हुआ है? तू तो ज्ञान मात्र है, नर-शरीर धारी हे सुन्दर भाग्यवाला चेतन ! तू सावधान हो जा ॥ १ ॥ जैसे आकाश के मध्य में असंख्य तारायें दिखाई देते हैं। तैसे हे अविनाशी चेतन ! तेरे ही मन के बीच में स्त्री-पुत्रादि खानी और देवी-देवादि वाणी जाल की कल्पना रूप अनेक तारायें प्रतीत हो रहे हैं। ज्ञान प्राप्त करने वाला एक शिष्य है और ज्ञान देने वाला एक गुरु है ॥ २ ॥ जिस सुख को खानी-वाणी में खोजते हो, वह तो वहाँ है नहीं। उस सुख की कल्पना तो हे अविनाशी जीव ! तेरे मन में है ॥ ३ ॥ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—यह धोखा तो वही समझेगा, जिसके मुख और हृदय में एक सत्य ही समा गया है। अथवा अपने अमृत स्वरूप का बोध वही प्राप्त करेगा कि जो मुख से सत्य निर्णय जैसे कहता है, तैसे ही हृदय में धारण करता है ॥ ४ ॥

व्याख्या—मनुष्य, पशु, अण्डज, उष्मज—इन चारों खानियों के ये जो हाड़-मांस के शरीर बने हुए हैं, इसमें रहने वाले जो इसके संचालक हैं, वे ज्ञाता चैतन्य जीव हैं। वे अविनाशी हैं। इस शरीर के बनने के पूर्व वे अनादिकाल (सदा) से थे और इस शरीर के नष्ट हो जाने के पश्चात् भी वे अमर चेतन अनन्तकाल (सदा) रहेंगे। जैसे खुर्दबीन, दुरबीन आदि अनेक शीशों को नेत्र पर लगाने से नेत्र की ज्योति अनेक शीशे के प्रभाव से कम-विशेष हो जाती है। इसी प्रकार

नाना खानियों के शरीरों के अनुसार चेतन जीव ज्ञानी-अज्ञानी होता रहता है। अन्य खानियों के चेतन से मनुष्य शरीर में आया हुआ चेतन अधिक प्रबुद्ध (ज्ञानी) रहता है। इस मनुष्य शरीर में रहने वाले चेतन को चेतन-मनुष्य कहा जाता है और जहाँ ऐ मनुष्यो ! या ऐ मानवो ! आदि सम्बोधन आते हैं। वहाँ भी मनुष्य-शरीर में रहने वाले चेतन का ही संकेत है। यहाँ श्रीकबीरसाहेब कहते हैं, हे नर-शरीर धारी अविनाशी चेतन ! तू किससे लगा है, किसमें मोहा है ? विचार करके देख ! तू ज्ञानमात्र है, अखण्ड है, स्वतः संतुष्ट है, स्वरूप से शुद्ध-बुद्ध और मुक्त है। परन्तु बाहरी प्राणी-पदार्थों में ममता करके और इन विजाति मन-इन्द्रियों के भोगों में भूल कर, तू अज्ञानी, मरने-जन्मने वाला, चंचल, विकारी और बन्धमान हो रहा है।

हे जीव ! तू अपने पूर्ण सन्तुष्ट अविनाशी स्वरूप को भूलकर जिस देह, गेह, धन, कुटुम्ब, मान, प्रतिष्ठा और कल्पना में मोहा है। वे कोई तुम्हारे साथ देने वाले तथा तुम्हें सन्तुष्ट करने वाले नहीं हैं। तू तो स्वयं असंग निराधार पूर्ण काम और स्वतः सन्तुष्ट है। तू भूल वश ही अपने को दुखी, गर्जबन्दा और अपूर्ण मानकर मायावी पदार्थों से सुखी सन्तुष्ट और पूर्ण होना चाहता है। देह, गेह, धन, कुटुम्ब, साज-समाज, मान-प्रतिष्ठा, अधिकार, देवी-देवादि—ये सब, हे चेतन जीव ! तेरे स्वप्न हैं। तेरे मनोराज्य मात्र हैं। तेरी

मृग-तृष्णा हैं। जैसे आकाश में फूल नहीं है। तैसे इन सबों, से तेरा सत्य सम्बन्ध नहीं है। जैसे बन्ध्या का पुत्र नहीं होता, तैसे इन पदार्थों से तेरा किञ्चिन्मात्र भी प्रयोजन नहीं है। तेरे कल्पित मन रूपी माया द्वारा ही यह हाड़-मांस, मल-मूत्र एवं दुःख रूप नाशवान् असत्य शरीर का निर्माण हुआ है। इस अविद्या रूपी रात्रि ने ही स्त्री-पुत्र, गृह, धन, मान-प्रतिष्ठादि रूप कुमुदिनियों को प्रफुल्लित कर रखा है। विवेक करके देखिये तो इनमें कुछ सार नहीं है। न इस शरीर में सार है, न जीवन में सार है, न प्राणी-पदार्थों के संयोग में सार है और न मान-प्रतिष्ठादि में ही सार है। इन सबका एक दिन सर्वनाश हो जाता है और इनकी अहन्ता-ममता वश ही विषयासक्त जीव को दुःख पूर्ण नाना योनियों में भ्रमना पड़ता है। अतः हे प्रबुद्ध चेतन जीव ! तू सांसारिक प्राणी-पदार्थों की ममता रूपी छूरी से अपने को क्यों घायल कर रहा है ? इस जड़ नाश-वान् झूठी काया के आसक्ति-पाश में क्यों अपने को बाँध रहा है ? विष मिले संसार के भोगों को क्यों भोगना चाहता है ? मोक्ष-साधन करने योग्य इस नर-शरीर में तू आया है। अतः तू सुन्दर भाग्य वाला है। ज्ञान स्वरूप है, विवेक-शक्ति सम्पन्न है। सब पदार्थों की ममता त्याग कर शीघ्र अपने कल्याण-साधन में सावधान हो जाओ।

(कल्याण-साधन के अतिरिक्त) इस शरीर का कोई

मूल्य नहीं है। इन स्त्री- पुत्र, धन-घर और पद-शासन, मान-प्रतिष्ठादि तथा इस दृष्टिगोचर समग्र संसार का किञ्चिन्मात्र भी मूल्य नहीं है। ये सर्वथा त्यागने योग्य, निष्प्रयोजन और निःसार हैं। इस शरीर-संसार को तू अपने मन में केवल महत्त्व दे दिया है। ये छूटने वाले और मायावी पदार्थ तेरे मन के मानने से ही मूल्यवान् और महत्त्व के भासते हैं। अन्यथा तुझ शुद्ध-बुद्ध और मुक्त चेतन स्वरूप पारख को किसी जड़-पदार्थ की भी आवश्यकता नहीं है। बल्कि इन विजाति पदार्थों के संसर्ग से ही तुझ शुद्ध चैतन्य को दुःखों से भेंट हो रही है। अन्यथा तू सर्वथा शुद्ध-मुक्त एवं निःसंग है।

इन सांसारिक भोगो में और प्राणी-पदार्थों के संयोगों में जो तू सुख को खोजता है। तो वह सुख इन पदार्थों में नहीं है। संसार के तो सभी पदार्थ असुख और अशान्ति जनक हैं। इनमें सुख कहाँ है सुख-कल्पना तेरे मन में है और मन भी असत्य है, तेरा कल्पित है। अतः सुख नाम की कोई वस्तु नहीं है। दुःखों की निवृत्ति ही जीव को सुख भासता है। जैसे प्यास से पीड़ित व्यक्ति को जल मिल जाने पर प्यास जनित दुःख मिट जाता है, अतः उसे सुख भासता है। परन्तु एक बिना प्यासे मनुष्य को जल दिया जाय, तो वह कुछ सुख नहीं मानेगा। बल्कि विवशता पूर्वक उसे जल पिलाया जाय, तो वह दुःख मानेगा। इसी प्रकार

पूर्व भोगों के संस्कार वश भोगों को भोगने के लिये मनुष्य के मन-इन्द्रियों में असह्य बेचैनी आती है। तब उस बेचैनी या चंचलता रूपी दुःख को मिटाने के लिये वह स्त्री-प्रसंगादि भोगों को भोगता है। मन इच्छित वस्तु मिल जाने से अथवा भोग-क्रिया से शक्ति-हत हो जाने से वृत्ति स्थिर हो जाती है। उस समय उसकी पूर्व की बेचैनी और चंचलता अल्प काल के लिये नष्ट हो जाती है। अतः वह विषयों में सुख मान लेता है। परन्तु यह उसे ज्ञान नहीं है कि यह विषय-क्रिया से शक्ति-हत स्थिर हुई वृत्ति पुनः भोग-वासनाओं की अधिक शक्ति भर कर आगे दौड़ती है और जीव को हर क्षण चंचल एवं बेचैन किया करती है। जो भोगों को नहीं भोगता, उसके नवीन वासना नहीं बनती तथा पूर्व की वासनायें भी नयी शक्ति न पाने से और सत्संग-साधन से शक्ति-हीन होकर नष्ट हो जाती हैं। फिर भोगों को न भोगने से वासना का समूल नाश होकर जीवन-पर्यन्त शान्ति अनुभव करता हुआ प्रारब्धान्त में जीव मुक्त हो जाता है।

जो सिनेमा देखने का अधिक अभ्यासी है, वह सिनेमा देखने के लिये चंचल होता है और जब सिनेमा देखता है, तब उसकी चंचलता अल्प काल के लिये स्थिर हो जाने से उसे सुख लगता है। परन्तु देख लेने के पश्चात् पुनः देखने के लिये चंचलता रूपी दुःख होता है। फिर उसके दुःख-प्रवाह

का अन्त नहीं होता। वह बारम्बार सिनेमा देखता है और बारम्बार दुखी होता है। और एक कभी सिनेमा न देखने वाला व्यक्ति है, उसे न सिनेमा कृत कोई दुःख चंचलता है और न सिनेमा देखने में सुखाभास है। वह सिनेमा के द्वंद्व से सर्वथा मुक्त है। इसी प्रकार भोगी मनुष्य सदैव मिथ्या सुख की आशा वश दुखी रहता है। और त्यागी व्यक्ति दुःख-सुख के झमेले से मुक्त रहता है

सारांश— सुख नाम की कोई वस्तु नहीं है। अतः मनुष्य को बाह्य-वस्तुओं से सुख की आशा सर्वथा त्याग कर शरीर-रक्षा के लिये केवल अन्न,जल,वस्त्रादि जीवन धारणोपयोगी वस्तुओं को परिमित रूप से ग्रहण कर अपना कल्याण-साधन करना चाहिये और बाहरी जगत् से लक्ष्य फिरा कर स्व-स्वरूप में शान्त होना चाहिये।

विवेकवान् के मुख से जैसे सत्य निर्णय की बातें निकलती हैं, तैसे ही जब जिज्ञासु सादर हृदय में धारण कर लेता है, तभी इस मन के धोखा को वह समझ सकता है। अथवा जो जैसे सत्य निर्णय की वार्ता मुख से कहता है, वैसे ही हृदय में धारण करता है। अर्थात् अपनी रहनी, गहनी, कहनी एक समान रखता है, वही सच्चा ज्ञानी मानने योग्य है। अतः सदाचरण-सद्गुण धारण करने पर अधिक ध्यान देना चाहिये।

शिक्षासार—मनुष्य का परम् कर्तव्य है, वह विजाति वासनाओं को सर्वथा त्याग कर अपने चेतन स्वरूप में स्थित हो। उस स्वतः स्वरूप की स्थिति को ही परम्धाम, परम्पद, पारखपद, अमरपद, अक्षयपद, मोक्षपद, कल्याणपद, निराधारपद, निःसंगपद तथा दुःख-हीन-कृतार्थ रूप आदि नामों से कहा गया है।

२८—(शब्द—८०)

बन्दे करिले आप निवेरा ॥१॥
आपु जियत लखु आप ठौर करु। मुये कहाँ घरतेरा ॥२॥
यह औसर नहिं चेतहु प्राणी। अन्त कोई नहि तेरा ॥३॥
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो। कठिन काल को घेरा ॥४॥

हे पराधीन हुआ चेतन ! तू अपने आप का छुटकारा करले ॥१॥ इस वर्तमान जीवन ही में तू अपने स्व-स्वरूप को समझ और उसमें अपनी स्थिति बना ले। अन्यथा शरीरान्त पश्चात् तुम्हारा स्थान कहाँ है ? ॥२॥ हे मनुष्य प्राणी ! इस समय में तू नहीं चेता। तो अन्त समय में कोई तुम्हारा न होगा ॥३॥ सद्‌गुरु श्री कबीरसाहेब कहते हैं—हे सन्तो ! सुनो, काल का बन्धन बड़ा भयंकर है ॥४॥

व्याख्या—अनादिकाल से अपनी भूलवश यह स्वतन्त्र चेतन जीव स्त्री, पुत्र, धन, घर, पञ्चविषय भोग शरीर कल्पित स्वर्ग, और देवी-देवादि का चाकर हो गया है। यह इन्द्रियों

के भोगों के लिये सब प्राणी-पदार्थों का बन्दा (सेवक) बना है। इसी से यहाँ साहेब जीव को बन्दा की संज्ञा देकर उसे सावधान करते हैं, हे बन्दे ! तू अपने आप का निवेरा-छुटकारा अर्थात् मोक्ष करले।

चेतन-मनुष्य बन्धनों से छूटकर तभी मुक्त और स्वतन्त्र होगा, जब वह विजाति वस्तु और प्राणियों की तथा अनेक कल्पनाओं की ममता और दासता से रहित हो जायगा। विषय के मलिन रस-भोग के लिये स्त्री-पुरुष के अधीन और पुरुष स्त्री के अधीन बिके रहते हैं। विषयासक्त होने से दारा-सुतादि अधिक प्रपंच मनुष्य बढ़ा लेता है। अधिक प्रपंच धारण से अधिक धन, पृथ्वी और घर की आवश्यकता पड़ती है। फिर अधिक धन, पृथ्वी आदि के लिये यह मनुष्य अन्य मनुष्यों की चाकरी करता है। पराये के अधीन हो जाता है। विषया-सक्ति वश इन्द्रिय और मन की गुलामी यह रात-दिन करता है। दुःखों से छुटकारा के लिये नाना कल्पित वाणियों द्वारा सुने हुए कल्पित देवी-देवादिकों की पूजा-अर्चा करके अपने स्वतन्त्र पद से सदैव से वंचित बना रहता है।

अतएव शरीर-निर्वाहिक शुद्ध-सात्त्विक वस्तुओं को आसक्ति रहित ग्रहण करते हुए अपने को पूर्ण स्वतन्त्र जीव-न्मुक्त बनाने के लिये इन्द्रियों के मैथुनादि मनःकल्पित भोगों को सर्वथा त्याग देना चाहिये। मद्य-मांस-भक्षण। गांजा-भाँग, बीड़ी-सिगरेट, तम्बाकू-पान आदि दुर्व्यसन।

नाच-सिनेमा, जूवा-पत्ता, स्वांग सुख रूप माने गये पाँचों विषयों के भोग और काम की वासना-क्रियादि—समस्त काल्पनिक भोगों को सर्पवत्-शत्रुवत् त्याग कर उसकी और इन्द्रियों की गुलामी से छूट जाना चाहिये। शरीर-निर्वाह में भी अच्छे-अच्छे पदार्थों की कामना से मुक्त हो जाना चाहिये। सुखाध्यास और आसक्ति-ममता से रहित होकर यथा प्राप्त शुद्ध-सात्त्विक वस्तुओं से स्वच्छन्दता पूर्वक देह-निर्वाह ले लेना चाहिये। घर, पृथ्वी और प्राणियों के बंधनों से मुक्त हो जाना चाहिये। निकटवर्तियों से सेवा न पाकर माख-मलाल और इर्ष्या-द्वेष करना तो बहुत दूर रहा। बल्कि निकट-दूर—किसी भी प्राणी से अपने शरीर की सेवा के लिये किञ्चिन्मात्र भी आसक्ति नहीं रखनी चाहिये। स्वस्थ (तन्दुरुस्त) साधक को किसी प्राणी की सेवा यथा-सम्भव स्वीकार नहीं करना चाहिये। किसी की प्रबल श्रद्धा पूर्वक की हुई सेवा यदि अपने में योग्यता हो, तो बड़े संकोच और अनासक्ति पूर्वक स्वीकार करना चाहिये। परन्तु यदि अपने में योग्यता न हो, तो उसकी सेवा को भी नहीं स्वीकार करना चाहिये। अन्य प्राणियों से सेवा लेने की जो साधकों के मन में इच्छा होती है, यह साधकों के मन की बड़ी भारी मोह-निद्रा है। इससे बिल्कुल जाग्रत हो जाना चाहिये।

किसी भी प्राणियों से सेवा या कोई वस्तु-प्राप्ति की कामना का बिल्कुल त्याग कर देना चाहिये। रोग-व्याधि से शरीर कष्टित होने पर यदि निकटवर्ती सेवा न करें, तो किञ्चिन्मात्र भी माख-मलाल नहीं करना चाहिये, दुःख, ईर्ष्या इत्यादि नहीं मानना या करना चाहिये। दुःखों को दृढ़तापूर्वक सहते हुए जीवन समाप्त कर देना चाहिये। यदि प्रबल श्रद्धा से कोई सेवा करे, तो सेवा स्वीकार करते हुए भी उसके कार्य में आनन्द नहीं मानना चाहिये, न उसमें राग करना चाहिये। न उसका आधार पकड़ना चाहिये। सदैव स्वावलम्बी, स्वाधीन और सब प्राणी-पदार्थों की कामना-राग से मुक्त रहना चाहिये। अपने जीवन-निर्वाह के लिये वैराग्यवान् को कोई मुख्य आधार नहीं बनाना चाहिये। स्वच्छन्द पृथ्वी पर भ्रमण करते हुए निराश वर्तमान पूर्वक शरीर-निर्वाह लेते रहना चाहिये। आश्रम युक्त भी हो, तो भी निरासक्ति विवेक पूर्वक बर्तना चाहिये। उचित औषध संयम करते हुए रोग-निरोग की इच्छा-कल्पना से रहित हो जाना चाहिये। इस शरीर के कुछ दिन रहने और नष्ट हो जाने की भी चिन्ता-कामना से रहित हो जाना चाहिये। मन के स्मरण धाराओं में मिलकर कभी भी अयुक्त प्रसन्नता या परतन्त्रता का अनुभव नहीं करना चाहिये। केवल विवेकवान् सद्गुरु-सन्तों की अधीनता लेकर कल्पित देवी-देवादि, कर्ता-धर्ता तथा स्वर्ग और सालोक्यादि चतुर्मुक्ति

की कामना से मुक्त हो जाना चाहिये। इस प्रकार सब प्राणी-पदार्थों के और शरीर-इन्द्रिय-मन के तथा देवी-देवादि कल्पना के राग, इच्छा, प्रयोजन से रहित स्व-स्वरूप में ही सन्तुष्ट हो जाना चाहिये। अपने स्वरूप के अतिरिक्त किसी भी व्यक्ति-वस्तु की मुख्य आवश्यकता अपने लिये नहीं समझना चाहिये। क्योंकि जो अपने आप मैं हूँ या तुम हो, वह चैतन्य, ज्ञानमात्र, पूर्णकाम, अखण्ड, शुद्ध और शान्त-संतुष्ट है। उसमें अन्य कोई की भी आवश्यकता नहीं है।

इस प्रकार बोध-धारण से ही स्वतन्त्र चेतन की बन्दापन एवं गुलामी छूटेगी और वह मुक्त हो जायगा।

इसी जीवन में मनुष्य को अपने आप स्वरूप की पूर्ण परीक्षा सत्संग द्वारा कर लेनी चाहिये और ऊपर वर्णन किये हुए आचरणों को आज ही अपने में धारण करके अपने स्वरूप में सन्तुष्ट हो जाना चाहिये। क्योंकि इस कल्याण-कार्य के अतिरिक्त मनुष्य का कोई मुख्य अन्य कार्य नहीं है। शरीर-निर्वाह भी केवल कल्याण-साधन करने के लक्ष्य से लेना चाहिये। परन्तु यदि मन के धोखा में पड़कर मनुष्य आज कल्याण-साधन नहीं किया और परतन्त्रता में फँसे हुए ही एक दिन शरीर त्याग दिया। तो शरीर छूटने पर जीव की मुक्ति क्या होगी? जो शरीर रहते-रहते मुक्त है, वही शरीर छूटने पर भी मुक्त होगा।

'जियत न तरेउ मुये का तरिहो। जियतै जो न तरै ॥बीजक॥'

कल्याण-साधन करने योग्य इस उत्तम नर-जन्म के अनोखे समय में यदि मनुष्य नहीं चेत किया, तो वह अपने पैर में कुल्हाड़ी मारने के समान अपना घात कर लिया। उसे जो कुटुम्ब, धन, घर, पृथ्वी, शासन, पद, प्रतिष्ठा, विद्या, जाति, यौवन, शरीर इत्यादि का अभिमान था। वे सब मृत्यु समय में कोई इस जीव का साथ नहीं देते। जो लोग संसार के प्राणी-पदार्थों का और इस शरीर का अभिमान करते हैं। वे मोह-मुग्ध हैं। वे महान् पागल हैं। उनके मोह-मुग्धता और पागलपन के कारण ही यह उन्हें नहीं प्रतीत होता कि 'मरते समय सब छूट जायँगे।' इसी अज्ञानता के कारण ही वे नाशवान् पदार्थों का आधार लेकर संसार-सागर में बहते रहते हैं।

मृत्यु को, समय को, कष्ट एवं बन्धन देने वाले को काल कहते हैं। यहाँ कष्ट रूप बन्धन देने वाले को ही काल कहा गया है। विषयासक्ति और नाना कल्पनाओं में फँसाने वाले बाम-बंचक प्रपंचासक्त मनुष्य एवं मन-इन्द्रियाँ, काम, क्रोध, लोभादि—ये सब काल हैं। भ्रमाने वाले प्राणी-पदार्थों और वासनाओं का व्यूह-बन्धन बड़ा भयंकर, कठोर और जटिल है। इनसे हर क्षण सावधान रहकर साधक को अपने कल्याण-मार्ग में निरन्तर डटा रहना चाहिये।

शिक्षासार—स्वतन्त्र चेतन भोगों की क्रिया, वासनाओं में भ्रम-भूल वश बँधा है। अतः भोगों की क्रिया-वासना सर्वथा त्याग कर स्वतन्त्र मुक्त हो रहना चाहिये। क्योंकि कहा है—

पराधीन सुख सपनेउ नाहीं। करि विचार देख्यों मन माहीं॥

(मानस रामायण)

२६—(शब्द—८६)

सुभागे! केहि कारण लोभ लागे।
रतन जन्म खोयो॥ १॥
पूर्बल जन्म भूमि कारण।
बीज काहेक बोयो॥ २॥
बुन्द से जिन्ह पिण्ड सँजोयो।
अग्नि कुण्ड रहाया॥ ३॥
जब दश मास माता के गर्भे।
बहुरि लागल माया॥ ४॥
बारहु ते पुनि वृद्ध हुआ।
होनहार सो हूआ॥ ५॥
जब यम अइहैं बाँधि चलैहैं।
नैनन भरि भरि रोया॥ ६॥
जीवन की जनि आशा राखो।

काल धरे है श्वासा ॥ ७ ॥
बाजी है संसार कबीरा ।
चित चेति डारो फाँसा ॥ ८ ॥

सुन्दर भाग्य वाले चेतन मनुष्य ! किस हेतु से तेरे को मायावी पदार्थों का लोभ लगा है ? और उसी लोभ में पड़ कर रत्न-तुल्य नर-जन्म नष्ट कर रहा है ॥१॥ जन्म-भूमि रूप माता के गर्भ में पुनः आने का कारण पूर्व नर-जन्मों के विषयासक्ति-युक्त संस्कार हैं। अब पुनः जन्मादिक हेतु विषयों की वासना-क्रिया रूप बीज क्यों बोता है ? ॥२॥ जिस विषय-वासना के बीज ने जीव को आकर्षित कर गर्भ में ले गया और रक्त-वीर्य मिश्रित किञ्चित् (बुन्द) से स्थूल-पिण्ड (शरीर) की रचना किया और बढ़ाया। (उस विषयासक्ति-बीज को शत्रु रूप जानकर नष्ट करो।) जब नौ-दश महीने माता के गर्भ रूप अग्नि कुंड में रहा, तब तू वहाँ जलता रहा। पुनः पृथ्वी पर जब उत्पन्न हुआ, तब तेरे को माया ने घेर लिया ॥३-४॥ बालक से युवा होते हुए पुनः वृद्ध हो गया। जीवन पर्यन्त माया-मोह में फँस कर जो दुःख का पात्र तुम्हें होना था, वह हो गया ॥५॥ परन्तु ध्यान रखो ! जब मृत्यु आयेगी तब विषय-वासना रूप यम तेरे को बाँध कर पुनः गर्भवास में ले चलेगा, उस समय तू नेत्रों से आँसू भर-भर कर रोयेगा। परन्तु तुम्हारे काम कोई नहीं आयेगा ॥६॥ इस जीवन का भरोसा मत रखो। मृत्यु

ने तुम्हारे श्वास को पकड़ रखा है ॥७॥ हे जीव ! यह संसार जूवा का दाँव है। अपने मन में सावधान होकर सब बन्धनों को त्याग दो ॥८॥

व्याख्या—मनुष्य देह में आया हुआ चेतन जीव अत्यन्त भाग्यवान् है। क्योंकि वह यहाँ पर साधन करके मोक्ष प्राप्त कर सकता है। परन्तु वह पारखी सन्तों के सत्संग में अपने यथार्थ स्वरूप को न समझने के कारण स्त्री-पुत्र, घर-धन, शरीरादि जड़ पञ्चविषयों में लोभ को प्राप्त हो रहा है। विचार करके देखिये, तो जड़ पदार्थों में लोभ करने का अपना कोई प्रयोजन नहीं है। अपने शुद्ध चेतन स्वरूप में आँख, नाक, कान, जीभ, त्वचा और मन ये बाह्यकरण और चित्तादि चतुष्टय अन्तःकरण रूप कोई भी ज्ञान-इन्द्रियाँ नहीं हैं। इसलिये देखने, सूँघने, सुनने, चखने, स्पर्श करने और संकल्प-विकल्प करने की अपने चेतन स्वरूप के लिये कोई आवश्यकता नहीं है। अतः रूप, गन्ध, शब्द, स्वाद, स्पर्श और संकल्प-विकल्प का चेतन को कोई प्रयोजन नहीं है। अपने चेतन स्वरूप में शरीर-इन्द्रिय न होने से भूख-प्यास, शीत-धूप रोग इत्यादि उसे नहीं लगते। अतः उसे अन्न-जल, वस्त्र-घर और औषध इत्यादि का कुछ भी प्रयोजन नहीं है। काम, क्रोध, लोभ, मोहादि अपने चेतन स्वरूप में बिल्कुल नहीं हैं। ये केवल भूल जनित मन की अभ्यासिक वृत्ति हैं। अतः चेतन को इनके अधीन कभी भी होने

की आवश्यकता नहीं है और काम, क्रोध, लोभ, मोहादि जनित मैथुन, हिंसा, धन-संग्रह और प्राणियों की ममता करने की किञ्चिन्मात्र भी आवश्ययकता चेतन को नहीं है। न इसे कोई पदार्थ की आवश्यकता है और न कोई प्राणी की, न शरीर की, न इन्द्रिय की और न मन की। यह चेतन सर्वथा-सर्वदा पूर्णकाम, निर्द्वन्द्व और परम् सन्तुष्ट है। अतः इसे सबकी कामना और लोभ-मोह से रहित हो जाना चाहिये। केवल जब तक यह जड़-शरीर साथ लगा है। तब तक इसके शुद्ध निर्वाह के लिये देख, सुन, सूँघ, चीख, पश और सोच-विचार करके निरासक्ति पूर्वक जीवन समाप्त करते हुए और कल्याण-साधन करते हुए अपना मोक्ष कर लेना चाहिये। इस मोक्षदायी नर-जन्म को मैथुन भोग, धन-संग्रह, कुटुम्ब-मोह, जीव-हिंसा और पञ्चविषयासक्ति में नहीं खोना चाहिये। नहीं तो बड़ा कष्ट होगा।

यह भली-भाँति समझ लो, कि बारम्बार गर्भ में आने का कारण मुख्य मैथुन भोग और अन्य-अन्य विषयों की वासनायें हैं। जब तक इसको सर्वथा नहीं छोड़ोगे, तब तक गर्भवास का दुःख और देह धरके अवस्था कृत एवं देहोपाधिक कष्ट तथा मरने-जन्मने के असह्य क्लेशों से छुट्टी नहीं पावोगे। जो लोग यह ज्ञान प्राप्त करके भी पूर्व आसक्ति वश भोगों के सेवन में लगे रहते हैं। उनकी दशा बड़ी शोचनीय है। अज्ञानी तो दुःख के पात्र बने ही रहेंगे। परन्तु

ज्ञान प्राप्त करके भी पुनः-पुनः दुःखों का बीज बोना बड़ा लज्जा जनक कार्य है। हे बन्धुओ ! दम्पति-स्पर्श रूप क्षेत्र में विषय-वासना रूप दुःखों के बीज को क्यों बोते हो ? अतः इस अज्ञान-कार्य से शीघ्रातिशीघ्र पृथक् हो जाओ।

देखिये ! यह विषयों की वासना ही शरीर छूटते समय जीव को खींच कर नर-नारी के विषय-क्रिया द्वारा पुनः गर्भ में ले जाती है। और नारी के रज तथा पुरुष के वीर्य में जीव को मिला कर कुछ दिन से बुन्द से पिण्ड (स्थूल शरीर) बना देती है। उस गर्भ-आँच के तड़ाका में अशुद्ध झिल्ली में लपेटा हुआ नौ-दस महीने जीव जलता रहता है। पुनः बड़ी कठिनता पूर्वक अत्यन्त संकीर्ण द्वार से उत्पन्न होता है। पश्चात् धीरे-धीरे यह माया-मोह में फँस जाता है। उसी माया-मोह में बालक से यह वृद्ध हो जाता है। परन्तु अपने कल्याण कृत कार्यों को नहीं करता। विषयों की वासना वश यह जीव दुःख पूर्ण दश अवस्थाओं में भ्रमता रहता है। तिसका संक्षिप्त वर्णन नीचे किया जाता है—

(१) प्रथम गर्भ-अवस्था में इस जीव को बड़ा कष्ट होता है। चाम-हड्डी के घेरे से बने हुए, मल-मांस से भरे हुए अत्यन्त सकरे माता के पेट में झिल्लियों से कसे हुए गर्भ-अग्नि से पीड़ित जीव को महान् दुःखों का सामना करना पड़ता है। जैसे किसी मनुष्य के आँख-मुख को पट्टी से बाँध दिया जाय और हाथ-पैर तथा शिर को भी मोड़ कर एक

में कस कर बाँध दिया जाय और एक चमड़े के बोरा में लपेट कर किसी सँकरे स्थान में दबा दिया जाय, आस-पास मल-मूत्र, हड्डी, मांस तथा रक्त इत्यादि दुर्गन्धित वस्तुओं से ग्रस दिया जाय और धीरे-धीरे आग की आँच से उसे तपाया जाय। तो अधिक आँच न होने से न तो उसके प्राण निकलें और न तो दुःख से छुट्टी पावे, बस उसी में जला करे। इसी प्रकार गर्भवास का दुःख जीव भोगता है, बल्कि इससे भी बढ़ कर उसका दुःख है।

(२) दूसरी जन्म-अवस्था बड़ी कष्टदायी है। बहुत सँकरे द्वार से होते हुए उतने मोटे-ताजे बच्चे को आना पड़ता है, उत्पत्ति के समय प्रायः दुःखों की अधिकता से बच्चे मूर्च्छित हो जाते हैं। उनके कोमल चमड़ों में वायु तीर के समान लगता है। झिल्ली आदि दुर्गन्धित पदार्थों से लपेटा रहता है। यह अवस्था बड़ी कष्टदायी है।

(३) तीसरी शिशु-अवस्था बड़ी पीड़ा जनक है। कोमल शरीर होने से इस पर रोग अधिक धावा बोल देते हैं, यह मल-मूत्रों में पड़ा रोया करता है, अपने दुःखों को किसी से कह नहीं सकता। यह अवस्था विवशता की खानि दुःखों का घर है।

(४) चौथी बाल्य-अवस्था भी बड़ा कष्टकारी है। इसमें मूढ़ता-चञ्चलता अधिक रहती है। इसे पशु-पक्षी तथा कल्पित भूत-प्रेत का भय सवार रहता है। बालकों के साथ खेलते

समय बालकों द्वारा कष्ट पाता है, उदण्ड बालकों का भय हरक्षण कष्ट देता है। माता-पिता से हर समय धमकाया-डराया जाता है, पढ़ना-लिखना नहीं चाहता। माता-पिता के डर वश पढ़ने जाता है। अध्यापकों से यह अधिक डरता रहता है। इसका चारों ओर अपमान होता है। अहो ! इस दुःख पूर्ण अवस्था में हम अनन्तों बार कष्ट भोग चुके हैं। परन्तु अभी भी हम नहीं चेतते।

(५) पाँचवीं कुमार अवस्था भी क्लेशों का घर है। इस अवस्था में पढ़ाई-लिखाई की तथा उत्तीर्ण-अनुत्तीर्ण की चिन्तायें सताती रहती हैं। यह नाना रजोगुणी वस्तुओं की कामना माता-पिताओं से करता है। मन अनुकूल न पाने से शोकित होता है। माता-पिता से दबकर रहना पड़ता है। इसी समय से विषय-वासना का भूत इसके ऊपर सवार होने लगता है। इस अवस्था में उदण्डता-चञ्चलता अधिक रहती है। यह अवस्था बड़ी दुःखमय है।

(६) छठीं युवा-अवस्था तो अत्यन्त उन्मादिनी कष्टों का घर है। यह मांस-मल का पिण्ड (शरीर) इस अवस्था में थोड़े दिन के लिये चिकना-चुपड़ा और शक्ति सम्पन्न-सा हो जाता है। युवा-अवस्था के मद से उन्मत्त होकर मनुष्य के अभिमान का पारावार नहीं रहता। इसकी इन्द्रियाँ बिल्कुल चंचल रहती हैं, ज्ञान-हीन युवक का मन सदैव विषय-वासनाओं से मलिन रहता है। भोग-क्रिया की अधिकता

से अनेकों रोग आ घेरते हैं। भोगों की तृष्णा-वश युवक हर क्षण लम्पट बना रहता है। अनेक व्यक्ति मर्यादा भंग कर व्यभिचार के गड्ढे में गिर जाते हैं। यह उत्तम और नव-यौवन सम्पन्ना युवतियों का चिन्तन सदा किया करता है। विषय-वासना रूपी अग्नि से इसकी छाती सदा जलती रहती है। "अमुक ललना के अत्यन्त सुन्दर-सुन्दर बड़ी-बड़ी आँखें हैं, मुख, वक्ष, कटि, कलाइयाँ तथा केश उसके बड़े सुन्दर हैं। हाय! वह हृदय हारिणी कब मिलेगी, उसके बिना हमारा जीवन निःसार है।" इत्यादि कल्पनाओं में युवक सदा जला करता है। अपने और युवती के अशुद्ध शरीर ही इसे प्रिय भासते हैं। सर्व अज्ञान और अनेक कर्मों की रचना इस अवस्था में हो जाती है। अतः यह अवस्था बड़ी ही दुःखदा है।

(७) सातवीं अधेड़-अवस्था भी बड़ी शूल मय है। पुत्र-पुत्री तथा परिवार के पालन-पोषण का भार एवं घर बनने की चिन्ता इस पर सदा सवार रहती है। प्रपंच बन्धन और क्लेश का घर यह अवस्था बड़ी विपत्ति जनक है।

(८) आठवीं वृद्ध-अवस्था तो सबको प्रत्यक्ष है, यह कितनी विवशता और निर्बलता से घिरी है? इस अवस्था में सब इन्द्रियाँ निर्बल हो जाती हैं। घरवाले अनादर कर देते हैं। रोगों का आक्रमण इस पर अधिक हो जाता है। अतः यह अवस्था पूरा दुःख-भण्डार है।

(९) नववीं मृत्यु-अवस्था बड़ी कष्ट प्रद है। अपने माने हुए घर, धन, शरीर तथा कुटुम्बियों का वियोग होते समय जो कष्ट अज्ञानियों को होता है, वह अवर्णनीय है।

(१०) दसवीं आवागमन-अवस्था वासना मय होने से और पुनः जन्म का हेतु होने से यह तो सर्व दुःखों की जड़ है। इस प्रकार शरीर के दसों अवस्थाओं में केवल पीड़ा-ही-पीड़ा है।

हे जीव ! इस प्रकार दस अवस्थाओं के रहट-माल में तू अनन्तों बार भ्रमण कर चुका है, बड़ा दुःख सहा है, बड़ी अवदशायें भोगी हैं। परन्तु आज भी तू उस भूल से पृथक् नहीं हुआ। हे मनुष्य ! तू माया-मोह में ही पड़कर बालक से बुड्ढा हो गया, अपना कल्याण-साधन न किया। जीवन पर्यन्त स्त्री-पुत्रादि के मोह में लिपटा रहा। परन्तु ध्यान रख ! जिस दिन मृत्यु आयेगी और तेरे को पकड़ेगी, तब तेरा कुछ भी नहीं चलेगा। फिर तो यम रूप माया-मोह और विषय-वासना तेरे को बाँध कर उसी पूर्व वर्णित दुःख-मय गर्भवास में ले चलेगी। तू मृत्यु-काल में भयभीत होकर रोयेगा। स्त्री-पुत्र, धन, घर, कुटुम्ब और शरीरादि को मोह वश छोड़ना नहीं चाहेगा। परन्तु विवशता पूर्वक छूटता हुआ समझ कर तू नेत्रों में आँसू भर-भर कर रोयेगा, उस समय तेरे को मृत्यु के हाथ से कोई छुड़ा नहीं सकता। तेरे साथ कुल-कुटुम्ब, घर-धनादि कोई भी नहीं जाँयगे। हे मनुष्य !

तेरे सब आशा-भरोसा पर उसी दिन पानी फिर जायगा। जिन संसार के प्राणी-पदार्थों के मोह-लोभ वश तू सत्संग साधन नहीं किया। जिन इन्द्रिय-भोगों की आसक्ति में तू परमार्थ-धर्म को भूल गया। जिस शरीर में ममता करके तू कल्याण से हीन हो गया। हे ममतालु भोगी मनुष्य! ये प्राणी-पदार्थ, इन्द्रिय-भोग और शरीर को छोड़ना न चाहते हुए भी छूटते देख और समझ कर तेरे को असह्य वेदना होगी। शहस्त्रों तलवार लगने के समान तेरी दशा होगी। अतः हे बन्धुओ! आज ही सावधान हो जाओ। सबकी ममता छोड़कर भोगों की वासना मिटा कर मोक्ष-साधन में जुट जाओ।

और कल्याण-साधन करने के लिये टाल-मटोल भी मत करो। आगे की आशा करके कल्याण-साधन से हीन बने रहना—यह बड़ी भारी भूल है। क्योंकि यह जीवन क्षण-भंगुर है। अतः किञ्चित् भी इस जीवन की आशा-भरोसा न करो। ओस-कण, जल-बुदबुदा, इन्द्र-धनुष, विद्युत-प्रभा, वायु-झोंका और जल से भरे हुए कच्चे घड़े के समान यह जीवन अत्यन्त क्षण-भंगुर है। यह जीवन कब तक रहेगा! इसका पता नहीं है। अभी इसी श्वास में यह समाप्त हो सकता है।

और "यह अभी कुछ दिन रह भी सकता है"—ऐसा मानना साधक के लिये बड़ी असावधानी है। यह शरीर नहीं रहने वाला है। यह शीघ्र ही नष्ट होने वाला है। कोई

भी दिन हो आज ही के समान वर्तमान वह दिन रहेगा। मृत्यु अचानक ही आयेगी। पहले से बताकर नहीं आयेगी। अतः इस जीवन का एक सेकेण्ड के लिये भी भरोसा नहीं करना चाहिये। देखो! तुम्हारे श्वास को काल ने पकड़ रखा है। तुम्हारे जीवन का अनोखा समय क्षण-क्षण बीतता चला जा रहा है। अतः इसी काल साधन में डट जाओ।

सुन्दर दास जी कहते हैं— सवैया—

सन्त सदा उपदेश बतावत, केश सबै शिर शेत भये हैं।
तू ममता अजहूँ नहिं छाड़त, मौतहु आइ सँदेश दिये हैं॥
आजु कि काल चले उठि मूरख, तेरे ही देखत केते गये हैं।
"सुन्दर" क्यों नहिं राम सँभारत, या जग में कहु कौन रहे हैं॥

मन ने विषय-भोग रूपी चौपड़ का खेल रचा है। तिसमें वह सुख की बाजी (दाँव) रखा है। अतः सुखों के लोभ वश यह जीव मन खेलाड़ी के साथ विषय-भोग रूपी चौपड़-खेल में अपने नर-जन्म के कल्याण-साधन करने योग्य समय को बाजी पर रख कर खेल रहा है। इस जीव का यह बड़ा-भारी प्रमाद है। अतः हे जीव! तू अपने नर-जन्म के कल्याण-साधन करने योग्य समय रूपी दाँव को व्यर्थ विषयों में मत लगा। सावधान होकर खेल! माया-मोह पर विजय करके अपने अमूल्य समय को हरक्षण कल्याण-साधन में व्यय (खर्च) कर। हे जीव! तू चैतन्य है, ज्ञान मात्र अखण्ड, शुद्ध-बुद्ध

और स्वरूपतः मुक्त है। अतः सावधान होकर मन के सब बन्धनों-वासनाओं-अहंभावों को मिटा डालो।

शब्द-चेतावनी—

भजन बिन बीत गयो पन तीन ॥ टेक ॥
गर्भवास से बाहर आयो, मल मूत्रहिं में लीन।
खेलत खात गयो बालापन, मूढ़ दशा दुख दीन ॥१॥
ज्वान भयो तब काम सतायो, भोग्यो भोग मलीन।
पेट भोग हित निशिदिन धायो, रतन जवानी छीन ॥२॥
वृद्ध भयो तृष्णा अति बाढ़ी, चिन्ता अमित नवीन।
जरजर गात लात बातन सहि, अन्त काल मुख लीन ॥३॥
साधन करन योग मानुष तन, तेहि भोगन में भीन।
कह अभिलाष मूढ़ मन यहिविधि, जनम अनन्तन कीन॥४॥

शिक्षासार—मनुष्य कल्याण का अधिकारी है। विषय-वासना वश जन्म-मरण गर्भवास तथा सब देहोपाधिक कष्ट होते हैं। जीवन भी क्षण भंगुर है, अतः सद्साधन करके अविलम्ब अपना मोक्ष बना लेना चाहिये।

३०—(ज्ञान चौतीसा ७-३५)

च चा चित्र रच्यो बड़ भारी।
चित्र छोड़ि तैं चेतु चित्रकारी ॥ १ ॥
जिन्ह यह चित्र विचित्र ह्वै खेला।
चित्र छोड़ि तैं चेतु चितेला ॥ २ ॥

ह हा हाय हाय में सब जग जाई।
हर्ष सोग सब माहिं समाई ॥ ३ ॥
हँकरि हँकरि सब बड़ बड़ गयऊ।
हा हा मर्म न काहू पयऊ॥ ४ ॥
च्च च्चा छिनमेंपरलयसब मिटि जाई।
छेव परेतब को समझाई ॥ ५ ॥
छेव परे काहु अन्त न पाया।
कहहिं कबीर अगमन गोहराया ॥ ६ ॥

'च' का भाव चैतन्य है और 'चा' का भाव कल्पना है, अर्थात् हे चैतन्य! तेरी कल्पना ने खानी-वाणी का बड़ा भारी चित्र रचा है। परन्तु हे चित्र रचयिता चैतन्य! तू उन सब चित्रभासों को त्याग कर सावधान हो जा ॥ १ ॥ इन मायावी चित्रों से विचित्र ज्ञान रूप होते हुए भी जिस चैतन्य ने इन चित्रों में अनादि से आज पर्यन्त क्रीड़ा किया है। उन मायावी चित्रों को छोड़कर हे चितेला! चेतने वाला चेतन! शीघ्र सावधान हो जा ॥ २ ॥ 'ह' का भाव अहंकार और 'हा' का भाव अहंकार युक्त कार्य है, अर्थात् अहंकार और अहंकार युक्त कर्तव्य में सब जगत्-जीव काल के गाल में चले जाते हैं। सब में हर्ष-शोक समाया हुआ है ॥३॥ हाय-हाय करके अहंकार में सब बड़े-बड़े काल-कवल हो गये। परन्तु इस

हाय-हाय अर्थात् शोक का भेद किसी ने न पाया ॥ ४ ॥ 'क्ष' नाम क्षर (नाशवान्) शरीरादि और 'क्षा' का भाव शरीर का कर्तव्य। अर्थात् शरीर और शरीर सम्बन्धी सर्व कर्तव्य का क्षण ही में नाश हो जायगा। फिर शरीर नाश उपरान्त तुम्हें स्वरूपज्ञान समझने के लिये कहाँ सत्संग मिलेगा? ॥ ५ ॥ अतएव भूल ही में नर-तन नष्ट हो जाने पर किसी ने भी दुःखों का अन्त करके कल्याण न कर सका। सद्गुरु श्री-कबीरसाहेब कहते हैं—इसीसे मैंने प्रथम से ही पुकार कर कह दिया कि भाई! आज स्वस्थ नर-जन्म में अपना कल्याण-साधन कर लो, नहीं तो अन्त में पछताना पड़ेगा ॥ ६ ॥

व्याख्या—हे चैतन्य! तेरी कल्पना ने बड़ा भारी चित्र बनाया है। स्त्री, पुत्र, नात, गोत, मित्र, धन, घर, गाँव देश, शरीर, वर्ण-आश्रम, जाति-पाँति, नाना मत-पथ, वेद, कुरान, बाइबिल, देवी-देव, स्वर्गलोक, कर्ता-धर्ता-हर्ता तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह इत्यादि खानी-वाणी का बड़ा, विशाल चित्र तैयार किया है। परन्तु यह सब चित्र तेरे फँसने का भयंकर जाल है। इन सब चित्रों में तू आसक्त मत होवे। जिस कल्पना ने सब चित्रों को बनाया है, वह कल्पना भी स्वयं जड़ है। अतएव उस कल्पना का भी तू ही आधार है, सत्ता देने वाला है। इसलिये हे चेतन! तू ही सब चित्रों को कल्पना द्वारा रचने वाला चित्रकारी है। जैसे स्वप्न में अपनी ही कल्पनाकृत मानसिक सिंह, सर्प, हाथी और शत्रु द्वारा

मनुष्य दुःख पाता है और स्वप्न के नदी समुद्र में डूबता है। इसी प्रकार इस चैतन्य पुरुष ने अपनी ही कल्पना द्वारा घर-धन, कुटुम्ब, शरीर और कामादि अनेक चित्रों को बनाकर और उसको सत्य मानकर उसी में मोह-मुग्ध होकर बन्धमान हो रहा है। यदि यह चैतन्य पुरुष निज कल्पनाकृत चित्रों का मोह त्याग दे, तो इसे कोई बाँधने वाला नहीं है। अतः चित्रकारी चैतन्य! तू स्त्री-पुत्र तथा काम, क्रोध और लोभादि चित्रों को त्याग कर इनके मोह से सावधान हो जा।

शरीरादि पञ्च विषय सब चित्र जड़, परिणामी, विजाति दुःख रूप हैं और चैतन्य इन शरीरादि जड़ चित्रों से विचित्र (विलक्षण) ज्ञान मात्र, अविनाशी और निर्द्वन्द्व है। परन्तु यह विचित्र चैतन्य अनादि काल से शरीरादि जड़ चित्रों में क्रीड़ा-भोग कर रहा है। और अपने सामने नाना प्रकार वस्तु, प्राणी, भाव, कल्पना रूप चित्र खड़ा करके और उसे सत्य मान-मान कर हर्ष-शोक का पात्र बन रहा है। आँख, नाक, कान, जीभ और त्वचा इन पाँच ज्ञान-इन्द्रियों से प्रतीत-मान रूप, गन्ध, शब्द, स्वाद, स्पर्श और नाना प्राणी-पदार्थ रूप चित्रों में तथा मन से भासमान काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, हर्ष, शोक, सुख, दुःख, आदि चित्रों में सत्यता और सुख मानकर यह जीव आसक्ति-बन्धन में बँधा है। अतएव हे चैतन्य! तू सब भ्रम चित्रों का मोह त्याग कर अपने आप स्वरूप में जाग्रत हो जाओ।

यह चैतन्य अनादि काल से विषयासक्त होकर देह का अभिमानी हो गया है। यह सारा कार्य अहंकार युक्त ही करता है। मन भावन नवयुवती, सुन्दर पुत्र, अतुल धन, सुन्दर महल, मान-शासन तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध भोगों की यह मनुष्य सदैव कामना करता है। इन्हीं पदार्थों के संग्रह-रक्षा और लोभ में हाय-हाय करके संसार के सब अज्ञानी जीव मरते हैं। और मान-सुख तथा यश-द्रव्य की प्राप्ति-अप्राप्ति सम्बन्धी हर्ष-शोक सब जीवों में समाया है। मन इच्छित किञ्चित् यश-द्रव्य की प्राप्ति हो जाने पर मनुष्य हष के विकार में फूल-फूल कर महा अभि-मानी हो जाता है। और अभिमानवश राजसी-तामसी नाना कल्पनाओं को मन में उठा-उठा कर वह दुःखों का पात्र बना रहता है। और मन इच्छित वस्तु अथवा यश-द्रव्य न प्राप्त होने से शोक-विकार को धारण कर यह मनुष्य सदैव जलता रहता है।

अहंकार वश हाय धन,हाय पुत्र,हाय स्त्री इत्यादि हाय-हाय करके अधिक धन भोग-प्राप्ति की तृष्णा में सब बड़े-बड़े नामी-ग्रामी काल के गाल में चले गये। राजा-बादशाह अपना राज्य और राष्ट्र बढ़ाने में असन्तुष्ट हैं। यदि सारे भू-मण्डल का वह अध्यक्ष हो जाय, तो भी उसे सन्तुष्टि नहीं है। वह सूर्य-चन्द्रादि पर भी अपनी अध्यक्षता चाहता है। इसके विषय में प्रत्यक्ष प्रमाण रूप से पाश्चात्त्य भौतिक-

विज्ञानी हैं। ये कुछ यन्त्र कला का निर्माण कर सारे अभिमान और तृष्णा के आकाश का फूल तोड़ना चाहते हैं। और शशा के सींग जमाना चाहते हैं। परन्तु ब्रह्माण्डिक जड़-तत्व की क्रियाओं से और रोग-बुढ़ापा तथा मृत्यु से विवश होकर हाय-हाय करके रह जाते हैं। प्रकृति, रोग, बुढ़ापा और मृत्यु पर इनका आधिपत्य नहीं होता।

दृष्टान्त—एक राजा एक सन्त से कहे—कृपया आप कुछ हमसे माँगिये। महात्मा ने कहा—आप दरिद्र से क्या माँगे? इतना सुनकर राजा क्रोधमें आकर कहा—क्या मैं दरिद्र हूँ? एक भगवा लपेटे आप हमारे सामने धनी बनने चले हैं? महात्मा ने कहा—आप क्रोध में न आवें, अपना हृदय ठण्ढा करके सोचिये! आप का जो राज्य है, उससे अधिक राज्य-शासन चाहते हैं या नहीं? अपनी रानी के अतिरिक्त अन्य रूप और नव यौवन सम्पन्ना बालाओं की इच्छा होती है कि नहीं? जितना कोष (खजाना) आप के है, उससे अधिक धन चाहते हैं या नहीं? राजा ने कहा—जितना राज्य, शासन, द्रव्य तथा स्त्री प्राप्त हैं, उससे अधिक अवश्य चाहता हूँ। अधिक कौन नहीं चाहता? महात्मा ने कहा—इसी से आप को मैंने दरिद्र कहा है। जिसके कमी लगी है, तृष्णा नहीं बुझी है। वह दरिद्र नहीं तो और क्या है? और जो यह कहते हो कि अधिक कौन नहीं चाहता? तो अधिक-अधिक सन्त नहीं चाहते। वे तृष्णा

को जीते हुए परम् सन्तुष्ट पद में दृढ़ स्थित रहते हैं। इतना वचन सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और सन्त से क्षमा माँगा तथा उसने कहा कि अब मैं भी तृष्णा त्याग कर संतोष धारण करूँगा।

धनी धन बढ़ाने में असन्तुष्ट हैं, कामी मन अनुकूल सुन्दर बाला न पाने और उन्हें अपनी इन्द्रियों से मन भर न भोग पाने में अपूर्ण हैं। मोही कुटुम्ब, पुत्र और मित्र-गोष्ठी के बढ़ाने में भूँखे हैं। विज्ञानी सारे चैतन्य और जड़-सृष्टि को स्वाधीन बनाने की चेष्टा में परास्त हैं। क्रोधी हेतु-अहेतु नाना मनुष्यों को शत्रु मान कर उन्हें नाश करने में असन्तुष्ट हैं। विलासी फैसन और विलास की वस्तुओं से सजने और शब्दादि पञ्च विषयों को भोगते-भोगते ही पिपासु हैं। अमली गाँजा-भाँग, बीड़ी सिगरेट, पान-तमाकू आदि दुर्व्यसनों के ग्रहण करते-करते ही भूँखे बने हैं। विद्वान् लोग जीवन पर्यन्त विद्या पढ़ते-पढ़ते ही विचारे असंतुष्ट रह जाते हैं। स्वामी लोग मान-प्रतिष्ठा को नित्य पाते हुए और-और की तृष्णा में निमग्न हैं।

इस प्रकार 'हाय भूखा रे भूखा' करके ज्ञान हीन बड़े-छोटे सब जीव मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। परन्तु संतोष नहीं प्राप्त होता है। इस अहंकार और विषय-तृष्णा का भेद कोई जान नहीं पाते कि यही शत्रु है। बल्कि स्वरूप की भूलवश इसी को सुख रूप मान कर जीव उन्मत्त हो रहे हैं।

क्षर नाशवान् को कहते है और अक्षर अविनाशी को कहते हैं। यह शरीर और शरीर सम्बन्धी सब पदार्थ नाशवान् क्षणभंगुर हैं। इन सब का क्षण मात्र में प्रलय हो जाता है। जब इस शरीर का नाश हो जाता है। तब जीव का जितना शान-गुमान और उमंग रहता है, सब धूल में मिल जाता है। श्वास टूटते ही माने हुए कुटुम्ब, धन, घर, गाँव, देश और संसार—सब उस जीव के लिये लोप हो जाते हैं। अर्थात् उस जीव से पूर्व मानन्दी कृत धन-कुटुम्बादि से कभी भी पूर्ववत् सम्बन्ध नहीं होता। आज सत्संग द्वारा कल्याण-साधन जो नहीं करता, अज्ञान-वश शरीरान्त पश्चात् जब वह पशु-पक्षी और कृमि आदि खानियों में पड़ जायगा, तब उसे स्वरूप-ज्ञान और कल्याण-साधन कौन समझायेगा ? मनुष्य खानि छूटने पर त्रयखानि में तो जीव की मूढ़ दशा रहती है। वहाँ केवल दुःख भोगने के अतिरिक्त कोई उद्धार का मार्ग नहीं है। भजन-सत्संग बिना असावधानी ही में नर तन छूट जाने पर दुःखों का नाश करके किसी ने भी अपना कल्याण न कर सका। अतः विवेकवान् सन्त इस बात को प्रथम ही समझा रहे हैं। आज इस अमूल्य अवसर में चूकना नहीं चाहिये।

शिक्षासार—सबकी कल्पना करने वाला मैं चैतन्य सत्य स्वतः हूँ। यह शरीर कल्याण-साधन करने योग्य फिर भी क्षणभंगुर और दुःख रूप है। ऐसा जानकर और सब विषयों

की तृष्णा तथा अहंकार त्याग कर अपने आप स्वरूप स्थिति के साधन में लवलीन होना चाहिये।

३१--(विप्रमतीसी—२७—३१)

हंस देह तजि न्यारा होई।
ताकर जाति कहैं धौं कोई ॥ १ ॥
स्याह सफेद कि राता पियरा।
अबरण बरण कि ताता सियरा ॥ २ ॥
हिन्दू तुरुक कि बूढ़ो बारा।
नारि पुरुष का करहु विचारा ॥ ३ ॥
कहिये काह कहा नहिं माना।
दास कबीर सोई पै जाना ॥ ४ ॥

साखी-बहा है बहि जात है, कर गहे चहुँ ओर।
जो कहा नहिं माने, तो दे धक्का दुइ और॥५॥

चेतन जीव शरीर त्याग कर जब पृथक् हो जाता है। उस समय उसकी जाति भला! कोई क्या कहेगा? ॥१॥ और उसे काला, उज्ज्वल कि लाल, पीला कहेगा? चार वर्ण रहित इसाई आदि कहेगा कि ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य तथा शूद्र रूप उसे वर्णान्तर्गत कहेगा? उस चेतन को कोई गर्म कहेगा कि शीतल? ॥२॥ अथवा उसे कोई हिन्दू कहेगा कि मुसलमान? बुड्ढा कहेगा कि बालक? तथा स्त्री कहेगा या पुरुष—इसका विचार करो ॥३॥ पै=परन्तु, दास-

कबीर=भूले जीव, उस ब्राह्मणादि वर्ण को सत्य करके जाने हैं। फिर यह निर्णय किससे कहा जाय? ये भूले भाई निर्णय मानते ही नहीं ॥४॥

अनादि काल से मिथ्या पक्ष में जीव संसार-सागर में बहा है, आज भी उसी मिथ्याभिमान वश वह रहा है। यह संसार-सागर में डूबता हुआ प्राणी सत्संग ज्ञान रूप नौका-रस्सा को त्याग कर मिथ्या वस्तुओं को चारों ओर से पकड़-कर पार होना चाहता है। इसकी कितनी अज्ञानता है? यदि यह मनुष्य शिक्षा नहीं मानता है, तो भी हे सन्तो! अपने दयास्वभाव से समता पूर्वक दो वचन का सहारा और दे दो ॥५॥

व्याख्या—जो लोग ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र और नाना जाति अपने को मानकर अपने-अपने जाति का या वर्ण का अभिमान करते हैं। वे ठीक नहीं करते हैं। किसी जाति को श्रेष्ठ मानकर न उसका अभिमान होना चाहिये और न किसी जाति को तुच्छ मानकर उसको दीन-हीन ही मानना चाहिये। अपने वर्ण या जाति को श्रेष्ठ मान कर अन्य वर्ण तथा जाति को तुच्छ देखना महान अज्ञानता है। केवल ब्राह्मण या क्षत्री ही को अभिमान होता हो, ऐसी बात नहीं है। बल्कि जहाँ अज्ञान है, वहाँ सब वर्ण और जाति वालों को अपने में श्रेष्ठत्व का अभिमान है। जो लोग भूले हैं, ऐसे ब्राह्मण भाइयों में यह जाति-पाँति सम्बन्धी

अभिमान की मात्रा अधिक है। साथ-साथ क्षत्री, वैश्य और शूद्र लोगोंमें से भी अधिकांश भाई लोग अपनी अज्ञानता का परिचय देने के लिये वर्ण और जाति का अभिमान प्रकट कर देते हैं। इन पंक्तियों के लेखक से सूप इत्यादि बनाने वाले एक शूद्र जातीय 'धरिकार' ने कहा—धरिकार सब जातियों के सरकार हैं। क्योंकि कैसा अच्छा तुक बैठता—' धरकार,सरकार !" इसप्रकार जातीय अभिमान का मोह प्रवल है। और इसी उदाहरण अनुसार एक ब्राह्मण जातीय पण्डित जी मेरे से कहे—"ब्राह्मण चाहे पाप करे या पुण्य, उसकी गति सदैव अच्छी ही होगी। क्योंकि सोना कचड़े में पड़े रहने पर भी सोना से मिट्टी नहीं होता।" बतलाइये ! यह उन पण्डितजी की कितनी भयंकर भूल थी ? यदि कहिये "पूजिये विप्र सकल गुण हीना ॥" तो रावण फिर क्यों नहीं पूजा गया ? क्यों उसे मारा गया ? 'उत्तम कुल पुलस्त कर नाती' ब्राह्मण वर्ण का रावण राक्षस क्यों कहा गया ? भला ! पाप करने से भी ब्राह्मण की जब अच्छी गति होती है और गुण-हीन होते हुए भी पूजने योग्य हैं, तब भागवत और स्मृति में इस प्रकार क्यों लिखा है ?

श्लोक—सन्ध्यायेन न विज्ञाता सन्ध्या येनानुपासिता।
जीवन्नेव भवेच्छूद्रो मृतः श्वा चाभि जायते ॥
(देवी भागवत ११।१६।६)

'जो द्विज सन्ध्या नहीं जानता और सन्ध्या नहीं करता है, वह जीता हुआ ही शूद्र हो जाता है। और मरने पर कुत्ते की योनि को प्राप्त होता है।'

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्।
स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विज कर्मणः॥

(मनुस्मृति २।१०३)

'जो द्विज प्रातःकाल और सायंकाल की सन्ध्यावन्दन नहीं करता, उसे द्विज जाति के सम्पूर्ण कर्मों में से शूद्र की भाँति अलग कर देना चाहिये।'

इस प्रकार अनेक उदाहरण हैं। विचार की बात तो यह है कि चाहे कोई ब्राह्मण हो, चाहे क्षत्री, वैश्य या शूद्र हो, यहाँ तक कि चाहे कोई उत्तम साधु का ही भेष क्यों न बनाये हो। परन्तु यदि वह अच्छा कर्म करेगा, तो उसकी शुभ गति होगी और यदि वह बुरा कर्म करेगा, तो उसकी बुरी दशा होगी। मनुष्य का कल्याण-अकल्याण जाति-वर्ण पर निर्भर नहीं है। वह तो शुभाशुभ कर्म पर निर्भर है। क्या कोई साधु-भेष धारी या ब्राह्मण चोरी करते पकड़ा जायगा, तो दण्ड नहीं पायेगा? क्या वह किसी मनुष्य को मार डाले तो न्याय द्वारा उसे फाँसी का दण्ड नहीं मिलेगा? अवश्य मिलेगा।

कुछ ब्राह्मण भाइयों की यह भी भूल रहती है—"वे कहते हैं कि ब्राह्मण चाहे ज्ञानी हो चाहे अज्ञानी, वही

सबका गुरु है। अथवा जो ब्राह्मण वर्ण के साधु हो जाते हैं, वे ही साधु श्रेष्ठ, पूज्य और गुरु मानने योग्य हैं और ब्राह्मण वर्ण के अतिरिक्त चाहे कोई ज्ञानी-गुणी भी साधु हो, तो भी वह श्रेष्ठ, पूज्य तथा गुरु मानने योग्य नहीं है।"

यह बात बिल्कुल भूल की है। ऊपर ही देवी भागवत और स्मृति के प्रमाण से बताया गया है कि सन्ध्या न करने वाला ब्राह्मण इसी जीवन में शूद्र हो जाता है। भला! बताइये, जब केवल सन्ध्या न करने से वह शूद्र हो जाता है। तब बिना स्वरूपज्ञान, वैराग्य, विवेकादि धारण किये, वह गुरु क्या होगा? गुरु तो जीवों को भव से पार लगाने वाला होता है। फिर स्वयं विषय-कल्पना रूपी भव में डूबा हुआ व्यक्ति क्या अन्य का गुरु हो सकता है?

साधु दशा में आये हुए चाहे ब्राह्मण वर्ण के हों चाहे क्षत्री, वैश्य तथा शूद्र हों अथवा कोई भी हो, जिनका वैराग्य, त्याग, स्वरूपज्ञान और सदाचरण-सद्गुण श्रेष्ठ रहेगा, वही श्रेष्ठ, पूज्य तथा गुरु मानने योग्य होगा। परमार्थ-पथ साधु दशा में जाति-वर्ण की विशेषता नहीं है, यहाँ ज्ञान-वैराग्यादि की ही विशेषता है। इसके विषय में इतने प्रमाण हैं कि सब लिखे जाय तो एक बड़ी भारी पोथी तैयार हो जाय। संकेत मात्र यहाँ कुछ प्रमाण दिये जाते हैं।

राजा और क्षत्री के घराने की रानी मीराबाई के गुरु 'रैदासभक्त' थे। युधिष्ठिर के यज्ञ में किसी के खाने से घण्टा

नहीं बजा, श्वपच भक्त के खाने पर ही घण्टा बजा। श्रीराम ने शूद्र जातीय सेवरी तथा गुहराज का आतिथ्य स्वीकार किया। धृतराष्ट्र के प्रति गीता का उपदेश करने वालेदिव्य दृष्टि 'सञ्जय' शूद्र थे। महाभागवत इत्यादि १८ पुराण और महाभारत, गीता तथा वेदान्त दर्शनादि के रचयिता 'वेदव्यासजी' धीमर (गोड़िया) की कन्या के उदर से पैदा हुए थे। इनके पिता पारासर मुनि थे। परन्तु 'पारासरजी' भी श्वपच (डोम) की लड़की के उदर से पैदा हुए माने जाते हैं। नैमिषारण्य क्षेत्र में अट्ठासी हजार ऋषेश्वरों को उपदेश करने वाले 'सूतजी' बढ़ई के बालक माने जाते हैं*। महारामायण के रचयिता श्री बाल्मीकि जी प्रथम रत्नाकर नाम के महा व्याध और डाकू थे। परन्तु सत्संग के प्रभाव से पीछे से महान् धुरन्धर ज्ञानी-वक्ता हुए। नारदजी दासी (शूद्रिन) के पुत्र थे। भारद्वाज जी शूद्रिन के पुत्र माने जाते हैं। विश्वामित्र जी क्षत्री के बालक थे। यह पद भी जगत्-प्रचलित है। "बैठी पड़ाइन बैठी शुकुलाइन, आइगै बिमान गन्धकिनियाँ कै। मोका भावैल भक्ती भिलिनियाँ कै॥"

अतएव यह भूल बिल्कुल त्याग देना चाहिये कि 'अन्य

---

*--इन पंक्तियों के लेखक से एक श्रीमद्भागवत की कथा कहने वाले पण्डित ने बताया कि। 'सूत जी' बढ़ई के बालक थे। सम्भवतः यह बात भागवत में नहीं लिखी है। यह अन्य पुस्तक में है।

वर्णों में ज्ञानी नहीं हो सकते।' वैराग्य-विवेकादि सद्गुण युक्त चाहे जिस वर्ण के सन्त हों, चारों वर्ण के गृहस्थों को चाहिये कि उनका नमस्कार करें और उनके सत्संग में नम्रता पूर्वक जायँ और सत्संग करके अपना जीवन लाभ उठावें। देखिये! जब अपने बच्चों को स्कूल में पढ़ने भेजा जाता है, तब स्कूल के मास्टर से यह नहीं पूछा जाता कि "आप किस वर्ण के हैं, आपके माता-पिता कौन हैं? यदि आप ब्राह्मण नहीं होगे, तो मैं अपने बच्चे को आपसे नहीं पढ़ाऊँगा इत्यादि।"

मुसलमान, चमार, भंगी इत्यादि जातियों के लोग तहसीलदार, डिप्टी, कलक्टर तथा नाना अफसर आज-कल होते हैं। जिनमें से अधिकांश हिंसकी मांसाहारी और धर्म-परमार्थ से अज्ञानी रहते हैं। परन्तु उनके सामने होते ही ब्राह्मणादि चारों वर्ण के लोग उनका निःसंकोच नमस्कार करते हैं। उनके नमस्कार करने में जाति-पाँति का विचार नहीं करते। परन्तु जो अहिंसा शुद्धाचार तथा विवेक-वैराग्यादि सद्गुणयुक्त सन्त हैं, उनको देखकर भूलेभाई लोग यह सोचते हैं "पता नहीं ये कौन वर्ण के हों। अतः कैसे इनका नमस्कार किया जाय?" इसीलिये वे सत्संग से हीन बनकर अज्ञान के पात्र बने रहते हैं। कहा है—

दोहा—तात मात बनिता तनुज, लोक लाज कुल कानि।
साधु दरश को जब चले, ये अटकावें आनि॥
(सा० सं०)

अतः कोई किसी वर्ण-जाति या भेष के नाते श्रेष्ठ,पूज्य, गुरु और मुक्त नहीं हो सकता। जो दया, क्षमा, शील,सत्य, धैर्य, विचार, सन्तोष, शान्ति,विवेक, वैराग्य तथा गुरुभक्ति आदि सदाचरण-सद्गुण धारण करता है। वही सन्त श्रेष्ठ, पूज्य, गुरु और मुक्त हो सकता है। चाहे जिस वर्ण-जाति का सन्त हो।

चारवर्ण और अनेक जातियाँ केवल व्यवहार में मनुष्यों ने माना है। परन्तु विवेक करके देखिये, न तो यह शरीर कोई जाति-वर्ण है और न चेतनजीव ही कोई जाति-वर्ण है। सब का शरीर जड़ जाति का है और सब चेतन ज्ञान रूप हैं। यह चेतनजीव कर्मानुसार समय-समय ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र, इसाई तथा मुसलमान सब जातियों के बीच में शरीर धरता है। यह मनुष्य, पशु, अण्डज और उष्मजादि चारों खानियों में समय-समय शरीर धारण करके भ्रमता है। फिर इस जीव को कौन-सी जाति का माना जायगा? इसीलिये यहाँ श्रीकबीर साहेब ने कहा है—

"हंस देह तजि न्यारा होई। ताकर जाति कहै धौं कोई॥"

अर्थात् इस चेतन में ज्ञान मात्र के अतिरिक्त कोई जाति-वर्ण नहीं कहा जा सकता है। न काला (तमोगुणी शूद्र) कहा जा सकता है, न उज्ज्वल (सतोगुणी ब्राह्मण) कहा जा सकता है, न रक्त-लाल (रजोगुणी क्षत्री) कहा जा सकता है और न तो पीला (रज-तम युक्त वैश्य) ही कहा जा

सकता है। चेतन को न अवरण (इसाई-मुसलमान) कहा जा सकता है और न वरण (ब्राह्मण,क्षत्री,वैश्य, और शूद्र) ही कहा जा सकता है। न उसे गर्म कहा जा सकता है न ठण्डा कहा जा सकता है। चेतन को हिन्दू-मुसलमान बूढ़ा-बालक या स्त्री-पुरुष नहीं कहा जा सकता है। स्त्री-पुरुष और जातित्वभाव सब देह का स्वांग है और मनोमय का स्वप्न है। इसकी कल्पना चेतन में नहीं करनी चाहिये।

ध्यान रहे ! श्री कबीर साहेब के कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि "सब कोई सबके साथ खा लेवें।" उन्होंने सबके साथ भोजन करने को रोका है और सबकी संगत करने को रोका है। आपने कहा है—

"आपन ऊँच नीच घर भोजन, घीन कर्म हठि वोद्र भरे ॥"

सङ्गत कीजै साधु की, हरै और की व्याधि।
ओछी संगत कूर की, आठो पहर उपाधि ॥
संगत से सुख उपजै, कुसंगति से दुख होय।
कहहिं कबीर तहँ जाइये, जहँ अपनी संगत होय ॥

यहाँ साहेब ने आचरण सम्पन्न मनुष्यों के यहाँ ही भले लोगों को भोजन करने का और बैठक-उठक (सङ्गत) रखने का उपदेश दिया है।

इस प्रकार से गृहस्थों को मर्यादा पूर्वक चलना चाहिये। विवाह-शादी लोकाचारानुसार विचार पूर्वक करना

चाहिये। और गृहस्थ-भक्त-सन्त—मनुष्य मात्र का कर्तव्य है कि वह सत्य की कमाई से उपार्जित या अन्य द्वारा सहर्ष अर्पण किये हुए अन्न को लोकाचारानुसार या सन्त-भक्त समाज के अहिंसकी-साकाहारी एवं शुद्धाचारी के हाथ के बनाये हुए भोजन को कुर्ता-टोपी, जूतादि उतार कर स्नानादि शुद्धता करके,हाथ-पैर-धोकर, चौका के भीतर पीढ़ा या पृथ्वी पर बैठ कर ग्रहण करे। अशुद्धाचारी या सन्त-भक्त समाज का न होते हुए लोकाचार विरुद्ध जिस किसी मनुष्य के हाथ का बनाया भोजन बिना नहाये, बिना कुर्ता, जूतादि उतारे, बिना हाथ-पैर धोये, जहाँ कहीं बैठकर या होटल में नहीं खाना चाहिये। अत्यन्त शुद्धाचारी-सदाचारी और विचारवान् व्यक्ति के हाथ का ही भोजन करना उचित है। भले मनुष्य और सन्त के पास ही बैठना योग्य है। यहाँ साहेब ने मिथ्या वर्णाभिमान खण्डन करने के लिये ही यह प्रसंग कहा है। कुछ उन्होंने उचित मर्यादा तोड़ने या अशुद्धाचार करने के लिये नहीं कहा है। बल्कि उचित मर्यादा और शुद्धाचार रखने का उन्होंने बड़ा जोर दिया है। फिर आज-कल के भौतिक युग में तो उचित मर्यादा की रक्षा और शुद्धाचार की बड़ी आवश्यकता है।

"बहा है नहि जात है, कर गहे चहुँ ओर।
जो कहा नहिं माने, तो दे धक्का दुइ और॥"

अर्थात् 'बहता हुआ व्यक्ति यदि कहा नहीं मानता है, तो

उसे दो धक्का (ठोकर) और देकर नदीमें डुबा देना चाहिये, ऐसा श्री कबीरसाहेब ने क्यों कहा है ? इस प्रकार कुछ लोग शंका उपस्थित करते हैं। तो यह उनकी शंका ही अयुक्त है। क्योंकि यहाँ श्री कबीरसाहेब ने दो ठोकर और देकर डुबाने को नहीं कहा है। धक्का का शुद्ध शब्द धका है और धका का अर्थ श्रीकबीरसाहेब ने बन्दरगाह अर्थात् किनार लिया है। जहाँ नदी या समुद्र के तट पर जहाज और नावका लगती है। उस तट को ही बन्दरगाह या धका कहा जाता है। जिसका प्रमाण इसी ग्रन्थ में श्री कबीरसाहेब द्वारा कही हुई साखी है—आगे सीढ़ी साँकरी, पाछे चकना चूर।

परदा तर की सुन्दरी, रही 'धका' से दूर ॥६६॥

यहाँ भी 'धका' का अर्थ तट, घाट, किनारा या बन्दरगाह लिया गया है। इसी ग्रन्थ में आया है "मिलहिं सन्त वचन दुइ कहिये" इसीप्रकार है "दे धक्का दुइ और" अर्थात् जड़-चेतन दो वस्तु सत्य हैं—इस दो निर्णय वचन का धका (किनारा-तट या सहारा) दे दो।

भला ! यह सोचना चाहिये कि श्रीकबीरसाहेब ऐसे सन्त यह कब कह सकते हैं कि जो कहा नहीं मानता है, उसको दो ठोकर और देकर डुबा देना चाहिये। आपने तो ऐसा कहा है :—

"वो तो वैसा ही हुआ, तू मति होय अयान।
वो निर्गुणिया तैं गुणवन्ता, मति एकै में सान ॥"

"घाव काहि पर घालो, जित देखो तित प्राण हमारो।"
"भलयन सँग भलयन करन, यह जग को व्यवहार॥"
बुरयन सँग भलयन करन, यह बिरला संसार॥"
अतः यहाँ धका का अर्थ तट या सहारा है, ठोकर नहीं।

शिक्षासार—सबके देहों में रहने वाले चेतन ज्ञान मात्र हैं, वे कोई जाति-वर्ण के नहीं हैं। केवल जाति-पाँति से किसी का कल्याण नहीं होता। हर जाति-वर्णों में ज्ञानी सन्त होते हैं, वे पूज्य, श्रेष्ठ और गुरु मानने योग्य हैं। अतः जाति-वर्ण का अभिमान सर्वथा त्यागकर उचित मर्यादा और शुद्धाचार को लेकर सन्तों के सत्संग द्वारा अपना कल्याण करना चाहिये। अपने को बड़ी जाति वाला मानकर न अभिमान करना चाहिये और न अपने को छोटी जाति वाला मान कर दीन-मलीन बनना चाहिये। अहिंसकी-सदाचारी ही श्रेष्ठ है और हिंसकी-दुराचारी ही तुच्छ है। अथवा यों कहिये, निर्मानी ही श्रेष्ठ है और अभिमानी ही तुच्छ है।

३२—(बेलि—१)

हंसा सरवर शरीर में, हो रमैया राम॥१॥
जागत चोर घर मूसहिं, हो रमैया राम॥२॥
जो जागल सो भागल, हो रमैया राम॥३॥
सोवत गैल बिगोय, हो रमैया राम॥४॥
आजु बसेरा नियरे, हो रमैया राम॥५॥

काल बसेरा बड़ि दूर, हो रमैया राम ॥६॥
जइहो बिराने देश, हो रमैया राम ॥७॥
नैन भरोगे दूरि, हो रमैया राम ॥८॥
त्रास मथन दधि मथन कियो, हो रमैया राम ॥९॥
भवन मथेउ भर पूरि, हो रमैया राम ॥१०॥
फिर के हंसा पाहुन भयो, हो रमैया राम ॥११॥
बेधिन पद निर्बान, हो रमैया राम ॥१२॥
तुम हंसा मन मानिक, हो रमैया राम ॥१३॥
हटलो न मानेहु मोर, हो रमैया राम ॥१४॥
जसरे कियहु तस पायउ, हो रमैया राम ॥१५॥
हमरे दोष का देहु, हो रमैया राम ॥१६॥
अगम काटि गम कियहु, हो रमैया राम ॥१७॥
सहज कियउ विश्वास, हो रमैया राम ॥१८॥
राम नाम धन बनिज कियो, हो रमैया राम ॥१९॥
लादेउ वस्तु अमोल, हो रमैया राम ॥२०॥
पाँच लदनुवा लादि चले, हो रमैया राम ॥२१॥
नौ बहियाँ दश गोनि, हो रमैया राम ॥२२॥
पाँच लदनुवा खागि परे, हो रमैया राम ॥२३॥
खाखर डारिनि फोरि, हो रमैया राम ॥२४॥
शिर धुनि हंसा उड़ि चले, हो रमैया राम ॥२५॥

सरवर मीत जो हारि, हो रमैया राम ॥२६॥
आगि जो लागी सरवर में, हो रमैया राम ॥२७॥
सरवर जरि भौ धूरि, हो रमैया राम ॥२८॥
कहहिं कबीर सुनो सन्तो हो रमैया राम ॥२९॥
परखि लेहु खरा खोट, हो रमैया राम ॥३०॥

हे रमैयाराम चेतन हंस ! मानन्दी (ममता) रूपी तुम्हारा तालाब शरीर में है ॥१॥ तुम ज्ञान रूप हो, परन्तु तुम्हारे मोह-नींद वश कामादि चोर तुम्हारे अन्तःकरण रूपी घर में विवेकादि धन चुरा रहे हैं ॥२॥ जो मोह-नींद से जाग गया, वह तो अपना ज्ञान-धन बचाकर इन कामादि चोरों से भाग बचा ॥३॥ और जो मोह-नींद में सोया रहा, वह अपने ज्ञान-धन को खो दिया ॥४॥ हे रमैयाराम चैतन्य ! आज मोक्ष प्रद स्वस्थ नर-जन्म में कल्याण पद-पारखस्थिति रूप अचल निवास तुम्हारे अत्यन्त निकट है। परन्तु आज नर-जन्म में चूक जाने पर कल (मृत्यु पश्चात्) जब पशु आदि खानियों में पड़ जाओगे, तब अपना मोक्ष-निवास बहुत दूर हो जायगा ॥५-६॥ हे रमैयाराम चैतन्य जीव ! पराये देश रूप पशु आदि खानि में या जगत्-जड़-दृश्यों में तू जायगा। तो कल्याण से दूर पड़ा नेत्रों में आँसू भर-भर कर रोया करेगा ॥७-८ ॥ हे रमैयाराम ! जगत् में दुःख मानकर उसकी निवृत्ति के लिये यदि वेद-शास्त्रादि वाणी

रूपी समुद्र तूने मथन किया। और अनेक तप तथा योग-क्रियादि करके जो तू शरीर रूप भवन को पूर्णरूप से मथन किया, तो इससे भी तुम्हारा दुःख छुटकारा और मोक्ष नहीं होगा, बिना पारख ॥९-१०॥ हे रमैयाराम ! मोक्ष प्राप्त न होने से चेतन हंस पुनः दुःखरूपी शरीर-सरोवर का पहुना होता है॥११॥ क्योंकि इसने निर्वान पद अर्थात् शून्य विषय-क्रीड़ा-स्थल या कल्पना में लक्ष्य लगाया है ॥१२॥ हे हंस चेतन ! तू तो सब मन-मानन्दियों को मानने वाले सबसे श्रेष्ठ हो, यदि चाहो तो सब मानन्दी त्यागकर अपना कल्याण कर सकते हो ॥१३॥ परन्तु मेरी शिक्षा तूने नहीं माना न मानता है। इसी से दुखी है ॥१४॥ हे रमैयाराम ! जैसा तूने किया वैसा पाया ॥१५॥ फिर अपनी भूल वश गुरु को क्या दोष देता है ? ॥१६॥ कर्ता अगम मानकर गम स्वरूप ब्रह्म तूने निश्चय किया ॥१७॥ और सहज स्व-रूप आत्मा में विश्वास किया। परन्तु हे रमैयाराम ! सर्व विकारी जगत् का अधिष्ठान अद्वैत बन कर तू महा रोगी हुआ, अपने चेतन पारख स्वरूप को जगत्-ब्रह्म से भिन्न नहीं किया॥१८॥हृदय-निवासी अपने रमैयाराम में न स्थित होकर तूने सगुण-निर्गुण रूपी धन का व्यापार किया॥१९॥ और उसी को अमूल्य वस्तु जानकर मन, बुद्धि, चित्त, अहं-कार और अन्तःकरण पर लाद लिया ॥२०॥ नौ व्याकरण और चारवेद छःशास्त्र ये दश, इनकी कल्पित वाणी रूपी

बोझ को उक्त पाँचों लदनुवाँ लाद ले चले ॥२१-२२॥ परन्तु वे मन, बुद्धि, चित्त,अहंकार तथा अन्तःकरण— पाँचों लदनुवे, जब वृद्धावस्था या अन्तकाल आने पर निर्बल हो गये। फिर तो यह हाड़ का ठाट रूप खाखर-शरीर नष्ट हो गया॥२३-२४॥और रमैयाराम हंस चेतन रो-रो शरीर त्याग कर वासना-वश अन्य योनि में गमन कर चले ॥२५॥ जिस शरीर और शरीर सम्बन्धी प्राणी-पदार्थ रूप सरोवर को ममता करके अपना आनन्द-स्थल माना था और उससे मित्रता किया था। अहो! उसी धोखे में यह चेतन हंस अपने कल्याण-साधन को हार गया ॥२६॥ फिर तो चेतन-हंस के त्यागे हुए शरीर-सरोवर में लोगों ने अग्नि लगा दी ॥२७॥ और शरीर-सरवर जल कर धूल हो गया ॥२८॥ सद्गुरु श्रीकबीर साहेब कहते हैं— हे सन्तो! और हे रमैयाराम चेतन-हंसो! सुनो,सत्संग में आकर सत्य-असत्य की परीक्षा कर लो। धोखे में दुःख के पात्र न बनो ॥२९-३०॥

व्याख्या—दीनबन्धु करुणाभवन सद्गुरु श्रीकबीरदेव इस बेलि प्रकरण को बड़े करुणा के साथ कहे हैं—हे हंस-चेतन! जल-दुग्धवत् जड़-चेतन, सत्य-असत्य, बन्ध-मोक्ष आदि का तू निर्णय कर्ता है। हे हंस-चेतन! तुम्हें तो सत्संग-साधन या स्वरूपस्थिति रूपी सरोवर में शान्ति-अनुभवरूपी मोती चुगना चाहिये। परन्तु दुर्भाग्य वश तू इस नाशवान्-अशुद्ध शरीर और शरीर सम्बन्धी स्त्री-पुत्र-मित्र-कुटुम्ब धन,धाम और

शब्दादिक पञ्च-विषय रूप सरोवर में अनर्थकारी विषय-भोग रूपी मोती चुग रहा है।

यह चेतन-हंस स्वरूप से ज्ञान रूप जाग्रत है, परन्तु अनादि अध्यास के वश होकर विषयों के मोह-निद्रा में सुषुप्त की भाँति पड़ा है। इस ज्ञानरूप चेतन के मोह-वश होने से इसके अन्तःकरण रूपी घर से क्षमा, शील, विवेक वैराग्यादि रूपी धन को काम,क्रोध,लोभ,मोह तथा कल्पनादि चोर लूट रहे हैं। परन्तु जो संसार-शरीर और विषयों के मोह-नींद से जाग जाता है। वह इन कामादि चोरों से भागकर अपना जान-माल सुरक्षित कर लेता है। और जो मोह-नींद में जीवन पर्यन्त सोया ही रहता है, वह खराब हो जाता है। संसार और विषयों के मोह में पागल हुआ मनुष्य समझता है कि काम, क्रोध, लोभ, मोह ये हमारे मित्र हैं, सुखदायी हैं। परन्तु ये ही जीव के पक्के शत्रु हैं।

अपना मुख्य बसेरा, अपना निज नित्य का निवास-स्थान अपना चैतन्य पारख स्वरूप है, जिसे परम्पद, अमरपद तथा मोक्षपद आदि अनेक नामों से कहा गया है। वह अविनाशी धाम है, वह कभी बिगड़ने वाला, छिन जाने वाला और छूट जाने वाला नहीं है। उस धाम में स्थित पुरुष संसार में लौट कर पुनः कभी भी नहीं आता। उस अपने चेतनधाम में स्थित पुरुष को भूख-प्यास, सुख दुःख, हर्ष-शोक, शरीर-मन, जन्म-मरण आदि दृश्यों का सम्बन्ध नहीं

होता। वहाँ सूर्य चन्द्र, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी के परमाणु मात्र का गम नहीं है। वह सर्वदा सर्वथा दुःख-रहित धाम है। वह स्वरूपस्थिति-मोक्षदशा रूपी अपना मुख्य निवास-स्थान आज नर-जन्म में बिल्कुल सन्निकट है। मनुष्य चाहे तो आज संसार से मुख फेर कर उस अपने अविनाशी घर में अभी, इसी क्षण अचल विश्राम कर सकता है।

परन्तु ध्यान रहे! यदि आज मनुष्य चूक गया, वह संसार के मोह में ही पागल बना रहा। मोह से जाग्रत होकर आज उस अमर-घर में नहीं विश्रान्ति लिया, तो यह मानव-शरीर छूट जाने पर कल पशु आदि खानियों में जब जीव पड़ जायगा। तब यह मोक्ष-स्थान (स्वरूपस्थिति-जीवन्मुक्ति दशा) बहुत दूर हो जायगी। निजस्वरूपस्थिति देश दायक यह नर-देह जब छूट जायगी, तब हे रमैया राम! तू पशु-पक्षी, कृमि-कीट आदि योनि रूप परदेश में जायगा। तब वहाँ उन विवश खानियों में अपने कल्याण से दूर पड़ा हुआ आखों में आँसू भर-भर कर रोया करेगा। इन त्रयखानियों की दुर्दशायें सब को प्रत्यक्ष हैं। पशु, कुत्ता, सियार, भेड़हा इत्यादि के अङ्गों में घाव हो गये हैं, अनन्त कीड़े किलबिलाते हैं। परन्तु हाय! वहाँ कौन-किसका मलहम-पट्टी करे? पशु, पक्षी, कृमि-कीटादि एक-को-एक नोच लेते हैं, काट खाते हैं। जीते जी एक-को-एक निगल जाते हैं। ग्वालिन-केंचुआ आदि एक-एक जन्तु को अनेक चींटियाँ मिलकर जिन्दे जी

काट-काट कर दिन-का-दिन खाया करती हैं। वह दिन-का-दिन तलफा करता है। अहो! वहाँ कौन-किसे बचावे? कौन-किसका सुने? अनेकों पशु, पक्षी, मछली आदि को निर्दयी पापी स्वादासक्त मनुष्य जीते जी काट डालते हैं, जीते जी आग में छोड़कर जला डालते हैं। अहो! इन सब दुर्दशाओं को,असह वेदनाओं को हम सब अनन्तों बार भोग चुके हैं। केवल विषयासक्ति और संसार के मोह वश नर-जन्म में अपना कल्याण न करने से यह हमारी अवदशा हो रही है। अतः हमें अब भी तो जागना चाहिये।

भर्तृहरि जीने कहा है—

दोहा—सह्यो गर्भ दुख जन्म दुख, यौवन त्रिया वियोग।
वृद्ध भये सबहिन तज्यो, जगत किधौं यह रोग॥

अथवा हे रमैयाराम! तू यदि मन-इन्द्रिय, जड़-जगत् रूप पराये देश में जायगा, तो दुःखों के वशीभूत होकर तू अपने स्वरूपदेश से दूर पड़ा रोया करेगा।

इसके विषय में महामाननीय सद्गुरु श्री विशाल साहेब का एक शब्द यहाँ आता है:—

शब्द

पैहौ भरम मन जइहौ विदेशवा हो॥ टेक॥
इन्द्रिन देश बसेउ तजि देशवा,
सब के हाथ बिकनवा हो॥ १॥

तृष्णा प्रबल भयानक शिर पर,
कुमति के साथ लोभनवा हो ॥ २ ॥
अनहोंने सुख फिरि फिर खोजिहौ,
हरक्षिन होय कलेशवा हो ॥ ३ ॥
धार मानसिक झगरे परिहौ,
सब दिन होय कुदिनवा हो ॥ ४ ॥
निजहि छोड़ि तुम सबहिं जोहरिहो,
गरज के अनल जरनवा हो ॥ ५ ॥
भार परिश्रम पार न पइहौ,
शोको फिकिरि हमेशवा हो ॥ ६ ॥
उनके विवश रहन होय निशिदिन,
जौन कहैं सोई करत बननवा हो ॥ ७ ॥
विषय विवश तुम काह न करिहौ,
तिनके भोग न होय चुकनवा हो ॥ ८ ॥
सबहिं सताय साताये गये तुमहूँ,
धरि धरि देह न होय सिरनवा हो ॥ ९ ॥
लोह जजीर न रसरी बन्धन,
बड़े-बड़े सुभट सो खायँ पछरवा हो ॥१०॥
सुख अध्यास काटि भ्रम बन्धन,
आसक्ति जीति सोई सन्त सुजनवा हो ॥११॥
सोइ रहि स्ववश एकरस जीवन,
क्षणिक जगत् सोई डारि बमनवा हो ॥१२॥

कोइ कोइ सन्त प्रकट ह्वै जगमें,
पार होय सोइ पार करनवा हो ॥१३॥
सत्य परीक्षक धारण वैसहिं,
दुख को दुख नहिं मानै सुखनवा हो ॥१४॥
(भवयान जगत-जहर, पाठ ६ शब्द १०)

यहाँ सद्गुरु श्री विशाल साहेब कहते हैं। हे जीव ! यदि तू मन के वश होकर विदेश रूप पञ्चविषय, जड़-जगत् और मनोमय में जायेगा, तो तेरे को बड़ा कष्ट होगा। वह सब दुःख आपने १ से १० पद तक वर्णन किया है। फिर ११ से १४ पद तक आपने दृश्य विदेश से विमुख स्वदेशी सन्तों का रहस्य बतलाया है। जड़-दृश्य जगत् पञ्चविषय और मनोमय ही विदेश है तथा अपना चेतन स्वरूप ही स्वदेश है।

इस संसार में दुःख मानकर वैराग्य भी धारण किया जाय, परन्तु पारखी सद्गुरु का सत्संग यदि न मिले और वह साधक वेद शास्त्रादि वाणी रूपी समुद्र को बहुत मथन करे तथा योगक्रिया द्वारा नेती-धोती आदि करके इस शरीर को भी भलीभाँति मथन कर डाले, तो भी उसका कल्याण नहीं होता। उसे संसार का अतिथि पुनः-पुनः होना पड़ता है। जब तक मनुष्य का खानी-वाणी के किसी भी पदार्थ और मानन्दी में लक्ष्य रहेगा, वह बारम्बार जन्मता-मरता ही रहेगा।

हे रमैयाराम हंस-चेतन ! तू ही मन-भ्रम का मानने वाला है। तूही ने मान-मान कर स्त्री-पुत्र धन-मकान और शरीर का दास बन गया है। तू ही अपने को भूल कर अपने से भिन्न कर्ता-धर्ता और देवी-देवादि की कल्पना कर लिया है। तू सब का कल्पना कर्ता, श्रेष्ठ, सबल और शुद्ध चैतन्य है। तू सत्संग में आकर सम्हल जा। अपनी करनी अपने को भोगनी पड़ती है। अतः तू किसी को दोष मत दे। तू शीघ्र अपने आप को सम्हाल !

इस मनुष्य ने जिन प्राणी-पदार्थों से राग बना रखा है, या जिन-जिन की कल्पनायें कर लिया है। वे प्राणी-पदार्थ, वे कल्पना कृत मानन्दियाँ शरीर के छूटते समय सब यहीं छूट जाते हैं। और यह हाड़-मांस तथा चाम का ढाँचा टूट-फूट जाता हैं। शरीर के छूटते समय राग-वश बड़ा कष्ट होता है। वह अपने माने हुए प्राणी-पदार्थों को और इस शरीर को छोड़ना नहीं चाहता। परन्तु क्या करे ? मृत्यु के आने पर वह विवश हो जाता है। और शिर पटक-पटक कर रो-झंख कर चेतन हंस शरीर त्याग कर वासना वश अन्य योनियों में गमन कर चलता है। जिस स्त्री-पुत्र, धन-धाम, पञ्चविषय तथा शरीर रूपी सरोवर में यह चेतन हंस विषय-क्रीड़ा करता था और विषय-भोग रूपी मोती चुगता था। हाय ! उनका सदा के लिये वियोग हो जाता है। जिन वस्तु प्राणी और भोग शरीरादि को इस जीवने अपना गाढ़ मित्र

माना था, जिससे अपनी सच्ची भलाई की आशा थी। अहो ! वही वस्तु-प्राणी तथा भोग-शरीर इस जीव के शत्रु हो गये। क्योंकि इन पदार्थों में आसक्त होकर मनुष्य अपने अल्याण-साधन को भूल जाता है।

सुन्दर दास जी कहते हैं :—

कवित्त

वैरी घर माहि तेरे जानत सनेही मेरे,
दारा सुत वित्त तेरे खोंसि खोंसि खायँगे।
और हू कुटुम्बी लोग लूटें चहुँ ओर हू तें,
मीठी मीठी बात कहि तो सूँ लपटायँगे ॥
संकट परेगो जब कोई नहीं तेरो तब,
अंत ही कठिन वाकी बेर उठि जायँगे।
"सुन्दर" कहत ताते झूठो ही प्रपञ्च सब,
स्वपन की नाईं यह देखते बिलायँगे ॥

हे रमैयाराम हंस ! तुम्हारे निकल जाने पर इस तुम्हारे आनन्द के क्रीड़ा-स्थल शरीर-सरोवर में कुटुम्ब लोग आग लगा देंगे और यह जलकर धूल में मिल जायगा या गाड़ देने पर सड़ जायगा, कीड़े-दीमक खा लेंगे तथा जल में फेंक देने पर इसे मछलियाँ और मगर इत्यादि नोच खायेंगे। अहो ! हे हंस ! मांस से भरी हुई, साँवली-गोरी त्वचायें और मुख-कमल, नेत्रारविन्द, गोल-कपोल, रक्त-अधर, ऊँचा वक्ष, सुडोल

तथा सुन्दर गढ़न युक्त अपनी मानी हुई नव यौवन सम्पन्ना काया लोप हो जायगी। हे हंस! तेरे फँसने के लिये मन रूपी वधिक ने शरीर-कुटुम्ब और धन-धामादि रूप जाल फैला रखा है। अतः तू शरीर और शरीर सम्बन्धी वस्तु-प्राणियों के मोह नींद से सीघ्र जाग्रत हो जा।

इस मन रूपी ठग ने शरीर रूपी अशुद्ध पदार्थ को चिकने चाम से ढक रखा है। जिससे अज्ञानी मनुष्य इस शरीर के दोष को न समझने के कारण अपने और अन्य नर-नारियों के चाम को देखकर मोह-मुग्ध होजाता है। चाम और वस्त्रा-लङ्करों से ढके हुए इस मल-मूत्र पूर्ण अशुद्ध नाशवान् जड़ एवं दुःख रूप काया का अभिमान सर्वथा त्याग देना चाहिये।

हे रमैया हंस! सत्य और असत्य की परीक्षा आज सत्संग में करलो। ऐसा समय मिलना दुर्लभ है। देखो! जड़-चेतन दो वस्तु सत्य (अनादि-अनन्त) अर्थात् सदा रहने वाले हैं। इनका कोई अन्य कर्ता नहीं है। आकाश-शून्य जड़ है और पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु—ये चार तत्त्व जड़ हैं। इन तत्त्वों में धर्म, गुण, शक्ति, क्रियादि षट्भेद स्वा-भाविक हैं, जिससे प्रवाह रूप सृष्टि सदा हुआ करती है। और इनसे सर्वदा और सर्वथा भिन्न ज्ञानरूप अविनाशी असंख्य चेतन हैं, जो अपने-अपने स्वरूप से भिन्न-भिन्न हैं। वासना-वश जड़ चेतन का सम्बन्ध है। बोध-वैराग्य द्वारा वासना त्याग

कर सदैव के लिये मोक्ष होता है। सब पदार्थ के वासना को त्याग कर स्वरूप में दृढ़ स्थित होना ही मोक्ष है। तत्त्व नित्य होते हुऐ भी जड़ हैं, और चंचल, दृश्य दुःख रूप हैं। अतः अपने स्वरूप से पृथक् सब खोटा है। अपना ज्ञान स्वरूप चैतन्य ही खरा, अच्छा और उत्तम है।

शिक्षासार—शरीर-कुटुम्ब धन-धामादि का मोह। इन्द्रियों की दासता और कल्पना का त्याग करके अपने सत्य चेतन पारख स्वरूप में दृढ़ स्थित होना चाहिये।

३३---(बिरहुली—१)

बिषहर मन्त्र न मानै बिरहुली ॥ १ ॥
गारुण बोलै अपार बिरहुली ॥ २ ॥
विषकी क्यारी तुम बोयहु बिरहुली ॥ ३ ॥
अब लोढ़त का पछितहु बिरहुली ॥ ४ ॥

गारुणी पारखी सन्त यद्यपि गारुण-मन्त्र रूप अपार निर्णय बोलते हैं। परंतु विषय-कल्पना का विरही आसक्त जीव विषहारी पारख-मंत्र नहीं मानता ॥१-२॥ हे विषयासक्त जीव ! तूने विषरूपी विषयों के बिरवे बो लिया है। अब उसके दुःखदायी फल को भोगते समय क्या पश्चाताप करता है ? ॥३-४॥

व्याख्या—जो अनेक कल्पित मत-पंथों की गहनता में घिर गये हैं। जो स्त्री-पुत्र, और भोग-विषयों में अत्यन्त आ-

सक्त हैं। वे विवेकी पारखी संतों के निर्णय-शिक्षाओं पर ध्यान नहीं देते। यद्यपि विवेकवान् विविध निर्णय-चर्चा करते हैं। परन्तु विषय कल्पना में भूले जीव को वह शिक्षा ही विषवत् लगती है। गोस्वामी जी कहते हैं—"यहिसर आवत अति कठिनाई" (रामायण)

विषयासक्ति के वश होकर मनुष्य पहले नाना पाप-कर्मों को कर लेता है। फिर कालान्तर में उसके प्रारब्ध-कर्मों को भोगने में पश्चाताप करता है। तो पीछे पश्चाताप करने से क्या होता है? क्योंकि प्रारब्ध कर्म के भोगों को अवश्य भोगना पड़ेगा। हाँ! भविष्य दुःखों से छूटने के लिये विवेक-वैराग्यादि प्रयत्न करना चाहिये।

शिक्षासार—संसार के जितने पाँचों विषयों के राग-भोग, चहल-पहल, आनन्द-उल्लास हैं, चंचलता जनक होने से सब दुःख प्रद हैं। सांसारिक जितने प्राणी, पदार्थ, परि-स्थित एवं अवस्थाओं का सम्पर्क होता है, सब वियोगजन्य, क्षणभंगुर एवं निष्प्रयोजन हैं। अनेक आधि, व्याधि, उपाधि एवं विषयों की तृष्णा में जलते रहना। अभाव का अनुभव करते हुए दुःख भोगना। रोगी होना, बूढ़ा होना मर जाना—यही सब जीवन का सरूप है। अतएव गुरु-आधार लेकर सबकी वासना-प्रियता सर्वथा त्यागकर अपने अमृत स्वरूप में निरन्तर स्थित होना चाहिये।

शब्द

सच्चिद् शान्त तू अविकार ॥टेक॥

नहिं कभी उत्पत्ति तेरो, ना विनाशन हार।
आदि अन्त विहीन, सत्य स्वरूप नित निरधार ॥ १ ॥
ज्ञान मात्र स्वरूप तेरो, दृश्य परखन हार।
जीव द्रष्टा हंस चेतन, विविध नाम पुकार ॥ २ ॥
क्लेश अरु आनन्द सुख-दुख, हर्ष-शोक विकार।
लेश मात्र न द्वन्द्व तुझ में, शान्त दिव्य अपार ॥ ३ ॥
काम क्रोध रु लोभ मोह, वो भय कपट हंकार।
सब विकार विहीन तू, अभिलाष शुद्ध सम्हार ॥ ४ ॥
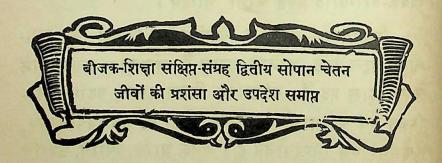
बीजक-शिक्षा संक्षिप्त-संग्रह द्वितीय सोपान चेतन
जीवों की प्रशंसा और उपदेश समाप्त

॥ सोपान-फल ॥

अब नित्य रमण पारख विचार।
अज अमर अचल अविकार सार।
निश्चिन्त शान्त नित निर अधार॥
स्वच्छन्द अबन्ध अद्वन्द्व रूप।
निर्मल सत् चिद् नित परख भूप॥
नित परम् धाम जड़-जगत पार।अब नित्य०॥ १॥

तन-मन गो-गोचर से विहीन।
नित, आदि अन्त गत अति अछीन॥
दुख रहित नित्य निज रूप लीन।
अत्यन्त अन्त जग दृश्य घीन॥
सन्तुष्ट निरन्तर ज्ञानकार॥ अब नित्य०॥ २॥

लख लिया दृश्य अब दुःख मूल।
द्रष्टा सुथोर तजि सूक्ष्म-थूल॥
भव-वृक्ष नित्य हित भो अमूल।
मिट गया सदा का ताप शूल॥
अब नित्य शेष निज निराधार॥ अब नित्य०॥ ३॥

॥ तृतीय-सोपान-महिमा ॥

गो-मन पर तू शम दम सम्हार ।

त्वक् चक्षु श्रोत्र रसना सु घ्राण ।
कोशादि पंच अरु पंच प्राण ॥
स्पर्श रूप रस शब्द गन्ध ।
इनसे विराग ले हो स्वच्छन्द ॥
तू चेतन है अविकार सार ॥ गो-मन० ॥ १ ॥

ललना-आलिङ्गन विषय-भोग ।
सुख, मित्र, पुत्र, धन का सँयोग ॥
ये बन्धन हैं संसृति कु-रोग ।
तज भास विजाती साध योग ॥
सब कल्पित विषय-व्यसन विड़ार ॥ गो-मन० ॥ २ ॥

द्रष्टा बन तज मन के तरंग
निज पारख में हो थिर अभंग ॥
हो दशा यही तब पूर्ण काम ।
यहि मानव का गन्तव्य धाम ॥
सोपान तीसरे में विचार ॥ गो-मन० ॥ ३ ॥

सद्गुरवे नमः

बीजक-शिक्षा

(संक्षिप्त-संग्रह)
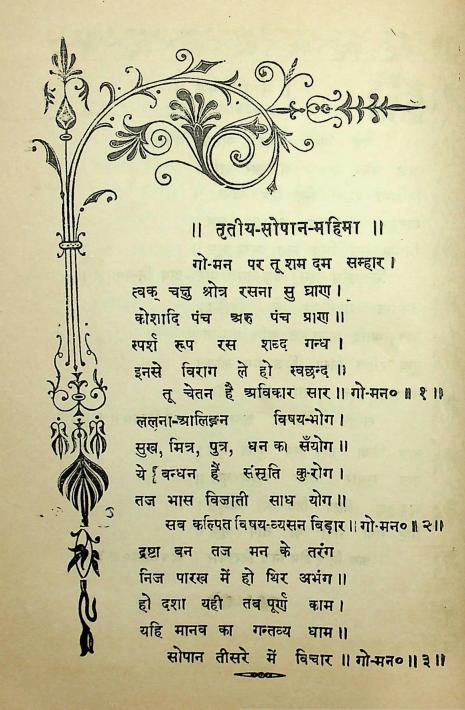
टीका-व्याख्या-शिक्षा युक्त

तृतीय सोपान

इन्द्रिय-वासनाओं की प्रबलता एवं निराकरण

३४--(शब्द—२)

सन्तो घर में झगरा भारी ॥१॥
राति दिवश मिलि उठि२ लागें,पाँच ढोटा यक नारी॥२॥
न्यारो न्यारो भोजन चाहैं। पाँचों अधिक सवादी ॥३॥
कोइ काहू का हटा न मानैं। आपुहि आप मुरादी ॥४॥
दुर्मति केर दोहागिन मेटै । ढोटहिं चाप चपेरे ॥५॥
कहहिं कबीर सोई जन मेरा। जो घर की रारि निवेरे॥६॥

हे सन्तो ! इस शरीर रूपी घर में बड़ा भारी झगड़ा

मचा है ॥१॥ वासना रूपी एक स्त्री और पाँच ज्ञान इन्द्रियाँ रूपी पाँच लड़के—ये छहों रात-दिन उठ-उठकर जीव से झगड़ते हैं ॥२॥ ये (पाँच ज्ञान इन्द्रिय रूप लड़के) भिन्न-भिन्न रूप से भोजन चाहते हैं। क्योंकि ये पाँचों अधिक स्वादासक्त हैं ॥३॥ ये कोई किसी का कहा सुना नहीं मानते। बल्कि ये पाँचों अपनी-अपनी इच्छा को पूर्ण करना चाहते हैं तथा श्रेष्ठ बन रहे हैं ॥४॥ अतएव दुर्बुद्धि रूप वासना की श्रेष्ठता को नष्ट कर डाले। और पञ्चज्ञान-इन्द्रिय रूप लड़कों को साधन से दमन कर दे ॥५॥ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—वही मनुष्य हमारा प्रिय है। जो अपने शरीर रूपी घर के मन-इन्द्रिय सम्बन्धी भोग-वासना रूपी झगड़े को समाप्त कर देता है ॥६॥

व्याख्या—अल्प काल के लिये यह शरीर जीव के रहने का घर है। इस घर में बड़ाभारी झगड़ा मचा है। इसी झगड़े से बारम्बार इस झगड़ालू घर की पुनः पुनः प्राप्ति होती है। वह झगड़ा यह है, इस शरीर रूप घर में मन या वासना रूपी एक स्त्री रहती है और आँख, नाक, कान, जीभ तथा त्वचा ये पाँच ज्ञान इन्द्रियाँ इस वासना रूपी स्त्री के लड़के हैं। ये पाँचोंलड़के भी इस घर में सदैव रहते हैं। अतः ये छहों हर समय झगड़ा मचाये रहते हैं। ये इतना झगड़ते हैं कि घर का स्वामी जो जीव है, उसके नाको दम कर

देते हैं। यह जो वासना रूपी स्त्री है, बड़ी दुःखदायी है, यह जीव-पति को सदा नर्कों में डुबाना चाहती है। यह ऐसे-ऐसे बन्धनों में जीव को फँसाती है कि जिससे जीव कभी भी न उबरसके। और जो ये आँख, नाक, कान, जीभ त्वचा रूप पाँच लड़के हैं। ये अपना-अपना भोजन पृथ्क-पृथ्क चाहते हैं। ये पाँचों इतने विषयासक्त हैं, इतने स्वादी हैं कि स्वाद से इनका मन एक क्षण भी नहीं सन्तुष्ट होता है। ये आँख नवयुवती के सुन्दर रूप को देखना चाहती है। नाक युवती के मुख-मस्तक में अनुलेपित इत्र, तेल, चन्दनादि को सूँघना चाहती है। कान युवती के विषय भरे मीठे शब्द या गायन सुनना चाहती है। जीभ युवती के अधर-रस का पान करना चाहती है और चमड़ी नवयुवती का स्पर्श-अङ्गमर्दन तथा आलिङ्गन चाहती है॥।

(१) आँख—आँख सदैव सुन्दर-सुन्दर युवक युवतियों के रूप को ढूँढती रहती है। आकर्षक बाजार-शहर, महल-मन्दिर मेला, छवि-झाँकी, नाच, नाटक और सिनेमादि देखते-देखते जीवन बीत जाता है। वृद्ध-अवस्था आने पर आँखें बैठ जाती हैं, उससे सदा कीचड़-पानी बहा करते हैं। परन्तु उसके सुन्दर-सुन्दर रूप देखने की तृष्णा नहीं बुझती। सुन्दर-सुन्दर रूप देखते-देखते आँख-गर्दन और शिर दुखने लगता

॥—यहाँ पुरुष को लक्ष्य में रख कर कहा गया है। इसीप्रकार स्त्रियों के आँख, नाक, कान, जीभ और त्वचा नवयुवक पुरुषों में आसक्त हैं।

है, विवशता रूप देखने की क्रिया छोड़कर रुकना भी पड़ता है। परन्तु हाय ! रूप देखने की लालसा घटने के सिवा दुगुनी चौगुनी बढ़ती जाती है, जिसका प्रमाण प्रत्यक्ष है कि मेला-छबि-नाच, नाटक, सिनेमादि देखने वालों की देखने की तृष्णा नित्य धधकती रहती है। देखिये ! आँख द्वारा रूप की आसक्ति में पतिंगे आग की ज्योति में जल मरते हैं। यह आँख की रूपासक्ति बड़ी अनर्थकारिणी है।

(२) नाक—नाक नित्य सुचारु गन्धों को चाहती है, सूँघती है, परन्तु तृप्त नहीं होती। प्रत्यक्ष है, बड़े-बड़े बाबू लोग १०-१५प्रकार सुगन्धित तेल और अनेकों इत्र-फूल-माला, चन्दनादि के गन्ध सूँघते-सूँघते असन्तुष्ट रह जाते हैं। नाक द्वारा इसी गन्ध विषय में ही भँवरा मोह-मुग्ध होकर कमल-फूल में बँधकर मारा जाता है।

(३) कान—कान सदैव विषय-वार्ता, संगीत, सिनेमा-एक्टर के गाने और अपने मान-बड़ाई के शब्द सुनने चाहते हैं और सुनते हैं। तो भी शब्द सुनने से सन्तुष्ट नहीं होते। कान द्वारा इसी शब्द विषय में आसक्त होकर हिरन बधिक द्वारा मारा जाता है।

(४) जीभ—जीभ खट्टा, मीठा, कड़ुवा, चर्फरा, नमकीन तथा कसाय—ये षट्-रसों को चखा करती है। परन्तु कभी भी तृप्त नहीं होती। यह इन्द्रिय बड़ी बलवान् है। स्वादीली वस्तुओं को देखते ही यह पानी छोड़ने लगती है।

भोजन में चटनी, साग, मीठा तथा नमक अपने मन के अनुकूल न पाने से स्वादासक्त मनुष्य स्त्रियों को डाटते-फटकारते और गाली तक दे देते हैं। जीभ-स्वाद के वश लोग महान अनर्थकारी दुर्व्यसन धारण कर लेते हैं। जैसे गाँजा-भाँग, बीड़ी-सिगरेट, पान-तमाकू, चर्स-चण्डू, चाय-काफी-कोको, ठीकरा, मिट्टी और राख तक खाने लगते हैं। जीभ-स्वाद वश लोग धर्मबुद्धि नाशक ताड़ी-शराब पीते हैं। यहाँ तक कि अनेक जीवों की हिंसा करके गाय, भैंस, बकरी, ऊँट, सूअर, मछली, मुरगी, बतख, कबूतर, अण्डा, कछुआ और साँप तक खा जाते हैं। यह जीभ की स्वादासक्ति मानव को दानव, इन्सान को शैतान, नर को खर और मनुज को दनुज (राक्षस) बना देती है। जीभ द्वारा रसासक्ति में फँस कर ही चींटी, शहद-मक्खी और मछली अपने प्राणों को खो देती हैं।

(५) त्वचा—त्वचा सदैव कोमल स्पर्श चाहती है और स्पर्श करती है। परन्तु स्पर्श की इच्छा शान्त नहीं होती। बल्कि अधिक-अधिक बढ़ती रहती है। कोमल गद्दे-तकिये, कोमल-कोमल वस्त्र, नवयुवती-नवयुवक इत्यादि का स्पर्श करते-करते स्पर्श आसक्ति की ज्वाला दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ती ही रहती है। इस स्पर्शासक्ति में ही हाथी बाँधा जाता है। यह त्वचा की स्पर्शासक्ति बड़ी अनर्थ-कारिणी है।

(६) और पाँचों ज्ञान इन्द्रियों के ऊपर छठा जो मन है, यह तो सदा आकाश-पाताला के कुलावे को मिलाता रहता है। कभी तो यह नववधू-विहार में निमग्न होता है, तो कभी धन-कुटुम्ब और घर के बढ़ाने में चंचल होता है। कभी यह पाताल की खोज लगाता है और कभी तो यह विमान में बैठकर सूर्य-चन्द्र लोक में या कल्पित स्वर्ग लोकादि में जाना चाहता है। कभी यह गुरु-पूज्य और प्रचारक बनकर शिष्य-शाखा की वृद्धि में तथा अधिक प्रचार-प्रसार में विकल होता है। कभी किसी से लाभ या हानि मानकर राग-द्वेष में पचता रहता है। इस प्रकार सब जीवों को हरक्षण मन नचाता रहता है और भव में डुबाता रहता है।

साखी—मन गजेन्द्र मानै नहीं, चलै सुरति के साथ।
महावत विचारा क्या करे, जब अंकुश नाहीं हाथ ॥बी०

इस प्रकार पाँच ज्ञान-इन्द्रियाँ, पाँच विषय रूपी भोजन पृथक्-पृथक् चाहती हैं। एक आँख ने रूप देख लिया तो यह बात नहीं है कि जीभ रस नहीं चाहेगी या त्वचा स्पर्श नहीं चाहेगी। अपने-अपने विषय-भोगों को भोगने में सब इन्द्रियाँ प्रवीण और आतुर हैं। और मन तो समस्त विश्व का अधिपति बनना ही चाहता है।

अतएव इस द्वन्द्व के फन्द से सदैव के लिये छूटने अर्थ साधक को चाहिये कि मन के सब दुर्बुद्धि-दुर्वासनाओं को नष्ट कर दे और पञ्चज्ञान-इन्द्रिय रूपी लड़कों को डाट-फट-

कार और मार-पीट कर अपने अधीन कर ले। जब तक शरीर है, तब तक मन-इन्द्रियाँ अवश्य रहेंगी और तब तक मन-इन्द्रियों से काम भी लेना है। अतः इन्द्रिय-मन को किस प्रकार दमन या स्वाधीन करना चाहिये तथा किस प्रकार काम में लेना चाहिये, तिसे आगे बताते हैं।

(१) आँख—आँख से परायी स्त्री को तथा ब्रह्मचारी को स्त्री मात्र को कामुक दृष्टि से नहीं देखना चाहिये। बालक-कुमार-नवयुवक आदि पुरुषों के रूप-रंग और फैसन को ललचायी हुई दृष्टि से नहीं देखना चाहिये। खेल-तमाशे, नाच, नाटक, सिनेमादि नहीं देखना चाहिये। अनावश्यक शहर-बाजार और मायावी आकर्षक दृश्यों को नहीं देखना चाहिये। ये सब स्वप्नवत्-असार और बन्धनदायी हैं। अतः जो न शुद्ध शरीर निर्वाह में आवश्यक हो और न परमार्थ-साधन में आवश्यक हो, केवल सुख मानकर देखा जा रहा है। ऐसे सुखासक्ति युक्त दृश्यों का देखना बिल्कुल त्याग कर देना चाहिये।

आँख से मार्ग देखकर चलना चाहिये। देख-देखकर आवश्यक कार्यों को करना चाहिये। सन्तों का दर्शन-सद्-ग्रन्थों का अवलोकन करना चाहिये। इस प्रकार जहाँ तक शुद्ध शरीर-निर्वाह और परमार्थ-कार्य है, उन्हीं में आँख से देखने का प्रयोग करना चाहिये।

(२) नाक—नाक से फूल-इत्र-तेलादि सुगन्ध की

आसक्ति और दुर्गन्धों का ग्रहण— इन दोनों को त्यागकर देना चाहिये। और आसक्ति-रहित शुद्ध गन्ध ग्रहण करना चाहिये।

(३) कान— कान से स्त्री पुरुष के विषय-वार्ता, सिनेमा-एक्टर के विषय भरे गाने, राग-द्वेष की वार्ता, प्रपंच-वार्ता, हँसी-विनोद-मखौल की वार्ता, अनुमान-कल्पना कृत वार्ता, अनावश्यक वार्ता, अर्थात् जहाँ तक केवल सुखमान-कर राग-द्वेष की वार्तायें हैं, उन्हें अपने कानों से सुनना सर्वथा त्याग कर देना चाहिये।

मुख्य शुद्ध आवश्यक व्यावहारिक बात और भजन, कीर्तन, सन्ध्या-पाठ और सन्तों के सत्संग-शिक्षादि सुनने चाहिये।

(४) जीभ—मांस-शराब, गाँजा-भाँग, बीड़ी-सिगरेट, तमाकू, चर्स-चण्डू इत्यादि अशुद्ध और मादक वस्तुओं के स्वाद को जीभ से कदापि न चखे। खट्टा, तीता, चर्फरा और मीठा इत्यादि रसों में जीभ को आसक्त न करे। कहा है—दोहा—"खट्टा मीठा चर्फरा, जिभ्या सब रस लेय।
कुतिया मिल गयी चोर से, को अब पहरा देय॥"

अतएव अशुद्ध मादक वस्तुओं को सर्वथा त्याग कर शरीर निर्वाहिक खाद्य को भी रसासक्ति से रहित होकर खाना चाहिये।

(५) त्वचा—कल्याण इच्छुक पुरुष स्त्री का और स्त्री

पुरुष का स्पर्श न करे। बालक-कुमार-नवयुवकों का कुत्सित भावना से स्पर्श न करे। कोमल-कोमल उत्तम-उत्तम वस्त्रों का और गद्दे तकिये इत्यादि की आसक्ति न बनावे। अपने अंगों को मर्दन करवाने का अभ्यास न बनावे। इस प्रकार जहाँ तक केवल सुख मानकर स्पर्श किया जाता है। उसका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये।

जिसके बिना न निभ सके उतने कार्य के लिये अनासक्ति पूर्वक स्पर्श योग्य है। और सदैव वस्त्र यथासम्भव उदासीन एवं मोटा पहनना चाहिये। शरीर से उदासीन होकर नैराश्य-दृष्टि पुष्ट करना चाहिये।

(६) मन—दम्पति-स्पर्श, काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा मद आदि का चिन्तन मन से न करे। किन्हीं प्राणी-पदार्थों को अपने सुख के साधक मानकर राग और किन्हीं प्राणी-पदार्थों को अपने सुख के बाधक मानकर बैर का चिन्तन न करे। धन, स्त्री, घर, कुटुम्ब, मान, यश, पञ्च-विषय के भोग ऐश्वर्यों का चिन्तन न करे। शिष्य-शाखा समाज-वृद्धि, स्वामित्व-प्राप्ति आदि का चिन्तन न करे। अपने पराये किसी के शरीर में सुख और रमणीय मानकर उसमें राग का स्मरण न करे। अण्ट-सण्ट, अनाप-सनाप बिना शिर-पैर की बातों का चिन्तन न करे। इस प्रकार जिन-जिन के चिन्तनों से केवल राग-द्वेष, हर्ष-शोक, कामादि

विकार उत्पन्न हों या अशान्ति का अनुभव हो, ऐसे राग-द्वेष कृत सम्पूर्ण चिन्तनों का मन से त्याग कर देना चाहिये।

जिसके बिना मुख्यतः न चल सके, उन शुद्ध योग्य व्यावहारिक बातों को उचित सोच-विचार मन से कर लेना चाहिये। (परन्तु व्यावहारिक बातों का अधिक चिन्तन नहीं करना चाहिये।) किन-किन प्राणी-पदार्थों की सङ्गत से हमारे मन में राग-द्वेषादि के बन्धन आते हैं और किन-किन प्राणी-पदार्थों की सङ्गत से हमारे मन में शुद्ध भावना उठती है। विवेक-विचार और परमार्थ दृढ़ होता है—इन बातों को सोचकर कुसङ्ग त्याग कर और सत्संग का अनुराग करना चाहिये। पञ्च विषय, शरीर, धन, कुटुम्ब, घर, मान-बड़ाई तथा स्त्री इत्यादि वस्तुओं का जब स्मरण हो, तब इन्हें दुःख रूप चिन्तन करे। और दया, क्षमा सत्य, शील, विचार, विवेक, वैराग्य, शान्ति, सन्तोष, भक्ति तथा नैराश्य आदि सद्गुणों का हितकारी दृष्टि से चिन्तन करे। परीक्षा, सावधानी और परिणामज्ञान का चिन्तन करे। अपने मन इन्द्रियों से हरदम डर का चिन्तन करे, सद्गुरु और विवेकशील संतों से प्रेम और भय का चिंतन करे। शरीर की दुःख रूपता, क्षणभंगुरता जड़ता, अपवित्रता तथा असारता का चिन्तन करे। निरन्तर स्व-स्वरूप स्थिति का दृढ़ चिन्तन करे। इस प्रकार अकल्याणकारी चिन्तनों का सर्वथा त्याग करके कल्याणकारी चिन्तन ही सदैव मन से करना चाहिये

इस प्रकार पञ्चज्ञान-इन्द्रिय और छठे मन को शम-दमादि साधन द्वारा स्वाधीन करके अपने मोक्ष-प्राप्ति का साधन दृढ़ करना चाहिये।

दीनबंधु श्री कबीर साहेब कहते हैं :—

"सोई जन मेरा जो घरकी रारि निबेरै" अर्थात् जो अपने शरीर रूपी घर का झगड़ा मिटा दिया एवं मन-इन्द्रियों को स्वाधीन करके स्व-स्वरूप में स्थित हो गया। वही हमारा जन है, वही हमारा प्रिय-शिष्य, अनुयायी, सिद्धान्ती तथा शिक्षा को मानने वाला है।

शिक्षासार—मन-इन्द्रियों की दासता ही सबसे बड़ी परतन्त्रता झगड़ा और बन्धन है। इन मन-इन्द्रियों की दासताओं से जो मुक्त हो जाता है, वही स्वतन्त्र, सुखी, निश्चिन्त और मोक्ष हो जाता है। जो मन-इन्द्रियों को जीत कर स्वपारख स्वरूप में स्थित हो गया, श्री कबीर साहेब उसी को अपना सिद्धान्ती स्वीकार करते हैं।

॥ शब्द चेतावनी ॥

मत बाँधो गठरिया अपयश कै ॥ टेक ॥
धरम छोड़ि अधरम को धायो,
नैया डुबायो जनम भरिकै ॥ १ ॥
भाई बन्धु परिवार कुटुम्ब सब,
ये सब अपने मतलब कै ॥ २ ॥
ज्वानी युवा घटा घहरानी,

है बदनामी उमर भर कै ॥ ३ ॥
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो,
निकला श्वासा नहीं वशि कै ॥ ४ ॥

३५—(कहरा--३)

राम नाम का सेवहु बीरा।
दूरि नाहिं दुरि आशा हो ॥१॥
और देव का सेवहु बौरे।
ई सब झूठी आशा हो ॥२॥
ऊपर के उजर कहा भौ बौरे।
भीतर अजहूँ कारो हो ॥३॥
तन के वृद्ध कहा भौ बौरे।
मनुवा अजहूँ वारो हो ॥४॥
मुख के दाँत गये कहा भौ बौरे।
भीतर दाँत लोह के हो ॥५॥
फिर फिर चना चबाय विषय के।
काम क्रोध मद लोभ के हो ॥६॥
तनकी सकल संज्ञा घटि गयऊ।
मनहिं दिलासा दूनी हो ॥७॥
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो।
सकल सयाना पहुना हो ॥८॥

हे बलशाली चैतन्य हंस ! राम नाम के रटन का सेवन तू क्या करता है ? दूर और निकट मानकर जिसकी कल्पना तू करता है, वह आशा मात्र है। अथवा जिस राम को तू खोजता है,वह साकेत लोकादि या तीर्थ-धामादि में दूर नहीं है। वह राम स्वरूप तो तू ही है। तुम्हारी आशा ही मात्र दूर हो गयी है ॥ १ ॥ हे पागल ! अन्य कल्पित देवताओं का भी तू क्या सेवन करता है ? यह सब तुम्हारी मिथ्या आशा मात्र है ॥ २ ॥ हे भोले ! ऊपर के सफेद-पोशी से क्या होता है ? मन में तो अब भी कालापन भरा है ॥३॥ हे दीवाने ! शरीर के बुड्ढे होने से क्या होता है ? क्योंकि मन तो आज भी बालक बना हुआ है ॥ ४ ॥ हे पागल ! मुख के दाँत टूट जाने से क्या होता है ? अन्तःकरण में तो वासना रूपी पक्के लोहे के दाँत लगे हैं ॥ ५ ॥ अतएव पुनः-पुनः मनुष्य विषयों के और काम, क्रोध, मद, लोभादि के चना चबाया करता है ॥६॥ शरीर की सब शक्ति क्षीण हो गयी है, केवल नाम मात्र की इन्द्रियाँ रह गयी हैं। तो भी मन में दूने उमंग भरे हैं ॥ ७ ॥ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब जी कहते हैं—हे सन्तो, सुनो ! संसारी जीवों की सब चतुरता पहुना (दो दिन की) है ॥ ८ ॥

व्याख्या—यह चैतन्य जीव परम् शक्तिमान् और श्रेष्ठ है। यह चाहे तो सब अज्ञान को नष्ट करके मोक्ष हो सकता

है। परन्तु इसने अपने से पृथक् राम की कल्पना कर लिया है और उसी राम-नाम के रटन में लग रहा है। विचार करके देखिये तो अपने से पृथक् साकेत वैकुण्ठ लोकादि वासी कोई राम नहीं है। अपने से भिन्न राम की केवल आशा मात्र है। वास्तविक बात यह है कि यह चैतन्य जीव ही राम है। इससे पृथक् राम कहीं नहीं मिलेंगे। परन्तु ऐसा लोग न जान करके जहाँ-तहाँ राम को खोजते फिरते हैं। इसी अज्ञानता पर श्री गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज ने बड़े जोरों से फटकारा है। आप ने कहा है—

दोहा—कहत सकल घट राम मय, तो खोजत केहि काज।
तुलसी कह यह कुमति सुनि, उर आवत अति लाज॥

अर्थात्—"वेद-सन्त और श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा कहा गया है कि सब घट में राम हैं, फिर अलग किसकी खोज लोग करते हैं? तुलसीदासजी कहते हैं, यह कुबुद्धि सुन कर मेरे को बड़ी लज्जा लगती है।"

इसी प्रकार सबअज्ञानहारी, मोक्षदाता श्री सद्गुरुदेव की सेवा त्याग कर सब जीव नाना कल्पित देवी-दवताओं की सेवा में लगे हैं। सूर्य, शिव, गणपति, भैरव, भैरवी, काली, सरस्वती, दुर्गा और भूत, प्रेत, पिशाचादि को सत्य मान कर लोग पूजते हैं। और इन कल्पित देवताओं की आशा में जीवन नष्ट कर देते हैं। परन्तु लाभ कुछ भी नहीं

होता है। मनुष्य को यह भलीभाँति विचार लेना चाहिये कि सद्गुरुदेव तथा सन्तों से बढ़ कर और कोई भी देव नहीं है। बल्कि अन्य माने हुए देव कल्पित भ्रम मात्र हैं।

शरीर को धो-पोछकर, स्नान करके यदि कोई उज्ज्वल वस्त्र पहन ले, परन्तु भीतर मन में कालापन भरा रहे, चोरी, व्यभिचार, हिंसा, घूसखोरी, छल, कपट, अभक्ष्य-भक्षण, गाँजा-भाँग, बीड़ी-सिगरेट, नाना अमल-हिंसाओं को धारण किये रहे, तो ऊपर के उजलेपने से क्या होता है ?

दृष्टान्त—एक मनुष्य खूब उज्ज्वल-उज्ज्वल वस्त्रों को पहने हुए सज-धज कर एक शहर में होकर जा रहा था। इतने में उसे तमाकू खाने की चेष्टा उत्पन्न हुई। वह तमाकू हाथ में लेकर बनाने लगा। परन्तु उसके पास चुनौटी में जो चून था, वह सूख गया था। इतने में एक वेश्या के घर के पिछवारे वह पहुँच गया। सूखे चून में डालने के लिये जल कहाँ मिले ? इस विचार ही में था कि वेश्या के छत के ऊपर से एक-एक बूँद जल टपक रहा है, ऐसा देखा। उसने शुद्धाशुद्ध का विचार छोड़कर उस टपकते हुए जल को अपने चून की चुनौटी (डिबिया) में रोक लिया। वह छत से टपकता हुआ जल वास्तव में वेश्या के नापदान का दुर्गन्धित जल था। यह बात एक तीसरा सज्जन देख रहा था। उसने कहा ऊपर के उज्ज्वल पोशाक धारण से क्या होता है ? जब मन में अशौचता रूप कालापन भरा है।

जो लोग ऊपर से बहुत साफ-सुथरा रहते हैं, सफेद-पोश रहते हैं। परन्तु हाड़-मांस, मल-मूत्र और रक्त इत्यादि से बने जानवरों को, जैसे मछली, मुर्गी, बतख, कबूतर, गाय, भैंस, बकरा, सूअर इत्यादि खा जाते हैं। उनका बाहर का उजलापन केवल दिखावा मात्र का है। उज्ज्वल वस्त्रों को पहन कर जो लोग चोरबाजारी, धाँधलेबाजी, बेइमानी, ठगी, मिथ्याभाषण और घूसखोरी करते हैं। वे ऊपर से उज्ज्वल होते हुए भीतर से अत्यन्त काले हैं। उन्हें जीवों पर दया नहीं है, उन्हें अपने भविष्य का कुछ भी चेत नहीं है। इसी प्रकार जो उज्ज्वल साधु के भेष पहनकर विषय भोग, धन-संग्रह और क्रोधादि को मन में स्थान दिये हैं। वे भी भीतर से काले हैं।

जो लोग शरीर से तो बुड्ढे हो गये, परन्तु बालक के समान चञ्चल बने रहते हैं। नाना भोगों के उमङ्ग हृदय में उठाते रहते हैं। फिर उनके बुड्ढे होने से क्या हुआ ? लोग बुड्ढा हो ज़ाते हैं, परन्तु जवान बने रहने की वासना नहीं छूटती। जवान बनने ही के लिये उज्ज्वल बालों में लोग खिजाब लगाते हैं। बन्दर-ग्रन्थि से जवानी लौटाने की आशा रखते हैं। लोगों के दाँत टूट जाते हैं, मुख पक्षी के खोढ़र की भाँति हो जाता है, बाल सफेद हो जाते हैं। परन्तु बालों की अलबटें झारते हैं। उनका जुल्फी का रखना, बार-बार कङ्घी करना नहीं छूटता। वृद्धपन के कारण शरीर

निर्बल हो जाता है, नसें और हड्डियाँ शरीर भर में निकल आती हैं, चाम ढीले हो जाते हैं। परन्तु उसी निकली हुई हड्डी-नसों पर या सिकुड़े हुए चामों पर लोग कालरदार, किनारदार, छापदार, गोटे-पट्टेदार, चुनावदार वस्त्र, कोट, कमीज, फुलपैंट आदि पहनते हैं। रेशमी, मलमल, तन्जेब के वस्त्रों और अन्य-अन्य फैसन की वस्तुओं से सजते हैं। यह सब केवल बालकपन है। सुन्दरदास जी कहते हैं—

सवैया— नैनन की पल ही पल में छिन,
आधी घरी घटिका जु गई है।
याम गयो युग याम गयो पुनि,
साँझ गई तब रात भई है॥
आज गई अरु काल्ह गई,
परसों तरसों कछु और ठई है।
सुन्दर ऐसहि आयु गई,
तृष्णा नित ही नित होत नई है॥

मुख के दाँत टूटने से क्या होता है, जब अन्तःकरण में वासना के दृढ़ दाँत बने हैं। अतः वह फिर-फिर शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध—इन पंच विषय भोग रूप चना को चबाता रहता है। इस विषयासक्ति के कारण ही लोग कामी, क्रोधी, लोभी और अभिमानी बने रहते हैं।

वृद्धपन के कारण आँखें बैठ जाती हैं, उससे पानी और कीचड़ सदैव बहा करता है। परन्तु सुन्दर-सुन्दर रूप देखने

की आशा नहीं छूटती। कान शक्ति-हीन हो जाता है, स्पष्ट सुनायी नहीं पड़ता। परन्तु मन भावन विषय-गीत सुनने की तृष्णा बनी रहती है। इसी प्रकार सब इन्द्रियाँ निर्बल हो जाती हैं। परन्तु मनुष्य के हृदय में भोगों को भोगने की वासना दूनी बढ़ जाती है। वह भोग कुटुम्ब और घर की तृष्णा में सदैव विकऊ रहता है। परन्तु भोगों को भोगने की जितनी चतुरता है, यह सब दो दिन का स्वप्न है। इनमें कोई सार नहीं है। शरीर नाश होते ही सब का वियोग होता है। मनुष्य का अभिमान सब व्यर्थ है। सुन्दर-दास जी कहते हैं—

कवित्त—

मेरो देह मेरो गेह मेरो परिवार सब,
मेरो धन माल मैं तो बहु विधि भारो हूँ।
मेरे सब सेवक हुकुम कोऊ मेटे नाहिं,
मेरी युवती को मैं तो अधिक पियारो हूँ॥
मेरे वंश ऊँचो मेरो बाप दादा ऐसे भये,
करत बड़ाई मैं तो जगत उजारो हूँ।
"सुन्दर" कहत मेरो-मेरो करि जाने शठ,
ऐसो नहि जाने मैं तो कालही को चारो हूँ॥

शिक्षासार—अपना चेतन स्वरूप ही राम है। सद्गु-रुदेव ही महान् देव हैं। जैसे मनुष्य को ऊपर से उज्ज्वल

रहना चाहिये, वैसे भीतर मन से भी शुद्ध होना चाहिये और मन-इन्द्रियों को जीत लेने से ही श्रेष्ठता, सुख और वृद्धपन (बड़ापन) है।

३६--(कहरा:—१२)

ई माया रघुनाथ की बौरी।
खेलन चली अहेरा हो ॥ १ ॥
चतुर चिकनियाँ चुनि चुनि मारे।
कोई न राख्यो न्यारा हो ॥ २ ॥
मौनी वीर दिगम्बर मारे।
ध्यान धरन्ते योगी हो ॥ ३ ॥
जङ्गल में के जङ्गम मारे।
माया किनहु न भोगी हो ॥ ४ ॥
वेद पढ़न्ते वेदुआ मारे।
पूजा करन्ते स्वामी हो ॥ ५ ॥
अर्थ विचारत पण्डित मारे।
बांध्यो सकल लगामी हो ॥ ६ ॥
शृङ्गी ऋषि वन भीतर मारे।
शिर ब्रह्मा का फोरी हो ॥ ७ ॥
नाथ मछन्दर चले पीठ दै।
सिङ्घल हूँ में बोरी हों ॥ ८ ॥

साकट के घर करता धरता।
हरि भक्ता की चेरी हो॥ ९॥
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो।
ज्यों आवै त्यों फेरी हो॥ १०॥

यह मन की पगली माया जीवों पर आखेट खेलने चली॥ १॥ बुद्धि-प्रमादी रजोगुणियों को खोज-खोज कर मार डाली। प्रमादियों में से किसी को भी अपने फन्दे से पृथक् न रखा॥ २॥ मौनी, योद्धा, दिशा को अपना वस्त्र मानने वाले नग्न और ध्यान धारण करने वाले योगीः— इन सब को माया ने मारा है॥ ३॥ वन में विचरने वालों को भी माया ने मारा। परन्तु इच्छा भर माया को कोई न भोग सका॥ ४॥ वेद पढ़ने वाले वेदपाठी, पूजा-अर्चा करने वाले श्रेष्ठ स्वामी और नाना ग्रन्थों के अर्थों को विचारने वाले पण्डितों को भी माया ने अपने जाल में फँसाया और सब प्रमादियों को भ्रम की लगाम में बाँध लिया॥५-६॥ शृङ्गीऋषि ऐसे तपस्वी को वन के भीतर जाकर माया ने फँसाया। और इस माया ने ही ब्रह्मा का शिर कटवा दिया॥ ७॥ मछन्दर नाथ ऐसे योगी विवेक-वैराग्य से पीठ देकर चलित हो गये। और सिङ्घलदीप में माया ने उन्हें विषय-समुद्र में डुबा दिया॥ ८॥ अभक्त साकटों के घर में तो यह माया स्वामिनि होकर जीव के ऊपर आधिपत्य जमा

ही लेती है। परन्तु हरिभक्तों के घर में भी दासी रूप होकर माया ठगती है ॥ ९ ॥ सद्गुरु श्रीकबीर साहेब कहते हैं:—हे सन्तो सुनो ! जैसे माया आवे तैसे उसे फिरा दो, अथवा उससे तुम विमुख हो जाओ। माया से बचे रहने का यही साधन है ॥ १० ॥

व्याख्या:—रघु का अर्थ है इन्द्रियाँ, नाथ का अर्थ है स्वामी। सो इन्द्रियों का स्वामी मन है। अतः रघुनाथ का यहाँ अभिप्राय है:—मन ! साहेब कहते हैं:—ये मन की माया बड़ी पगली, उन्मत्ता और चंचला है। इन्द्रियों से पंच विषयों को देख सुन और भोग करके जो आसक्ति-वासनायें बनी हैं, अथवा जो अन्य भ्रमिक मनुष्यों से असत्-सिद्धान्त सुनकर उसे सत्य मान लिया गया है। या अपने मन से अनेक असत् भास, अध्यास, अनुमान, कल्पना इत्यादि रच लिये गये हैं। यही सब मन की माया है। धन, पुत्र, स्त्री, घर, पृथ्वी और शरीरादि सब माया हैं। इस माया ने पारख-हीन सब लोगों को भ्रमाया है। यहाँ मुख्य रूप मन से वाणी विषय की कल्पना और स्त्री रूपी माया की प्रबलता का वर्णन है। इस मन की माया ने अथवा स्त्री रूपी माया ने बड़े-बड़े बुद्धि का प्रमाद जो धारण करते हैं, उन्हें भी पतन किया है। रजोगुणी लोगों को अपने जाल में फँसा लेना तो माया के बाँये हाथ का खेल है।

जो असावधान होकर अपने ज्ञान का अभिमान करते

हैं, वे अन्त में माया के चक्र में गिर जाते हैं। चाहे कोई मौनी हों, चाहे शूरवीर हों, चाहे अलिप्त ब्रह्म बनकर जड़दशा धारण करने वाले दिगम्बर हों, चाहे धारणा-ध्यानादि साधन करने वाले योगी हों। चाहे सम्पूर्ण वेद-विद्या के ज्ञाता या अर्थकार हों। परन्तु साधन, सावधानी-धारण और कुसङ्ग त्याग किये बिना माया उन्हें लूट लेती है। जिन्हें अपने ज्ञान का प्रमाद है। जो यह सोचते हैं कि "मैं चाहे जहाँ रहूँगा, चाहे जैसा सङ्ग करूँगा। परन्तु मेरा बिगाड़ कभी नहीं होगा। क्योंकि मैं पूर्ण ज्ञानी और अलिप्त हूँ।" ऐसे साधक अवश्य माया में गिरजाते हैं। बिना वाम-वंचक आदि का संग त्याग किये अथवा बिना साधन-सावधानी और सत्संग का दृढ़ आधार पकड़े मनुष्य माया से नहीं बच सकता, नहीं बच सकता।

शृङ्गीऋषि जी सदैव जङ्गल में रहते थे। पिता के अतिरिक्त उन्होंने अन्य का कभी मुख तक नहीं देखा था। ऐसे जङ्गल और पर्वत के बीच में रहने वाले शृङ्गीऋषि को फँसाने के लिये स्त्री-माया ने वहाँ जाकर अपना जाल फैलाया और ऋषि जी उसके फन्दे में फँस गये। अथवा माया ने ही दशरथ के पुत्रेष्ठि यज्ञ में शृङ्गीऋषि को लाकर उपस्थित किया। शृङ्गीऋषि को वन में माया ने कैसे छला? इसका उदाहरण महाभारत में इस प्रकार है:—

एक विभाण्डक नाम के महर्षि थे, ये एक दिन नदी में

स्नान कर रहे थे, इतने में इन्होंने उर्वशी अप्सरा को देखा, उसे देखने से इनका वीर्य जल में ही स्खलित हो गया। एक प्यासी मृगी तत्काल आयी और जल सहित उस वीर्य को पी गयी। अतः उसके गर्भ रह गया। समय पूरा होने पर मनुष्य का बच्चा पैदा हुआ। विभाण्डक ऋषि उस बच्चे को ले जाकर पाला। उसके शिर पर एक सींग था। अतः उसका नाम ऋषि शृङ्ग रखा गया। जिसको शृङ्गीऋषि भी कहते हैं। शृङ्गीऋषि बड़े तपस्वी थे। बालपन से ही अपने पिता विभाण्डक के अतिरिक्त उन्होंने अन्य किसी का मुख नहीं देखा था। सदैव वन में तपस्या करते थे।

इसी काल में महाराज दशरथ के मित्र राजा लोमपाद अंग देश में राज्य करते थे। कहा जाता है, राजा लोमपाद ने ब्राह्मणों का कुछ अपमान कर दिया था। इसलिये ब्राह्मणों ने उन राजा को त्याग दिया। अतः अंग देश में वर्षा होनी बन्द हो गयी। तब राजाने तपस्वी ब्राह्मणों से पूछा कि वर्षा कैसे हो? उन्होंने बतलायाः—ऋषि शृङ्ग नामक एक तपस्वी मुनिकुमार हैं, वे यदि यहाँ आ जायँ तो अवश्य वर्षा हो। तब राजा ने वेश्याओं को बुला कर कहा कि ऋषिशृङ्ग को किसी प्रकार मोहित करके यहाँ ले आओ। अतः एक वृद्धा वेश्या ने अपनी युवती पुत्री को लिया और एक नावका पर विविध भाँति से सजाकर आश्रम निर्माण किया और उस नावका को लेकर नदी द्वारा उस वन में

गयी और विभाण्डक ऋषि के आश्रम से कुछ दूरी पर नावका बँधवा दिया।

विभाण्डक जी के बाहर चले जाने पर वृद्धा वेश्या ने अपनी कन्या को सब बात समझाकर भेजा। उस वेश्या ने जाकर ऋषिश्रृङ्ग से बातचीत की और अनेक हाव-भाव-कटाक्ष करके उन्हें मोहित कर लिया। और अपने नावकाश्रम में ले आयी तथा नावका द्वारा अंग देश में राजा लोमपाद के राजद्वार पर श्रृङ्गी ऋषि को लाकर उपस्थित किया। उनके वहाँ आते ही पूरे राजधानी में खूब वर्षा हुई और प्रजा सुखी हो गयी। इस प्रकार अपनी मनोवांछा पूरी जानकर राजा लोमपाद ने श्रृङ्गी ऋषि को अपने अन्तःपुर में ले गये और अपनी कन्या शान्ता का उनके साथ विवाह कर दिया।

इधर विभाण्डक मुनि फल-फूल लेकर आश्रम में आये, तो बहुत खोजने पर भी श्रृङ्गी ऋषि न मिले। उनको तुरन्त शंका हुई कि यह जाल अंगदेश के लोमपाद राजा का रचा है। अतः मुनि क्रोधित हुए और आश्रम से चल पड़े तथा विचार किये कि अंगदेश को भस्म कर दूँगा। जब अंगदेश में गये, तब नाना प्रकार सत्कार सम्मान पाने लगे तथा चारों ओर से श्रृङ्गीऋषि की प्रशंसा भी सुने। इसलिये मुनि का क्रोध शान्त हो गया।

जब लोमपाद के राजभवन पर पहुँचे, तब लोमपाद

द्वारा बड़ा सत्कार पाये तथा पुत्र को अनेकों ग्राम खजाना पाये हुए देखकर और पुत्रवधू शान्ता को देख कर मुनि सन्तुष्ट हुए और पुत्र ऋषि शृङ्ग से कहा कि जब एक पुत्र हो जाय, तब राजा को प्रसन्न रखते हुए तुम वन में चले आना। ऐसा कहकर मुनि चल दिये तथा एक पुत्र उत्पन्न हो जाने-पर ऋषि शृङ्ग भी शान्ता सहित वनमें चले गये।

इस प्रकार ऋषि शृङ्ग अर्थात् शृङ्गी ऋषि की कथा महा-भारत में लिखी है। जिसमें मृगी से शृङ्गी ऋषि का पैदा होना, उनके शिर पर सींग होना तथा उनके जाने पर अंगदेश में वर्षा होनी आदि बातें कल्पित हैं। तात्पर्य यहाँ यह लेना है कि माया बड़ी बलशाली है, इससे साधक को बहुत साव-धान रहना चाहिये। देखो! ऋषिशृङ्गजी बाल्यपन से ही स्त्री का नाम तक न सुने थे, सदैव तप में निष्ठ रहते थे, परन्तु उन्हें भी पकड़ कर माया ने राजा के यहाँ ले गयी और विवाह तक करा दिया।

इसी प्रकार शिव पार्वती के व्याह में ब्रह्मा जी वहाँ उप-स्थित थे। कहा जाता है पार्वती के रूप को देखकर ब्रह्मा जी कामातुर हो गये, तब शिव जी ने कोप करके ब्रह्मा का शिर काट दिया। अथवा दूसरा उदाहरण ऐसा आता है कि ब्रह्मा जी अपनी पुत्री पर एक बार आसक्त हो गये थे। फिर कामातुरता से पुत्री को पकड़ने दौड़े और पुत्री वहाँ से भगी। यह घटना देखकर शिवजी ने केवल अपने हाथ के

पञ्जे से ब्रह्मा का शिर काट दिया। फिर वह ब्रह्मा का शिर शिवजी के हाथ में चिपक गया और ब्रह्म-हत्या लगी। अतः वे बद्रिकाश्रम में गये और तप किये। तब तप के पश्चात् उनके हाथ से वह शिर गिर गया। ऐसा उदाहरण सुना जाता है।

मछन्दर नाथ गोरख जी के गुरु थे। ये बड़े त्यागी और योगमें प्रवीण थे। ये सिङ्घलद्वीप में चले गये थे। फिर कुसङ्ग वश ये वहाँ की रानी के मायाजाल में फँसकर विषयासक्त हो गये। यह घटना जब गोरख ने सुना, तब वहाँ जाकर अपने गुरु मछन्दर को उस रानी के फन्दे से छुड़ा कर लाया।

यह स्त्री रूपी माया साकट रजोगुणी लोगों के यहाँ तो पूरी स्वामिनी ही बन जाती है। परन्तु जो हरिभक्त लोग हैं; यदि वे सावधान न रहें,तो उनके चरण की दासी बनकर उन्हें भी फँसा लेती है।

इस माया से सदैव बचे रहने का साधन यही है कि जहाँ बाम-बंचक और अधिक द्रव्य आदि का कुसंग आवे। वहाँ तुरन्त उन मायावी पदार्थों को लौटा दे या उससे अपना मुख फिरा ले। तात्पर्य यह है कि कल्याण इच्छुक साधक-ब्रह्मचारी या साधु भेषधारी को कुटी-मठी पर या साथ में स्त्री तो रखना ही नहीं चाहिये। स्त्री को साधु भेष देना और अपने पास रखना यह दोनों पतन का पथ

है। अतः स्त्री-संसर्ग से कल्याण इच्छुक को बहुत दूर रहना चाहिये। यदि कहीं स्त्री सामने आ जाय, तो उधर से वृत्ति और दृष्टि घुमा लेनी चाहिये। यदि सहसा स्त्री पर दृष्टि पड़ जाय या उसका चिन्तन हो उठे, तो शीघ्र उसे असार, दुःख-रूप, जड़, क्षणभंगुर और अशुद्ध समझ कर चित्त में स्त्री–देह की ओर से ग्लानि कर लेना चाहिये। और दृष्टि तथा वृत्ति को सदैव उसकी ओर से फिरा कर रखना चाहिये। (इसी प्रकार मुमुक्षा स्त्रियाँ पुरुषों के कुसंग, दर्शन और मनन से रहित रहें।)

खानी जाल या वाणी जाल में भूले हुए कोई भ्रमिक प्रमादी मिलें। तो वहाँ भी समता पूर्वक बात करके उनके कुसंग से रहित हो रहना चाहिये। इसी प्रकार यदि त्यागी के पास अधिक पैसा आ जाय, तो उसे सन्त-सेवा दुखियों की सहायता या अन्य धार्मिक कार्यों में लगा देना चाहिये। धन का अधिक संग्रह करना साधु के आचरण में महान दोष जनक है।

शब्द—

ज्ञान बिना मन मोह न छूटे।

तीरथ बरत योग जप तप करि, नाना कर्मन जूटे ॥१॥
जब तक सद्गुरु साँच न भेंटत, मिलत न बोध अखूटे ॥२॥
काम क्रोध मद मत्सर आदिक, जीव विविध विधि कूटे ॥३॥

विषय विराग प्रबल पारख जब, तबहिं ये बन्धन टूटे ॥४॥
मल विक्षेप आवरण कलिमल, विविध विकारहिं पूटे ॥५॥
साधन औ सत्सँग विवेक गहि, मोह फाँस दृढ़ टूटे ॥६॥

शिक्षासार—मन-माया और इन्द्रियाँ बड़ी प्रबल हैं। इन से सदैव सावधान रहना चाहिये और वाम-बंचकादि कुसंग से सदैव रहित रहना चाहिये। सद्साधनों का अभ्यास करने से, कुसङ्ग सर्वथा त्यागते रहने से और सदैव सत्संग में निवास करने से ही साधक अपना त्याग वैराग्य स्थिर रख सकता है। अन्यथा कुसङ्ग का सेवन करने से साधक अवश्य माया में लिप्त हो जायगा। श्री कबीर साहेब ने माया से बचने का यही मुख्य साधन बताया है कि—
"ज्यों आवै त्यों फेरी हो।" अर्थात् कुसङ्ग का त्याग रखो।

३७—(बसन्त —४)

बुढ़िया हँसि बोलो मैं नितहि बारि।
मोसे तरुनि कहो कवनि नारि ॥१॥
दाँत गये मोरे पान खात।
केश गये मोरे गंग नहात ॥२॥
नयन गये मोरे कजरा देत।
वयस गये पर पुरुष लेत ॥३॥
जान पुरुषवा मोर अहार।
अनजाने का करों सिंगार ॥४॥

कहहिं कबीर बुढ़िया आनन्द गाय।
पूत भतारहिं बैठी खाय ॥५॥

माया रूपी बुढ़िया हँसकर कहने लगी, मैं सदैव बाला हूँ। मुझ-सी तरुणी स्त्री कहो कौन है? ॥१॥ दाँत-हीन मुख, श्वेत-बाल, मुरझाये-नेत्र और बीती-आयु देख करके मेरी जवानी के प्रति किसी को यदि शंका हो, तो उसका समाधान सुनो! ये तो अधिक पान खाते-खाते मेरे सब दाँत झड़ गये हैं। और अधिक मल-मल कर गङ्गादि नदियों में स्नान करते-करते मेरे काले बाल उजले हो गये हैं ॥२॥ अधिक काजल लगाते-लगाते मेरे नेत्र बुड्ढी के-से हो गये हैं। और अधिक पराये पुरुषों का समागम करते-करते ही मेरी पूर्व की आयु बीती है ॥३॥ जो पुरुष मेरे समागम का सुख जानता है, उसका तो मैं नित्य आहार करती हूँ। और जो लोग मेरे सुख को पूर्ण नहीं जानते, उनको आकर्षित करने के लिये श्रृङ्गार करती हूँ ॥ ४ ॥ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—यह माया-बुढ़िया श्रृङ्गार-रस और काम-भोग को आनन्दरूप कहकर गायन करती है। और पूत-भतार अर्थात् सर्व पुरुषों को भोग-क्रीड़ा में निगल बैठी ॥५॥

व्याख्या—तृष्णा अनादि की है, अतः उसे यहाँ साहेब ने बुढ़िया कहा है। परन्तु यह बुढ़िया नित्य-नित्य ताजी-तवानी होती जाती है। कहा है—

साखी—"मन मरे न माया मरे, मरि मरि जात शरीर
आशा तृष्णा ना मरे, यों कथि कहहिं कबीर ॥"

इसी तृष्णा को धारण करने से वृद्ध होने पर भी स्त्री-पुरुष अपने जवान होने की वासना रखते हैं। दाँत उखड़ जाते हैं, केश उज्ज्वल हो जाते हैं, आँखें बैठ जाती हैं और यौवन की आयु बीत जाती है। परन्तु तब तक अपने को लोग जवान ही माने रहते हैं। यदि उससे कोई कह देवे कि "आप तो बिल्कुल नवयौवन सम्पन्न प्रतीत होते हैं।" तब तो यह सुनकर वह फूला नहीं समाता है। परन्तु कोई कह देवे कि "आप तो अब बुड्ढे होगये हैं। आपका सारा शरीर वृद्ध का-सा दिखाई देता है।" तो इतना सुनतेही उसे शोक उत्पन्न होजाता है। एक उदाहरण दिया जाता है,जो बिल्कुल घटित-घटना है—

एक मनुष्य मार्ग पकड़कर जा रहा था, उसने एक खेत में पके-पके फल देखा, तो थोड़ा खाने के लिये तोड़ लिया। इतने में खेत वाला आगया और इसे देख लिया। खेत वाले ने कहा—क्या भैया! बुड्ढे हो गये,अभी इतना भी विचार नहीं कर पाये कि बिना आज्ञा किसी की वस्तु नहीं लेनी चाहिये? फल तोड़ने वालेने कहा—क्या मैं सचमुच बुड्ढा हो गया हूँ? खेत वाले ने कहा—सचमुच न और क्या झूठे ही। आप अपना मुख शीशे में तो देखिये, दाँत टूट गये हैं, बाल उजले हो गये हैं, आँखें बैठ गयी हैं और अवस्था अधिक

बीत चुकी है। फिर आप बुड्ढे नहीं तो क्या जवान हैं? इतना सुनकर वह मनुष्य आगे गया और अन्य लोगों से भी पूछा कि मैं क्या बुड्ढा हो गया हूँ? कई लोग मिले और सब लोगों ने कह दिया! हाँ आप अवश्य बुड्ढे हो गये हैं। फिर तो उसे सनक (पागलपन) सवार हो गया और हर किसी से वह यही कहते हुए फिरने लगा "हाय! मैं बुड्ढा हो गया।" "हाय! मैं बुड्ढा हो गया।"

अहो! कई बार शरीर मिलता है और बालपन से बुड्ढा हो जाता है और छूट भी जाता है। परन्तु तृष्णा न बुड्ढी होती है और न छूटती ही है। मरते-मरते लोग विषयों को भोगने के लिये आतुर बने रहते हैं। बुड्ढे-बुड्ढी हो जाने से दाँत टूट जाने पर सुपारी खाने वाले लोग व्यसन और विलास के वश होकर सुपारी को पत्थर पर कूट-कर महीन करके खाते हैं। दाँत से हीन मुख पोपला हो जाता है। हर समय मुख से थूक गिरा करता है। यहाँ तक मृत्यु शय्या पर उपस्थित हो जाते हैं, तब तक लोग पान तमाकू और हुक्का-चिलम तथा बीड़ी-सिगरेट आदि व्यसनों का ग्रहण किया करते हैं।

एक ठाकुर जी अधिक अस्वस्थ (बीमारी दशा में) थे चारपाई में सदैव पड़े रहते थे। अपने आप करवट नहीं ले पाते थे। चारपाई के बीच में रस्सी काट दी गयी थी। उसी द्वारा लेटे-लेटे वे डोलडाल किया करते थे। परन्तु इतनी

दुर्दशा होने पर भी तृष्णा के वश होकर हर समय पान खाया करते थे। अधिक दुःखकी अवस्था जानकर यदि लड़के पान में कभी तमाकू नहीं छोड़ते, तो उस पान को वे तुरन्त थूक देते थे। पान में तमाकू न छोड़ने के कारण वे सब घर वालों को नर्म-गर्म सुनाया करते थे।

एक बुड्ढा बीमार मनुष्य चारपाई में लधा था। वह अपने आप उठकर बैठ नहीं सकता था। वह चिलम और बीड़ी पीने का बड़ा व्यसनी था। एक बार लेटे-लेटे बीड़ी पी रहा था, इतने में चद्‌रे में आग लग गयी, लोगों ने दौड़ कर बचाया। दूसरे दिन लेटे-लेटे चिलम पी रहा था। इतने में हाथ से चिलम छूट गयी और बिछौने तथा शरीर पर गिर पड़ी। अतः कपड़ा के साथ वह बुड्ढा अधिक जल गया। जिससे उसके शरीर में घाव हो गया। आगे चलकर कीड़े पड़ गये। उसे मृत्यु काल तक बड़ा दुःख भोगना पड़ा। अहो! यह विषयों की तृष्णा बड़ी दुःखदायी है।

कभी किसी प्रकार भी विषयों की इच्छा का न शान्त होना, बल्कि अधिक-अधिक विषय-इच्छा बढ़ते ही जाना तृष्णा का रूप है। सुन्दरदास जी कहते हैं—

सवैया—

तीनहु लोक अहार किये सब, सात समुद्र पियो पुनि पानी।
और जहाँ तहँ ताकत डोलत, काढ़त आँख डरावत प्रानी॥

दाँत दिखावत जीभ हिलावत,या हित मैं यह डाकिन जानी ।
"सुन्दर"खात भये कितने दिन, हे तृष्णा अजहूँ न अघानी ।।

प्रमदाओं की तृष्णा तो और अधिक प्रबला रहती है। जो पुरुष इसके वश हो जाता है। उसको तो अपना दास ही बना लेती है। उसके ज्ञान, ध्यान, बल, वीर्य, स्वार्थ-परमार्थ के सर्व सुखों को नष्ट कर सदैव काम भोग में भक्षण करती रहती है। और जो लोग इसकी भोगासक्ति के फन्दे में नहीं फँसे हैं। उनके फँसाने के लिये नाना शृंगार करती रहती है। सुख रूप बतलाकर विषयाग्नि प्रचण्ड करने वाली यह प्रमदा सर्व अविवेकियों को भ्रमा देती है। इसी प्रकार अविवेकी पुरुष नारियों को दुःख की खाईं में डाल देते हैं।

शिक्षासार—शरीर वृद्ध होने पर भी तृष्णा वृद्ध नहीं होती। वह सदैव तरुणी बनी रहती है। विवेक-वैराग्य और स्वरूप-सन्तोष द्वारा ही तृष्णा का सर्वनाश हो सकता है।

३८—(वसन्त—५)

तुम बुझ बुझ पण्डित कौनि नारि ।
काहु न ब्याहलि है कुमारि ॥१॥
सब देवन मिलि हरिहि दीन्ह ।
चारिउ युग हरि संग लीन ॥२॥
प्रथम पदुमिनी रूप आहि ।
है साँपिनि जग खेदि खाहिं ॥३॥

ई बर जोवत ऊबर नाहिं।
अति रे तेज त्रिय रैन ताहि ॥४॥
कहहिं कबीर ये जगहिं पियारि।
अपने बलकवहिं रहल मारि ॥५॥

हे पण्डितो ! विद्वानो ! तुम सत्संग में बूझो-समझो कि कौन-सी ऐसी स्त्री है। जो किसी को व्याही नहीं गयी, सदा से कुवाँरी ही बनी है ॥१॥ सब देवगण मिलकर लक्ष्मी श्री-विष्णु को अर्पण किये। फिर श्रीविष्णु ने लक्ष्मी को चारों युग अपने साथ में रखा ॥२॥ इस नारी का उत्तम रूप 'पद्मिनी' लोग माने हैं। परन्तु विषैली सर्पिनि रूप हो कर सारे संसार के प्राणियों को खदेड़ कर और पकड़ कर भक्षण कर जाती है ॥३॥ यह नारी अपने लक्षण युक्त पति को खोजती है,परन्तु उसके लक्षणका पति जब उसे नहीं मिलता। तब भोगासक्ति रूपी घनघोर रात्रि में उस नारी के काम की अत्यन्त प्रबलता हो जाती है ॥४॥ सद्गुरु श्री कबीर साहेब कहते हैं—यह नारी जगत् को प्यारी है। परन्तु बालक रूप सर्व पुरुषों को अपने उदर से उत्पन्न कर पुनः विषय-क्रीड़ा में मार रही है ॥५॥

व्याख्या—माया ने सुन्दर भेष बनाकर एक महात्मा के पास गयी और निवेदन किया कि आप मेरे साथ विवाह करलें। महात्मा ने कहा—तू कितनी आयु की है ? माया

ने कहा— मैं अनादि काल की हूँ, मेरी आयु का पता नहीं है। महात्मा जी ने कहा—क्या अभीतक तेरा विवाह नहीं हुआ? माया ने कहा— नहीं। महात्मा ने कहा— सो कैसे? माया ने कहा—संसारी मुझे चाहते हैं, परन्तु मैं उन्हें चाहती नहीं और त्यागी को मैं चाहती हूँ, परन्तु वे मुझे नहीं चाहते। इसलिये मैं क्वाँरी ही बनी रहती हूँ। महात्मा ने कहा— तुम्हें मैं भी नहीं चाहता। फिर माया लज्जित होकर चल गयी।

अतएव इस मायारूपी स्त्री को कोई व्याह न सका। तात्पर्य यह है कि इसे कोई अपना न बना सका। यह हाथ में आकर भी छूटती रहती है। जो लोग इस माया से सुखों की प्राप्ति की आशा रखते हैं, वे बिल्कुल भूले हैं। भला! बिजली-चमक, रेल-छाया, इन्द्र-धनुष, ओस-कण और जल-बुदबुदा का क्या स्थायित्व है! इसीप्रकार इस माया का भी क्या भरोसा है! आज है कल नहीं रहती।

माया का एक रूप कञ्चन और दूसरा रूप कामिनी है। देवता-दैत्य मिलकर श्रीविष्णु की सहायता से जब समुद्र मथन किये। तब उसमें से चौदह रत्न निकले*। उन रत्नों में एक रत्न लक्ष्मी निकलीं। उन्हें सब देवता गण मिलकर श्री-विष्णु को दिये। फिर उन्हीं लक्ष्मी के साथमें चारों युग श्री-

---

* दोहा—श्री, मणि, रम्भा, वारुणी, अमी, शंख, गजराज।
कल्पवृक्ष, शशि, धेनु, धनु, धन्वन्तरि, विष, बाज॥

विष्णु ने बिता दिया। (ऐसी कल्पित वार्ता पुराणोंमें लिखी-है।) इस नारी-माया के फन्दे से वे भी नहीं बच सके। इसी कारण श्रीविष्णु जी भी बारम्बार जन्म धारण का संकट भोग रहे हैं।

स्त्री के मुख्य चार भेद मानते हैं—पद्मिनी, हस्तिनी, शंखिनी और चित्रिणी। (और दो भेद गौण माने हैं डंकिनी और नागिनी।) उक्त चार भेद वाली स्त्रियों के क्रमशः चार भेद वाले पुरुष भी हैं—शशा, वृषभ, मृग और गर्दभ। उक्त चार लक्षण के स्त्री-पुरुषों में से पद्मिनी-स्त्री और शशा-पुरुष उत्तम लक्षण वाले माने हैं। इस प्रकार विषय विलासियों ने कोकशास्त्र नामक पुस्तक में बहुत विस्तार लिखा है। जो कल्याण इच्छुक का महान अनर्थकारी है। इस प्रमदा रूपी महा सर्पिनि ने सब अज्ञानी पुरुषों को भ्रमाया है।

ऐसा मानते हैं कि यह स्त्री अपने लक्षण वाले पुरुष को खोजती है। जैसे पद्मिनी-स्त्री शशा-पुरुष को, हस्तिनी वृषभ को, शंखिनी मृग को और चित्रिणी गर्दभ को खोजती है। यदि अपने लक्षण युक्त पुरुष को नहीं पाती है, तो उस नारी को भोगासक्ति रूपी रात्रि में काम-वासना की अत्यन्त प्रबलता होती है।

विचार करके देखिये पद्मिनी, हस्तिनी, शंखिनी और

चित्रिणी नारी और शशा, वृषभ, मृग तथा गर्दभ पुरुष। सब हाड़-मांस मल-मूत्र के पुतले असार हैं। ये मिट्टी की काया कोई उत्तम लक्षण युक्त नहीं है। कल्याण-साधन करने योग्य मनुष्य के अन्तःकरण में जो विवेचन-शक्ति है। यही एक इसमें उत्तम लक्षण है। अन्यथा यह मिट्टी का लौंदा, हाड़ का ठाट, मल,मूत्र का घर, तीन तापों का केन्द्र, अत्यन्त क्षणभंगुर नरनारियों के अशुद्ध शरीर की क्या उत्तमता है ? लोग अज्ञान के वश ही इन नर-नारियों के हाड़-मांस के शरीरों को देखकर कामासक्त हो जाते हैं। यदि उनका अज्ञानमिट जाय, तो काम का स्थान नहीं है।

साहेब कहते हैं, यह दुःखदा स्त्री संसारियों को प्रिय लगती है। परन्तु विचार करके देखिये, यह अपने बालक को ही मार रही है। तात्पर्य यह है कि स्त्री जाति ही पुरुषों को उत्पन्न करती है। और वही पुनः भोगों में फँसा कर मारती है।

मुक्ति-इच्छुक पुरुष के लिये स्त्री की भोगासक्ति और मुक्ति-इच्छुका स्त्री के लिये पुरुष की भोगासक्ति महान बन्धन-प्रद है। जो स्त्रियाँ पुरुषों के गढ़न रङ्ग और फैसन को देखकर उसे सुख रूप मानती हैं और जो पुरुष स्त्रियों के रूप, रंग तथा वस्त्रालंकार को देखकर मोह-मुग्ध हो जाते हैं। और उसके शरीर का विविध उपमायुक्त वर्णन करते तथा भोगा-सक्त रहते हैं। वे निरा पागल हैं। क्योंकि यह स्त्री-पुरुष का

शरीर हड्डी-मांसों का पुञ्ज है। यह बिल्कुल निःसार और घृणास्पद है।

शिक्षासार—स्त्री और पुरुषों के शरीरों में सुख मानना छोड़ देना चाहिये। इनके रूप, रङ्ग और फैसन का कोई महत्त्व नहीं है। कल्याण-साधन के अतिरिक्त इन शरीरों के लक्षणों का भी कोई महत्त्व नहीं है। कामुकता ही बन्धन है, निष्काम-वृत्ति ही परम् शान्तिमय मोक्ष दशा है।

३६—(वसन्त—७)

घरहि में बाबुल बाढ़ल रारि।
उठि उठि लागलि चापल नारि॥ १॥
एक बड़ी जाके पाँच हाथ।
पाँचों के पच्चीस साथ॥ २॥
पचीस बतावैं और और।
और बतावैं कइ एक ठौर॥ ३॥
अन्तर मध्ये अन्त लेइ।
झक झोरि झोरा जीवहिं देय॥ ४॥
आपन आपन चाहैं भोग।
कहु कैसे कुशल परि हैं योग॥ ५॥
विवेक विचार न करैं कोय।
सब खलक तमाशा देखैं लोय॥ ६॥

मुख फारि हँसे राव रङ्क।
ताते धरे न पावैं एकौ अङ्क ॥ ७ ॥
नियरे न खोज बतावे दूरि।
चहुँ दिशि बागुलि रहलि पूरि ॥ ८ ॥
लच्छ अहेरी एक जीव।
ताते पुकारे पीव पीव ॥ ९ ॥
अबकी बार जो होय चुकाव।
कहहिं कबीर ताकी पूरी दाव ॥ १० ॥

ऐ भैया चेतन मनुष्य! तुम्हारे देह रूपी घर में बड़ा झगड़ा बढ़ा हुआ है। दौड़-दौड़ कर चञ्चल स्त्रियाँ तुमसे भिड़ रही हैं ॥ १ ॥ यह काया जो है, बड़ी दुःखदायी और विशाल आकार वाली एक स्त्री है, इस काया के पाँच विषय रूपी पाँच हाथ हैं और उन पाँचों के पच्चीस प्रकृतियाँ साथ लगी हैं ॥ २ ॥ वे पचीसों प्रकृतियाँ और-और विषय बताती हैं तथा अन्य विषय अन्य-अन्य स्थल का संकेत करते हैं ॥ ३ ॥ पूर्वोक्त विषय-वासनायें हृदय अन्तर्गत गड़ जाती हैं और स्वरूप से पृथक् विषयों में जीव को डाल देती हैं। ये वासनायें साधन-हीन जीव को विवशता पूर्वक झक-झोरती (चंचल करती) हैं ॥ ४ ॥ सहमत रहित सब इन्द्रियाँ अपना-अपना भोग चाहती हैं। फिर कहिये भला! जीव के कल्याण की योग्यता कैसे पड़ेगी ॥ ५ ॥ इतने उपद्रव

पर भी इस झगड़ा से छूटने के लिये कोई विवेक-विचार नहीं करता है। बल्कि सब संसारी लोग इस झगड़ा में आनन्द मान कर तमाशा देखते हैं ॥ ६ ॥ राजारंक मुख फैला-फैलाकर हँस रहे हैं। इसलिये कल्याण का एक भी लक्षण नहीं धारण कर पाते ॥ ७ ॥ सत्संग द्वारा निकट हृदय में मोक्ष स्वरूप को नहीं खोजते हैं, बल्कि अपना मोक्षस्वरूप-मोक्षस्थल दूर समझ कर दूर ही बता रहे हैं। कल्पना की वाणी चारों ओर परिपूर्ण हो रही है ॥ ८ ॥ बाम-वञ्चक, मन-इन्द्रियाँ तथा नाना वासनायें ये सब लाखों शिकारी एक जीव पर अपना फन्दा रूपी वाण चला रहे हैं। इसलिये जीव दैव-दैव पुकारता है ॥ ९ ॥ सद्गुरु श्री कबीर साहेब कहते हैं:— अबकी बार इस नर जन्म में यदि बन्धनों से जीव छूट जाय, तो उसकी पूरी बाजी है ॥ १० ॥

व्याख्या— यह चेतनजीव बड़े झगड़े के घर में पड़ा है। जीवन धारण ही झगड़ा है। अनेक वासनायें रूपी स्त्रियाँ जीव को हर क्षण विकल किये रहती हैं। तिसमें सबसे बड़ी विशालकाय, भयंकर, दुःखदायी स्त्री यह काया है।

एक बड़ी जाके पाँच हाथ। पाँचों के पच्चीस साथ ॥
पचीस बतावैं और और। और बतावैं कई एक ठौर।"

इसकी टीका में श्रीपूरणसाहेब त्रिज्या में जो लिखे हैं, उसे यहाँ अविकल रूप से उद्धृत कर दिया जाता है—

"सबते बड़ी एक काया जाके पाँच हाथ पाँच तत्त्व और

पांचों के पच्चीस साथ। आकाश पंचक—अन्तःकरण, चित्त, मन, बुद्धी, अहंकार। और वायु पंचक—प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान। अग्नि पंचक—आँख, कान, नाक, जीभ, त्वचा। जल पंचक—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध। पृथिवी पंचक—हाथ, पाँव, मुख, गुदा, लिंग ये पाँचों के पच्चीस साथ। अब इनके पच्चीस विषय—अन्तःकरण का विषय निर्विकल्प, मन का विषय संकल्प-विकल्प, चित्त का विषय अनुसंधान, बुद्धि का विषय निश्चय, अहंकार का विषय करतूत। प्राण का विषय चलब, अपान का विषय छोड़ब, समान का विषय बैठब, उदान का विषय उठब, व्यान का विषय पौढ़ब। कान का विषय शब्द सुनब, आँख का विषय देखब, नाक का विषय सूँघब, जीभ का विषय बोलब, त्वचा का विषय स्पर्श ये अग्नि पंचक। अब जल का पंचक शब्द का विषय राग सुर अर्थ, स्पर्श का विषय मृदुत्व शीतलत्व, रूप का विषय सुन्दरत्व, रस का विषय स्वाद, गंध का विषय सुप्रसन्नत्व। ये पच्चीस बतावैं और और। ये ही पच्चीस विषय में जीव बन्ध गया। ताते ये विषय और कई एक ठौर कहिये चौरासी योनि जीव को बताते हैं।"

पूर्वोक्त विषय-वासनायें जीव के हृदय में दृढ़ रूप से गड़ गयी हैं। बारम्बार भोगों के लिये जीवको विकल किया करती हैं। आँख, नाक, कान, जीभ और त्वचा ये अपना-अपना भोग रूप, गन्ध, शब्द, स्वाद और स्पर्श चाहते रहते हैं।

भाव यह है कि विषयासक्त जीव पञ्च ज्ञान इन्द्रियों से शब्दादिक पञ्च विषय भोगों में सदैव उन्मत्त रहता है।

जब तक मन-इन्द्रियाँ भोगों में लगी रहेंगी, तब तक कल्याण की योग्यता नहीं पड़ सकती है। भोगों को त्यागने में ही जीव की कुशलता है। भोगी जीव दुःखों से मुक्त नहीं हो सकता। गर्भवास, जन्म-मरण तथा देहोपाधिक समस्त संकट इसी विषयासक्ति से उत्पन्न होते हैं। जन्मादिक देहोपाधिक विषयासक्ति जनित नाना कष्टों को पाते हुए भी दुःख-छुटकारा हेतु संसारी जीव कोई विवेक विचार नहीं करते। इस विषयासक्ति, विलास और इन्द्रिय-लोलुप्ता वश ही जीव की नाना दुर्दशायें हो रहीं हैं। संसार में नाना राग-द्वेष की झंझटें इसी से होती हैं, परन्तु लोग असावधान होकर मोह-निद्रा में सुप्त पड़े हैं !

अनेक विपत्तियाँ चारों ओर से घेरे हैं। प्रिय का वियोग, स्वास्थ्य-धन का नाश, मान की हानि, रोगों का आक्रमण, मन-इन्द्रियों की परतन्त्रता, प्रारब्ध की विवशता, प्राणी-पदार्थों की प्रतिकूलता और आयु का शीघ्रता पूर्वक गमन देखकरके भी अपने कल्याण के लिये लोग विवेक नहीं जाग्रत करते। बल्कि सब संसारी अज्ञानी लोग इन दुःख रूपी भोगों में लगी हुई इन्द्रियों की चञ्चलता को आनन्द मानकर कुतूहल रूप से देखते हैं। संसार के जो नाच-रंग विषय-विलास हैं, लोग इसी का तमाशा देखते हैं। यह नहीं समझते कि

इन्हीं विषयों का तमाशा जीव को नाना कष्ट देता रहता है

स्त्री, पुत्र, मित्र, कुटुम्ब, धन, घर, पृथ्वी, पद, मान, बड़ाई, विद्या, चतुरता, पाँचों विषयों के भोग, सुन्दरता, जवानी इत्यादि पाकर संसार के राजा-प्रजा, पढ़-अपढ़, बालक-वृद्ध तथा नर-नारी—सब मद में उन्मत्त हो रहे हैं। इन दुःख रूपी नाशवान् मायावी पदार्थों के अहंकार-फुलाव में पड़कर सब मुख फाड़-फाड़कर अट्टहास बाँधकर हँस रहे हैं। अज्ञानी जीव दुःख ही को सुख मान रहे हैं। इसपर श्री भर्तृहरि जी वैराग्य शतक में लिखते हैं—

छप्पय—

गई भोग की चाह गयो गौरव गुमान सब।
मित्र गये सुरलोक अकेले रहे आप अब॥
उठत सु लकड़ी टेक तिमिर आँखिन में छायो।
शब्द सुनत नहिं कान वचन बोलत बहकायो॥
यह दशा वृद्ध तन की तऊ, चकित होत मरिबो सुनत।
देखो विचित्र गति जगत की, दुखहूँ को सुख सो लुनत॥

अभिमान का पर्दा होने से ही, दुःखों से छूटकर कल्याण प्राप्त होने का एक भी लक्षण जीव नहीं धारण कर पाता। विवेकी पारखी सद्गुरु-सन्तों के सत्संग में मनुष्य को जाना चाहिये। सत्संग द्वारा अत्यन्त सन्निकट अपने हृदय में ही अपने वास्तविक स्वरूप की खोज करनी चाहिये। फिरतो

भलीभाँति खोजने पर जब स्वरूपज्ञान उदय होगा, तब निकट-दूर दोनों की आशा-रहित केवल तू-ही-तू शुद्ध चैतन्य पारख अपने आप वास्तविक स्वरूप रह जायगा। इस अपने स्वरूपज्ञान को छोड़ कर दूर कुछ मत खोजो। संसार में नाना मतों की कल्पित वाणियों की धूम मची है। पारखी के अतिरिक्त सब अपने से पृथक् कल्पना में लगाते हैं या अपने को सर्वत्र पूर्ण मानकर जगत् रोग का अभिन्न निमित्तोपादान कारण बनते हैं। एक जीव पर नाना मत-वादी की कल्पित वाणियों की भ्रमार, स्त्री-पुत्र, धन-घर का जाल तथा इन्द्रिय-मन की खैंच का झगड़ा लगा है। इस-लिये यह जीव अत्यन्त दुखी होकर दैव-दैव पुकारता है। परन्तु यह भी इसकी अज्ञानता है। क्योंकि—

''दैव दैव आलसी पुकारा।
कादर मन कर एक अधारा॥
नाथ दैव कर कौन भरोसा।
सोषिय सिन्धुकरिय मन रोसा॥
नहिं काहुइ कोइ सुख दुख दाता।
निज कृत कर्म भोग सुन भ्राता॥

(रामायण)

अथवा

साखी—करु बहियाँ बल आपनी, छाँड़बिरानी आश।
जाके आँगन नदिया बहै, सो कस मरै पियास॥

(बीजक)

इत्यादि वचनानुसार अपना शुभाशुभ कर्महीअपने को सुख-दुःख देता है। सुख-दुःख का दाता अन्य कोई नहीं है। "जो कुछ करेगा वह दैव ही हमारा करेगा।" ऐसा मानना केवल अपनी कायरता का परिचय देना है। दैव आदि कर्ता अन्य कोई नहीं, हमें अपने आपको सुधारने के लिये, हमें अपने आप को सब बन्धनों से मुक्त करने के लिये सत्संग, सद्ग्रन्थ और स्वानुभव द्वारा ज्ञान प्राप्त कर और सुसंग ही में जीवन पर्यन्त रह कर हमें स्वयं दृढ़ साधन प्रयत्न करना होगा। बिना पुरुषार्थ किये कुछ भी नहीं प्राप्त होता, फिर मोक्ष ऐसा दुर्लभ पदार्थ बिना पुरुषार्थ के कैसे मिलेगा?

श्री कबीर साहेब कहते हैं कि—अबकी बार जो यह नर तन मिला है। इसी में सत्संग-साधन करके क्रियमाण कर्म को रोक दे और विवेक पूर्वक प्रारब्ध कर्म को भोग ले। फिर तो ज्ञानाग्नि से सर्व विषयासक्ति घटाध्यास रूप सञ्चित और पूर्व के अभुक्त शुभाशुभ कर्म रूप सर्व सञ्चित कर्म सर्वथा दग्ध हो जायँगे और जीव मुक्त हो जायगा। पुरुषार्थ द्वारा जो इसी जन्म में मोक्ष प्राप्त कर ले, जानिये उसी जीव की बाजी लग गयी। वही सर्वाजीत, सुखी और सर्वश्रेष्ठ है। अतः अपना समय कल्याण-साधन में ही लगाना चाहिये। किसी ने कहा है—

कवित्त

गर्भ में पौढ़ि मही पुनि पौढ़ि के,

जननी संग पौढ़ि क बाल कहायो।
ज्वान भयो युवती संग पौढ़ि के,
सारी युवा तुम पौढ़ि गँवायो॥
बोध विचार को देवन हार,
तिन्हें सपने नहिं ध्यान लगायो।
पौंढ़त पौंढ़त पौढ़ि रह्यो,
चित चेतु चिता पौढ़न दिन आयो॥

शिक्षासार—इन्द्रिय-मन की लोलुपा त्याग दे, वासनाओं को नष्ट कर दे और असावधानी की निद्रा त्यागकर अपने को दुःखों से छुड़ाने के लिये विवेक करे। मन-इन्द्रिय और वाम-वंचक के कुचाल और कुसंग से सावधान और दूर रहे। जो अपना दुःखों से सर्वथा छुटकारा कर लेता है। वही पूर्ण विजयी महत्त्वशाली और सुखी है।

४०—(हिण्डोला--२)

बहु विधि चित्र बनाय के। हरि रचिन क्रीड़ा रास॥१॥
जाहि न इच्छा झूलबे की। ऐसी बुधि केहि पास॥२॥
झूलत-झूलत बहु कल्प बीते। मन नहिं छाड़े आश॥३॥
रच्यो रहस हिण्डोरवा। निशि चारिउ युग चौमास॥४॥
कबहुँक ऊँचे कबहुँक नीचे। स्वर्ग भूत लै जाय॥५॥
अति भरमित भरम हिण्डोरवा। नेकु नहीं ठहराय॥६॥
डरपत हौं यह झूलबे को। राखु यादव राय॥७॥

कहैं कबीर गोपाल बिनती। शरण हरी तुम आय ॥८॥

अनेक प्रकार से सुन्दर रूप बनाकर माया ने भ्रम हिण्डोरवा का रहस-खेल रचा ॥१॥ इस भ्रमहिण्डोले पर झूलने की जिसकी इच्छा न हो। ऐसी श्रेष्ठ विवेकवती बुद्धि किसके पास है ? ॥२॥ भ्रम-हिण्डोले पर झूलते-झूलते अनन्तों कल्प बीत गये। परन्तु इस झूलने की आशा से मन आज भी निराश नहीं होता ॥३॥ इस भ्रम हिण्डोले का खेल इस प्रकार रचा गया है कि रात-दिन, चारों युग और चारों महीने होता रहता है ॥४॥ यह भ्रम-हिण्डोला जीव को कभी तो ऊँची खानि और ऊँचे वर्ण में ले जाता है और कभी नीची खानि या नीचे वर्ण में ले जाता है। कभी यह जीव को स्वर्ग कल्पना में दौड़ाता है और कभी पाताल की कल्पना में दौड़ाता है ॥५॥ यह भ्रम हिण्डोला अत्यन्त वेग-युक्त भ्रमणशील है। यह कभी किञ्चित् भी नहीं ठहरता ॥६॥ कबीर अर्थात् अज्ञानी जीव कहता है—हे यादव पति भग-वान्! अपने हिण्डोला को अब स्थिर कर लो। मैं इस झूले से भयभीत हूँ, प्रभो! मैं आप के शरणाधीन होकर निवेदन करता हूँ, मेरे को इस दुःख से छुड़ा लो ॥७-८॥

व्याख्या—विवेक-विचार और कल्याण-साधन को जो हर लेवे सो हरि। इस बीजक ग्रन्थ में हरि का अर्थ माया माना गया है। स्त्री, वाचाल भ्रमिक विवादी, जड़-विज्ञान

मन-वासना, शरीर, पाँचों विषय—ये सब माया हैं। इन्हीं माया ने अनेकों प्रकार रूप बनाकर केलि-नृत्य करने के लिये 'सुख-भ्रम' का हिण्डोल रचा है। जिन पदार्थों में सुख का लेश मात्र न हो, बल्कि और दुःख हो, उसमें सुख मानना—'सुख-भ्रम' है। अर्थात् जिसमें भ्रम या अज्ञानता से सुख भासे, वह 'सुख-भ्रम' है। माया ने नाना शृंगार करके इसी 'सुख-भ्रम' का हिण्डोला रचा है। विरले विवेकी के अतिरिक्त इस माया रचित 'सुख-भ्रम' के हिण्डोले में सब भूलना चाहते हैं और भूलते हैं। इन संसारियों में से किस के पास ऐसी विवेकवती सुबुद्धि है कि इस हिण्डोले पर जो न भूलना चाहे ?

देखिये ! स्त्री का शरीर हाड़-मांस और मल-मूत्रों का है। परन्तु इसने नाना वस्त्रों और अलङ्कारों से शरीर की गन्दगी को ढक कर ऊपर बहुत सुन्दर फैसन बनाया है।

नना शृङ्गार करके स्त्री रूपी माया ने क्रीड़ा करने के लिये मैथुन भोग रूपी 'सुख-भ्रम' का हिण्डोला रचा है। इस हिण्डोले पर सब संसारी चढ़ कर क्रीड़ा करना चाहते हैं और क्रीड़ा करते हैं। यद्यपि इस हिण्डोले में जीव की सब दुर्दशायें होती हैं। जन्म-मरण, गर्भवास, देहोपाधिक नाना असह कष्ट इसी 'भ्रम-सुख' हिण्डोले में भूलने से होते हैं। नाना ऊँच-नीच योनियों में जीव को बारम्बार जन्म धारण करना पड़ता है। तथापि इस भूले का मोह जीव छोड़ नहीं

पाता। भला ! ऐसी बुद्धि किसके पास है, जो इस झूले को शत्रुवत् त्याग दे ? कोई विरले विवेकी होंगे।

स्त्री-पुरुष का दोनों शरीर माया है। यह दोनों शरीर ही 'सुख-भ्रम' का हिण्डोला है। इस दो शरीर के परस्पर स्पर्श रूपी हिण्डोले में सब जीव झूलते हैं। दुःख पाते हुए भी लोग इस झूले से उतरना नहीं चाहते। जिस अपने-पराये स्त्री-पुरुषों के शरीरों में सुख माना जाता है, वह महा असार और अशुद्ध है। सुन्दरदास जी कहते हैं—

कवित्तः—

जाहि देह माहि तू अनेक सुख मानि रह्यो,
ताहि में विचार देख कौन बात भली है।
मेद मज्जा मांस रग-रग में रकत भरो,
पेट हू पिटारी तामें ठौर-ठौर मली है॥
हाड़न से मुख भरो हाड़न के नैन नाक,
हाथ पाँव सोऊ सब हाड़न की नली है।
सुन्दर कहत याहि देखि जनि भूलो कोई,
भीतर भङ्गार भरो ऊपर तो कली है॥ १॥
कामिनी को अंग अति मलिन महा अशुद्ध,
रोम-रोम मलिन मलिन सब द्वार है।
हाड़ मांस मज्जा मेद चामसुँ लपेटि राखे,
ठौर-ठौर रकत के भरेई भण्डार है॥

सूत्र हूँ पूरीष आँत एकमेक मिल रही,
और ही उदर माहि विविध विकार है।
सुन्दर कहत नारी नख शिख निन्द्य रूप,
ताहि को सराहे सो तो बड़ो ही गँवार है ॥ २॥

भ्रामिक मतवादी लोग अपना पृथक् ही वाणीजाल का पसारा किये हैं। जिसमें अखण्ड, शुद्ध, बुद्ध जीव को परोक्ष कर्ता तथा अलिप्त-व्यापक के भ्रम में फँसा कर स्वरूप से पृथक् भ्रमा देते हैं। इनकी माया भी बड़ी प्रबल है। इसका पक्ष लोग बहुत कम छोड़ पाते हैं।

आज-कल एक बड़ी माया जड़-विज्ञान है। "संसार को सुखी, स्वस्थ और महान बनाऊँगा"—इसी दम्भ का इसके नाना प्रकार के शृङ्गार हैं और मन मुग्धकर रूप बना कर स्वतन्त्र विषय-क्रीड़ा करने के लिये यन्त्र-कला रूपी 'सुख भ्रम' का हिण्डोला रचा है। कुछ ही विवेकियों के अतिरिक्त इस हिण्डोला पर सब चढ़ कर क्रीड़ा करना चाहते हैं और करते हैं। आज-कल इस जड़-विज्ञान का मोह लोगों को अधिक है। कौन ऐसा बुद्धिमान है, जो इस जड़-विज्ञान के विकारी एवं अनर्थकारी अंशोंका त्याग कर इसका सदुपयोगकरे।

विज्ञान ने मनुष्यों के सुख-सुविधा के लिये कला और यन्त्र अवश्य दिया। परन्तु आगे-आगे चलकर इसने सीमा से बाहर पैर रखना आरम्भ किया। जिससे आज तक इस

विज्ञान की कृत्रिमता इतनी बढ़ गयी है कि जिसका अन्तिम परिणाम नाश आ गया है।

कोई कार्य-कला पहले जीवन-निर्वाह के लिये किया जाता है। फिर सुविधा के लिये किया जाता। पुनः आराम के लिये किया जाता है फिर सुखानन्द और विलास के लिये मनुष्य का पुरुषार्थ होता है, इसके पश्चात् ही विनाश का क्रम अपने आप आ जाता है। जैसे गुड़ से शक्कर बनाया जाता है और शक्कर से मिश्री, मिश्री से कन्द बनता है। फिर कन्द से ही आगे विकन्द अर्थात् विष हो जाता है। अतएव कन्द ही तक रहना उचित है।

निर्वाह, सुविधा, आराम, विलास और विनाश मनुष्य के पुरुषार्थ-फल की यह पाँच गति हुई। (१) निर्वाह के लिये पुरुषार्थ करना आवश्यक है। (२) सुविधा के लिये भी पुरुषार्थ करना चाहिये। (३) किसी प्रकार-किसी दृष्टि से आराम के लिये भी मनुष्य पुरुषार्थ कर सकता है। परन्तु (४) विलास के लिये पुरुषार्थ करने से तो (५) विनाश उसके पीछे ही आता है। यह जड़-विज्ञान विलास और विनाश के मञ्च पर पहुँच गया है। किसी मनुष्य ने कहा—"विज्ञानियों ने एक बम बनाया है, उसको यदि छोड़ दिया जाय, तो सारा संसार नष्ट हो जाय।" तब एक सज्जन ने कहा—क्या भैया ! साम्यवाद के समर्थक विज्ञानियों ने ऐसा कोई बम नहीं बना दिया कि उसको छोड़

देने से सारे संसार के प्राणी बिल्कुल सुखी हो जायँ ? क्या इन जड़-विज्ञानियों को संहार करना ही आता है, रक्षा करना नहीं आता, संसार भर को नष्ट करने के लिये जो बम बनाया गया है, वह जब छोड़ा जायगा, तब सारे संसार के नष्ट होने पर वे छोड़ने वाले भी तो नष्ट होंगे। यदि वह कभी नहीं छोड़ा जायगा, तो यदि विस्फोट हो (दग) जाय। तब तो प्रथम उन्हीं का संहार होगा।

विज्ञानी लोग नाना संहार कारक बम और अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण, विषय-विलासी पदार्थोंका निर्माण और हिंसा-अहिंसा का विचार छोड़कर नाना चिकित्सों का निर्माण कर रहे हैं। जो कि मनुष्यों के सुख के साधन न होकर दुःख, भय, पाप और नाश के साधन हो रहे हैं।

क्या ही उत्तम होता कि हिंसा, विलास और विनाश के साधन न बना कर व्यवहार-परमार्थ क्षेत्र के शान्ति सुख-दायी ही साधन बनाते।

जड़-विज्ञान निन्दनीय नहीं अपितु प्रशंसनीय है, परन्तु अनेक प्रकार से आजकल इसका दुरुपयोग किया जाने के कारण कई अंश इसके निन्दनीय हो गये हैं। निर्वाह, सुविधा तथा आराम के लिये ही यदि इसका उपयोग होता, तो अति उत्तम था। परन्तु घोर हिंसात्मक चिकित्सों-औषधियों, अत्यन्त पतनकारी विलासी-वस्तुओं, धन-जन सहांरक अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण एवं प्रयोग करके विज्ञान के

कई अंशों को लोग कलंकित बना दिये हैं। जैसे अपने ही सड़े अंगों को कटा दिया जाता है, तैसे विज्ञान के विकारी अंग त्यागकर गुणकारी अंग ही ग्रहण करना चाहिये।

मन-वासना सबसे बड़ी मुख्य माया है। यह नाना रूप बनाकर जीव को ठगती है और सुख-भ्रम के हिण्डोले में सब जीवों को झुला रही है। काम, क्रोध, लोभ,मोह, भय, राग, द्वेष, आशा, तृष्णा, चिन्ता, शोक, विकलता—इत्यादि मन-वासना के बहुत रूप हैं।

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये पाँचों विषय बड़ी प्रबल माया हैं। पञ्चज्ञान इन्द्रियों से इसको भोगते-भोगते अनादिकाल का समय बीत गया। परन्तु मन-इन्द्रियों में सन्तोष के अतिरिक्त तृष्णा धधक रही है।

इस प्रकार काम, वंचक, विज्ञान, वासना विषय और शरीर इन छः माया ने अनेकों प्रकार दम्भ युक्त ऊपर सुन्दर आकर्षक रूप बनाकर विषय-क्रीड़ा करने के लिये 'सुख-भ्रम' का हिण्डोला रचा है। इन छहों माया के 'सुख-भ्रम' हिण्डोले में सब संसारी झूलते हैं। इससे कोई-कोई विवेकी बचते हैं।

इस हिण्डोले पर झूलते-झूलते असंख्यों कल्प* बीत गये। अनादि काल से आज तक का समय बीत गया। परन्तु अहो!

---

*चार अरब बत्तिस करोड़ वर्ष का एक कल्प माने हैं।

इन छहों माया के 'सुख-भ्रम' हिण्डोले पर झूलने की आशा मन अभी भी नहीं छोड़ता है। माया ने ऐसा हिण्डोला रचा है कि रात-दिन चारों युग और चारों महीने (चतुर्मासा-गर्मी, चतुर्मासा-वर्षा, चतुर्मासा-ठंढी अर्थात् सदैव।) यह हिण्डोला चला करता है। भाव यह है कि इन छहों माया में आसक्त होकर मनुष्य हरसमय भोग-विलास और मनके चक्र में पड़ा रहता है।

"निशि चारिउ युग चौ मास" का अर्थ यह भी है— निशि नाम रात्रि,रात्रि यहाँ अज्ञानता है। चार नाम ४की संख्या और युग कहते हैं दो को,अतः युग का अर्थ हुआ२की संख्या। इसलिये चारयुग का अर्थ हुआ आठ और आठ का भाव हुआ अष्ट मैथुन। अतएव प्रकारान्तर से चारिउयुग का अर्थ हुआ अष्ट मैथुन। और चौमास नाम उपस्थ, मुख और दोनों कुच। इस प्रकार अज्ञानता, अष्टमैथुन और प्रमदा के उपस्थ, मुख तथा दोनों कुच—इसके 'भ्रम-सुख' हिण्डोले में सब झूल रहे हैं।

यह 'सुख-भ्रम' का हिण्डोला जीवको कभी ऊँचे लेजाता है और कभी नीचे लाता है। अर्थात् यह विषयासक्ति की वासना कहीं ब्राह्मणादि जातिमें ले जाती है,कहीं शुपच यवन आदि जाति में जन्म धराती है। कभी मनुष्य जन्म में लाती है कभी पशु-पक्षी और कभी शूकर-कूकर कीट-पतंगादि योनियों में ले जाती है। यह 'सुख-भ्रम' रूप झूलेकी

वासना बड़ी दुःखदायी है। यह अत्यन्त चञ्चल है। यह हिण्डोला कभी किञ्चित् भी नहीं ठहरता है। इस हिण्डोलेपर जो झूलते हैं। वे सब बड़े दुःखों से त्राहि-त्राहि करके अपने चेतन स्वरूप से पृथक् कर्ता की कल्पना करके उससे निवेदन करते हैं कि "हे प्रभो ! हमारी रक्षा कीजिये। इस हिण्डोले के झूले से बचाइये।" परन्तु यह ध्यान में रखना चाहिये। कि अपने-आप के अतिरिक्त कोई दूसरा अपना रक्षक नहीं है। जिस दिन यह जीव स्वयं अपने कल्याण-सुधार करने की सुधि करेगा और पुरुषार्थ करेगा, उसी दिन यह इस हिण्डोले के दुःख से बच जायगा। हाँ ! इस जीव को विवेकी सन्तों का और सद्गुरु के सत्संग-भक्ति का आधार अवश्य लेना पड़ेगा।

शिक्षा-शब्द

क्या देख दिवाना हुआ रे ॥ टेक ॥

माया बनी सार की सूली, नरक का कुआ रे ॥१॥
हाड़ चाम का बना पींजरा, तामे मनुआँ सूआ रे ॥२॥
भाई बन्धु औ कुटुम घनेरा, तिनमें पच पच मूआ रे ॥३॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो, हार चला जग जूआ रे ॥४॥

शिक्षासार—वाम, बंचक, विज्ञान, वासना, विषय और शरीर इन छः माया ने भोगों में 'सुख-भ्रम' का हिण्डोला रचा है। इस हिण्डोले के झूलने में सब संसारी जीव अनादि से आज तक निमग्न हैं। परन्तु यह हिण्डोला

जन्मादि बड़ा दुःख-प्रद है। अतः इस 'सुख-भ्रम' हिण्डोले से उतर कर सत्सङ्गद्वारा अपना कल्याण-साधन करना चाहिये।

शब्द

मन तू भोग तजो दुखदाई ॥टेक॥

शब्द स्पर्श रूप रस गन्धौ, अति रमणीय सुहाई।
भृङ्ग कुरङ्ग मतङ्ग पतङ्गी, मीन मृत्यु दुख पाई ॥१॥
पाँचों चोर बसत घट भीतर, दश ठग ठगत सदाई।
तेहि के बीच कहा सुख सोवत, जागो रे मन भाई ॥२॥
भोग से रोग शोक चिन्ता अति, तृष्णा ताप जलाई।
जनम मरण दुख आधि व्याधि में, जीवन जात विताई ॥३॥
दम्पति पर्श भोग पाँचों विष, हन्ता मान बड़ाई।
सब संकल्प त्यागि निज पद थिर, तू अभिलाष सदाई ॥४॥

बीजक-शिक्षा संक्षिप्त-संग्रह तृतीय सोपान इन्द्रिय वासनाओं की प्रबलता एवं निराकरण समाप्त
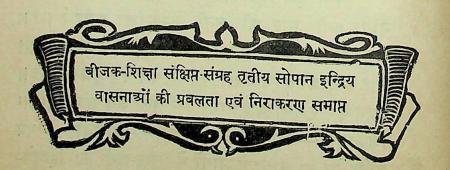
॥ सोपान-फल ॥

अब मन-इन्द्रिय हो गयीं थीर।

गुरुवर कबीर के तीव्र बैन।
चुभ गये हृदय में सहित सैन॥
सब भोग रोग हैं—हुई दृष्टि।
निर्विषय शान्ति की हुई सृष्टि॥
परमोत्तम परमोधन स्व-हीर ॥अब०॥१॥

नहिं जगत्-कामना रही लेश।
निर्मल विराग उर-घर प्रवेश॥
छूटा जग-जड़-इन्द्रिय कुदेश।
रह गया शुद्ध पारख अशेष॥
जय दीन बन्धु गुरुवर कबीर ॥अब०॥२॥

अब नित्य परख पारख समाधि।
मिट गयी सदा की अधि व्याधि॥
हो गया स्वप्न संसृति विराम।
नित रमण मोक्ष पद पूर्ण काम॥
स्थगित हुई अब रहँट भीर ॥अब०॥३॥

।। चतुर्थ-सोपान-महिमा ।।

सत्-प्रिय-हित की वाणी उचार ।

कटु खर्स असत् अश्लील व्यङ्ग ।
उत्पादक क्रोधादिक अनंग ।।
खानी-वाणी प्रतिपाद्य अंग ।
बन्धन-प्रद वाणी का तरंग ।।
तजि वदन वदत निर्णय सुसार ।। सत्०।।१।।

गाली निन्दा चुगुली विवाद ।
अधिकार-हीन के संग वाद ।।
चंचल्य हँसी मिथ्या-प्रलाप ।
तज वचनों के कलिमल-कलाप ।।
कर निर्णय वचनों का विचार ।।सत्०।।२।।

बोले आवश्यक उचित अल्प ।
मद मान वचन तजिये विकल्प ।।
जो कहे वचन गम्भीर तौन ।
हो वाक्य संयमी आर्य मौन ।।
सोपान-चतुर वाणी सुधार ।।सत्०।।३।।

सद्गुरवे नमः

बीजक-शिक्षा

(संक्षिप्त-संग्रह)

टीका-व्याख्या-शिक्षा युक्त

चतुर्थ सोपान

वचन-सुधार
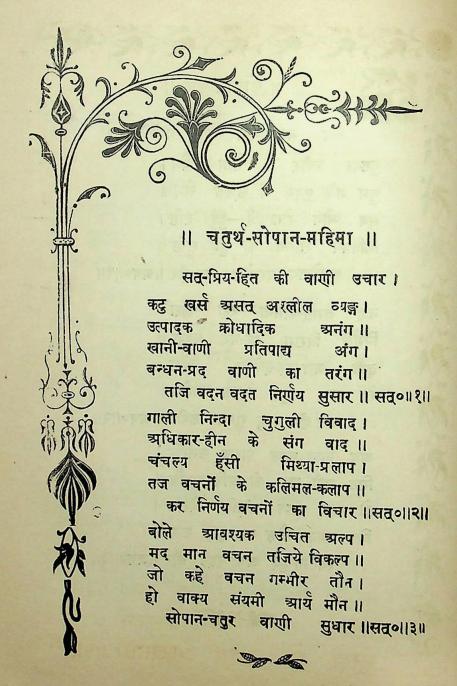
४९---(रमैनी---७०)

बोलना कासो बोलिये रे भाई ।
बोलत ही सब तत्त्व नशाई ॥१॥
बोलत बोलत बाढ़ु विकारा ।
सो बोलिये जो पड़ै विचारा ॥२॥
मिलहिं सन्त वचन दुइ कहिये ।
मिलहिं असन्त मौन होय रहिये ॥३॥
पण्डित सो बोलिये हितकारी ।
मूरख सो रहिये झखमारी ॥४॥

कहहिं कबीर अर्ध घट डोलै।
पूरा होय विचार लै बोलै ॥५॥

ऐ भाई ! वाक्य किससे बोलना चाहिये ? इसका विचार करो। पात्र-हीन व्यक्ति से बोलते ही वाक्य-संयम का सब तत्त्व (गुण) नष्ट हो जाता है ॥१॥ अधिक वाक्य बोलते-बोलते झगड़ा बढ़ता है। अतः वही बात बोलिये, जो विचार के सहित हो ॥२॥ कोई शील स्वभाव-प्रिय सन्त मिल जायँ, तो जड़-चेतन परिचायक दो वाक्य बोल दो। और यदि दुष्ट मिलें, तो वहाँ मौन हो जाना ही उचित है ॥३॥ नम्र विद्वान और सज्जन से हितकारी वचन कहिये। और मूर्ख से तो अपना मन मार कर शान्त रहिये, इसी में भलाई है ॥४॥ सद्गुरु श्री कबीर साहेब कहते हैं—आधा घड़ा जल रहने पर वह जल उछलता है और पूरा घड़ा जल से जब भरा रहता है, तब उछलता नहीं और यदि कहीं शब्द भी होता है, तो गम्भीर होता है। इसी प्रकार अधूरा व्यक्ति अनावश्यक चंचलता पूर्वक बहुत बातें किया करता है। और जो पूर्ण व्यक्ति रहता है,वह विचार पूर्वक बोलता है ॥५॥

व्याख्या—इस रमैनी में सद्गुरु श्री कबीरदेव वाक्य बोलने का नियम बतलाये हैं। आप ने कहा है कि अनधिकारी को शिक्षा मत दो। क्योंकि जो सद्शिक्षा को सुनना

नहीं चाहता है और यदि सुने भी तो उसको शिक्षा सुनकर किञ्चित् भी प्रसन्नता नहीं उत्पन्न होती है। ऐसे व्यक्ति के लिये शिक्षा देना अपनी अज्ञानता का परिचय देना है। गोस्वामी श्रीतुलसीदास जी महाराज भी 'सतसई' में लिखते हैं—

दोहाः—तुलसी बोल न बूझई, देखत देख न जोय।
तिन शठ के उपदेश का, करव सयाने कोय॥
जो न सुनिय तेहि का कहिय, कहा सुनाइय ताहि।
तुलसी तेहि उपदेशही, तासु सरिस मति जाहि॥

अर्थात्ः—'श्री तुलसीदास जी कहते हैं, जो शब्द को नहीं समझता, देखते हुए भी जो अन्देख का-सा करता है। ऐसे मूर्ख व्यक्ति के लिये कोई श्रेष्ठ पुरुष क्या उपदेश करेंगे ?॥ जो सद्शिक्षा नहीं सुनता, उसके प्रति क्या शिक्षा दिया जाय और उसको क्या सुनाया जाय ? श्री तुलसीदास जी कहते हैं, ऐसे अश्रद्धालु व्यक्ति के प्रति वही शिक्षा देगा कि जिसकी बुद्धि भी उसी व्यक्ति के समान होगी।'

सद्गुरु श्री कबीर साहेब ने बीजक साखी प्रकरण में कहा हैः— साखीः—

पानी पियावत क्या फिरो, घर घर सायर बारि।
तृषावन्त जो होयगा, पीवेगा झख मारि॥ १२॥

अर्थात्ः—अश्रद्धालु को क्या उपदेश देते फिरते हो ? घट-घट में वाणी-विद्या का समुद्र भरा है (तात्पर्यः—सबको अपने-अपने बुद्धि-ज्ञान और मत का अभिमान है।)

आपके पारख बोध रूप अमृत का जो भूखा-प्यासा होगा, वह खमार कर आप से आकर शिक्षा ग्रहण करेगा ॥

साधक को पहले अपने को सुधारना चाहिये। अपने को भलीभाँति सुधार लेने के पश्चात् सद्गुरु-आज्ञा या स्वयं विवेकानुसार सत्यन्याय पूर्वक श्रद्धालु को उपदेश देना चाहिये। आज-कल अधिक साधक ऐसे ही हैं कि वे अपने को सुधारने का तो स्वप्न में भी ध्यान नहीं देते और दूसरे श्रद्धालु-अश्रद्धालु सब के लिये उपदेश की झड़ी लगाते रहते हैं। ऐसे लोग भी भूले ही माने जायँगे।

जो लोग मत का पक्ष करते हैं, जिनमें मूखता और हठ-शठपन भरा है, जो अत्यन्त विषयासक्त, प्रमादी और विवादी हैं। उनके प्रति आपने कहा है :— साखीः—

मूरख के सिखलावते, ज्ञान गाँठि का जाय।
कोयला होय न उजरा, जो सौमन साबुन लाय ॥१६॥
मूढ़ कर्मिया मानवा, नख शिख पाखर आहि।
वाहन हारा क्या करे, जो बान न लागै ताहि ॥१६२॥
मूरख सो क्या बोलिये, शठ सो कहा बसाय।
पाहन में क्या मारिये, जो चोखा तीर नशाय ॥१७६॥
जैसे गोली गुमज की, नीच परी ढहराय।
तैसे हृदया मूरख का, शब्द नहीं ठहराय ॥१७७॥
कलि खोटा जग आँधरा, शब्द न माने कोय।

जाहि कहौं हित आपना, सो उठि बैरी होय ॥१८६॥
(बीजक-साखी-प्रकरण)

अर्थात्—मूर्ख हठी और विवादी मनुष्यों के प्रति उपदेश करने से अपने पास से भी ज्ञान चला जाता है (मूर्खों के सङ्ग से अपने में तामस उठता है ।) चाहे सौ मन साबुन लेकर कोयला धोया जाय, तो भी वह उज्ज्वल नहीं होता । तैसे कितना भी उपदेश किया जाय, परन्तु मूर्ख नहीं सुधरता ॥१६१॥ मूर्ख-कर्मी मनुष्य एड़ी से चोटी तक मूर्खता का दृढ़ बक्तर पहने है । उपदेश रूप वाण चलाने वाला क्या करेगा ? जब उसका मूर्खता रूप बक्तर उसे उपदेश रूपी वाण नहीं लगने देगा ॥१६२॥ मूर्ख मनुष्य से क्या बोलियेगा और शठ से भी आप की क्या शक्ति चलेगी ? पत्थर में मारने से तीव्र वाण भी टूट जायगा और पत्थर को बेधेगा भी नहीं । (मूर्ख के प्रति उपदेश करने से उसका कुछ सुधार न होगा और अपना समय-परिश्रम तथा उपदेश निष्फल चला जायगा) ॥१७६॥ जैसे मन्दिर के भीतर से ऊपर गुम्मज में गोली मारिये, तो वह टकराकर पुनः नीचे गिर पड़ती है । तैसे मूर्ख का हृदय कठोर और उल्टा है, इससे वहाँ सत्योपदेश शब्द नहीं ठहरता ॥१७७॥ अज्ञानता का पसारा बुरा है, जगत्-जीव अविवेकी हैं । निर्णय शब्द (अज्ञानी) कोई नहीं मानते । जिसको मैं

उसके हित के लिये उपदेश करता हूँ, वह उठकरके मेरा ही शत्रु बनता है ॥१८६ ॥

साखी—

शब्द है गाहक नहीं, वस्तु है महगे मोल ।
बिना दाम काम न आवै, फिरै सो डामाडोल ॥३२६॥

(बीजक-साखी-प्रकरण)

अर्थात्—निर्णय के शब्द हैं, परन्तु उसके ग्राहक नहीं हैं (श्रद्धावान् बहुत कम हैं) । और यह सद्‌निर्णय रूप जो पदार्थ है, बहुत मूल्यवान् है । इसका मूल्य श्रद्धा-भक्ति और आचरण है । इस मूल्य को चुकाये बिना निर्णय-उपदेश अपने काम में नहीं आते और अज्ञानी होकर जीव जगत् में भ्रमा करता है ॥३२६॥

ज्ञान को प्राप्त करके जो असद् आचरण करता है, वह वाच्य-ज्ञानी और ज्ञान-मदी है । ऐसे के प्रति उपदेश करना तो बिल्कुल अनावश्यक है । बल्कि अपने लिये झंझट है । ऐसे मनुष्य के प्रति श्री गोस्वामी जी कहते हैं—

दोहाः—जानि सुनीति कुनीति रत, जागत ही रहे सोय ।
उपदेशबो जगाइबो, तुलसी भलो न होय ॥

अर्थात्ः—सदाचरण जानकर जो दुराचरण धारण करता है और जो जागते हुए ही सोने की नकल किये है । श्री तुलसीदास जी कहते हैंः—ऐसे मनुष्य के प्रति उपदेश करना और जगाना अच्छा नहीं होगा । इसलिये इनके

कुसंग से रहित रहना ही उचित है।

श्री कबीर साहेब ने उपदेशक के प्रति कहा है कि वे पहले अपने आप को सुधारें। फिर पीछे से दूसरे को उद्धार करने के लिये उपदेश करें। स्वयं आचरण युक्त न होते हुए अन्य को सुधारने का साहस करना अपने को पतन-पथ में ले जाना है। आप कहते हैं:—

साखी

साखी कहै गहै नहीं, चाल चली नहिं जाय।
सलिल धार नदिया बहै, पाँव कहाँ ठहराय॥ ७९॥
कहन्ता तो बहुतै मिले, गहन्ता मिला न कोय।
सो कहन्ता बहि जान दे, जो न गहन्ता होय॥ ८०॥
जैसी कहै करै जो तैसी, राग द्वेष निरुवारे।
तामें घटै बढ़ै रतियो नहिं, यहि विधि आप सवाँरे॥ २५७॥

(बीजक-साखी-प्रकरण)

अर्थात्:— अधबीच के लोग साखी-शब्द वाणी-उपदेश बहुत कहते हैं। परन्तु उसके भाव को ग्रहण नहीं करते तथा उस सदाचरण में नहीं चलते। वाणी-कल्पना और विषयासक्ति रूपी नदी की जलधारा बह रही है। फिर वाचक ज्ञानी का पाँव कहाँ ठहरेगा? (दूसरे के सुधारने में पड़कर वह आपी खराब हो जायगा,)॥ ७९॥ उपदेश करने वाले तो बहुत मिलते हैं, परन्तु आचरण ग्रहण करने वाले कोई नहीं मिलते (बहुत कम मिलते हैं)। जो स्वयं अच्छे

आचरण में नहीं चलता, ऐसे वाचिक ज्ञानी को संसार में भ्रमने को, उसके पीछे मत लगो ॥ ८० ॥ जिस प्रकार अन्य को उपदेश लोग करते हैं, वैसे ही उन्हें सदाचरण ग्रहण करना चाहिये और सबसे मोह-वैर को छोड़ कर निःस्पृह हो जाना चाहिये । इस रहस्य में किञ्चित् भी मर्यादा के बाहर न हो—इस प्रकार अपने आप का उद्धार करे ॥ २५७ ॥

विवादी और नाना मत के पक्षपाती लोगों के प्रति अपना कैसे आचरण बरतना चाहिये ? इसके विषय में साहेब ने कहा है—

साखी—

जाके जिभ्या बन्द नहिं, हृदया नाहीं साँच ।
ताके सङ्ग न लागिये, घालै बटिया माँझ ॥८३॥
प्राणी तो जिभ्या डिगा, छिन छिन बोल कुबोल ।
मन के घाले भरमत फिरै, कालहिं देत हिण्डोल ॥८४॥
बोलन है बहु भाँति का, तेरे नयनन किछउ न सूझ ।
कहहिं कबीर पुकारि कै, तै घट घट बानी बूझ ॥८९॥
बाजन दे बाजन्तरी, तू कल कुकुही मत छेर ।
तुझे बिरानी क्या परी, तू अपनी आप निबेर ॥२४८॥
राम वियोगी विकल तन, इन्ह दुखवो मति कोय ।
छूवत ही मरि जायँगे, ताला बेली होय ॥९८॥

(बीजक-साखी-प्रकरण)

अर्थात् जिसके वाक्य में संयम नहीं है, (जो सत्य-प्रिय निष्पक्ष, निणययुक्त, अभिमान रहित, अल्प और हितकारी नहीं बोलता) और जिसके हृदय में सत्य स्वरूप का ज्ञान और सत्य भाव नहीं है। ऐसे मनुष्य की संगत मत कीजिये, क्योंकि यह अधूरा व्यक्ति ;तुम्हें बीच मार्ग में ही छोड़ कर खराब कर देगा। (यह जीवन लाभ के चरम सीमा तक साधक को नहीं पहुँचा सकता है।) ॥८३॥ मनुष्य तो अपनी जीभ को चंचल बना रखा है, वह क्षण-क्षण कुवाक्य बोलता है (अनुमित-कल्पित, विषयासक्ति और राग-द्वेष उत्पादक, कठिन, कटु, गाली, हँसी, निन्दा, चुगुली आदि जीव को भ्रमाने वाले वचनों को बोला करता है।) वह मनुष्य मन के भ्रम-चक्र में गिरा हुआ भ्रमता रहता है, मन-काल उसे अपने 'भ्रम-हिण्डोले' में चढ़ाकर हिण्डोले देता रहता है ॥८४॥ संसारमें खानी-वाणी के बन्धनदायी शब्द बहुत हैं, तेरे नेत्रों से कुछ सूझता नहीं। साहेब कहते हैं— हे मनुष्य ! सब के मुख से निकली हुई वाणियों को गुरु पारख निर्णय से समझ और उनमें भ्रम मत ॥८९॥ अनेकों मत पथ के झगड़े में नाना वादियों को झगड़ने दो। विवाद और झगड़ा करनेवाले उन मतवादियों को तू किसीप्रकार भी मत छेड़े (उन्हें कुछ भी न कहे)। क्योंकि तुझे पराये से विवाद करने की क्या आवश्यकता है ? तू अपने मन-निरोध और स्वरूप-विचार में निमग्न रहे। (साधक को सदैव अपना

मोक्ष-साधन करना चाहिये और श्रद्धालु को समयसे उचित शिक्षा देनी चाहिये और विवादियों से चुप रहना चाहिये ॥२४८॥ रमैयाराम अपने चैतन्य स्वरूप के अतिरिक्त भिन्न राम मानकर जो पृथक् खोजते हैं और उसी विरह में तन-मन से व्याकुल रहते हैं। उन्हें कोई यह कह कर मत दुखाओ कि "जिस राम को तुम पृथक् खोजते हो वह मिथ्या है, तू ही राम रूप हो।" क्योंकि ऐसा कहते ही वे तलमला-तलमला कर मर जायेंगे। (बहुत दुखी होंगे) ॥९८॥

स्पष्ट भाव यह है कि जिस मत में जो अनुमान-भ्रम है उसका खण्डन सहसा नहीं करना चाहिये। स्व-स्वरूप पारख का ज्ञान कोई विरले-विरले को है। बाकी अन्य सब लोग अनुमान-भ्रम ले-लेकर धर्म मार्ग में लगे हैं। जिस मत-पथ की हनता में जो पड़ गये, उसी में उनका दृढ़ पक्ष हो गया। बिना पारख मतवादों की त्रुटियाँ नहीं समझने में आतीं। अतएव अपने भ्रम-अज्ञान ही को लोग दृढ़ता रूप से ज्ञान मान रहे हैं। फिर उनके भ्रम-अज्ञान को यदि तुरन्त भ्रम-अज्ञान ही कह दीजियेगा, तो वे बहुत दुखी होंगे क्योंकि उन्होंने उसको सर्वश्रेष्ठ ज्ञान मान रखा है। अतः उनके भ्रम का एकाएक खण्डन न करके समता पूर्वक मिष्ट शब्दों में मानव आचरण की शिक्षा देनी चाहिये। फिर क्रमशः प्रेम-सदाचरण पुष्ट होने पर वह स्वयं यथार्थ की खोज करेगा। इसकी पुष्टि के लिये उदाहरण दिया जाता है।

दृष्टान्त—एक मनुष्य एक काँचकी गोली पाया। उसने समझा यह हीरा है। अतः वह बहुत प्रसन्न हुआ और सोचा कि "यह करोड़ों रुपये की वस्तु है। लाओ चलें जौहरी से इसे भजाकर एक भारी दूकान खोल दें।" इसी उमंग में वह व्यक्ति जौहरी के पास पहुँचा और अत्यन्त आनन्दित होते हुए जौहरी को अपना हीरा दिखाया। जौहरी तुरन्त समझ गया यह हीरा नहीं काँच है। परन्तु उसने सोचा "यदि मैं अभी कह दूँगा कि यह हीरा नहीं काँच की गोली है, तो यह मनुष्य बहुत दुखी होगा। इसलिये ऐसा न कह कर दूसरी युक्ति से इससे बात करें।" जौहरी ने कहा—इस हीरा को आप अपने हाथ से एक इलेमारी में सुरक्षित रखकर बन्द कर दीजिये और ताला लगा दीजिये। तथा हमारे यहाँ ५०) मासिक और भोजन पर नौकरी कर लीजिये। हमारे यहाँ आपको यही काम करना पड़ेगा—हीरा पन्ना, पोखराज, नीलम तथा मणि आदि जिन-जिन रत्नों को मैं दूकान पर मागूँगा, उसे तुम्हें उठा-उठाकर देना पड़ेगा। इस प्रकार छः महीने हमारे यहाँ रहिये। तब छठवें महीने के अन्त में मैं आप के हीरा को भजा दूँगा। फिर आप अपने घर चला जाइएगा। इतना वचन सुन कर वह मनुष्य उस जौहरी के घर पर रह गया। छः महीने रहते-रहते इसे सब रत्नों की परीक्षा हो गयी। छठे महीने के अन्त में जौहरी ने उस मनुष्य से कहा—अच्छा! आप अपना हीरा इलेमारी

से निकाल कर लाइये, उसे भजा दें। वह मनुष्य गया ताला खोल कर हीरा निकाला, तो यह हीरा नहीं काँच की गोली है—समझकर उसने आकर जौहरी से कहा—जौहरी साहब! यह तो हीरा नहीं है, यह बिल्कुल काँच है। एक पैसा का भी नहीं है। जौहरी ने कहा—भाई! यही बात मैं प्रथम कहा होता कि यह तुम्हारा हीरा नहीं काँच है, तो तुम्हें अज्ञानदशा में बड़ा दुःख हुआ होता। परन्तु उसकी वास्तविकता को स्वयं जान जाने से तुम स्वयं उसे काँच कह रहे हो। हमें कहने की आवश्यकता ही नहीं है।

सिद्धान्त—काँचरूप असत् सिद्धान्त को हीरारूप सत्य मानने वाला यह मनुष्य जीव है। पारखी सन्त जौहरी हैं। वे जीवों के कल्पित सिद्धान्तों को सहसा काँच नहीं कहते। बल्कि उस भूले हुए प्राणी को हंसगुण-मानवता की शिक्षा और प्रेम-समता में सुखीकर देते हैं। फिर वह मनुष्य पारखी सन्तों का प्रेमी हो जाता है और वह सत्संग करने लगता है। फिर सत्संग में नित्य सत-चर्चा सुनते-सुनते उसके सब धोखा भ्रम अपने-आप धीरे-धीरे उड़ जाते हैं!

अतएव शिक्षकों को किसी के मत का अनुचित खण्डन-मण्डन न करके मानवता और सद्गुणों की शिक्षा देनी चाहिये। फिर अत्यन्त नम्रता और समता के साथ अपने सत्-सिद्धान्त के अविरोध प्रतिपाद्य का उपदेशों में प्रियवाणी

युक्त प्रदर्शन करना चाहिये। वचन बोलने का नियम श्री कबीर साहेब और बताते हैं—

साखी—

जिभ्या केरे बन्द दे, बहु बोलन निरुवार।
पारखी से सङ्ग करु, गुरुमुख शब्द विचार ॥८२॥
बोलि तो अमोल है। जो कोइ बोलै जान।
हिये तराजू तौल के, तब मुख बाहर आन ॥२७६॥
मधुर वचन है औषधी, कटुक वचन है तीर।
श्रवण द्वार ह्वै संचरै, सालै सकल शरीर ॥३०१॥
अपनी कहै मेरी सुनै, सुनि मिलि एकै होय।
हमरे देखत जग जात है, ऐसा मिला न कोय ॥३१५॥

(बीजक-साखी-प्रकरण)

अर्थात्—वाक्य संयम करो, अनावश्यक बन्धनप्रद वाणियों का बोलना बिल्कुल त्याग दो। पारखी सन्तों का सत्संग करो और जीव-मुख, माया मुख तथा ब्रह्म-मुख आदि भ्रामक वाणियों को त्यागकर केवल गुरु-मुख सार शब्दों का विचार किया करो ॥८२॥ यदि कोई बोलना जाने तो बोली तो ऐसी होती है कि उसका मूल्य सारे संसार का धन नहीं हो सकता। हृदय रूपी तुला पर भली भाँति तौल कर तब मुख के बाहर सार-वचन लाना चाहिये ॥२७६॥ मीठा वचन औषध के समान सुखदायी है और टेढ़ा वचन तीर के समान हृदय में चुभकर दुःख देने वाला है। यह टेढ़ा

वचन कान द्वारा प्रवेश करके सारे शरीर में शूल पैदा करता है। (अतः टेढ़ा वचन किसी को भी नहीं कहना चाहिये।) विवेकवान् सद्गुरु कहते हैं— मनुष्य को चाहिये कि सत्संग में आकर अपने हृदय की शंका को कहे और फिर मेरे समाधान को ध्यान पूर्वक सुने। पुनः सुन और समझ करके मेरे कल्याण-सिद्धान्त से अभेद हो जाय (भ्रमको छोड़कर यथार्थ पारख स्वरूप में स्थित हो जाय)। परन्तु ऐसे व्यक्ति बहुत कम मिलते हैं। हमारे देखते ही सब जीव अज्ञान धारा में बहे जा रहे हैं ॥३१५॥

सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब ने वचन-सुधार के विषय में बहुत लिखा है। उसे हमें अपने अभ्यास में लाना चाहिये। आपने इस ७० रमैनी में बतलाया है कि अज्ञानी पक्षपाती हठी-शठीसे नहीं बोलना चाहिये उनसे बोलनेपर अपना स्वभाव खराब होता है और इस प्रकार उनसे अधिक बोलते ही रहने से झगड़ा, झंझट, क्रोध-ईर्ष्या अवश्य उत्पन्न होने लगते हैं। अतएव सज्जन से ही बोलना उचित है। परन्तु उनसे भी विचार पूर्वक ही बोलना चाहिये। कोई यदि प्रेमी-सज्जन या शीलवान् सन्त, मुमुक्षु मिलें और उपदेश के इच्छुक हों, तो जड़-चेतन निर्णय के वचनों को उनसे कहना चाहिये और यदि कोई वहाँ हठी-शठी-या मूर्ख-विवादी आ जाय तो बिल्कुल मौन हो जाना चाहिये।

यदि कोई निर्मानी विद्वान् या सज्जन हों, तो उनसे

हितकारी वचन बोलो और मूर्खों के मिलने पर चाहे वे तीखे-वचनों की वर्षा करें तो भी उनके सामने मौन हो रहना ही अपना लाभ कारी है

अधूरा मनुष्य ही अभिमान भर कर नाना टेढ़े वचनों को बोलता रहता है। अथवा बिना परीक्षा, अनावश्यक कुपात्र के सामने बोलकर अपना अकाज करता है। मूर्खों से, हठी-शठी पक्षपाती व्यक्तियों से भी जो छेड़कानी (विवाद) करता है, वह भी अज्ञानी मानने योग्य है। जो पूर्ण विचार-वान् होता है, वह विचार पूर्वक गम्भीर वचन बोलता है। सत्पात्र को शिक्षा देता है। विवादी से चुप रहता है। और सबसे मीठा, सत्य, अभिमान रहित और युक्त बोलता है।

यह ध्यान में रखना चाहिये कि यदि कहीं हठी-शठी-कुतर्की और पक्षपाती व्यक्ति मिल गया और बिना उसकी परीक्षा किये उससे बातें होने लगीं और आगे चलकर वह हठी मनुष्य हठ-पक्ष और कुतर्क करने लगा, तो वहाँ पर बड़ी समता से काम लेना चाहिये। युक्तिपूर्वक समता और प्रसन्नता युक्त उसके शान्ति जनक दो चार बातें मीठे वाक्यों में कहकर मौन हो जाना चाहिये। यह ध्यान रखना चहिये कि दुर्जन और हठी को भी हमारे द्वारा यथासम्भव ठोकर न लगे।

असत्य नहीं बोलना चाहिये, झूठी साक्षी नहीं देना चाहिये, किसी को बुरे फँसाने के लिये कुवाक्य नहीं बोलना

चाहिये। अपने और दूसरे के शान्ति-भङ्ग करने वाले वाक्य, कटु, तीक्ष्ण, आदि नहीं बोलना चाहिये। बड़े पद में होते हुए भी किसी से तुकार जैसे 'रे- तू' नहीं करना चाहिये। किसी की हँसी-मखौल नहीं करना चाहिये। समाज में बैठकर किसी को नीचा दिखाने वाला वाक्य नहीं बोलना चाहिये। किसी के पूर्व कृत दोषों को स्मरण कराके उसे लज्जित नहीं करना चाहिये। किसी शिक्षक के शिक्षा में अपनी शिक्षा नहीं देनी चाहिये। शिक्षक जिस प्रकार (टेढ़ी-मेढ़ी) शिक्षा दे, गुण ग्राह्य की दृष्टि से मौन होकर सुनते रहना चाहिये। किसी अन्य के साथ बैठने पर या तो धर्म चर्चा करनी चाहिये या मौन रहना चाहिये। व्यर्थ किसी के दोषों की उभाड़-चर्चा नहीं करनी चाहिये। अपना समय अत्यन्त अमूल्य है, इसे व्यर्थ-चर्चा, व्यर्थ-स्मरण एवं व्यर्थ-क्रिया में न नष्ट कर सत्-चर्चा सत्-स्मरण एवं सत्-क्रिया में लगाकर निरन्तर स्व-स्वरूप का स्मरण करना चाहिये। जो अपने वाणी का भली भाँति सुधार कर लेता है, वह बहुत से झगड़े-रगड़े से छुट्टी पा जाता है। वाक्य-संयमी को शान्ति-साधन में बड़ी सुविधा मिलती है। साधकों को तो जहाँ तक हो कम-से-कम वाक्य बोलना चाहिये। बिना मन, वाक्य और क्रिया के संयम किये स्वरूपस्थिति तो मिल ही नहीं सकती। सदैव मीठा, युक्त और सत्य बोलना चाहिये। जान-बूझकर कभी भी असत्य नहीं बोलना चा-

हिये। सत्य-पालन के लिये दृढ़ता होनी चाहिये। किसी कवि ने कहा है—सवैया—

भान प्रकाश भये जब ते, तब चन्द्र प्रकाश देखाय परै न।
सिंह अवाज करै वन में, तब दूसर शब्द सुनाय परै न॥
सूर सिंगार करै रण को, तब नारि सिंगार पै ध्यान धरै न।
हारिल को प्रण है लकड़ी, कदली पुनि दूसर बार फरै न॥
बात कही सत् वादिनी की, कबही मुख से कहि के वदले न॥१

शिक्षासार—हठी-झूठी-पक्षपाती से नहीं बोलना चाहिये। श्रद्धालु, सत्पात्र को उपदेश देना चाहिये। मुख्य अपने सुधार पर बहुत ध्यान देना चाहिये। वाणी समता-प्रेम पूर्वक, सत्य, मिष्ट, निर्मद, लाभ-प्रद और युक्त बोलना चाहिये। कहा है—साखी—

अति का भला न बोलना, अति की भली न चूप।
अति का भला न बरसना, अति की भली न धूप॥१॥
ऐसी बानी बोलिये, मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करै, आपौ शीतल होय॥२॥
सहज तराजू आनि कर, सब रस देखा तौल।
सब रस माही जीभ रस, जो कोई जाने बोल॥३॥
खोद खाद धरती सहै, काट कूट बनराय।
कुटिल वचन साधू सहैं, और से सहा न जाय॥४॥
शब्द सम्हारे बोलिये, शब्द के हाथ न पाँव।
एक शब्द औषध करे, एक शब्द करै घाव॥५॥

कागा काको धन हरै, कोयल काको देत।
मीठा शब्द सुनाय के, जग अपनो करि लेत ॥६॥
जिभ्या जिन वश में करी, तिन वश कियो जहान।
नहिं तो अवगुण ऊपजै, कहि सब सन्त सुजान ॥७॥
बालू जैसी किरकिरी, ऊजर जैसी धूप।
ऐसी मीठी कछु नहीं, जैसी मीठी चूप ॥८॥

शब्द

हमारे मन भाषो वचन रसाल ॥टेक॥

जबहीं लाय धरत मद मन में, तबहिं बनत तुम काल।
दृश्य भास में हन्ता करिके, परत सबन पर लाल ॥१॥
नहिं अधिकार किसी पर तेरो, व्यक्ति वस्तु जग जाल।
केहि की करत स्ववशता मन में, धीर सम्हाल सुचाल ॥२॥
कटु कुठार खर खर भर भर कहि, नहिं दुख देहु मजाल।
सत्य मिष्ट अति अल्प सबन हित, बोलो धीर सम्हाल ॥३॥
कटु भाषण को कारण मद है, मारत वाणी भाल।
तू अभिलाष शोधि मद त्यागो, मति दीजै उर साल ॥४॥
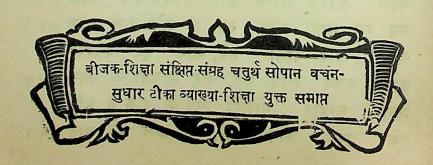
।। सोपान-फल ।।

अब किया वाक्य का मैं सुधार।

पैशुन्य असत् अश्लील खर्स।
कटु व्यंग बन्ध-प्रद युत अमर्ष ।।
मद मान शान शासन प्रयुक्त।
नहिं वाक्य कभी बोलूँ अयुक्त ।।
सत् मिष्ट अल्प निर्मद उचार ।।अब०।।१।।

अन-अधिकारी परिचय-विहीन।
तिनसे उदास निज रूप लीन।।
अधिकारी प्रति हित-प्रिय सु बौन।
हठ-शठ वादी से आर्य मौन ।।
गुरुवर कबीर का यह विचार ।।अब०।।२।।

मन वाणी कर्म—ये तीन धार।
इनमें बहते सब जीव हार ।।
इन पर जो हो सम्यक् स्वधीन।
वह सर्व-शिरोमणि तक्त सीन ।।
उसको यह जग सारा असार ।।अब०।।३।।

।। पंचम-सोपान-महिमा ।।

हिंसा-आमिष कर पूर्ण त्याग ।

नर पशु पक्षी कृमि कीट जीव ।
चलते-फिरते प्राणी सजीव ।।
तुझ-सा सुख-दुख सबके शरीर ।
तन-मन-वच से मत देय पीर ।।
तेरे स्वजाति सब जीव जाग ।।हिंसा०।।१।।

थल-कण भी करता असह पीर ।
जब चक्षु में ले आता समीर ।।
हा ! मूक प्राणियों पर निर्दय ।
मानव-दानव बन अस्त्र धरय ।।
इन्सान बना शैतान नाग ।।हिंसा०।।२।।

मल-मूत्र युक्त आमिष अशुद्ध ।
बिन हिंसा के नहिं मिलै बुद्ध ।।
तज भूत प्रेत का भ्रम पहार ।
गुरुवर कबीर का शुचि-विचार ।।
सोपान-पंच दायानुराग ।।हिंसा०।।३।।

सद्गुरवे नमः

बीजक-शिक्षा

(संक्षिप्त-संग्रह)
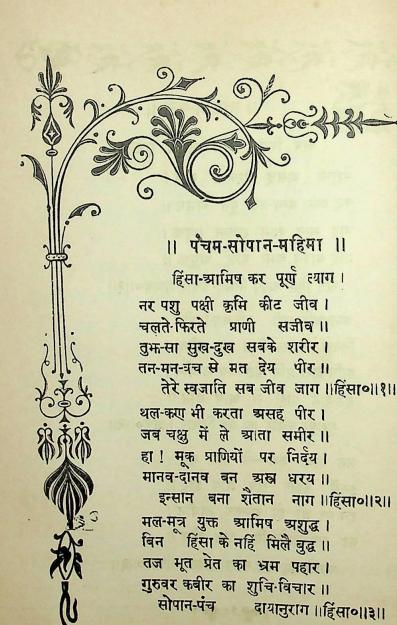
टीका-व्याख्या-शिक्षा युक्त

पंचम सोपान

हिंसा-मांसाहार और भूत खानि का निराकरण

३४--(शब्द—२)

सन्तो राह दुनो हम दीठा ॥१॥
हिन्दू तुरुक हटा नहिं माने। स्वाद सबन को मीठा ॥२॥
हिन्दू बरत एकादशि साधें। दूध सिंघारा सेती ॥३॥
अन्न को त्यागे मन को न हटकें। पारन करें सगौती॥४॥
तुरुक रोजा-निमाज गुजारें। बिसमिल बाँग पुकारें ॥५॥
इनको बहिस्त कहाँ से होवै। जो साँझे मुरगी मारें ॥६॥
हिन्दू की दया मेहर तुरकन की। दोनों घटसे त्यागी ॥७॥

ई हलाल वे झटका मारें । आग दुनों घर लागी ॥८॥
हिन्दू तुरुक की एक राह है । सतगुरु सोई लखाई॥९॥
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो। राम न कहूँ खुदाई ॥१०॥

ऐ सन्तो ! मैंने हिन्दू और मुसलमान इन दोनों का मार्ग देख लिया है ॥ १ ॥ हिन्दू और मुसलमान किसी विचारवान् का कहा नहीं मानते, इन सबको जीभ का स्वाद ही मीठा लगता है ॥ २ ॥ दूध और सिंघारा खाकर हिन्दू लोग एकादशी व्रत रहते हैं ॥ ३ ॥ वे अन्न को तो त्यागते हैं, परन्तु मन को अपने वश नहीं करते और द्वादशी को सामिष भोजन का पारण* करते हैं ॥४॥ मुसलमान लोग ३० रोजा रहते हैं और पाँच वक्त निमाज गुजारते हैं। "बिस्मिल्लाहिर्रहिमानिर्रहीम" इत्यादि कहकर अजान देते हैं ॥ ५ ॥ परन्तु इनको बिहिश्त कैसे होगा, जब सायं-काल को ही मुर्गी मारते हैं ॥ ६ ॥ हिन्दू और मुसलमान दोनों ने अपने-अपने अन्तःकरण से दया और मेहरबानी त्याग दिया है ॥ ७ ॥ ये मुसलमान लोग प्राणियों को छूरी से हलाल करते हैं और हिन्दू लोग झटका मारते हैं। इस प्रकार दोनों के मन में निर्दयता और गैर मेहरबानी की आग लगी है ॥ ८ ॥ हिन्दू और मुसलमान दोनों का एक

*—हिन्दुस्थान के हर प्रदेशों में ऐसी बात नहीं है। किसी-किसी प्रदेश में ही यह अज्ञानता है।

मार्ग है, ब्रह्माजी और मुहम्मद साहेब ने यही कल्पित मार्ग लखाया है ॥९॥ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहतेहैं—हे सन्तो! सुनो, अपने चेतन पारख स्वरूप से पृथक् न कहीं राम है और न कहीं खुदा है। तू ही राम है। खुदी ही खुदा है ॥१०॥

व्याख्या—जिन्हें विवेक-विचार नहीं है, ऐसे हिंसकी-मांसाहारी क्या हिन्दू का मुसलमान, वे सज्जन सन्तों की शिक्षा को नहीं मानते। मांसाहार का निषेध सुनकर वे दुखी हो जाते हैं। इस जीभ के स्वाद ने मनुष्य को राक्षस बना दिया है। जो मांस महा अपावन और घृणित है, उसी में लोगों ने पवित्र भावना और स्वाद माना है। मांसाहार मद्यपानादि लोग नहीं त्यागते और एकादशी व्रत साधते हैं। फिर इससे क्या फल होता है? जीव हिंसा ही महान् पाप है। और मांस-भक्षण ही राक्षसी-भोजन है। फिर इनको करते रहने से मनुष्य घोर नर्क से कैसे छूट सकता है?

मुसलमान भाई रोजा रहते और नमाज गुजारते हैं, बिस्मिल्ला का नाम लेते हैं। परन्तु सायंकाल को मुर्गी-बकरी या भेड़ा-गाय-भैंस आदि मार कर खाते हैं और यह निर्दयता का कार्य करना ही बिहिश्त का साधन मानते हैं। परन्तु इस कर्म से कल्याण तो किसीप्रकार भी नहीं हो सकता, सिवा अकल्याण के।

मांसाहारी हिन्दुओं ने हृदय से दया को खदेड़ दिया

और भैंसा, बकरी, मुर्गी, अण्डे, मछली आदि मारकर खाने लगे। ये लोग तीव्र शस्त्र लेकर पशुओं को एकही वारमें मार देते हैं और खा जाते हैं। मुसलमान लोग तो जीवों की हिंसा करना और मांस खाना भूल वश इस्लाम का धर्म ही माने हैं। मुसलमान लोग छूरी लेकर पशुओं के गला पर रगड़ कर मारते हैं। इन भूले लोगों को अपने समान दूसरे का दुःख नहीं प्रतीत होता है। अपने पैर में काँटा गड़ जाय तो शरीर भर हिल जाता है, अत्यन्त विकल हो जाते हैं। परन्तु हाय ! इन भूले लोगों को दूसरे के दुःखों का तनिक भी ध्यान नहीं रहता। हिंसा-मांसाहारी हिन्दू और मुसलमनों-दोनों के मन में निर्दयता रूपी पापाग्नि लगी है। हिंसकी और मांसाहारी लोगों की आज-कल वृद्धि हो रही है।

मांसाहारी हिन्दू लोग सोचते हैं कि राम-नाम के जप से या तीर्थ-भ्रमण, देव-पूजन आदि से हिंसा-मांसाहार का पाप कट जायगा और मुसलमान लोग समझते हैं कि रोजा-नमाज आदि करने से हमारा पाप कट जायगा। परन्तु यह हिन्दू और मुसलमान दोनों का भ्रम है। राम शब्द के जप से या जड़-तीर्थ-भ्रमण, जड़-देवादि के पूजने से तथा कल्पित रोजा-नमाज करनेसे जीव की हिंसा का पाप नहीं छूट सकता है। साहेब ने साखी में कहा है—

साखी—जीव घात ना कीजिये, बहुरि लेत वे कान।
तीरथ गये न बाँचिहो, जो कोटि हिरा देव दान॥

देखो ! पाप कर्मों से बचाने वाला तुम से पृथक् राम-खुदा कोई नहीं है। तुम जैसा करोगे वैसा भरोगे। तुम कर्म करने में स्वतन्त्र हो और कर्मों के फल भोगने में उन्हीं कर्मों के आधीन हो। आज चाहो तो सब पापकर्मों को छोड़कर अपना सुधार कर सकते हो।

शिक्षासार—हिंसा-मांसाहार का सर्वथा त्याग कर देना चाहिये।

४३—(शब्द—११)

सन्तो पांड़े निपुण कसाई ॥ १ ॥
बकरा मारि भैंसा पर धावैं। दिल में दर्द न आई ॥२॥
करि स्नान तिलक दै बैठे। बिधि सों देवि पुजाई ॥३॥
आतम राम पलक में बिनशे। रुधिर की नदी बहाई ॥४॥
अति पुनीत ऊँचे कुल कहिये। सभा माहि अधिकाई ॥५
इन्हते दिच्छा सब कोइ माँगे, हँसि आवे मोहि भाई ।६
पाप कटन को कथा सुनावैं। कर्म करावैं नीचा ॥७॥
हम तो दुनों परस्पर देखा। यम लाये हैं धोखा ॥८॥
गाय बधे ते तुरुक कहिये। इनते वै क्या छोटे ॥९॥
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो। कलिमा ब्राह्मण खोटे।१०।

हे सन्तो ! हिंसकी मांसाहारी ब्राह्मण लोग चतुर बधिक हैं ॥ १ ॥ ये बकरा को मारकर दशहरे में भैंसा पर भी

धावा बोल देते हैं। इनके मन में दया-दर्द नहीं लगती ॥२॥ स्नान करके और तिलक-छाप लगा कर मन्दिरों में बड़े ठाट से बैठते हैं। और विधि पूर्वक कल्पित चण्डी-दुर्गा-कालिका आदि की पूजा करते-कराते हैं ॥ ३ ॥ परन्तु भैंसा-बकरा रूप आतमराम को क्षणमात्र ही में काट कर रक्त की नाली बहाने लगते हैं ॥ ४ ॥ इन ब्राह्मणों को संसारी लोग अत्यन्त पवित्र और उच्च कुल के मानते हैं। सभा में लोग इनकी प्रतिष्ठा करते हैं ॥ ५ ॥ और इन्हीं से सब लोग शिक्षा-दीक्षा या मन्त्र भी माँगते हैं। यह चरित्र देखकर हमें तो भाई! हँसी आती है ॥ ६ ॥ जीवों के पाप कटने के लिये तो ये लोग कथा सुनाते हैं। परन्तु लोगों से हिंसादि नीच-कर्म करवाते हैं ॥ ७॥ एक ओर कथा सुनाना, दूसरी ओर हिंसा करना-करवाना यह परस्पर विरोधी बातें देखकर मुझे यही निश्चय होता है कि ये हिंसकी मांसाहारी ब्राह्मण लोग पूरे यमराज हैं और जीवों को धोखा देकर बाँध रहे हैं ॥ ८ ॥ गाय मारने से मुसलमान लोग तुरुक कहे जाते हैं। तो क्या इन तुर्कों से वे हिंसकी-मांसाहारी ब्राह्मण कम है? गुरु-गुरु कहो! वे तो पूरे तुर्किया ब्राह्मण हैं ॥ ९ ॥ सद्‌गुरु श्री कबीर साहेब कहते हैं कि हिंसा-मांसाहार रूप (कालिमा) पाप को धारण करने वाले ब्राह्मण बड़े बुरे हैं ॥ १० ॥

व्याख्या—'सन्तो पाँड़े निपुण कसाई।' इस शब्द को पढ़-सुनकर किसी भी ब्राह्मण भाई को दुखी नहीं होना

चाहिये। क्योंकि यहाँ ग्रन्थकर्ता ने सब ब्राह्मणों को कसाई नहीं कहा है। बल्कि जो हिंसा करता है और मांस खाता है, उसी को यहाँ साहेब ने कसाई कहा है। सो तो उचित ही है। क्योंकि जीव वध करने वाला ही कसाई माना जाता है। श्री कबीर साहेब ने यथार्थ पण्डितों का बड़ा आदर किया है। आप ने कहा है—

"पण्डित सो बोलिये हितकारी।"

जिसे अपना जाना जाता है, उसके दोषों को देखकर अपने मनमें दुःख होता है और उसके दोष-निवृत्ति के लिये गर्म-नर्म किन्हीं वचनों में डाट-फटकार या समझा-बुझा कर उसे अच्छे मार्ग पर लाने का प्रयत्न किया जाता है। यहाँ पर सन्त श्री कबीरसाहेब ने अपना स्वजाति मानव-बन्धु जानकर ब्राह्मणों पर कृपा दृष्टि करके उनके पाप-निवृत्ति के लिये उन्हें उनका दोष दिखलाया है। हिंसा-मांसाहार करने वाले ब्राह्मण भाइयों को चाहिये कि वे पिपासु के जल पाने न्याय प्रसन्न चित्त से इन वचनों को पढ़-सुन और मनन करके हिंसा-मांसाहार को बिल्कुल छोड़ देवें।

इस शब्द में हिंसकी ब्राह्मणों को साहेब ने चतुर कसाई कहा है। चतुर कसाई इसलिये कहा है कि ये हिंसकी पण्डित लोग देवी के स्थान पर या दशहरे में जीव वध करना मङ्गल कार्य या धर्म समझते हैं। एक ओर हिंसा रूप घोर पाप

करते हैं और दूसरी ओर पाप से बचने का स्वाङ्ग बनाकर कल्याण रूप बनते हैं। इसलिये ये चतुर कसाई हैं।

जो बकरा या भैंसा मारता है, जो मांस खाता है। वह किसी भी ब्राह्मण-कर्म में सम्मिलित होने योग्य नहीं है। मांसाहारी ब्राह्मण नहीं माना जा सकता। हिंसा-मांसाहार करने से ही विद्वान् ब्राह्मण रावण राक्षस कहा गया। बहुत से ब्राह्मण जातीय पण्डित लोग होते हैं, वे मांस खाते हैं और हिंसा करते हैं, परन्तु व्यासगद्दी पर बैठकर महाभागवत की कथा कहते वे लज्जित नहीं होते। एक सज्जन पण्डित ने इन पंक्तियों के लेखक से कहा—"हमारे बहुत से पण्डित भाई हैं। जो श्री मद्भागवत, सत्यनारायण व्रत और बाल्मिकि-रामायण आदि की कथा व्यासगद्दी पर बैठकर श्रोताओं को सुनाते हैं। परन्तु स्वयं मांस खाते हैं और साथ-साथ शराब भी पीते हैं। क्योंकि शराब मांस का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। प्रायः जहाँ मांस-भक्षण है वहाँ शराब-पान और जहाँ शराब-पान है वहाँ मांस-भक्षण होता है।"

दृष्टान्त—एक पण्डित जी श्रीमद्भागवत कथा के वाचक थे। परन्तु पक्के मांसाहारी भी थे। एक बार ग्राम ही में भागवत की कथा पण्डितजी कह रहे थे। दोपहर के पश्चात् स्नानादि क्रिया करके पण्डित जी कथा बाचने व्यासगद्दी पर जाने लगे, तो पण्डिताइन से कहा—घड़े के

जल में जो मछलियाँ जिलाईं हैं, उन्हें मारकाट कर गर्म मसाला छोड़कर भली प्रकार स्वादिष्ट बनाना। ऐसा कह कर चल दिये। पण्डिताइन ने सोचा आज-कल पण्डित जी ग्राम ही में कथा कह रहे हैं, चलें आज भला कथा तो सुन आवें। अतः पण्तिाइन भी जाकर कथा सुनने लगीं। संयोगाधीन हिंसा-मांसाहार के खण्डन का भी प्रकरण कथा में आया और विधि पूर्वक्र पण्डित जी ने हिंसा-मांसाहार का खण्डन किया। इन सब बातों को सुनकर पण्डिताइन को अपने दोनों प्राणी के हिंसा-मांसाहार युक्त दुष्चरित्र पर बड़ा शोक हुआ और तुरन्त घर आकर घड़े के जल में खाने के लिये जो मछलियाँ जिलाई थीं, उन्हें गढ्डे के जल में छोड़ आयीं तथा शुद्ध अन्न का भोजन बना रखीं। पण्डित जी जब चौके पर भोजन करने बैठे, तब थाली में मछलियों का मांस न देखकर बड़े क्रुध हुए और बोले--तेरे से जो मैं कह कर दिन में गया था, क्या तू भूल गयी ? क्या तू नहीं जानती कि बिना मांस के मुझे भोजन अच्छा नहीं लगता ? पण्डिताइन ने कहा—अहो ! आप अभी-अभी व्यासगद्दी पर बैठकर हिंसा-मांसाहार का जोरों से सयुक्ति खण्डन कर आये हैं और तुरन्त भूल गये ? पण्डित ने कहा—बेहूदी ! कहीं चौकी की बात चौका पर लाया जाता है ? चौकी अर्थात् व्यासगद्दी पर बैठ कर हिंसा-मांसाहार का खण्डन करना ही योग्य है। परन्तु यहाँ चौका में हिंसा-मांसाहार करने से

क्या दोष है ? भगवान् के राज्य में सब कुछ सम्भव है।

बतलाइये ! जब ऐसे-ऐसे अमानुष लोग ही धर्मसुधारक-गुरु, कथा-वाचक और पुनीत माने जाते हैं। तब जगत् का पतन क्यों न हो ? ऐसे हिंसकी मांसाहारी लोगों को गुरु बनाना केवल अज्ञानता है। जो लोग जीव-वध करना धर्म मानते हैं, वे यमराज हैं। वे मनुष्यों को भ्रमाने वाले उनके और अपने काल बने हैं। गाय मारने वाले मुसलमानों से भैंसा बकरा, मछली मारने वाले ब्राह्मण या हिन्दू कम कसाई नहीं हैं। जोही मनुष्य जानबूझ कर एवं शक्ति चले तक दूसरे की जान को मारेगा वही कसाई कहा जायगा। यह न्याय है।

किसी भाई को कबीर साहेब की कटु आलोचना पढ़-सुनकर कष्ट नहीं मानना चाहिये। क्योंकि यदि फोड़े का आपरेशन करते समय डाक्टर दयावश कम चीरे और फोड़े को कम दबावे, तो फोड़ा न अच्छा होकर कष्ट अधिक बढ़ता है। इसलिये डाक्टर का धर्म है कि वह उचित गहराई से आपरेशन करके फोड़े को खूब दबाकर विकारी रक्त और मवाद को निकाल दे। यह डाक्टर की दया ही है। इसी प्रकार सन्त श्रीकबीरदेव ने मनुष्यों के ऊपर कृपा करके ही हिंसा-मांसाहार रूप पाप-कर्म छुड़ाने के लिये यह कटु आलोचना की है। गोस्वामी जी ने भी कहा है —

जिमि शिशु तन व्रन होई गोसाईं।
मातु चिराव कठिन की नाईं॥

दोहा—यदपि प्रथम दुख पावइ, रोवत बाल अधीर।
व्याधि नाश हित जननी, गनति न सो शिशु पीर॥
दोहा—सचिव वैद्य गुरु तीन ये, प्रिय बोलैं भय आश।
राज देह अरु धर्म का, होय वेगि ही नाश॥

अतएव हिंसा-मांसाहार-निषेध के विषय में जो यहाँ तक कहा गया है और आगे कहा जायगा-सज्जनों को चाहिये कि उसको गुणग्राह्य लक्ष्य से मनन करें।

शिक्षासार—ऐ प्रिय बन्धुवो! हिंसा-मांसाहार बिल्कुल छोड़ दो।

४४—(शब्द—४६)

पण्डित यक अचरज बड़ होई॥१॥
यक मरि मुये अन्न नहिं खाई।
यक मरे सिझै रसोई॥२॥
करि स्नान देवन की पूजा।
नौ गुण काँध जनेऊ॥३॥
हँड़िया हाड़ हाड़ थरिया मुख।
अब षट कर्म बनेऊ॥४॥
धर्म करे जहँ जीव बधतु हैं।
अकरम करे मोरे भाई॥५॥
जो तोहरा को ब्राह्मण कहिये।
तो काको कहिये कसाई॥६॥

कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो ।
भरम भूलि दुनियाई ॥७॥
अपरम्पार पार पुरुषोत्तम ।
या गति बिरले पाई ॥८॥

ऐ मांसाहारी पण्डितो ! एक बात का बड़ा आश्चर्य होता है ॥१॥ वह यह है कि घर में जब कोई कुटुम्बी मर जाता है,तब शोक या अशौच मानकर उस दिन घर के लोग अन्न नहीं खाते हैं। और एक भैंसा, बकरा, मछली आदि जीव को बाहर से मार कर लाते हैं,तब उस मुर्दे के अङ्ग-अङ्ग को काट कर और रसोई में पकाकर खाते हैं ॥२॥ हे मांसाहारी पण्डितो ! आप लोग स्नान करके कल्पित जड़देवी-देवादि की पूजा करते हैं। और नौ गुण सूचक नौ तागे का यज्ञोपवीत पहनते हैं ॥३॥ परन्तु अहो शोक है ! आप सब अपने हण्डी में हाड़-मांस पकाते हैं, थाली में हाड़-मांस रख कर और मुख से हाड़-मांस चबाते हैं, अब आप लोगों का छः कर्म अच्छा बन गया ! ॥४॥ यज्ञ करना धर्म है—यह तो ठीक है। परन्तु उन यज्ञों में भैंसा,बकरा, घोड़ादि जीवों का बध करना तो हे मेरे प्रिय बन्धु ! प्रत्यक्ष ही अपकर्म है ॥५॥ जीव-बध करनेवाले ऐ भाई पण्डितो ! यदि आप लोगों को ब्राह्मण कहा जाय, तो कसाई किसे कहा जाय ? ॥६॥ सद्‌गुरु श्री कबीरसाहेब कहते हैं—हे सन्तो ! सुनो, ये सब

संसारी जीव नाना कल्पित वाणी के भ्रम में भूल गये हैं ॥७॥ कहते हैं "परम् पुरुष परमात्मा अपरम्पार है, उसके राज्य में हिंसा-अहिंसा सब उचित है ।" परन्तु यह ज्ञान विरले कोई सत्संग से प्राप्त करते हैं कि शक्ति चले तक हिंसा न बचाकर जितने जीवों को मारा जायगा, उसका बदला अवश्य देना पड़ेगा ॥८॥

व्याख्या—हिंसकी मांसाहारी हिन्दू तथा ब्राह्मणों की यह बहुत भारी भूल है कि जब घर में कोई परिवार मर जाता है, तब कहते हैं कि घर और कुल-गोत्र सब अशुद्ध हो गया। जिसके घर में कोई परिवार मरा रहता है। उसके घर में कौन कहे पूरे गोत्र में अशौच के भय से हिन्दू लोग प्रायः १३ दिन तक अन्न नहीं खाते। परन्तु आश्चर्य तो यह है कि ये निर्दयी मनुष्य भैंसा, बकरा, मुर्गी, बतख तथा मछली आदि को मारकर उसमुर्दे को बाहर से लाते हैं और उसे काट-काट कर रसोई में पकाते हैं और खाते हैं। तब ये अशुद्ध नहीं होते। किसी गोत्र (जाति) में मनुष्य के मुर्दा हो जाने पर १३ दिन तक तो वह पूरा गोत्र अशुद्ध रहा और पशु-पक्षी मछली आदि मुर्दाओं को मार-काटकर अपने पेट में भर लिये, तब अशुद्ध नहीं हुए। अहो ! इन लोगों की अज्ञानता सीमा तक पहुँच गयी है।

इन हिंसकी-मांसाहारी ब्राह्मणों के स्नान करने से और कल्पित जड़-देवताओं के पूजने से क्या होता है ? ऋजु

(सरलता), तप, सन्तोष, क्षमा, शील, जितेन्द्रिय, दान, ज्ञान तथा दया—ये ब्राह्मणों के धारण करने के नौ गुण हैं। सो आज-कल के ब्राह्मणों ने प्रायः इन सद्‌गुणों को तिलाञ्जलि दे दिया (बिल्कुल त्याग दिया) है। केवल नौ तागे का जनेऊ दिखावे मात्र का रह गया है।

गोस्वामी जी ने कहा है—

धनवन्त कुलीन मलीन अपी। द्विज चिन्ह जनेऊ उघार तपी॥

अर्थात् 'आजकल दुराचारी होने पर भी धनवान् लोग ही श्रेष्ठ माने जाते हैं। ब्रह्मणों का चिह्न केवल जनेऊ रह गया, केवल नंगा रहना ही लोग तपस्वी का लक्ष्ण समझते हैं।'

यज्ञ करना यज्ञ कराना, दान देना, दान लेना, विद्या पढ़ना और विद्या पढ़ाना—ये ब्रह्मणों के षट्कर्म (छः कर्म) हैं। परन्तु हिंसकी-मांसाहारी ब्राह्मणों का अब षट्कर्म क्या हो गया है? उसे सुनिये। 'हँड़िया हाड़ हाड़ थरिया मुख' अर्थात् हण्डी[1] में हाड़[2], थाली[3] में हाड़[4] और मुख[5] में हाड़[6]। तात्पर्य यह है कि हण्डी में हाड़-मांस पकाना और थाली में हाड़-मांस रखकर मुख से हाड़-मांस चबाना—यही इन मांसाहारी ब्राह्मणों का षट्कर्म बन गया है।

धर्म के नाम पर जीव वध करने वाले स्वादासक्त मांसा हारी पण्डित लोग कहते हैं "वेद और शास्त्र में लिखा है कि यज्ञ में और देवी के स्थान पर जीव बध करना पाप नहीं

बल्कि धर्म है।" प्रथम तो यह बात है कि इन भूले पण्डितों की यह कल्पना है।

वेद-शास्त्र किसी को हिंसा करने की आज्ञा नहीं देते। परन्तु यदि सचमुच किसी वेद शास्त्र में यज्ञ या देव-स्थान पर या किसी प्रकार की जीव हिंसा करना धर्म लिखा हो। तो वास्तविक बात यह है कि वे वेद-शास्त्र किसी ऋषि के बनाये न होंगे, वे किसी हिंसकी-मांसाहारी के रचे होंगे। और जीव-वध को धर्म सिद्ध करने वाला वेद नहीं है। बल्कि जीवों के मारने के लिये तीव्र वाण है तथा जीव-वध-विधायक शास्त्र नहीं शस्त्र है। जिस पुस्तक में जीव-हिंसा करना धर्म माना गया हो, उसे पढ़ना महान् पाप है। चाहे कोई ब्राह्मण हो, चाहे पण्डित हो, चाहे गोसाईं हो तथा चाहे कोई किसी सम्प्रदाय में साधु का ही भेष क्यों न धारण किये हो। परन्तु जो जीवों का वध करेगा, वह कसाई माना जायगा और मांसाहार पैशाचिक आहार माना जायगा।

जो लोग कहते हैं "पशु-पक्षी आदि हम लोगों को खाने के लिये बने हैं। इनको मारकर, खाने में कोई पाप नहीं हैं।" वे भाई लोग बिल्कुल भूले हैं। जीवों का वध करने से उसका बदला अवश्य देना पड़ेगा और मांस खाना तो मानवता के सर्वथा विरुद्ध है। मांसाहार पशु-पक्षी इत्यादि का है। मनुष्य का नहीं।

सन्तों का वचन है—चौपाई—

आपन मांस खात नहिं कोई। यहि से मीठा और नहिं होई ॥
आपन गरदन सबै बचावे। पर गर्दन पर दर्द न आवे ॥
अपने सिर पर मार टँगारा। पर पीड़ा क्या देत गँवारा ॥
जैसे काँटा अपने सालै। करके कर्क करेजे हालै ॥
विष काँटा बोयो संसारा। निज तन गड़ि हैं बारम्बारा ॥
जितना जीव वध्यो जगमाही। बदला देना पड़िहैं ताहीं ॥
जैसा लोहा गढ़ै लोहारा। वैसे मार परै यम द्वारा ॥
राम निवासी घट घट वासी। तब कहँ ढूढ़ो मथुरा काशी ॥

शिक्षासार—यज्ञ में या कल्पित दैव-स्थान पर या किसी प्रकार भी (भरसक) जो जीव का वध किया जाता है। वह महान पातक है। उसका बदला अवश्य देना पड़ेगा। ब्राह्मणादि कोई भी मनुष्य द्वारा हो जीव वध कसाई-कर्म और मांसाहार पैशाचिक-भोजन अवश्य माना जायगा।

४५---(शब्द—७०)

जस मासु पशु की तस मासु नर की।
रुधिर रुधिर यक सारा जी ॥१॥
पशु का मांस भखैं सब कोई।
नरहिं न भखे सियारा जी ॥२॥
ब्रह्म कुलाल मेदनी भइया।

उपजि विनशि कित गइया जी ॥३॥
माँस मछरिया तैं पै खइया ।
ज्यों खेतन में बोइया जी ॥४॥
माटी के करि देवी देवा ।
काटि काटि जिव देइया जी ॥५॥
जो तोहरा है साँचा देवा ।
खेत चरत क्यों न लेइया जी ॥६॥
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो ।
राम नाम नित लेइया जी ॥७॥
जो कछु कियहु जिभ्या के स्वारथ ।
बदल पराथा देइया जी ॥८॥

जैसे मनुष्यों का मांस घृणित है, तैसे पशुओं का भी मांस घृणित है और दोनों का रक्त भी एक समान अशुद्ध है ॥१॥ उन घृणित पशुओं के मांस को मांसाहारी मनुष्य सब खा जाते हैं। परन्तु (नरहिं न भखै) अर्थात् मनुष्य के मांस को मनुष्य नहीं खाते। हाँ ! यदि सियारादि मनुष्य के मांस को पावें तो खा जाते हैं ॥२॥ मेदनी (पृथ्वी) पर सृष्टि रचक कुम्हारवत् ब्रह्मा हुआ—ऐसा मानते हो। परन्तु वह भी उत्पन्न हो और मर कर कहाँ गया? फिर तुम किस खेत की मूली हो? अतः स्वादासक्ति वश जीव-वध और मांसाहार मत करो, एक दिन तुम भी मरोगे और परलोक

(पुनर्जन्म) में बदला पटाना पड़ेगा ॥३॥ जैसे खेत में बोये हुए साग-भाजी को लोग निःसंकोच तोड़कर खा लेते हैं। तैसे हे भूला मानव ! तूने जीवों का वध करके मांस-मछलियों को खा लिया। अथवा जैसे खेत में बोया जाता है, वही काटने को मिलता हैं। इसी प्रकार तू जैसे जीव-वध करके मांस-मछलियों को खाता है। (पे = परन्तु,) तैसे ही अन्य जन्म में दूसरे प्राणी तुम्हें मार कर खायेंगे, यह सर्वथा सत्य है ॥४॥ मिट्टी का कल्पित देवी-देवता बनाकर अज्ञानी लोग जीवों का वध करके उसके सामने चढ़ाते हैं ॥५॥ परन्तु हे भूले लोगो ! तुम्हारा यदि सच्चा देवता है और बिना मांस के उसका यदि पेट नहीं भरता, तो खेत में चरते हुए बकरे मुर्गे इत्यादि पशु-पक्षियों को पकड़कर वह क्यों नहीं खा जाता है ? ॥६॥ सद्गुरु श्री कबीर साहेब कहते हैं हे सन्तो ! सुनो, राम सब में रमा मान कर ये संसारी जीव राम-नाम सदैव जपते हैं। परन्तु फिर भी उन्हीं राम स्वरूप जीवों को मार कर खा जाते हैं ॥७॥ किन्तु जीभ के स्वाद वश जो कुछ भी दूसरे जीव की हिंसा मनुष्य करता है। उसका बदला अवश्य देना पड़ेगा ॥८॥

व्याख्या— मनुष्य के रक्त-मांस अत्यन्त अशुद्ध हैं, इस बात को मनुष्य स्वयं मानता है। विचार किजिये ! मनुष्य ही के समान पशु-पक्षी आदि के भी रक्त-मांस घृणित होते हैं। ऐ मनुष्यो ! जिस घृणित-बुद्धि से तुम मनुष्य के

मांस को नहीं खाते हो। उसी घृणित बुद्धि से पशु-पक्षी और मछली आदि के भी मांस को नहीं खाना चाहिये।

ब्रह्मादि बड़े-बड़े कीर्तिवान, शक्तिशाली व्यक्ति भी इस संसार में सदैव नहीं रह गये। फिर हे मनुष्य! तू इस जड़, क्षण-भंगुर शरीर का अभिमान करके स्वादासक्ति वश क्यों जीवों का वध करके मांसाहार कर रहा है? तू भी एक दिन मरेगा। स्वादासक्ति वश जो जीवों का वध करके मांस भक्षण कर रहे हो। इसका बदला पुनर्जन्म में अवश्य देना पड़ेगा। बदला देने का भय त्याग कर गाय, भैंस, बैल, भैंसा, बकरी, ऊँट, सूअर, कबूतर, बतख, मुर्गी, अण्डे, मछली, मेढक, कछुआ तथा सर्प इत्यादि को साग-भाजी के समान जो लोग खा जाते हैं। उन लोगों को उनका बदला अवश्य देना पड़ेगा।

कुछ भूले लोगों ने आपस में ऐसा विचार किया कि "कोई ऐसी युक्ति निकालनी चाहिये जिससे जीव-वध और मांसाहार भी हम सब किया करें और समाज में पापी भी न माने जायँ। बल्कि ऐसी युक्ति लगानी चाहिये कि जीव-वध और मांसाहार रूप पाप कर्म करते हुए भी हम लोग समाज में पुण्यात्मा माने जायँ और लोगों से पुजवावें।" इन बातों पर विचार करते-करते उन लोगों ने यही युक्ति निकाली—मिट्टी, पत्थर, काष्ट, धातु इत्यादि के कल्पित देवी-देवादि बनाने लगे और उनके थानों पर बकरी, मुर्गी,

तथा सूअर आदि चढ़ाने लगे और समाज में यह प्रचार करने लगे कि काली, दिउहार, भैरव, भैरवी, दुर्गा, महाकालिका, ब्रह्म, भूत, प्रेत, इत्यादि के स्थानों पर पशु-पक्षियों का वध कीजिये तो बड़ा पुण्य है। ऐसा करने से धन, पुत्र, निरोग्यतादि की प्राप्ति और शत्रु आदि का विनाश होगा। अथवा इन मांसाहारी लोगों ने वेद-शास्त्रों में हिंसा-मांसाहार प्रतिपादक श्लोकों को प्रवेशकर भोली जनता से यज्ञादि में जीव-वध करवाने लगे। संसार तो 'भेड़िया धसान' है ही, एक के पीछे एक गड्ढेमें गिरते जाते हैं फिर तो यज्ञादि में तथा कल्पित देवी-देवों के स्थानों पर जीव-वध करने-करवाने वाले इन धर्मध्वजियों का खूब बना। इधर जीव-वध करके देव-देवी उपासक पुण्यात्मा भी कहलाने लगे और उधर मांस-हड्डी का स्वाद भी चखने लगे।

सद्गुरु कहते हैं,जीव-वध सिद्ध करने वाले हे भूले भाइयो ! यदि तुम्हारा सच्चा देवता है और उसका पेट यदि बिना मांस के नहीं भरता। तो खेत में चरते हुए बकरे, सूअर, मुरगे आदि पशु-पक्षियों को पकड़ कर क्यों नहीं खा जाता है ? कि वह भी किसी को डरता है ? कि शक्ति हीन है ? सचमुच बात तो यह है कि तुम मांसाहारी पण्डित, सोखा, ओझा, नाउत तथा बैगा और भूत-प्रेत देवी-देवादि के उपासकों की जीभ मांस के लिये लपलपा रही है। सज्जन

और साधु-मनुष्य ही देव हैं, इसके अतिरिक्त देवी-देव तो बिल्कुल कल्पित हैं।

दृष्टान्त—एक बार एक गाँव में बीमारी पड़ी थी। गाँव के ढोंगी मनुष्य काली के थान पर जुटे हुए कड़ाही चढ़ा रहे थे। एक सोखा (नाउत-बैगा) अभुवाता (झूपता) हुआ एक सूअर को पकड़ कर काली के थान पर चढ़ाना ही चाहता था। अतः उस सूअर के पैर को पकड़ कर उस निर्दयी सोखा ने पृथ्वी पर बल पूर्वक पटका। परन्तु सूअर बेचारा संयोगाधीन बच गया और लड़खड़ाते हुए वहाँ से भगा। इतने में हैजा की टीका लगाने वाला एक सरकारी कर्मचारी आगया। यह सोखा की निर्दयता को देखकर उससे न रहा गया और उसने उस सोखा पर दो-तीन लाठी जमाया। फिर तो उस सोखा का देवता न मालुम कहाँ चला गया और अभुआना (नाचना-खेलना) बन्द करके भय-भीत हो उस कर्मचारी के पैरों पर पड़ गया। अतएव देवी-देव तथा भूत-प्रेतादि की कल्पना और जीव-वध एवं मांसा-हार—यह सब स्वादासक्त भूले लोगों का पाप-कृत्य है।

संसारी लोग राम-राम या अल्ला-अल्ला कहते हैं। हिन्दू लोग कहते हैं "सिया राम मय सब जग जानी।" अर्थात् राम सब में रमा है। और मुसलमान लोग कहते हैं "कुल्लहू अल्लाः" अर्थात् जर्रे-जर्रे में खुदा है। फिर जीव-

वध करने वाले हिन्दू और मुसलमानों से पूछा जाता है कि यह बताओ ! सब में राम रमा है और सब में खुदा है । खुदा से कुछ नहीं जुदा है । तो क्या गाय, भैंस, बैल-भैंसा, ऊँट, भेड़ा, बकरा, सूअर, मुर्गा और मछली आदि पशु-पक्षी एवं जन्तुओं में राम या खुदा नहीं है ? ऐ हिन्दू मुसलमान भाइयो ! क्या तुम्हारे वेद और कुरान में यही लिखा है कि राम और खुदा की पूजा करके और निमाज पढ़कर फिर उन्हीं राम या खुदा रूप प्राणियों पर छूरी चलाया जाय ? किसी ने कहा है—

मन्दिर तोड़ो मसजिद तोड़ो, कोई नहीं मुजाका है ।
पर काहू का दिल मत तोड़ो, यह घर खास खुदा का है ॥

हे मनुष्य ! जो कुछ तूने जीभ के स्वाद वश जीवों का वध किया है । उस पराये जीव का बदला तेरे को अवश्य देना पड़ेगा । चाहे गाय को मारो, चाहे मछली को मारो और चाहे किसी जीव का वध करो । बिना उसका बदला दिये तुम्हें छुट्टी न मिलेगी ।

शिक्षासार—मांस घृणित वस्तु है, अतः वह मनुष्य का आहार नहीं है । जीवों के वध का बदला अवश्य देना पड़ेगा । अतएव हिंसा-मांसाहार त्यागना परम् आवश्यक है ।

४६—(रमैनी—४८)

दर की बात कहो दरवेसा ।
बादशाह है कौने भेषा ॥ १ ॥

कहाँ कूच कहाँ करे मुकामा ।
मैं तोहि पूछौं मूसलमाना ॥ २ ॥
लाल जर्द की नाना बाना ।
कौन सुरति को करो सलामा ॥ ३ ॥
काजी काज करहु तुम कैसा ।
घर घर जबह करावहु भैंसा ॥ ४ ॥
बकरी मुरगी किन्ह फ़ुरमाया ।
किसके कहे तुम छुरी चलाया ॥ ५ ॥
दर्द न जानहु पीर कहावहु ।
बैता पढ़ि पढ़ि जग भरमावहु ॥ ६ ॥
कहहिं कबीर यक सय्यद बोहावे ।
आप सरीखा जग कबुलावे ॥ ७ ॥

साखी--

दिनको रहत हैं रोजा, राति हनत हैं गाय ।
यही खून वह बन्दगी, क्यों कर खुशी खुदाय ॥४९॥

ऐ फ़कीरो ! खुदा के रहने के स्थान की बात बतलाइये ! और यह बतलाइये कि वह खालिक़ किस भेष में रहता है ? ॥ १ ॥ कहाँ से प्रस्थान और कहाँ पर स्थान करता है ? ऐ मुसलमान भाइयो ! यह मैं आप लोगों से पूछ रहा हूँ । २ ॥ वह लाल भेष में है कि पीले भेष में है या नाना-

प्रकार के भेषों को बनाता रहता है। आप सब किस रूप को पाँच वक्त सलाम करते हैं ? ॥ ३ ॥ काजी साहब ! आप भी यह कैसा हरकत करते हैं ? जो घरोघर में गाय-भैसों का वध करवाते हैं ॥ ४ ॥ बकरी-मुर्गी जबह करने के लिये भी किसने आज्ञा दिया है ? किसके कहने से आप ने मूक-लाचार पशु-पक्षियों पर छूरी चलाया है ॥ ५ ॥ ऐ पीरजादो ! आप लोग प्राणियों के पीर (दर्द) को नहीं जानते और पीर तो कहलाते हैं। शैर-कलामको पढ़-पढ़ कर जगत्-जीवों को भ्रमाते हैं ॥ ६ ॥ सद्गुरु श्री कबीर साहेब कहते हैं—मुसलमानों में एक सय्यद जाति के लोग होते हैं, ये बड़े जुर्मी होते हैं, ये पुकार-पुकार कर अपने समान बनाने के लिये दुनिया के इन्सानों से मंजूर कराते हैं। अर्थात् सब को तुरुक बनाना चाहते हैं ॥ ७ ॥

मुसलमान लोग दिन को तो रोजा (उपवास) रहते हैं और रात में गाय या अन्य प्राणी को मारते हैं। इधर जीव-वध करते हैं और उधर पाँच वक्त खुदा की बन्दगी करते हैं। भला ! इन पर अल्ला कैसे खुश होगा ? ॥ ४९ ॥

व्याख्या—स्वरूप की भूल वश लोग नाना कल्पना करके परोक्ष कर्तार में भ्रमते रहते हैं और हिंसादि पाप-कर्म भी करते हैं। मुसलमान भाइयों में अहिंसा और ब्रह्मचर्य का बड़ा अभाव है। ये लोग हिंसा करना और विषयों में अति आसक्त रहना अपना धर्म समझते हैं। यह कितना

घनघोर अन्धकार है ?

गाय भैंस और बकरी मुर्गी इत्यादि मूक, लाचार तथा दीन-गरीब जीवों की कुर्बानी करना यह काजी लोगों का इन्साफ है। यह कितने बेरहमी का काम है ? काजी पीर और पैगम्बर आदि जिस किसी ने भी यह कुर्बानी (जीव-वध) की प्रथा चलायी हो। उन्होंने ठीक नहीं किया है। छोटे-बड़े किसी प्राणी को मारना—बेरहमी है और बेरहमी करना बड़ों का या विचारवानों—इन्सानों का काम नहीं है। देखिये ! कोई मुसलमान भाई जब कुर्बानी करने चलते हैं, तब यह कलमा पढ़ते हैं—"बिस्मिल्लाहिर्रहिमानिर्रहीम" अर्थात् मालिक के नाम के साथ 'रहम' (दया) अलफाज का इस्तेमाल करते हैं। अहो ! खुदा और रहम का नाम लेकर बेरहमी का काम (कुर्बानी) करना कितना अजाब (पाप) है ? निर्मानता पूर्वक अपने छाती पर हाथ धर कर इस बात पर मुसलमान भाई और काजी-पीर विचार करें।

जो यह उदाहरण आता है कि खुदा ने हजरत मुहम्मद साहब के पुरषे इब्राहीम अलैस्लाम को ख्वाब (स्वप्न) दिखाया था कि अपने प्यारे प्राणी की हमारे नाम पर कुर्बानी करो। तब इब्राहीम अलैस्लाम ने अपने प्रिय-पुत्र इसमाईल की कुर्बानी के लिये छूरी चलाया। लेकिन छूरी कुन्द हो गयी। इसमाईल का गला नहीं कटा और खुदा की मर्जी से

वहाँ एक भेड़ा कटकर आ गिरा। तब से कुर्बानी चली।

विचार करके देखिये यह उदाहरण केवल कल्पित है। विवेक-न्याय से परोक्ष कर्त्ता तो असिद्ध ही है। इसके बाद इन्सान को जो ख्वाब होता है, वह अपने ख्याल का होता है। दूसरा ख्वाब नहीं दिखाता। इसके अलावा इब्राहीमअलैस्लाम साहब ने अपने पुत्र इसमाईल की कुर्बानी की थी। फिर मुसलमान भाई अपने पुत्रों की कुर्बानी क्यों नहीं करते? उचित विचार की बात तो यह है कि न पुत्र की कुर्बानी करनी चाहिये न अपनी कुर्बानी करनी चाहिये और न पशु पक्षी इत्यादि किसी की भी कुर्बानी करनी चाहिये। कुर्बानी करनी चाहिये काम, क्रोध, लोभ, मोह और मद इत्यादि शैतानों की! मांस खाना कुर्बानी करना इन्सानियत नहीं शैतानियत है। और यदि मनुष्य बिना मांस खाये या बिना कुर्बानी किये नहीं रहपाता है। तो उसे अपने अङ्गों को काट-काट कर अपना ही मांस खाना चाहिये। और अपनी कुर्बानी करनी चाहिये। क्योंकि किसी को भी अन्य प्राणी को मार कर खाने का क्या अधिकार है?

प्यारे भाइयो! आप सब खूब गहराई से विचारिये! अपने मांस को बढ़ाने के लिये दूसरे के मांस को काट कर खाना और अपने हित के लिये दूसरे जीवोंका वध करना—यह कितनी बेरहमी, कितना नादानपन और कितना मतलबी होना है? भाइयो! विचारिये! जो दूसरे को सताता

है, पीड़ा पहुँचाता है,उसी को शैतान कहा जाता है। फिर यदि हम-आप चलते-फिरते हुए छोटे-बड़े किसी प्राणी को भरसक सताते हैं, पीड़ा पहुँचाते हैं, तो हम आप शैतान नहीं हुए ? अवश्य हुए। जो मुर्दा खाता है, उसे मुर्दखोर कहा जाता है। विचारिये ! यदि आप हम मांस खाते हैं, तो आप-हम को यदि कोई मुर्दखोर, पिशाच, दानव, दैत्य कह देवे, तो कहनेवाले का क्या दोष होगा ? कुछ नहीं।

यदि पूर्वोक्त बातें निर्णय युक्त हैं तो किसी भाई को इस बात पर क्रोध नहीं करना चाहिये और दुखी नहीं होना चाहिये। प्रेम और प्रसन्नता पूर्वक इन अमृतमय निर्णयों को सुनकर हिंसा-मांसाहार का बिल्कुल त्याग कर देना चाहिये।

जिससे जीव का अकाज हो,हिंसा-घात हो, पाप-अजाब बढ़े—ऐसा कार्य करवाना काजी का काम नहीं है। काजी को तो इन्साफवर होना चाहिये। और इन्साफ यही है कि चलते-फिरते हुए छोटे-बड़े सब प्राणियों पर 'रहम' करना। कोई इन्सान किसी प्राणी को दुखाने न पावे—यही कार्य करना काजी का काम है।

कोई विचारवान् जीव-वध करना रूप निर्दयता की आज्ञा नहीं दे सकता है और खुदा ईश्वर को तो सब पर रहम या दया करने वाला आप लोग मानते हैं। उसमें बेरहमी और निर्दयता हो ही नहीं सकती और यदि वह बेरहम या निर्दयी है।

वह जीवों का वध करने की आज्ञा देता है, तो वह सर्वथा त्याज्य है। आप सब स्वयं मानते हैं कि संसार के सब प्राणी ईश्वर या खुदा के सन्तान हैं। फिर क्या किसी भी छोटे-बड़े ईश्वर के सन्तान का वध करने से ईश्वर या खुदा प्रसन्न होगा? कदापि नहीं! सच पूछिये तो यह स्वार्थी लोगों ने अपनी जीभ के स्वाद वश हिंसा-मांसाहार का प्रतिपादन किया है। हिंसा-मांसाहार को कल्पित कर्ता या किसी महापुरुष की आज्ञा मानना मांसाहारी मनुष्यों का बहाना है।

जो लोग दूसरे प्राणी के पीर (पीड़ा दर्द) को नहीं जानते और पीरजादे कहलाते हैं। वे भाई लोग कितने अन्धकार में हैं? कहा है—

साखी—कबीर सोई पीर हैं, जो जाने पर पीर।
जो पर पीर न जानई, सो तो है बेपीर॥

जो दूसरे के दर्द को जानता है (सब पर मेहरबानी रखता है, किसी प्राणी को नहीं मारता) वही पीरजादा है और जो पराये की पीड़ा को नहीं जानता है, वह तो निर्दयी भूला है। नाना कल्पित वाणियों को पढ़, सुन कर भ्रमते रहते हैं। जबर्दस्ती सबको अपना मजहब कबूल करवाना यह भी महान पातक है।

जब सायंकाल को गाय, भैंसा, बकरा, भेड़ा और मुर्गी-मुर्गादि मारा गया और मांस खाया गया, फिर दिन

भर रोजा (उपवास) रहने से क्या फल हुआ ? बल्कि पाप (अजाब) हुआ। मुसलमान भाइयो ! इस बात पर खूब सोचिये ! कि एक ओर खुदा की बन्दगी करना—और दूसरी ओर खुदा के बक्शीशे हुए प्राणियों की कुर्बानी करना—ये कितनी विरोधी बातें हैं ? अतएव जीव-वध मांसाहार का सर्वथा त्याग करना चाहिये।

शिक्षासार—कुर्बानी या जीव-वध करना किसी श्रेष्ठ पुरुष की आज्ञा नहीं है। काजी, पीर, पैगम्बर वही है जो जीव-दया पालन करता है। सब पर मेहरबानी करता है। अतएव जीव-वध को सर्वथा त्याग करके और मांसाहार भी छोड़कर सदाचारी दयावान् एवं मेहरबान् होना चाहिये।

४७—(शब्द—८३)

भूला बे अहमक नादान।
जिन्ह हरदम रामहिं ना जाना ॥ १ ॥
बरबस आनि के गाय पछारी।
गरा काटि जिव आपु लिया ॥ २ ॥
जीयत जीव मुरदा करि डारे।
ताको कहत हलाल हुआ ॥ ३ ॥
जाहि मासु को पाक कहत हो।
ताकी उत्पति सुनु भाई ॥ ४ ॥

रजो वीर्य से मांस उपानी।
सो माँस नपाकी तुम खाई ॥ ५ ॥
अपनी देखि कहत नहिं अहमक।
कहत हमारे बड़न किया ॥ ६ ॥
उसकी खून तुम्हारी गर्दन।
जिन तुमको उपदेश दिया ॥ ७ ॥
स्याही गयी सफेदी आई।
दिल सफेद अजहूँ न हुआ ॥ ८ ॥
रोजा बाङ्ग निमाज क्या कीजै।
हुजरे भीतर पैठि मुआ ॥ ९ ॥
पण्डित वेद पुरान पढ़ैं सब।
मुसलमान कुराना ॥१०॥
कहहिं कबीर दोऊ गये नर्क में।
जिन्ह हरदम रामहि ना जाना ॥११॥

वे बुद्धि-हीन लोग भूले हैं। जिन्होंने हरदम (हरघटों) में रमैयाराम चैतन्य को नहीं जाना ॥१॥ मुसलमान लोग गाय को लाकर हठता पूर्वक मारते, उसका गला काट कर हत्या कर देते हैं ॥ २ ॥ जिन्दा प्राणधारी जीव का वध कर के मुर्दा कर दिये। फिर भी अज्ञानता वश कहने लगे कि यह हलाल हुआ अर्थात् बड़ा उत्तम काम हुआ (सबाबहुआ)

॥३॥ जिस मांसको तुम सब पाक (शुद्ध) कहते हो। हे भाई! उसकी उत्पत्ति तो सुनिये॥४॥माताके रज और पिताके वीर्य से मांस उत्पन्नहुआ। वह पेशाब युक्त नापाक (अशुद्ध) मांस तुमने खा लिया ॥ ५ ॥ कुर्बानी करने में प्रत्यक्ष जीव-हिंसा देखते और समझते हैं, परन्तु ये भूले लोग अपने बेरहमी की कसर नहीं कहते हैं। बल्कि कहते हैं कि "हमारे बड़े-बूढ़ों ने कुर्बानी की है, अतः कुर्बानी करना पुण्य है" ॥ ६ ॥ परन्तु ध्यान रहे! जिन तुम्हारे बड़े-बूढ़ों (पीर-पैगम्बरों) ने कुर्बानी करने की आज्ञा दी है। कुर्बानी करने का पाप उनके शिर पर लगेगा और तुम्हारा गर्दन भी एक दिन दूसरा कोई काटेगा। अथवा कुर्बानी की आज्ञा देने वाले तुम्हारे पीर-पैगम्बरों का यदि कोई खून कर देता, तो उन्हें कैसा लगता? या तुम्हारा ही गर्दन कोई काटे, तो तुम्हें कैसे लगेगा? फिर अपने दुःख-दर्द के समान दूसरे को नहीं जानते हो, यही भूल है ॥ ७ ॥ हिंसा-मांसाहार और पापाचार करते हुए जवानी चली गयी और बुढ़ापा आ गया। परन्तु हे मनुष्य! तुम्हारा मन आज भी शुद्ध न हुआ, दया-मेहरबानी न आयी ॥ ८ ॥ मेहरबानी छोड़ कर रोजा रहने, बाँग पुकारने और निमाज पढ़ने से क्या हुआ? केवल हुजरे में घुसकर जड़ाध्यासी हुआ ॥९॥ सब पण्डित जन वेद-पुराण पढ़ते हैं। और मुसलमान लोग कुरान पढ़ते हैं ॥१०॥ परन्तु सद्गुरु श्री कबीर साहेब कहते हैं—जिन्होंने हर घटों

(देहों) में राम (रूह) न जाना और जीव-वध करता ही रहा। वे हिंसकी पण्डित तथा हिन्दू-मुसलमान दोनों नर्क (दोजख) में जायँगे। (नीच खानियों में भ्रमेंगे) ॥११॥

व्याख्या—हर घटों में रमैयाराम रम रहा है। हर शरीरों में रूह जगमगा रहा है। यह सिद्धान्त हिन्दू और मुसलमान मानते हैं। परन्तु शोक है कि वे लोग जीव-वध और कुर्बानी करना नहीं त्यागते। जो जीव-हिंसा नहीं छोड़ते, वे अवश्य महान अज्ञानी मानने योग्य हैं। देखिये ! अविचार और निर्दयता, जो हल में चलने के लिये बछड़ा देती है और पीने के लिये दूध देती है। उस गौ माता को ये निर्दयी मुसलमान भाई लोग पकड़कर हठता पूर्वक मार देते हैं गौ सदैव सेवा करने एवं पालन करने योग्य है, उसको मारना कितना नमकहरामीपन है ? जीवों की हिंसा करके पुनः पाप न मानकर बल्कि पुण्य (सवाब) मानना, यह तो और घोर अन्धकार है। कुर्बानी करना रूप जीवों की हिंसा है हराम का काम, परन्तु ये भूले भाई लोग हराम को ही हलाल कहते हैं। इनको कौन समझावे ?

लोगों की कैसी बुद्धि है, जो मांस को पाक (शुद्ध) कहते हैं। रज-वीर्य से निर्मित मल-मूत्र और रक्त-हड्डियों में सना हुआ दुर्गन्ध से युक्त यह मांस का पिण्ड कौन विचारवान् शुद्ध मानेगा ? जहाँ जीव-वध होता है। बड़ी-बड़ी मांस की दुकानें रहती हैं। वहाँ चील्ह, गीध, कुत्ते-कौआ

और मक्खियों से दृश्य भयंकर दीखता है। एक साधारण व्यक्ति भी समझ सकता है कि मांस अशुद्ध पदार्थ है। अहो! ऐसे अशुद्ध मांस को लोग खा लेते हैं, तनिक भी मानवता पर ध्यान नहीं।

चाहे कोई पीर-पैगम्बर हो, चाहे कोई ऋषि मुनि और गुरु-आचार्य हो। जो जीव-वध करने और मांस खाने की आज्ञा देता है। वह तो मनुष्य ही नहीं मानने योग्य है। उन लोगों की आज्ञा के आधार से जितना ही लोग हिंसा करते जायँगे। उतना ही पाप उन गुरुओं को लगेगा, जिन्होंने वध या कुर्बानी करने की आज्ञा दी है। वे करोड़ों कल्पों तक पापों के फल अगति यातना से छुट्टी नहीं पायेंगे। हिंसा-मांसाहार विधायक कोई भी वेद-कितेब और श्लोक-कलाम मानने योग्य नहीं है।

प्राणियों को मार-मार कर अपने पेट में उनका कब्र बनाते-बनाते। अर्थात् हिंसा-मांसाहार करते-करते लोग जवान से बुड्ढे हो जाते हैं। परन्तु उनकी बेरहमी और निर्दयता नहीं छूटती। उनके मन में रहम-दया नहीं आती। अपने अङ्ग में काँटा गड़ जाय तो मनुष्य बहुत विकल हो उठता है। न जाने क्या जान कर वह दूसरे के गला पर छुरी चलाता है। क्या जिसके ऊपर छुरी, तलवार चलायी जाती है, जिन प्राणियों को मारा काटा जाता है। जीते ही जलाया जाता है।

जीते ही उनके अङ्ग-अङ्ग पृथक्-पृथक् किये जाते हैं। क्या उन्हें कष्ट नहीं होता ? क्या तुम्हारे समान उनमें चेतन जीव या रूह नहीं हैं ? यदि कहिये पशु-पक्षी आदि अनावश्यक जन्तु किस काम में आयेंगे ? अतः इन्हें मारकर खा ही लेना चाहिये। तो यह बतलाइए ? आप ऐसे हिंसकी पेट और भोग का पालन रूप पशु आचरण करने वाले मनुष्यों की क्या आवश्यकता है ? उन पशु-पक्षी की तुम्हारे द्वारा क्या रक्षा है ? फिर तुम लोगों को कोई मारकर समाप्त करना चाहे, तो तुम्हारे न्याय से क्या दोष होगा ? लाचारों को मार डालना यदि न्याय है, तो तुम से बलवान मनुष्य तुम्हें मारने पर तत्पर हो जायँ, तो किस न्याय से बचोगे ? अतएव किसी प्राणी को मारने का अधिकार किसी को नहीं है। मुसलमान भाइयों से कहना है कि यदि आप लोग दया-मेहर त्यागकर लाचार पशु-पक्षियों को मार-मार कर खाते हैं। तो आप लोगों के ३० रोजा रहने से और पाँच वक्त निमाज पढ़ने और बाँग पुकारने से कुछ फल नहीं होगा। क्योंकि—

साखी— दिन को रहत हैं रोजा, रात हनत हैं गाय।
यही खून वह बन्दगी, क्यों कर खुशी खुदाय॥

(बीजक)

अथवा

"जाके दया धरम नहिं तन में, मुखड़ा क्या देखो दर्पन में।"

चाहे कोई पण्डित हो चाहे मौलवी, चाहे कोई हिन्दू हो चाहे मुसलमान, चाहे कोई वेद-पुराण पढ़े, चाहे कोई कुरान शरीफ पढ़े—जो हिंसा-मांसाहार करेगा, वह नर्क में (दोजख में) अवश्य जायेगा। अर्थात् हिंसा-मांसाहार करने से पशु-पक्षी और कीट-पतङ्गादियोनियों में देह धर-धर कर बहुत काल तक जीव नाना कष्ट को पाता रहता है।

"कहहिं कबीर वे दूनों भूले, रामहिं किनहु न पाया।
ये खँसी वे गाय कटावें, बादहिं जन्म गवाँया॥"
(बीजक)

दृष्टान्त—एक बार शिव और पार्वती एक मार्ग पर जा रहे थे। कुछ दूर चलने पर एक मछुआ (मछली मारने वाला) मिला। वह मछलियों को मार-मार कर और सुखा-सुखा कर एक बड़ी ऊँची राशि लगा रखा था। यह देख-कर पार्वती ने शिवजी से पूछा इस मछुआ की क्या गति होगी? शिवजी ने कहा—इसकी बड़ी बुरी दशा होगी। बहुत दिनों के पश्चात् उसी मार्ग से होकर शिव-पार्वती, पुनः निकले। तो क्या देखे—एक बड़ाभारी ऊँट पड़ा है। उसके सारे अङ्ग में कीड़े पड़े हैं। वह जिधर करवट लेता है उधर आध सेर कीड़े गिर जाते हैं। वह इसी प्रकार दुःखों में बहुत दिनों से पड़ा था। पार्वती ने कहा—यह ऊँट किस पाप से इतना दुखी है? शिवजी ने कहा—यही वह मछुआ है। जो पहले यहीं पर मछली की राशि लगाये मिला था।

अपने पाप-कर्म के कारण अब वह मछुआ ऊँट हुआ है और इसके शरीर भर में कीड़े काट रहे हैं। यहाँ तक कि इसका सारा शरीर कीड़ों से पूर्ण हो गया है। इसी प्रकार यह अनेकों जन्म तक नर्क भोगता रहेगा। अतएव जीव-वध का बदला मनुष्य को अवश्य देना पड़ेगा। सब से बड़ा भारी पाप भरसक किसी की जान दुखाना है। कहा है—

"पर उपकार स धर्म न भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥
तुलसी यहि जग आय के, बदला कहीं न जाय।
जो शिर काटे आन को, अपनो होय कटाय॥"

शिक्षासार—जीव-वध या कुर्बानी करना किसी भी मत से उचित नहीं है। मांस महान् अपावन (नापाक) पदार्थ है। हिंसा-मांसाहार करने वाले के पूजा-पाठ, तीर्थ-व्रत और रोजा-नमाज आदि सब निष्फल (अनावश्यक) हैं। अतः ऐ प्यारे भाइयो! कृपया हिंसा-मांसाहार बिल्कुल त्याग दीजिये।

४८—(शब्द—४३)

बाबू ऐसो है संसार तिहारो।
इहै कली व्यवहारो॥ १॥
को अब अनुख सहत प्रतिदिनको।
नाहिन रहनि हमारो॥ २॥
सुमृति सोहाय सबै कोइ जानै।

हृदया तत्त्व न बूझै ॥ ३ ॥
निर्जिव आगे सर्जिव थापै।
लोचन किछउ न सूझै ॥ ४ ॥
तजि अमृत विष काहेक अँचवे।
गाँठी बाँधिन खोटा ॥ ५ ॥
चोरन दीन्हों पाट सिंहासन।
साहुन से भौ ओटा ॥ ६ ॥
कहहिं कबीर झूठे मिलि झूठा।
ठगही ठग व्यवहारा ॥ ७ ॥
तीनि लोक भरपूर रहा है।
नाहीं है पतियारा ॥ ८ ॥

ऐ भैया चैतन्य जीवो ! ऐसा ही तुम्हारा मानन्दीकृत प्रापंचिक संसार है। यही सब कलि कलुष एवं पाप युक्त तुम लोगों का व्यवहार है॥ १ ॥ अब कल्याण-साधन करने योग्य नर-तन को पाकर भी नित्य-नित्य तुम लोगों की झंझटों को कौन विवेकी सहेगा ? क्योंकि तुम लोगों का जो कलुषित हिंसात्मक आचरण है, वह हम विवेकियों के रहनी-आचरण में-से नहीं है। अतएव हम विवेकियों का निवास भी तुम ऐसे प्रपंचियों में नहीं हो सकता॥ २ ॥ स्मृतियों में हिंसात्मक-अहिंसात्मक सभी प्रसंगों का वर्णन

है, अतः वह सब को अच्छा लगता है, उसके कथन को सब अच्छा समझते हैं। परन्तु हृदय में रमने वाले रमैयाराम चेतनतत्त्व को और उसके विवेक तत्त्व को तो इन अविवेकियों में से कोई सत्संग में समझते नहीं ॥ ३ ॥ अतएव निर्जीव कल्पित जड़ देवी-देवादि के सामने सजीव भैंसा, भेड़, बकरा, सूअर एवं मुर्गा इत्यादि का बलिदान करते हैं। इसलिये इन हिंसकी जड़ाध्यासी लोगों के नेत्रों से कुछ भी नहीं दीखता ॥ ४ ॥ भला ! ये लोग चेतनतत्त्व और जीव-दया रूप अमृत को त्याग कर जड़ देवी-देव पूजन और जीव-हिंसा रूप विषको क्यों पी रहे हैं ? ये लोग तो स्वरूप-ज्ञान और अहिंसा धर्म रूप हीरा को त्याग कर जड़ाध्यास और हिंसा रूप कङ्कर को अपने गाँठ में बाँध लिये ॥ ५ ॥ कल्पित जड़ देवी-देवादि तथा ओझा-सोखा, नाउत-बैगा एवं गुरुआ रूप (ज्ञान धन चुराने वाले) चोरों को तो ये संसारी लोग उत्तम-उत्तम वस्त्र चढ़ाते और ऊँचे आसन पर बैठाते हैं। और साहु रूप विवेकशील पारखी सन्तों से मुख छिपाते हैं ॥ ६ ॥ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—नाना अनुमान, कल्पना, जड़ देवी-देवादि तथा बाचाल रूप झूठों की संगत में मिलकर यह जीव भी झूठे का अध्यासी हो गया है। क्योंकि यह मानी बात है कि ठग के पास बैठने से वह ठगाई का ही आचरण बतलायेगा ॥७॥ यह अनुमान कल्पना और भ्रमिकों का भ्रम रज,सत, तम गुण युक्त तीनों प्रकार के

मनुष्यों में परिपूर्ण होरहा है। विवेकियों के सत्य वचन पर इन संसारियों को विश्वास नहीं है॥ ॥

यह संसार इतना घोर जङ्गल के समान है, इतना गहन अज्ञान-रात्रि-तम से आच्छादित है कि इसका चिन्तन करते ही सन्ताप उत्पन्न हो जाता है। संसार में पापाचार का व्यवहार अधिक है। अपने तन, मन तथा धन की हानि कोई सहने वाला नहीं है। परन्तु दूसरे के तन, मन एवं धन का लोग घात करते रहते हैं। निर्दयी लोगों को जीव-हिंसा का तनिक भी विचार नहीं है। वे किसी प्राणी पर छुरी चलाना साग-मूली काटने के समान समझते हैं। स्वरूप-ज्ञान को त्याग कर और जड़ देवी-देवादि के पुजारी बनकर सब अविवेकी जीव महान प्रपंची और हिंसकी हो रहे हैं। इन अविवेकियों के अत्याचारों से घबराकर विवेकवान कहते हैं ऐ भैया! तुम लोगोंके कल्पना-प्रपंच से,तुम लोगों के अत्याचार से, तुम लोगों के संसार और संगत से मैं भर पाया, घबरा गया। अब तुम लोगों के साथ हमारा सम्बन्ध नहीं होगा।

वेद-स्मृति के मन्त्र-श्लोकों का मनमानी अर्थ करके और उसमें हिंसात्मक वचन सिद्ध करके पठित-वधिक लोग दिन दहाड़े हिंसा करते हैं। उनके हृदय के विवेक-नेत्र बिल्कुल फूटे हैं। कल्पित, चेतन-हीन जड़ देवी, दुर्गा, दानवी, भैरवी, महाकाली, कालिका, योगमाया, आदिशक्ति, देव,

भैरव, दिउहार, ब्रह्म, भूत, पिशाच, बटुक, नट्टवीर एवं जिन्द इत्यादि मानकर या उनकी मिट्टी, पत्थर इत्यादि की कल्पित मूर्ति बनाकर उनके सामने चेतन प्राणी भैंसा, बकरा, भेड़ा, सूअर तथा मूर्गी आदि का वध करते हैं। इन पापियों के नेत्रों से कुछ भी नहीं दीखता, केवल नाम मात्र के कल्पित देवी-देवादि के लिये चेतन जीव को कष्ट देते हैं। यह कितना महान् अन्याय है ?

जो अमृत तजकर विष पीता है, जो हीरा त्यागकर ठीकरा बाँधता है, जो चोर का स्वागत करता और साहू से मुख छिपाता है, वह भूला है। इसी प्रकार जो स्वरूप-ज्ञान और पारखी सन्तों की संगत तथा जीव दया त्यागकर कल्पना, भ्रम, देवी-देवादि का पूजन, हिंसा इत्यादि करता है और ओझा-सोखा, नाउत-भैगा के भ्रमाने से भ्रमा करता है, वह महा नादान है।

मिथ्यावादियों के संग से लोग मिथ्यावादी हो जाते हैं, धूर्त की संगत से धूर्ताई सिख जाते हैं। इसी प्रकार कल्पित देवी-देवादि की मानन्दी और भ्रमिकों की संगत में मिलकर यह जीव महान् प्रपंची, भ्रमिक, हिंसकी और अ-त्याचारी हो गया है। यह अत्याचार चारों ओर व्याप्त है। विवेकियों के निर्णय पर इन अविवेकियों को विश्वास नहीं है।

शिक्षासार—हिंसा, प्रपंच और जड़ देवादि पूजन त्या-

गकर सद्गुरु की भक्ति और सत्संगत करते हुए अपना उद्धार करना चाहिये ।

४९— (शब्द— १०५)

ये भ्रम भूत सकल जग खाया ।
जिन जिन पूजा तिन जहँड़ाया ॥ १ ॥
अण्ड न पिण्ड न प्राण न देही ।
कोटि कोटि जिव कौतुक देही ॥ २ ॥
बकरी मुरगी कीन्हेव छेवा ।
आगल जन्म उन औसर लेवा ॥ ३ ॥
कहहिं कबीर सुनो नर लोई ।
भुतवा के पुजले भुतवा होई ॥ ४ ॥

ये भ्रम मात्र का कल्पित भूत सारे संसार को भ्रमा दिया । इस कल्पित भूत-प्रेत का जिन-जिन लोगों ने पूजन किया, वे अज्ञान में पड़कर खराब हुए ॥ १ ॥ इस कल्पित भूत के न सूक्ष्म शरीर है, न स्थूल शरीर है, न प्राण है और न जीव है । (वन्ध्या पुत्रवत् यह सर्वथा असत्य है ।) परन्तु तो भी करोड़ों-करोड़ों अज्ञानी मनुष्य इस भ्रम-भूत के तमाशा में अपना शिर पटक रहे हैं । अथवा अज्ञानी मनुष्य ऐसे कल्पित भूत के नाम पर प्राणियों को काट-काट कर चढ़ाते हैं ॥ २ ॥ परन्तु बकरी-मुर्गी आदि जिन प्राणियों

को तू ने मारा है। आगे जन्म में वे तुमसे बदला अवश्य लेंगे ॥ ३ ॥ सद्गुरु श्री कबीरसाहेब कहते हैं—हे मनुष्य लोगो, सुनो ! कल्पित भूतों को पूजने वाले जड़ तत्त्व के अध्यासी जन्मादिक दुःख के बारम्बार भागी होते हैं ॥४।

व्याख्या—यहाँ श्रीकबीरसाहेबजी ने भूत-योनि का खण्डन किया है। लोग कल्पना करते हैं कि मनुष्य, अण्डज और पिण्डजादि खानियों के समान भूत की भी एक खानि है। परन्तु यह मनुष्य की कोरी कल्पना है, इस शब्द में साहेब जी ने कहा है 'ये भ्रम भूत सकल जग खाया' अर्थात् यह भ्रम करके जो केवल मन से माना हुआ भूत है, इसने सब अज्ञानियों को भ्रमा दिया। एक ने कल्पना करके दूसरे से वही संशय लगाया और एक-से-एक इस संशय वाणी को सुन-सुनकर भ्रमते ही गये। जिन्होंने इस भ्रम मात्र के कल्पित भूत को सत्य मानकर इसका पूजन-अर्चन किया, वह बड़े दुःख का भागी हुआ।

विवेक से भूत-योनि असिद्ध है, क्योंकि बन्ध्यापुत्र के समान माने हुए इस भूत के न अण्ड नाम सूक्ष्म—शरीर है, न पिण्ड नाम स्थूल-शरीर है, न प्राण है और न देही नाम जीव ही है। सूक्ष्म-शरीर इसलिये नहीं है कि जीव जब देह छोड़ता है,तब तत्काल ही चारों खानियों की किसी योनि में जाकर शरीर धारण करता है। शरीर त्याग काल से लेकर अन्य योनि की प्राप्ति काल तक ही केवल सूक्ष्म-शरीर के साथ

जीव रहता है। अन्यथा स्थूल-शरीर के साथ ही जीव सहित सूक्ष्म-शरीर का सम्बन्ध रहता है। इसके अतिरिक्त केवल सूक्ष्म-शरीर की कोई योनि नहीं होती। मनुष्य, अण्डज, पिण्डज और उष्मज ये चारों खानियाँ स्थूल-शरीर युक्त सबको प्रसिद्ध हैं। यदि केवल सूक्ष्म-शरीर युक्त ही भूत माना जाय, तो वह किसी को प्रत्यक्ष नहीं होगा और किसी को सुख-दुःख नहीं दे सकेगा। जैसे आम-बरगद इत्यादि के केवल बीज से फाटक, खड़ाऊँ, पटरा या पीढ़ा इत्यादि नहीं बनाया जा सकता है। जब आम या बरगद (बट) इत्यादि का बीज मिट्टी जल से संयोग पाता है और वृक्षाकार होकर कुछ दिन में खूब मोटा-ताजा हो जाता है। तब उसे काट कर फाटक (किवाड़) खड़ाऊँ, पटरा इत्यादि बनाया जा सकता है। केवल बीज मात्र से नहीं। इसी प्रकार स्थूल-शरीर से रहित बीजवत् केवल सूक्ष्म-शरीर ही भूत-योनि नहीं मानी जा सकती। यह जीव केवल सूक्ष्म-शरीर द्वारा कहीं प्रकट होकर किसी को सुख-दुःख नहीं दे सकता। इसलिये सूक्ष्म-शरीर ही को भूत-योनि मानना युक्ति-विरुद्ध एवं न्याय-असंगत है।

यदि कहिये "भूत में ऐसी शक्ति है कि वह जब चाहे तब स्थूल-शरीर धारण करले और जब चाहे तब सूक्ष्म-शरीर धारण करले।" तो यह भी अयुक्त कथन है। क्योंकि खा-

नियों में प्रायः कुछ समय में सूक्ष्म-शरीर से स्थूल-शरीर बनता है। तुरन्त नहीं। इसके अतिरिक्त यदि मन अनुसार भूत तुरन्त स्थूल-शरीर धारण करता है। तो वह स्थूल-शरीर सब को दिखाई क्यों नहीं देता ? मान लीजिये, क्षण में भूत ने भैंसा या हाथी इत्यादि का रूप बना लिया और क्षण में उस स्थूल-शरीर को त्याग कर सूक्ष्म-शरीर धारण कर लिया, तो वह पूर्व का भैंसा और हाथी इत्यादि का शरीर परमाणु युक्त स्थूल द्रव्य होने से तुरन्त कहाँ लोप हो जायगा ? क्योंकि प्राणियों के त्यागे हुए शरीर अग्नि में जलाने से शीघ्र नष्ट होते हैं, परन्तु उसको जलाते हुए भी लोग देखते हैं और जले हुए राख इत्यादि का भी चिह्न सब को दीखता है। यदि भूतों का त्यागा हुआ स्थूल-शरीर पृथ्वी पर पड़ा रहता, तो लोग देखते। चिल्ह-गीध और कौए-कुत्ते इत्यादि नोच-नोच कर खाते। भूत की योनि होती, तो उनके पुत्र कुटुम्बी और सम्बन्धी दिखलाई पड़ते। अतएव कल्पित भूत के स्थूल-शरीर भी नहीं है। स्थूल शरीर न होने से प्राण का रहना स्वयं असिद्ध है। क्योंकि स्थूल-शरीर में ही प्राण रहता है। प्राण रहित जीव का रहना भी महान असिद्ध है। अतएव आकाश फूल, वन्ध्या-पुत्र, शशा-शृङ्ग के समान ही भूत-प्रेत की योनि असिद्ध है।

जिस बाग में, जिस वृक्ष के नीचे, नदी तट पर या जिन स्थलों पर भ्रमिक लोगों से सुना गया है कि यहाँ भूत

रहता है। वहाँ-वहाँ पर रात में जाने पर अबोधी मनुष्य के मन में संशय उत्पन्न होता है और किसी पशु-पक्षी की आहट जानकर भूत का भ्रम कर लेता है। ठूठ,जुट्टा देखकर भयभीत हो जाता है। और जहाँ पर भूत-प्रेत का वास नहीं सुना गया, वहाँ जाने पर प्रायः कोई भय नहीं होता है।

एक ग्राम में एक मियाँ जी सहित कुटुम्ब रहते थे। उनका घर लम्बा चौड़ा था। सब कुटुम्बियों के सहित मियाँ जी को यह भय था कि घर के दक्षिण वाले कमरे में भूत रहता है। सायंकाल होते ही उस कोठरी की ओर कोई नहीं जाता था। रात समय में मियाँजी एक-दो बार उस कमरे में गये, तो उन्हें ज्ञात हुआ कि मनुष्य का रूप धर कर भूत साक्षात् मिला है और लड़ाई किया है। एक दिन मियाँ जी एक सज्जन के पास गये और भूत का भय बतलाये और यह भी कहे कि वह भूत मुझे साक्षात् मिलता है। सज्जन ने कहा—अच्छा आज रात होने पर मेरे पास आना, तब मैं बतलाऊँगा। रात हो आयी,मियाँ जी पुनः उस सज्जन के पास गये। सज्जन मियाँ जी के हाथ में स्याही लगा दिया और कहा कि अभी आप अपने घर के दक्षिण वाले कमरे में जाइये और जैसे भूत सामने आये, तैसेउसकी दाढ़ी पकड़ कर उसके मुख पर चार थप्पड़ लगाना। फिर वह आप का घर छोड़ देगा।

मियाँ जी गये तथा अपने दक्षिण वाले कमरे में घुसे,

तैसे ही मारे भय के भयभीत हो गये और उन्हें ऐसा ज्ञात हुआ कि बड़े-बड़े नखशिख धारण किये भूत आ गया। इतने में उन्होंने उस कल्पित भ्रम-भूत की दाढ़ी को बायें हाथ से पकड़ कर उसके मुख में थप्पड़ें लगाने लगे। उधर पीछे से वह सज्जन मनुष्य जा पहुँचा और प्रकाश जलाया और देखा तो मियाँ जी अपनी ही दाढ़ी अपने बायें हाथ से पकड़े हुए दहिने हाथ से अपने ही मुख में तड़ातड़ मार रहे हैं। सज्जन ने कहा—मियाँ जी! अब भूत पकड़ लिये? देखिये भूत की भावना और भ्रम वश आपही अपने हाथ से अपनी दाढ़ी पकड़कर अपने मुख में आप ही थप्पड़ें लगा रहे हैं। मियाँ जी ने कहा—मैंने अपने को नहीं मारा है। यहाँ भूत ही था। उसी को मैंने थप्पड़ें लगाया है। आपके आने पर भूत भाग गया है। सज्जन ने कहा—आप दर्पण लेकर अपने मुख को देखिये तो भला! मियाँ जी ने दर्पण से मुख देखा, तो हाथ में लगी हुई सब स्याही अपने मुख में लगी है। पाँचों अँगुलियों के चिह्न गाल में बने हैं। यह देखकर मियाँ जी आश्चर्जित हो रहे। सज्जन ने कहा—देखिये मियाँ जी! भूत-प्रेत कहीं नहीं होते। यह मनुष्य अज्ञानी लोगों की संशयात्मक वाणी सुनकर मन में शंका बना लेता है। वही शंका भ्रम-भूत बनकर समय-समय से स्वयं जीव को कष्ट देती रहती है। मन का भ्रम ही भूत है।

और कहीं भूत नहीं है। इस प्रकार अनेक युक्तियों से सज्जन ने समझाया। फिर मियाँ जी का भ्रम-भूत निवारण हो गया।

जो लोग कहते हैं कि मैंने प्रत्यक्ष भूत-प्रेत-जिन्द-चुड़ैल या औघड़-ब्रह्म देखा है या लड़ा है। वे निरे अज्ञानी रहते हैं या अपनी बड़ाई करने वाले रहते हैं। लोगों में अपनी बड़ाई हाँकते हुए कहते हैं 'मैंने भूत से लड़ा है' यह सब अज्ञान और भ्रम है। इस प्रकार निर्णय विवेक से जब भूत-प्रेत की खानि सिद्ध ही नहीं होती, तब वे किसी के लगकर सुख-दुःख क्या देंगे ? भूत के भय से उत्पन्न हुई बीमारी जो झाड़ फूँक करवाने से अच्छी हो जाती है। उसका यही तात्पर्य है कि वह बीमारी भ्रम से होती है और झाड़-फूँक की भावना से अच्छी हो जाती है। जो अन्य बीमारियाँ झाड़-फूँक से अच्छी होती-सी देखी जाती हैं। वह वास्तव में झाड़-फूँक से नहीं अच्छी होती। उसका तात्पर्य यह है कि जब बीमारी के अन्त होने का समय आया, कर्म भोग पूरा हुआ और उसी समय झाड़-फूँक भी करवाया गया, तो बीमारी तो गयी कर्म भोग पूरा होने से। परन्तु भूले भाइयों ने मान लिया कि झाड़-फूँक करने से बीमरी गयी है। जो लोग सयय-समय पर अपने ऊपर भूत-प्रेत चढ़ा हुआ मानकर हाथ-पैर पटक-पटक कर अभुआते-खेलते हैं। वे भ्रमिक, अज्ञानी या नकलची होते हैं।

जैसे काम-भावनाउठने पर तन-मन में व्याकुलता होती है और मनुष्य विवश हो जाता है। जैसे क्रोध-भावना उठने पर इन्द्रिय-मन में गर्मी छा जाती है। आँख और मुख रक्त वर्ण हो जाते हैं। मनुष्य मुख से दूसरे को गाली देने लगता है या अधिक क्रोध में अपना ही हाथ-पैर काटने लगता है और मनुष्य विवश हो जाता है। जैसे मोह-भावना उठने पर रोवाई शोक, विलाप इत्यादि उत्पन्न हो जाते हैं, मोह में मनुष्य पागल हो जाता है। जैसे भय की भावना उत्पन्न होने पर मनुष्य भीरु (डरपोक) हो जाता है। इन सब उदाहरणों के अनुसार ही अज्ञानी मनुष्यों के मन में भूत की एक भावना उत्पन्न होती है। अतः उस भावना के उत्पन्न होने पर मनुष्य भयभीत हो जाता है और अभुआने (खेलने-झूपने) लगता है। जैसे काम, क्रोध, मोहादि की भावना अपने हृदय में ही अध्यास रूप में हैं और समय-समय पर उत्पन्न हो-होकर जीव को विवश करती हैं। इसी प्रकार भूत की संशय-वाणी को बालपन से ही सुन-सुनकर उस भ्रम-भूत की भावना मनुष्य के हृदय में दृढ़ हो गयी है। वह भ्रम-भूत-भावना समय-समय से मनुष्य को भ्रमा देती है। जैसे काम-क्रोध और मोहादि मनोविकार हृदय में रहते हैं। तैसे भ्रम-भूत की भावना भी एक अज्ञान कृत मनोविकार है और यह भी हृदय में रहती है। और बाहर कहीं भी भूत-प्रेत नहीं हैं। मन का भ्रम ही भूत है।

अहो! संसार के अधिक-से-अधिक पढ़-अपढ़ नर-नारी इस महा मिथ्या कल्पित भूत के भ्रम में पड़े हैं। भूत-प्रेत, जिन्द-चुड़ैया, औघड़-ब्रह्म और अनेक कल्पित देवी-देवता मानकर लोग जीवों का वध करते हैं। भूले हुए ढोंगी सोखा-ओझा और नाउत-बैगा से भभूत झड़वाते हैं। दुआ-तवीज पहनते हैं। भूत-प्रेत, देवी-देवादि मानकर जीव-वध करने वाले लोगों को समझना चाहिये जो बकरी-मुर्गी और अन्यान्य जन्तुओं को वे मारेंगे, उसका बदला अगले जन्म में उन्हें अवश्य देना पड़ेगा।

जो लोग कल्पित भूत पूजते हैं, उनकी बड़ी दुर्गति होती है। श्री कबीरसाहेब कहते हैं "भूतवा के पुजले भूतवा होई।" अर्थात् कल्पित भूतों को पूजने से भुतवा नाम जड़ाध्यासी होना पड़ेगा। भूत कहते हैं जड़ तत्त्व को, जो भूत पूजते हैं, वे पुनः-पुनः जड़ तत्त्वों का अध्यास धारण करके पशु-पक्षी तथा कृमि आदि दुःखमय खानियों में भ्रमते रहेंगे।

निर्णय-विवेक से भूत-प्रेत असिद्ध हैं। इसलिये सब नर-नारियों को चाहिये कि भूत का भ्रम बिल्कुल त्याग दें और अपने बाल-बच्चों को कभी भी कल्पित भूत-प्रेत का भय न देकर बल्कि समझा-बुझा कर भूत का भ्रम उनके मन से भगा देवें। ओझा-सोखा, नाउत-बैगा के पास कभी भी दुआ-भभूत झड़ाने नहीं जाना चाहिये और कल्पित भूत-प्रेत या

देवी-देवादि के नाम पर जीव-वध करना तो बड़ाभारी पाप है। इसको स्वयं त्यागना चाहिये और समझा-बुझाकर दूसरे से भी छुड़वाना चाहिये।

शिक्षासार—भूत-प्रेत, चुड़ैल, टोनही नट्टुवीर दानव, दैत्य, पिचाश, डाकिनी, शाकिनी, भैरव-भैरवी, बटुक, मशान, जिन्द, ब्रह्म, औघड़, बैताल, काली, दिउहार, बरहना, पीर, गाजीमियाँ, तकिया, महामाया, कालिका, दुर्गा, योगमाया, आदिशक्ति, जगदम्बा, शीतला, फूलमती-भवानी तथा देवी-देवादि—ये सब बिल्कुल असत्य हैं, मनुष्यों की कल्पना मात्र हैं। आकाश के फूल के समान मिथ्या हैं। अतः इन सब की मानन्दी, पूजा-अर्चा, झाड़-फूँक जीव-वध और मद्य-मांस भक्षणादि मनुष्य मात्र को सर्वथा त्याग देना चाहिये और विवेक शील सद्गुरु-सन्तों के सत्संग में लग कर अपना जीवन सुधार करना चाहिये।

भूत-खण्डन-पद

नहिं भूत-प्रेत की खानि कोई, मानव भाई क्यों भूले हो ॥टेक॥
यदि भूत-प्रेत जग में होते, तो क्यों न देखने में आते।
यह मन की एक भावना है, अपने अज्ञान में शूले हो ॥ १ ॥
नाउत ओझा बैगा सोखा, इनके जालों में फँसो नहीं।
भ्रम-भूत को दिल से दो खदेड़, क्यों भ्रममें पड़कर हूले हो॥ २ ॥
बकरी मुर्गी सूअर भेड़ा, जिन जीवों को तूने मारा।

उनका बदला देना होगा, क्यों माया में तुम फूले हो ॥३॥
नहिं भूत-प्रेत जग में होते, जो भूत मानते भूत सोई।
तजि भूत-भरम गुरु-भक्ति करो, अभिलाष तभी सुख मूले हो४॥

साखी—

आन देव को आस करि, मुख मेले मद मास।
जाके जन भोजन करे, निश्चय नरक निवास ॥
सौ वर्षहिं गुरु भक्ति करि, एक दिन पूजै आन।
सो अपराधी आतमा, परै चौरासी खान ॥
अवगुन कहूँ शराब का, ज्ञानवंत सुनि लेय।
मानुष सो पशुआ करै, द्रव्य गाँठि का देय ॥
काम हरकत बल घटै, तृष्ना नाहीं ठौर।
ढिग ह्वै बैठे दीन के, एक चिलम भर और ॥
गऊ जो विष्ठा भच्छई, विप्र तमाकू भङ्ग।
साधू शस्त्र जो बाँधई, यह कलियुग का अङ्ग ॥
भाँग तमाकू छूतरा, पर निन्दा पर नार।
कहैं कबीर इनको तजै, तब पावै दीदार ॥
हुक्का तो सोहै नहीं, हरिदासन के हाथ।
कहैं कबीर हुक्का गहै, ताकर छोड़ो साथ ॥
मुख में थूकन दे नहीं, मोहर कोइ जो देहि।
कहैं कबीर या चिलम को, जूठ जगत मुख लेहि ॥
काजल तजै न श्यामता, मुक्ता तजै न श्वेत।

दुर्जन तजै न कुटिलता, सज्जन तजै न हेत ॥
दुर्जन को करुणा बुरी, भलो सज्जन की त्रास ।
जरूर जब गरमी करै, तब बरसन की आस ॥
कछु कहि नीच न छेड़िये, भलो न वाको संग ।
पत्थर डारै कीच में उछलि बिगारे अंग ॥

शब्द—

हमारे मन जीव दया उर धारो ॥ टेक ॥
जब तुम दुख चाहत नहिं अपना, किमि दुख देत परारो।
सब स्वतन्त्र प्राणी कर्मन वश, केहि पर तव अधिकारो ॥ १ ॥
तुम हो मनुष सुजान सबल, सब भाँति समर्थ विचारो ।
पशु मृग मीन अण्ड खग निर्बल, दीन गरीब लचारो ॥ २ ॥
सबल को चही अबल की रक्षा, नहिं तेहि मारि अहारो ।
है धिक्कार जीभ के स्वारथ, बनत चील्ह बक स्यारो ॥ ३ ॥
मुर्दा देखि अशुचि घर मानत, खात न ताहि लजारो ।
अशमशान निज उदर बनावत, पापी नरक दुवारो ॥ ४ ॥
तृणभर पीर देहुगे काहू, सो बढ़ि व्याज पहारो ।
लोक और परलोक सुगति हौ, दुख अभिलाष अपारो ॥ ५ ॥
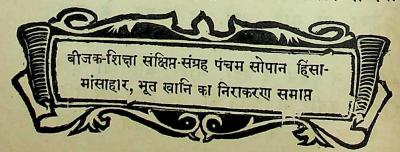
॥ सोपान-फल ॥

अब हिंसा का उठ गया राज।

नर, पशु, अण्डज, उष्मज सजीव,
इनको नहिं देता दुःख कीव।
सब चलते-फिरते जीव जन्तु,
मेरे स्वजाति सब मित्र बन्धु॥
छा गया अहिंसा का स्वराज ॥अब०॥१॥

यदि कोई को दुख दूँगा मैं,
कालान्तर में फल लूँगा मैं।
ऐसा विचार कर सावधान,
चलता सु-राह धरि शील ज्ञान॥
नहिं करता कोई का अकाज ॥अब०॥२॥

आमिष अहार मलवत् अभाव,
दुर्व्यसन नशा का गया चाव।
कल्पित देवी भ्रम-भूत पोल,
हिंसा अनीति की फुटी ढोल॥
सब शुद्धाचार विचार साज ॥अब०॥३॥

॥ षष्टम-सोपान-महिमा ॥

पारख स्वरूप का कर विचार ।

षट् भेद युक्त हैं चार तत्त्व,
इनसे है सृष्टि अनादि सत्त्व ।
कर्ता कल्पित जग का असिद्ध,
मानव का मानस-पुत्र सिद्ध ॥
नाना चेतन जड़ से निनार ॥पारख०॥१॥

जड़-चेतन सुख-दुख बन्ध-मुक्ति,
शुभ-अशुभ गमन-आगमन युक्ति ।
व्यापक अद्वैत ख-पुष्प न्याय,
नाना चेतन परत्यक्ष आय ॥
कर्ता मिश्रत का कर निवार ॥पारख०॥२॥
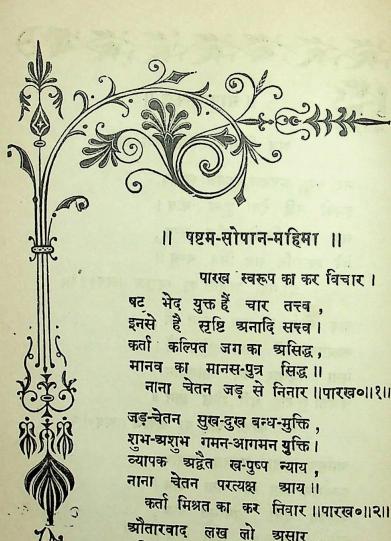
औतारवाद लख लो असार,
कल्पित भ्रम वाणी का पसार ।
उर में रमने वाला स्व-राम,
सद्गुरु कबीर का पथ ललाम ॥
सोपान-षष्ट भ्रम का विदार ॥पारख०॥३॥

सद्गुरवे नमः

बीजक-शिक्षा

(संक्षिप्त-संग्रह)

टीका-व्याख्या-शिक्षा युक्त

षष्टम् सोपान

भ्रम-निराकरण

५०—(रमैनी—३७)

एक सयान सयान न होई।
दुसर सयान न जाने कोई ॥ १ ॥
तीसर सयान सयानहिं खाई।
चौथे सयान तहाँ ले जाई ॥ २ ॥
पँचये सयान जो जानेउ कोई।
छठयें मा सब गयल बिगोई ॥ ३ ॥
सतयाँ सयान जो जानहु भाई।

लोक वेद मों देउँ देखाई ॥ ४ ॥

साखी—बीजक बित्त बतावै, जो बित गुप्ता होय ।
ऐसे शब्द बतावै जीव को, बूझै बिरला कोय ॥३७॥

माना हुआ एक अद्वैत ब्रह्म श्रेष्ठ-सत्य नहीं हो सकता। स्व-स्वरूप से भिन्न माया प्रेरक कर्ताईश्वर जो लोगों ने श्रेष्ठ माना है, उसे तो भूले लोग जानते नहीं कि मानव का मानस-पुत्र है ॥ १ ॥ त्रैतवाद के भ्रम ने इस चेतन को भ्रमा दिया है। चारों वेद भी उसी कल्पना में ले जाते हैं ॥ २ ॥ पञ्च विषय निर्मित इस शरीर को जो कोई सत्य और अपना स्वरूप मानता है, वह तो बिल्कुल भूला है। और छठयें मन के चक्र में पड़कर तो सब खराब हुए हैं ॥ ३ ॥ हे भाई ! सातवाँ जो निज चैतन्य पारख स्वरूप जीव है, यदि उसे कोई यथार्थ जानना चाहता है। तो मैं उसे लोक-वेद से स्वयं प्रत्यक्ष करा सकता हूँ ॥४॥

जो गुप्त धन होता है, उस धन को बीजक बतलाता है। इसी प्रकार निर्णय-शब्द जीव के यथार्थ स्वरूप का संकेत करता है, परन्तु उसे कोई बिरला ही समझता है ॥३७॥

व्याख्या—यहाँ श्रीकबीरसाहेब ने अन्य कल्पित सिद्धान्तों का निराकरण करके अपना सत्य पारख सिद्धान्त प्रतिपादन किया है। आप ने बतलाया कि एक अद्वैत ब्रह्म तो कदापि सत्य नहीं हो सकता। क्योंकि अद्वैत का प्रति-

पादन करने वाला जो भिन्न है, वही द्वैत है। इसके अतिरिक्त अपने चैतन्य पारख स्वरूप से भिन्न कोई जगत्-कर्ता माना जाय, तो वह भी उचित नहीं है। क्योंकि अगणित चैतन्य जीव नित्य, अनादि, स्वतःस्वतन्त्र अपने-अपने स्वरूप से भिन्न-भिन्न हैं। वे कर्म-वासना वश अनादि से प्रवाह रूप शरीर धरते-छोड़ते चले आ रहे हैं। और इन अगणित चैतन्य जीवों से सर्वथा और सर्वदा भिन्न पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु—ये चार तत्त्व हैं। पृथ्वी का कारण समूह भूमण्डल है, जल का कारण-समूह समुद्र है, अग्नि का कारण-समूह सूर्य है और वायु का कारण-समूह वातावरण है। इन चारों तत्त्वों में धर्म, गुण, क्रिया, शक्ति, मेल तथा आकार—ये छः भेद हैं। पृथ्वी का धर्म कठोर, जल का शीतल, अग्नि का गर्म और वायु का कोमल है। पृथ्वी का गुण गन्ध, जल का रस, अग्नि का रूप और वायु का शब्द तथा स्पर्श है। पृथ्वी-तत्त्व में क्रिया होने से कंकड़, पत्थर, झाड़, पहाड़ आदि बढ़ते-मिटते हैं। जल में अधोगमन-क्रिया है, अग्नि में ऊर्ध्वगमन है और वायु में तिरछी गमन-क्रिया है। पृथ्वी की शक्ति धारणा, जल की रसायना, अग्नि की दाह और वायु की स्नेहा-शक्ति है। चारों तत्त्व चारों तत्त्वों में परस्पर मिले हैं, इससे चारों में मेल है। पृथ्वी जल-स्थूलाकार और अग्नि-वायु सूक्ष्माकार हैं। इस प्रकार चार तत्त्वों में षट्-भेद होने से वृक्ष, वनस्पति, झाड़, पहाड़, सप्त-धातु, बादल-

वर्षा, बिजली-ताप और आँधी-बौड़र इत्यादि प्राकृतिक सृष्टि होती रहती है। और अगणित चैतन्य जीव अनादि से वासनावश होने से चारों खानि की सृष्टि होती रहती है। यह सृष्टि अनादि से है और अनन्त काल तक रहेगी। जो चेतन जीव नर-जन्म पाकर सत्संग, विवेक और वैराग्य द्वारा विजाति वासना त्याग कर स्व-स्वरूप में दृढ़ स्थित हो जायँगे। उनका सदैव के लिये मोक्ष हो जायगा। फिर वे जन्म-मरण संसार सृष्टि में नहीं आयेंगे। भूमण्डल सूर्य, चन्द्र तथा तारा गणादि ये भी अनादि नित्य पदार्थ हैं। इनकी न कभी उत्पत्ति हुई है और न प्रलय होगा।

इस यथार्थ निर्णय से जड़-चेतन दो वस्तु अनादि और अनन्त होने से सृष्टि प्रवाह रूप स्वयं अनादि है। इसके बनाने वाले की कल्पना करने की कोई आवश्यकता ही नहीं है। जो लोग जगत्-सृष्टि का आदि मानते हैं, उनसे मेरा पूछना है कि स्त्री-पुरुष, बीज-वृक्ष, कर्म-देह—इन सबों में से प्रथम कौन है? तो इसका कोई उत्तर नहीं है। प्रथम स्त्री मानिये तो बिना पुरुष के कैसे होगी? इसी प्रकार बिना स्त्री के पुरुष न होगा। अतः स्त्री-पुरुष दोनों के संबन्ध से सन्तान होता है। बीज से वृक्ष होता है वृक्ष से बीज होता है। फिर प्रथम किसे मानियेगा? इसी प्रकार कर्म से देह होती है और देहसे कर्म होता है। फिर एक को प्रथम कहना व्यर्थ है। अतः स्त्री-पुरुष कर्म-देह और बीज-वृक्ष का उभय

अनादि अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। इसलिये जगत् नित्य है, जड़-चेतन के अतिरिक्त इसका कारण-कर्ता कोई नहीं है। इस जड़-चेतन मय जगत् का यदि अन्य कारण-कर्ता माने, तो उस कारण-कर्ता का अन्य कौन कारण-कर्ता है? ऐसे ही शंका-पर-शंका करते-करते कारण-कर्ता के विषय में अनवस्था दोष उपस्थित होगा। अतएव किसी अन्य कारण-कर्ता की कल्पना को त्याग कर इस जड़-चेतन मय जगत् को स्वतः अकारण एवं अनादि मान लेने में सब भ्रम-कल्पनाओं का अन्त हो जाता है और युक्ति निर्णय से यही बात सत्य भी है कि जड़-चेतन मय यह जगत् उत्पत्ति-प्रलय रहित प्रवाह रूप अनादि है। अतः इसका अन्य कोई कारण-कर्ता नहीं है।

सब को यह ध्यान रखना चाहिये कि मैं जड़-देह नहीं हूँ, मैं इसका जानने वाला ज्ञान मात्र चैतन्य हूँ। इसी जीवन तक ही अपना अस्तित्त्व मानने वाले, शरीर-सुख और भोग विलास को ही जीवन लाभ समझने वाले लोगों की बड़ी अव-दशा होती है। वे सदैव मन-इन्द्रियों के गुलाम बने रहते हैं। इसके अतिरिक्त परमार्थी तो यह भली भाँति जानता है कि मैं जड़-देह नहीं हूँ, सत्य चैतन्य हूँ। मेरा अस्तित्त्व इसी जीवन तक नहीं है, मैं सदा से हूँ और सदा रहूँगा। मन-इन्द्रियों की चंचलता और भोग-वासनाओं को त्याग कर अपने आप नित्य चैतन्य स्वरूप में दृढ़ स्थित (शान्त) होना ही हमारा जीवन-लाभ है। अपने यथार्थ स्वरूप में स्थित

रहने वाले और अपनी सत्ता को नित्य स्वीकार करने वाले का कितना बड़ा महत्त्व है ?

मन, प्राण (श्वासा), वीर्य, तेज, रक्त, हृदय, मस्तिष्क—इत्यादि सब जड़ हैं। इन सबों का मैं चैतन्य ज्ञाता ज्ञान मात्र हूँ। इस प्रकार दृढ़ बोध प्राप्त कर मन की नाना कल्पनाओं से सर्वथा रहित हो जाना चाहिये। सब घटों में निवास करने वाला चेतन जीव ही सत्य पदार्थ है। यही स्त्री, पुत्र, घर, धन, जाति, पाँति, भोग पदार्थ रूप लोक और कर्ता-धर्ता देवी-देवादि प्रतिपादक वेद का कल्पना करने वाला है। पूर्वोक्त कल्पनायें असत्य हैं और कल्पना करने वाला चेतन मनुष्य सत्य है।

बड़े-बड़े धनाढ्य लोग धन को गुप्त रूप से गाड़ देते हैं। और उस धन का परिचय सांकेतिक शब्दों में किसी बही में लिख देते हैं। इसी को बीजक कहते हैं। यदि कोई चतुर मनुष्य रहता है, तो उन सांकेतिक शब्दों से विचार करके गड़े हुए गुप्त धन को खोज लेता है। इसके विषय में एक उदाहरण दिया जाता है।

एक गाँव में एक बड़ा धनाढ्य सेठ था। उस सेठ ने बहुत-से हीरे, रत्न, सोने-चाँदी इत्यादि धन को गुप्त रूप से गाड़ कर एक बीजक बनाकर उसमें सांकेतिक शब्दों में धन का परिचय लिख दिया। उस सेठ ने उस बीजक में लिखा—"मिती चैत्र सुदी पूर्णिमा के मध्यान्हकालीन साठ (६०)

फीट ऊँचे शिवालय के अन्तिमी-शिखर पर धन रखा गया है।" इस प्रकार बीजक बनाकर कुछ काल में सेठ परलोक सिधार गया। पश्चात् उसका लड़का जब बड़ा हुआ, वह बड़ा विषय-विलासी हुआ। फलतः कुछ ही दिनों में उसने घर का सारा धन जूआ, चौसर, वेश्यागमन, मद्यपान, अफीम, गाँजा, भाँग और नाना व्यसन तथा विषय-विलासों में समाप्त कर दिया। कुछ दिन में उसे खाने-कपड़े तक की तंगी आ गयी। एक दिन वह चारपाई पर पड़ा-पड़ा निर्धनता से अत्यन्त व्याकुल हो रहा था और मन-ही-मन धन का चिन्तन कर रहा था। इतने में वह लड़का एक एलेमारी से एक बही निकाला जो कि उसके पिता का बनाया हुआ धन-संकेतक बीजक था। उसने उस बही के पन्ने को उलटने लगा। इतने में उसे लिखा मिला—"मिती चैत्र सुदी पूर्णिमा के मध्यान्ह कालीन ६० फीट ऊँचे शिवालय के अन्तिमी-शिखर पर धन रखा गया है।" यह पढ़कर उसे बड़ा आनन्द हुआ और सोचा कि शिवालय के शिखर पर धन रखा ही है, अतः उसे तोड़वा कर धन निकालना चाहिये। ऐसा विचार कर उसने शिवालय का शिखर तोड़वाया, परन्तु धन न मिला। फिर उसने पूरे शिवालय को तोड़वा दिया, तो भी धन न मिला। पुनः उसने शिवा-लय के नीचे पृथ्वी खोदवाई, तो भी धन न मिला। इस-लिये शोकित होकर लड़का एक दिन अपने द्वार पर बैठा

था। एक सन्त मार्ग पकड़ कर कहीं जा रहे थे। इस लड़के ने सन्त को देखा और दौड़कर उन सन्त को अनुनय-विनय करके अपने द्वार पर ले आया और उनका सत्कार किया तथा अपनी दुःखमय कथा कहा। अपने दुराचरण, निर्धनता की प्राप्ति और बीजक में धन के सांकेतिक शब्द तथा धन-प्राप्ति की असफलता इत्यादि बातें लड़के ने सन्त से बतलाया। सन्त ने उसके पिता का बनाया हुआ बीजक हाथ में लेकर देखा, तो उन्होंने सोचा यदि सेठ शिवालय के शिखर पर धन रखता तो केवल इतना ही लिखता कि 'शिवालय के शिखर पर धन है।' परन्तु महीना-पक्ष-तिथि और शिवालय की ऊँचाई लिखने का कोई प्रयोजन नहीं था। इसलिये इसमें कोई अन्य गुप्त बात है। थोड़े समय तक विचारते-विचारते सन्त ने यथार्थ बात को शोध लिया और लड़के से कहा—यदि तुम यह प्रण करो कि अब से दुराचरण में अपना धन बल नहीं लगायेंगे और अपने समय, धन तथा बल का सदुपयोग करेंगे, अच्छे मार्ग से चलेंगे, तो मैं तुम्हारे धन को खोज दूँ। लड़के ने सन्त के पैरों पकड़कर कहा—महात्मन्! मैं अपने दुष्कर्तव्य का कुफल पा गया हूँ। अब मैं कभी भी दुराचरण नहीं करूँगा और अपने समय, शक्ति तथा सम्पत्ति का सदुपयोग करूँगा। सन्त ने कहा—अच्छा! जो तुमने शिवालय तोड़वा दिया है, उसे उसी प्रकार उसी नींवपर ६० फीट ऊँचा बनवा दो। चैत्र शुदी पूर्णिमा तक

बनवाकर तैयार रखना चाहिये। मैं चैत्र सुदी पूर्णिमा को तुम्हारे यहाँ आऊँगा। ऐसा कहकर सन्त चले गये। पश्चात् उस लड़के ने रुपया कर्ज लेकर और अपनी जगह जमीन बेंच-बेंच कर पहले के समान उसी नींव पर ६० फीट ऊँचा शिवालय बनवाया। अपने प्रतिज्ञानुसार मिती चैत्र सुदी पूर्णिमा को सन्त आ गये और लड़के से कहा कि कई मजदूर इकट्ठा करके ठीक रखो, मध्याह्नकाल (दोपहर) आने पर धन की खुदाई की जायगी। मजदूर इकट्ठा किये गये और दोपहर का समय जब आया, तब शिवालय के अन्तिमी-शिखर की परिछाहीं जहाँ पृथ्वी पर पड़ी, सन्त ने कहा—यहीं धन है, यहीं खुदवाइये। अतः वहाँ धन खोदा जाने लगा। कुछ तह मिट्टी के खोदने पर एक पत्थर का शिला मिला और उस शिला को हटाते ही एक बड़ा विशाल धन का खजाना निकल आया और लड़का सारा धन अपने घर ले जाकर पूरा सेठ हो गया।

चैत्र महीने, शुक्ल पक्ष, पूर्णिमा तिथि के दोपहर काल के ६० फीट ऊँचे शिवालय की परिछाहीं जहाँ पृथ्वी पर थी, वहीं धन था। महीना, पक्ष, तिथि आदि बीजक में लिखने का सेठ का यही तात्पर्य था कि हर महीने, पक्ष, दिन में सूर्य के उत्तरायण-दक्षिणायण होने से परिछाहीं भी अन्य-अन्य जगह घूमती रहती है। प्रातःकाल और सायंकाल

की परिछाहीं बहुत दूर चली जाती है और दोपहर की परिछाहीं निकट आ जाती है। शिवालय की ६० फीट ऊँचाई लिखने का यही तात्पर्य था कि यदि संयोग वश शिवालय गिर पड़े तो भी बीजक पढ़ने वाले यह जान जायँ कि पूर्वोक्त मास, पक्ष, तिथि और काल के अनुरूप इस स्थल के ६० फीट ऊँचाई की परिछाहीं पर धन है। इत्यादि।

इसी प्रकार माने हुए पञ्च कोश, पञ्च देह, पञ्च विषयासक्ति आदि के आवरणों से ढका हुआ यह अपना पारख स्वरूप चैतन्य जीव अत्यन्त गुप्त है। इस चैतन्य जीव के परिचायक बीजक में अनेक सांकेतिक शब्द सद्गुरु श्रीकबीर-साहेब ने रखा है। आपने कल्पित वादों के निराकरण के और ज़ीव वाद प्रतिपादन के अनेकों शब्द कहा है। जैसे कल्पित वादों के निराकरण में—

कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो, राम न कहँ खुदाई। (शब्द१०)
ज्योतिहिं ज्योति ज्योति जो कहिये ज्योति कौन सहिदानी।
(शब्द–९४)
जो पै बीज रूप भगवान्। (शब्द–६७)
पहले भूले ब्रह्म अखण्डित झाँई आपुहिं मानी। (शब्द–११५)

इस प्रकार अनेकों निराकरण के प्रसंग भरे हुए हैं।

जीव वाद के प्रतिपादन में—

एक जीव कित कहौं बखानी। (रमैनी–१)

ऐसे शब्द बतावे जीव को । (रमैनी-३७)
जो जानो जिव आपना करहु जीव को सार । (साखी-१०)
जो जानो जग जीवना । जो जानहु सो जीव ।(साखी-११)
पारस रूपी जीव है । (साखी-५७)

इत्यादि अनेकों वाक्य प्रसंग है ।

इस बीजक ग्रन्थ द्वारा पारख स्वरूप चैतन्य जीव का यथार्थ बोध तभी होगा । जब पारखी सन्त से इस ग्रन्थ को पढ़ा जाय । अन्यथा जैसे सेठ के बीजक में सांकेतिक शब्द लिखे थे, जिससे लड़का नहीं समझ सका कि धन कहाँ है ? फिर अनुभवी सन्त ने बताया । इसी प्रकार इस बीजक ग्रन्थ के पद अत्यन्त गूढ़ हैं और इस ग्रन्थ के नाना प्रसंगों में नाना मतों का निराकरण की दृष्टि से वर्णन है । इसमें जीव मुख,माय मुख, ब्रह्ममुख और गुरुमुख ये चार प्रकार की वाणियों का वर्णन है । तीन मुख के वाणियों के सिद्धान्तों को परख कर और त्याग कर केवल गुरुमुख ही ग्रहण करने योग्य है। इसके विषय में आपने बताया है । "पारखी से संग करु, गुरुमुख शब्द विचार । (साखी-८२) केवल गुरुमुख ही शब्द विचारने (ग्रहण करने) को कहा है । और आप ने कहा है—

वस्तू अन्तै खोजै अन्तै, क्योंकर आवै हाथ ।
सज्जन सोई सराहिये, जो पारख राखै साथ।। (साखी-२४६)

श्रीकबीरसाहेब का बीजक-प्रतिपादित जो मत है, वह सर्व भासवादों से भिन्न अंश-अंशी, व्याप्य-व्यापक भाव रहित अपना शुद्ध पारख चैतन्य स्वरूप जीव है। जो भाई पारखी सन्तों से सत्संग न करके और पारखी सन्तों से बीजक का मर्म न जानकर बीजक का मनमाना अर्थ लगाते हैं और नाना मत वादों में इस बीजक मत को मिलाकर "लपसी लवँग गने यक सारा" का भाव चरितार्थ करते हैं, वे ठीक नहीं करते हैं। सब भ्रम को शमन करके बीजक मत को समझने के लिये श्रीकबीरसाहेब ने स्वयं नियम बतलाया है—

जिभ्या केरे बन्द दे, बहु बोलन निरुवार।
पारखी से संग करु, गुरुमुख शब्द विचार ॥(साखी८२)

भूल मिटै गुरु मिलै पारखी, पारख देहि लखाई।
कहहिं कबीर भूल की औषध, पारख सब की भाई ॥
(शब्द–११५)

प्रिय बन्धु सज्जनों और विवेकवानों से निवेदन है कि ऊपर की पंक्तियों पर निर्मान, निष्पक्ष हो गम्भीर विवेक करें।

शिक्षासार— अद्वैत, द्वैत, विशिष्टाद्वैत, लोक-वेद, खानी-वाणी इन सबों का द्रष्टा-साक्षी और कल्पक जो अपना पारख स्वरूप चैतन्य जीव है, वही सत्य, नित्य और अपना स्थित पद है। यही श्रीकबीरसाहेब का मूल सिद्धान्त है।

५१—(शब्द—६७)

जो पै बीज रूप भगवान।
तो पण्डित का पूछो आन ॥१॥
कहाँ मन कहाँ बुद्धि कहाँ हंकार।
सत रज तम गुण तीन प्रकार ॥२॥
विष अमृत फल फलै अनेका।
बहुधा वेद कहे तरबेका ॥३॥
कहहिं कबीर तै मैं क्या जान।
को धौं छूटल को अरुझान ॥४॥

यदि सब जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण एक परब्रह्मपरमात्मा ही है, तो ऐ ब्रह्म वेत्ताओ ! अन्य बातें क्या पूछते हो ? ॥१॥ मन, चित,बुद्धि एवं अहंकार रूप अन्तः-करण किसमें भासते हैं ? तीन भाँति के गुण सत, रज और तम ये भी अद्वैत ब्रह्म में कहाँ सम्भवेंगे ? ॥ २ ॥ जीवों के शुभाशुभ कर्मों से दुःख-सुख रूपी अनेकों फल फलते हैं। संसार के दुःख-सुख से तरने के लिये वेद बहुत प्रकार से कहता है। यह अद्वैत ब्रह्म में कहाँ उचित है ? ॥ ३ ॥ सद्गुरु श्री-कबीरसाहेब कहते हैं—हे ब्रह्मवादियो ! अद्वैत सिद्धान्त में तू-मैं क्या जानते हो ? कौन मुक्त होता है और कौन बन्धन में पड़ता है ? ॥ ४ ॥

व्याख्या—अद्वैत ब्रह्मवादी कहते हैं कि एक ब्रह्म ही सत्य सर्वत्र व्यापक है और उसी का विकार या लहर जगत् है। जगत् का उपादान कारण ब्रह्म है। जैसे घड़े का उपादान कारण मिट्टी है। जैसे कंगन, कंठा, कुण्डल का उपादान कारण स्वर्ण है। जैसे लहर, फेन और तरंग का उपादान कारण जल है। तैसे सारे जड़-चेतन मय जगत् का उपादान कारण ब्रह्म है। विचार करके देखिये ! मिट्टी और घट में क्या अन्तर है ? कंगन, कंठा, कुण्डल और स्वर्ण में क्या अन्तर है ? लहर, फेन, तरंग और जल में क्या अन्तर है ? अर्थात् कुछ नहीं। फिर इसी प्रकार जगत्-ब्रह्म में कुछ भेद न रहा। इस न्याय से जगत् रूपी विकार का मूल-अधिष्ठान ब्रह्म ही ठहरा। अत-एव उसी विकारी ब्रह्म में स्थित होकर मोक्ष चाहना अपनी भूल का परिचय देना है।

मिट्टी, सोना और जल ये सब अनेक परमाणुओं के समूह रहते हैं, तब उनमें घड़ा कंगन और तरंगादि बनते हैं। यदि मिट्टी, सोना और जल आदि परमाणु समूह न हों, एक अखण्ड ठोस हों, तो घड़ा, कंगन और तरंगादि बन ही नहीं सकते। अब यह प्रश्न उठता है कि ब्रह्म एक ठोस अखण्ड पदार्थ है कि परमाणुओं का समूह है ? यदि ब्रह्म अखण्ड एक है, तो उससे कुछ भी नहीं बन सकता और यदि ब्रह्म परमाणु का समूह है, तो ब्रह्म अद्वैत अखण्ड न ठहरा।

घड़ा देख पड़े और मिट्टी न देख पड़े, कंगन, कुण्डलादि

देख पड़ें और स्वर्ण न देख पड़े तथा लहर-तरंग देख पड़ें—और जल न देखपड़े यह बड़ा अन्धेर है। तैसे कार्य-जगत् तो दिखलाई पड़ता है और कारण-ब्रह्म किसी को प्रत्यक्ष ही नहीं होता है। फिर भी उसके पीछे बड़े-बड़े विद्वान् हैरान हैं। क्या आश्चर्य है ? ब्रह्म या ईश्वर निराकार है या साकार ? यदि साकार है, तो प्रत्यक्ष क्यों नहीं होता ? और यदि निराकार है, तो निराकार का अर्थ क्या है ? यदि कहिये आकार रहित शून्य। तो फिर शून्य किसे कहते हैं ? यदि कहिये कुछ नहीं को। तो क्या ब्रह्म या ईश्वर कुछ नहीं है ? यदि कहिये वह गोचर रहित चेतन है, इसलिये नहीं दिखता, तो उसको जड़-जगत् का उपादान मानना व्यर्थ है और जब वह चेतन है, तो उसे निराकार कहना भी अयुक्त है। क्योंकि निराकार शून्य को कहा जाता है। चेतन चर्म चक्षु से नहीं दीखता, परन्तु है पदार्थ ही।

ब्रह्म व्यापक भी नहीं सिद्ध हो सकता। क्योंकि यदि ब्रह्म साकार हो, तो साकार वस्तु व्यापक नहीं होती। क्योंकि साकार वस्तु की कहीं सीमा अवश्य होती है। और यदि ब्रह्म निराकार मानिये, तो भी व्मापक नहीं हो सकता। क्योंकि निराकार, शून्यआकाश, जड़-तत्वों के अखण्ड परमाणुओं में और अखण्ड चेतन जीवों में नहीं घुस

सकता। फिर निराकार का भी व्यापक होना खण्डन हो जाता है। अतः व्यापक कोई वस्तु ही नहीं होती है। इसलिये ब्रह्म न अद्वैत है, न निराकार है और न व्यापक है, यह केवल मन का स्वप्न है। चेतन जीव ही भिन्न-भिन्न अविनाशी पदार्थ हैं और इनसे पृथक् पृथ्वी आदि चार तत्त्व भी नित्य पदार्थ हैं। इनके ऊपर कुछ नहीं।

जितना प्रमाण लेकर ब्रह्म को अद्वैत सिद्ध किया जायगा, वह सब प्रमाण द्वैत का होगा। क्योंकि प्रमाण प्रमेय एक नहीं होते। बल्कि सदा भिन्न-भिन्न रहते हैं। अतएव अद्वैत भ्रान्ति मूलक है। अद्वैत ब्रह्म किस प्रमाण से मानते हैं ? क्योंकि प्रत्यक्ष ही नाना चेतन अपने-अपने कर्म फलों को भिन्न--भिन्न भोग रहे हैं। चार तत्त्वों के अनन्त परमाणु, और अनेकों परमाणु-समूह अनेकों कार्य पदार्थ, तथा अगणित चेतन प्रत्यक्ष होने से अद्वैत किसी प्रकार नहीं सम्भवता। यदि कहिये वेद और उपनिषदों में अद्वैत प्रमाण है, इसलिये मैं अद्वैत मानता हूँ। तो यह बतलाइये ! वेद जगत् के भीतर हैं या जगत् के बाहर ? यदि कहिये जगत् के भीतर ही वेद हैं। तो जगत् मिथ्या होने से वेद भी मिथ्या हो गये। फिर मिथ्या वेद का प्रमाण माना नहीं जा सकता। यदि कहिये जगत् से वेद पृथक् हैं, तो एक ब्रह्म दूसरा वेद (दोनों) सत्य होने से अद्वैत ना रहा।

अद्वैत मत का प्रचार किसमें किया जाता है, जब द्वैत नहीं है ? वेदादिक ग्रन्थ बनाना, उपदेश करना, गुरु-शिष्य बन्ध-मोक्ष निश्चय करना अद्वैत ब्रह्म में कहाँ सम्भव है ? जैसे आकाश का प्रतिबिम्ब सब घट-जलों-में पड़ता है। तैसे सर्वत्र व्यापक ब्रह्म का प्रतिबिम्ब सब अन्तःकरणों में पड़ता है, वही अन्तःकरण में पड़ा हुआ ब्रह्म का प्रतिबिम्ब ही जीव है—यह अद्वैत वादियों का न्याय है। इस न्याय से तो ऐसा सिद्ध होता है कि अन्तःकरण जहाँ-जहाँ खिसक कर जाता होगा। वहाँ-वहाँ का ब्रह्म अज्ञानी होता जाता होगा और जहाँ-जहाँ अन्तःकरण नहीं रहता होगा, वहाँ-वहाँ का ब्रह्म ज्ञानी रहता होगा। यहाँ पर अद्वैत ब्रह्मवादी भाई से निवेदन है कि आप यह बतलाइये कि आप ब्रह्म हैं या जीव। यदि आप कहें कि जीव तो मिथ्या है, मैं ब्रह्म हूँ। तब तो आप ब्रह्म होने से आप का अज्ञान कभी भी नहीं जा सकता। क्योंकि यदि पुरुषार्थ करके आप एक अन्तःकरण को नाश कर देंगे, तो चार खानि के अनन्त अन्तःकरण बने ही हैं, फिर वे अनन्त अन्तःकरण आप व्यापक ब्रह्म में अज्ञान के कारण बने ही रहेंगे। अतः आप का अज्ञान कदाचित् तभी छूट सकता है, जब आप सब अन्तःकरणों को नाश करदें। इसके अतिरिक्त आप का अज्ञान और दुःख कभी भी नहीं छूट सकता, क्योंकि जगत्-विकार का रोग आप अद्वैत ब्रह्म में स्वाभाविक है। आप ब्रह्म समुद्रमें जगत् लहर सदैव उठता ही

रहेगा। अतः आप सदैव दुःख के पात्र बने रहेंगे।

आप कहते हैं ब्रह्म स्वजाति, विजाति और स्वगत भेद रहित है। यह बिल्कुल असिद्ध हो जाता है। आप सब धर्म-वैराग्य का प्रचार करके सबका उद्धार चाहते हैं। इससे आप को निश्चय है कि हमारे समान अन्य भी चेतन प्राणी हैं, अतः स्वजाति भेद हो गया। जड़-चेतन, बन्ध-मोक्ष और ज्ञान-अज्ञान प्रत्यक्ष होने से विजाति भेद हो गया और एक ब्रह्म में अनेक लहर होने से स्वगत भेद हो गया, फिर अद्वैत न रहा।

संयोग-वियोग, लेना-देना, सुख-दुःख आदि अद्वैत ब्रह्म में कैसे हो सकता है? यदि कहिये यह सब व्यावहारिक सत्ता और प्रातिभासिक सत्ता का खेल है, पारमार्थिक सत्ता एक अद्वैत ब्रह्म में कुछ नहीं है, तो यह तीन सत्ता के होने से ही अद्वैत खण्डन हो गया। यदि कहिये वेद बाह्य शंका नहीं करनी चाहिये, तो वेद ही में कहीं अद्वैत मण्डन है, तो कहीं अगणित जीवों को अविनाशी माना गया है। इससे यह शंका वेद बाह्य नहीं है और यदि कहिये यह शंका वेद बाह्य ही है। तो सुनिये! एक वेद, दूसरी वेद बाह्य शंका, तीसरा शंकावादी, चौथा अद्वैतवादी और पाँचवाँ ब्रह्म, यह सब मिलकर कई होने से अद्वैत का खण्डन हो गया। यदि कहिये आप अद्वैत न मानने से अवैदिक हैं। अतः मैं आप से नहीं बोलना चाहता। तो फिर भी सुनिये! एक मैं

अवैदिक, दूसरे आप वैदिक और तीसरे ब्रह्म के होने से भी अद्वैत खण्डन हो गया। इसके अतिरिक्त जब भिन्न-भिन्न चेतन जीवों को वेद में भी अविनाशी होने का प्रतिपादन है, तब मैं अवैदिक कैसे हुआ ?

मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार एवं चतुष्टय अन्तःकरण कैसे बने ? इनको कौन किस हेतु सिद्ध करे ? सत, रज और तम मनुष्यों में इन तीन गुणों की भिन्नता क्यों है ? एक ब्रह्म में यह सब प्रपंच कहाँ से आ गया ? जब ब्रह्म के अतिरिक्त अविनाशी जीव आदि कोइ सत्य वस्तु नहीं मानते हो। फिर कालान्तर में कामों का भोग किसे होता है ? यहि कहिये अन्तःकरण को होता है। तो अन्तःकरण तो जड़ है, उसे चेतन जीव रहित ज्ञान कैसे होगा ? यदि कहिये चेतन ब्रह्म का प्रतिविम्ब अन्तःकरण में पड़ने से अन्तःकरण को ज्ञान होता है, तो प्रतिविम्ब भी तो जड़ है। प्रतिविम्ब तो सापेक्षिक है, जैसे सूर्य, वृक्ष आदि पृथक् रहते हैं, उन दोनों में देश की दूरी रहती है, तब उसकी छाया भिन्न जल थल आदि में पड़ने से प्रतिविम्ब होता है। यदि सर्वत्र सूर्य-ही-सूर्य या वृक्ष-ही-वृक्ष एक ठोस पूर्ण हो, तो भिन्न कुछ न होने से और देश की दूरी न होने से सूर्य-वृक्ष आदि का प्रतिविम्ब कहाँ पड़ेगा ? तैसे जब ब्रह्म एक अखण्ड सर्वत्र वही-वह है। फिर उसका प्रतिविम्ब किस भिन्न वस्तु पर पड़ता है ? अतएव ब्रह्म को अद्वैत सिद्ध करने के लिये जितने प्रमाण

दिये जायँगे, वे सब द्वैत के होंगे। इसलिये अद्वैत स्वतः खण्डन होता जायगा।

वेद मोक्ष के लिये उपदेश करता है। तो यह प्रश्न उठता है कि मोक्ष कौन होगा और किससे मोक्ष होगा ? यदि कहिये जगत् से मोक्ष होगा। तो जगत्-ब्रह्म में भेद नहीं है। फिर ब्रह्म मानन्दी को लिये-लिये जगत् का त्याग कैसे होगा ? अतः यदि आप को मोक्ष होना है, तो जगत्-ब्रह्म दोनों का त्याग करना पड़ेगा। क्योंकि ये दोनों अभेद हैं।

भेदवादी, अभेदवादी, वेदवादी, अवेदवादी, ज्ञानी और अज्ञानी—यह सब अद्वैत मत में कहाँ सम्भवता है ? मोक्ष कौन होता है और बन्धन में कौन पड़ा है ? जब एक ही अद्वैत है। मुक्त होगा तो किससे और मुक्त होकर रहेगा तो कहाँ ? सब ब्रह्मवादियों ने यद्यपि अद्वैत कथन किया। परन्तु द्वैत का भास किसी का न मिटा। सबको द्वैत भासता है। क्योंकि सत्य बात को कोई लोप कैसे कर सकता है ? जब प्रत्यक्ष जड़-चेतन हैं, तब अद्वैत कहाँ ? अतएव जीव भिन्न-भिन्न अविनाशी हैं, जीव ही सत्य हैं। अद्वैत ब्रह्म का सिद्धान्त सर्वथा असंगत है।

साखी—मृग तृष्णा का तोय अरु, बाँझ पुत्र को न्याय।
अस विचार वेदान्त का, अन्त कछु न लखाय ॥ त्रिज्या ॥

जीव विना नहिं आत्मा, जीव विना नहीं ब्रह्म।
जीव विना शीवो नहीं, जीव विना सब भर्म॥ क०प०।

कोई-कोई कहते हैं कि अद्वैत माने विना भय नहीं छूटता और सब में यथार्थ प्रेम नहीं होता। तो सब अन्य प्राणी माने गये और उनमें से प्रेम करना माना गया। तो द्वैत भास है ही, फिर भय भी कैसे छूटेगा? "हम चेतन जीव हैं, हमारे समान सब चेतन भिन्न-भिन्न हैं। किसी को हमें कष्ट नहीं देना चाहिये। क्योंकि उन्हें भी हमारे समान कष्ट होता है। और हम दूसरे को कष्ट देंगे, तो हमें भी कष्ट मिलेगा। हमें अपने कर्म ही से सुख-दुःख होते हैं और हमारे दुःख-सुख का मुख्य कारण अन्य कोई नहीं है। मैं चेतन नित्य तृप्त, नित्य सन्तुष्ट, निराधार और पूर्ण काम हूँ। मन-मानन्दी से जगत्-ज्ञान है। अतः मन-मानन्दी और शरीर-सम्बन्ध से मुक्त होने पर जगत्-ज्ञान रहित मैं नित्य शान्त हूँ।" इस ज्ञान से रागद्वेष और भय का नाश अवश्य हो जायगा। यह चेतन जीव अनादिकाल से सब मत-पथ में भ्रमता रहता है। किसी मत से इसका मुख्य सम्बन्ध नहीं है। अतः इस न्याय से किसी मत के पक्ष में नहीं पड़ना चाहिये। सत्य निर्णय, सत्संग करके यथार्थ सिद्धान्त मानना चाहिये और अपना अल्याण करना चाहिये। सज्जन भाइयों और विवेकियों से नम्र-निवेदन है कि पूर्वोक्त निर्णय पर कृपा पूर्वक गम्भीर विचार करें।

शिक्षासार—अद्वैत ब्रह्मवाद खण्डनीय है, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ये चार जड़ तत्त्व तथा अगणित अविनाशी चेतन जीव ये पाँच पदार्थ स्वतः अनादि तथा अनन्त (नित्य) हैं।

५२—(शब्द—११५)

सन्तो ऐसी भूल जग माही।
जाते जीव मिथ्या में जाहीं ॥१॥
पहले भूले ब्रह्म अखण्डित।
झाँई आपुहि मानी ॥२॥
झाँई में भूलत इच्छा कीन्ही।
इच्छा ते अभिमानी ॥३॥
अभिमानी कर्ता ह्वै बैठे।
नाना ग्रन्थ चलाय ॥४॥
वही भूल में सब जग भूला।
भूल का मर्म न पाया ॥५॥
लख चौरासी भूल ते कहिये।
भूल ते जग बिटमाया ॥६॥
जो है सनातन सोई भूला।
अब सो भूलहि खाया ॥७॥
भूल मिटै गुरु मिलैं पारखी।

पारख देहिं लखाई ॥८॥
कहहिं कबीर भूल की औषध।
पारख सब की भाई ॥९॥

ऐ सन्तो ! संसार में ऐसी भूल है, कि जिससे जीव असत्य मानन्दी में डूब जाता है ॥ १ ॥ पहले पहल अधिक वाणी जाल में वही मनुष्य जीव भूला जो अपनी कल्पना कृत प्रतिविम्ब को अखण्ड अद्वैत ब्रह्म माना ॥ २ ॥ ब्रह्म अद्वैत सरूप अपने कल्पित प्रतिविम्ब में भूलते ही "एकोऽहं बहुस्यां प्रजायेयेति" की इच्छा किया। और ऐसी इच्छा करते ही ऐसा अभिमानी हो गया कि मैं ही स्थावर-जंगम सब कुछ हूँ—कहने लगा ।।३।। इस प्रकार अभिमानी होते ही सर्व जगत् का कर्ता-कारण हो बैठा और कहने लगा कि जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण केवल ब्रह्म है और वह ब्रह्म मैं ही हूँ। फिर तो वेद-उपनिषदादि नाना ग्रन्थों का निर्माण किया ॥ ४ ॥ इसी ब्रह्मवाद रूपी भूल में सब जगजीव भूल गये। परन्तु इस भूल का भेद न पाये ॥ ५ ॥ स्वरूप की भूल से ही खानी-वाणी में लक्ष्य देकर अनादि काल से जीव चौरासी को प्राप्त है। और भूल से ही खानी-वाणी और जन्म-मरण रूप जगत् जाल इसने विटमाया अर्थात् पुष्ट किया है ।।६।। सनातन पुराण पुरुष जो चैतन्य जीव है, वही अनादि से भूला है। वर्तमान में भी वही भल

सनातन जीव को भ्रमा रही है ॥ ७ ॥ यह भूल मिटेगी अवश्य, परन्तु जब पारखी गुरु मिल जायँगे। और पारख का भलीभाँति परिचय करा देंगे ॥ ८ ॥ सद्गुरु श्रीकबीर साहेब कहते हैं—हे भाई! सब जीवों के हित स्वरूप भूल रूपी रोग मिटाने के लिये पारख ज्ञान ही संजीवनी के समान महान औषध है ॥९॥

व्याख्या— भूल की महिमा बड़ी प्रबल है, संसार में ऐसी भूल है कि लोग मिथ्या पदार्थों को अपना रूप मान कर अपने अविनाशी चेतन स्वरूप के अस्तित्त्व को खो बैठते हैं। जीव अनादिकाल से भूला ही है, परन्तु अपने मन की नवीन-नवीन कल्पनाओं में यह अधिक-अधिक बँधता जाता है। जीव चाहता है सुख और इसे बारम्बार मिलता है दुःख, अपने कर्म फल भोगों और विजाति दुःख रूप जड़ ग्रन्थि को दुःख का भेद न जान कर यह कल्पना करने लगा कि 'हमारा कोई सुख-दुःख का दाता अन्य है।'

अथवा बीज-वृक्ष अनुसार जीव के कर्मानुसार कर्म से देह और देह से कर्म होते हैं और कर्म-वासना वश यह जीव स्वयं चारों खानियों में भ्रमता रहता है। इस प्रकार जड़ तत्त्व युक्त चैतन्यात्मक सृष्टि है। और अनादि स्वतः पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु—इन चार जड़ तत्त्वों में धर्म, गुण, क्रिया, शक्ति, आकार और मिलाप रूप षट्-भेद स्वयं सिद्ध अनादि

हैं, क्योंकि तत्त्व अनादि होने से उसके षट्-भेद भी अनादि हैं और भूमण्डल, वातावरण, सूर्य, चन्द्र तथा तारागणादि सब उत्पत्ति-प्रलय रहित निराधार अनादि सद्वस्तु हैं। इन तत्त्वों और ब्रह्माण्डों में क्रियादि षट्-भेद होने से षट् ऋतु का परिवर्तन होना, वर्षा, बादल, बर्फ, नदी, तरंग का बनना। वृक्ष, वनस्पति, सोना-चाँदी आदि सप्त धातु, पर्वत, कंकड़-पत्थर और आँधी, बौड़र एवं बिजली, गैस इत्यादि का बनना अर्थात् केवल जड़ात्मक प्राकृतिक सृष्टि प्रवाह रूप अनादि तत्त्वों के षट्-भेदों से और ब्राह्माण्डिक क्रियाओं से होती रहती है। इस प्रकार अन्य कारण-कर्त्ता रहित जड़ चैतन्यात्मक सृष्टि को प्रवाह रूप अनादि न जान कर जीव को यह अनुमान हुआ कि इस जगत् का कोई बनाने वाला कर्ता अवश्य होगा।

अतएव इन कारणों से यथार्थ ज्ञान से रहित मनुष्य जीव कर्ता (ईश्वर) की खोज करते-करते जब थक गया और उसे न पाया। तब अन्य कर्ता-ईश्वर की कल्पना त्याग कर इसने अपने मन में भावना करना आरम्भ किया कि जो कुछ स्थावर-जंगम (जड़-चेतन) है, वह सब एक ब्रह्म ही है। फिर इस मनोमय अद्वैत ब्रह्म रूप अपने कल्पित प्रतिबिम्ब को ही अपना स्वरूप मानलिया। तब कहने लगा—"मैं ही सब कुछ हूँ। सूर्य, चन्द्र, तारागण तथा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं समग्र संसार मेरा लहर है, मेरे से ही संसार की सत्ता

भासती है। मुझ अद्वैत ब्रह्ममें ही स्वप्नके समान संसार चित्रित है। जैसे सीपी में चाँदी, रज्जू में रस्सी और धूप की लहरियों में जल की भ्रान्ति होती है। तैसे मुझ अद्वैत ब्रह्म में यह स्थावर-जंगम जगत् का भास होता है। सब का अधिष्ठान मैं ही हूँ। जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण केवल मैं अद्वैत ब्रह्म हूँ।" इस प्रकार मानकर महान अहंकार की मूर्ति और जगत्-रोग का अधिष्ठान (मनोराज्यमात्र) कल्पित व्यापक अद्वैत ब्रह्म बनकर अपने अखण्ड शुद्ध चैतन्य पारख स्वरूप को यह जीव भूला ही रहा।

इस प्रकार कल्पित अद्वैत ब्रह्म बनकर इस जीव ने कर्ता और अद्वैत ब्रह्म प्रतिपादक वेद, उपनिषदादि नाना ग्रन्थों का निर्माण किया और उन वाणियों को पढ़-सुन कर सारे संसार के जीव अधिक-अधिक वाणी जाल में भूलते ही गये। किन्तु इस भूल का भेद न पाया। गोस्वामी श्री तुलसीदास जी महाराज कहते हैं—

जड़ चेतनहिं ग्रन्थि परि गई। यदपि मृषा छूटत कठिनई।
श्रुति पुराण बहु कह्यो उपाई। छूट न अधिक अधिक अरुझाई॥
(रामायण)

भूल वश ही यह जीव मनुष्य, पशु, अण्डज और उष्मज इन चार खानियों में भ्रमता है। अज्ञान से विषयभोग और वाणी जाल को बारम्बार दृढ करता रहता है। यह

अविनाशी जीव सदा से भूला है। वही भूल आज भी भ्रमा रही है।

आजकल लोग जड़वाद में अधिक भूल रहे हैं। "कोई कहता है, देह-इन्द्रिय ही सत्य है और यही अपना स्वरूप है। कोई कहता है, वीर्य, तेज, प्राण (श्वास) तथा शून्य ही सत्य है और यही अपना स्वरूप है। कोई कहता है, पृथ्वी आदि तत्त्व ही सत्य हैं, इन्हीं से सृष्टि है और यही अपना स्वरूप है" परन्तु यह सब महान् भूल है। क्योंकि जड़ देह-इन्द्रियाँ जीव के कर्मानुसार प्रवाह रूप से बनती-बिगड़ती रहती हैं। देह-इन्द्रियाँ जड़ यन्त्र हैं और उसका चलाने वाला यन्त्री चेतन है। वह चेतन हम-आप ही हैं। इसके समझने के लिये ऐसा उदाहरण है कि किसी एक मनुष्य ने किसी शब्द को सुना, दूसरे मनुष्य ने किसी वस्तु का स्पर्श किया, तीसरे मनुष्य ने किसी रूप को देखा, चौथे मनुष्य ने किसी रस को चखा और पाँचवे मनुष्य ने किसी सुगन्ध को सूँघा। तो इन पाँचों मनुष्यों के भोगे हुए पाँचों विषयों का आनन्द एक छठा मनुष्य नहीं जान सकता है और न उन पञ्च विषयों के आनन्द को मनन ही कर सकता है। क्योंकि वहाँ पाँचों विषयों को भोगने वाले पाँचों मनुष्य भिन्न-भिन्न स्वतन्त्र हैं। ऐसी बात यहाँ देह-इन्द्रियों में नहीं है। पाँच ज्ञान-इन्द्रियाँ कान, चाम, आँख, जीभ और नाक द्वारा भोगे गये क्रम से शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध इन पाँचों विषयों का अनु-

भव मन द्वारा जीव करता है। ये इन्द्रियाँ जड़-मशीन के तुल्य हैं और जीव उन पर स्वतन्त्र है। स्वतन्त्रता पूर्वक जब जिस इन्द्रिय को चलाने की आवश्यकता को समझता है, तब तिस इन्द्रिय को चलाता है। देखने की इच्छा से आँख खोलता, चलने की इच्छा से पैर उठाता और कुछ उठाने या स्पर्श करने की इच्छा से हाथ फैलाता है। इस प्रकार स्वतन्त्र चेतन जीव परतन्त्र इन्द्रियों से इच्छानुसार काम लेता है। कर्मानुसार जितना दिन इस देह में रहने की अवधि रहती है, उतने दिन रहकर यह जीव शरीर त्याग करके वासना वश पुनः देह को प्राप्त होता है। अतएव जड़-परतन्त्र देह-इन्द्रियाँ सत्य और अपना स्वरूप नहीं हो सकती हैं। अपना स्वरूप चेतन है।

इसी प्रकार वीर्य, तेज, प्राण तथा शून्य ये सब कोई भी सत्य पदार्थ नहीं हैं और न ये अपना स्वरूप हो सकते हैं। इन सबों का ज्ञाता-द्रष्टा इन ज्ञेय, दृश्योंका रूप कैसे हो सकता है ? पृथ्वी आदि चार तत्त्व अपने सरूप से अपने जड़-क्षेत्र में सत्य तो अवश्य हैं। परन्तु वे बिल्कुल जड़ हैं। उन तत्त्वों के गुण-नाम ठहरा कर कथन करने वाला चेतन जड़तत्त्व नहीं हो सकता। क्योंकि "सर्व हू को जाने सो तो सर्व हू से न्यारो रहे सोई गुरु रूप निज पारख लखायो है।" अतएव पृथ्वी आदि जड़ तत्त्वों से अगणित चेतन सर्वथा भिन्न अखण्ड, अजर, अमर और शुद्ध-बुद्ध हैं।

अपने यथार्थ पारख स्वरूप को भूल कर जो कर्ता-भास,

कारण-भास, अद्वैत-भास, विषय-सुख-भास और जड़ देहादि भास में जीव फँसा है। इस भूल रूपी रोग की औषध गुरु-देव ने अपना पारख ज्ञान बतलाया है। आपने कहा है कि जब पारखी सद्गुरु जीव को मिल जायँगे और इसे पारख-ज्ञानका पूर्ण परिचय दे देंगे। तब इसकी भूल मिट जायगी इसलिये सबको पारखज्ञानरूप औषधका सेवन करना चाहिये।

आपने साखी प्रकरण में कहा है—

साखी—एक कहौं तो है नहीं, दोय कहौं तो गारि।
है जैसा रहै तैसा, कहहिं कबीर विचारि ॥१२०॥

अर्थात्—"एक अद्वैत ब्रह्म ही सत्य है—ऐसा कहता हूँ, तो यह बात सत्य नहीं है। क्योंकि नाना अविनाशी चेतन जीव और इनसे पृथक् चार जड़तत्त्व ये पाँच पदार्थ सत्य होने से अद्वैतवाद कल्पित ही ठहरता है। और इस जड़-चेतन के ऊपर यदि दूसरा कर्ता कहता हूँ तो भी गाली (मिथ्या भाषण, असत् सिद्धान्त पुष्ट होता) है। क्योंकि जड़-चेतन अपने-अपने गुण धर्म युक्त स्वतःअनादि होने से कर्ता केवल कल्पित ही है। अतएव जैसा अपना पारख स्वरूप चैतन्य जीव सत्य है, तैसा ही सदैव रहेगा। सद्गुण युक्त उसी में स्थित होना चाहिये।"

यदि कहिये 'है जैसा रहै तैसा' इसका अर्थ आप 'पारख स्वरूप चैतन्य जीव' क्यों किये ? तो सुनिये ! एक कहौं तो है नहीं, दोय कहौं तो गारि।' इस द्वैताद्वैत मत

का निराकरण करके नीचे की पंक्ति में " है जैसा रहै तैसा, कहहिं कबीर विचारि।" कहकर श्रीकबीरसाहेब ने अपना सिद्धान्त बतलाया है। और आपका मूल सिद्धान्त जीववाद पारख सिद्धान्त ही है जैसा इस (११५) शब्द में कहा है—

भूल मिटै गुरु मिलैं पारखी, पारख देयँ लखाई।
कहहिं कबीर भूल की औषध, पारख सब की भाई ॥

अथवा-साखी—

वस्तू अन्तै खोजै अन्तै, क्योंकर आवै हाथ।
सज्जन सोई सराहिये, जो पारख राखै साथ ॥
साहु चोर चीन्हें नहीं, अन्धा मति का हीन।
पारख बिना विनाश है, करि विचार होहु भिन्न ॥

आपने सबकी भूल के निवृत्यर्थ पारख औषध का सेवन बताया है और वह पारख ज्ञान पारखी गुरु द्वारा प्राप्त होने को कहा है। यदि कहिये बीजक में नाना प्रकार की वाणियाँ हैं, फिर किसे सत्य मानिये ? तो आप गम्भीरता पूर्वक १०, ११, १४, ३३, ३४, ३५, तथा ७५ रमैनी और ८, २२, ४०, ५६, ६७, ९४, ११२, ११४, और ११५, शब्द को तथा सबही मद माते कोई न जाग—इस (१०वें) एक ही वसन्त को विचारिये, तो यह निर्णय हो जायगा कि द्वैताद्वैत आदि भासों से साहेब का सिद्धान्त पृथक् है। क्योंकि जिन मत के गुरुओं का और वाणियों का ही निराकरण साहेब ने किया है। उनके मत वे क्यों मानेंगे ? सत्य

बात तो यह है कि बीजक में जीव-मुख, माया-मुख, ब्रह्म-मुख और गुरु-मुख—ये चार प्रकार की वाणियाँ हैं, क्रमशः तीन भाँति की वाणियों को परख कर और त्यागकर केवल गुरु-मुख वाणी का ही सिद्धान्त ग्रहण करना चाहिये। सो पारखी गुरुद्वारा बीजक पढ़ने से ही तीन मुख वाणियों की कसर और गुरु-मुख वाणियों की यथार्थता परखने से आयेगी। इसी से बीजक पढ़ने की रीति श्री कबीर साहेब ने स्वयं बतलाया है—

साखी—जिह्वा केरे बन्द दे, बहु बोलन निरुवार।
　　पारखी से संग करु, गुरु-मुख शब्द विचार॥

अर्थात्—नाना मत की कल्पित वाणी प्रतिपादन से जीभ को रोको और बहुत बोलना त्याग कर पारखी सन्त की संगत करके और जीव, माया तथा ब्रह्म मुख की वाणी परखकर एवं त्यागकर केवल गुरु-मुख सारशब्द को ही विचारो (धारण करो)।

शिक्षासार—पारखी सद्गुरु के सत्संग में निवास करके कर्ता-भास, कारण-भास, अद्वैत-भास, व्यापक-भास, देव-भास, देह-तत्त्व और दृश्य-भास जहाँ तक खानी-वाणी के भास का पसारा है। इन सब दृश्यों को त्याग कर अपने पारख चैतन्य स्वरूप में दृढ़ स्थित होना चाहिये।

५३—(शब्द— ४०)

पण्डित बाद बदै सो झूठा॥ १॥

रामके कहे जगत गति पावे ।
खाँड़ कहे मुख मीठा ॥ २ ॥
पावक कहे पाव जो डाहै ।
जल कहे तृषा बुझाई ॥ ३ ॥
भोजन कहे भूख जो भाजै ।
तो दुनिया तरि जाई ॥ ४ ॥
नर के संग सुवा हरि बोलै ।
हरि परताप न जानै ॥ ५ ॥
जो कबही उड़ी जाय जँगल में।
तो हरि सुरति न आनै ॥ ६ ॥
बिनु देखे बिनु अर्स पर्स बिनु ।
नाम लिये क्या होई ॥ ७ ॥
धन के कहे धनिक जो होवै ।
निर्धन रहे न कोई ॥ ८ ॥
साँची प्रीति विषय माया सो ।
हरि भक्तन को फाँसी ॥ ९ ॥
कहहिं कबीर यक राम भजै बिन ।
बाँधे यमपुर जासो ॥ १० ॥

हे विद्वानो ! जो लोग केवल नाम-रटन से ही मोक्ष-

निश्चय का विवाद करते हैं, सो तो सर्वथा व्यर्थ है ॥ १ ॥ क्योंकि राम मात्र कहने से यदि जगत्-जीव मोक्ष को प्राप्त हो जायँ । तब तो मिष्टान्न का नाम लेते ही मुख मीठा हो जाना चाहिये ॥ २ ॥ अग्नि का नाम लेने से शीतल पैर गर्म हो जावे, जल कहने से प्यास बुझ जाय और भोजन का नाम लेते ही भूख भग जाय एवं तृप्ति हो जाय । तो राम का नाम मात्र कहने से अवश्य संसारी जीव मुक्त हो जायँगे । (और यदि उपरोक्त उदाहरण घटित नहीं होते, तो नाम-रटन मात्र से मोक्ष भी न प्राप्त होगा ।) ॥ ३-४ ॥ मनुष्य के साथ में शुक-पक्षी राम-नाम रटता है । परन्तु उसके महत्त्व को नहीं जानता ॥ ५ ॥ यदि कभी पिंजड़े से निकल कर जंगल में उड़ गया।तो राम का थोड़ा भी ध्यान नहीं करता ॥ ६ ॥ बिना देखे बिना सम्बन्ध-स्पर्श किये,नाममात्र रटने से क्या होगा ? ॥ ७ ॥ केवल धन का नाम-मात्र लेने से यदि मनुष्य धनाढ्य हो जाय, तब तो फिर संसार में कोई भी निर्धनी न रहे॥ ८ ॥विषय और वाणी-जाल से हार्दिक प्रेम रखना, हरिभक्तों की पूरी फाँसी है ॥ ९ ॥ सद्गुरु श्री कबीरसाहेब कहते हैं— "राम-नाम के रटने मात्र से मोक्ष होता है ।" ऐसे एक अनुमान के त्यागे बिना कल्पना में बन्धमान होकर गर्भवास में जाओगे (क्योंकि नाम-जप मात्र से मोक्ष-निश्चय होने से मोक्ष-प्रद बोध-वैराग्य स्वरूपस्थिति से दूर रहने से पुनः देह अवश्य धरना पड़ेगा । अतएव सब

भ्रम त्याग कर मोक्ष-प्रद बोध-वैराग्य स्वरूपस्थिति आदि साधनों में अवश्य लगना चाहिये।) ॥ १० ॥

व्याख्या—राम, शिव, कृष्ण, खुदा, कबीर आदि किसी नाम के रटने मात्र से जीव का कल्याण नहीं हो सकता। स्वरूप का यथार्थ ज्ञान होकर और विषयों का राग हट कर उक्त चेतन स्व-स्वरूप में ही जब दृढ़ स्थिति हो जाती है, तभी मोक्ष होता है। राम-नाम-रटन आदि अन्धे को लकड़ी पकड़ाने तुल्य थोड़ा शुभ-कर्म मात्र है। अन्यथा बिना स्वरूप-ज्ञान एवं वैराग्य के मोक्ष नहीं होता। श्रीकबीर साहेब ने इस पर उदाहरण दिया है कि खाँड़ कहने से यदि मुख मीठा हो जाय। आग कहने से पैर गर्म हो जाय तथा जल-भोजन कहने से भूख-प्यास मिट जाय, तो राम-नामादि रटने से चाहे जीव तर जाय। अतएव न ऊपर के उदाहरण घटेंगे और न केवल नाम-रटन मात्र से मोक्ष होगा। राम-कृष्णादि नाम तो दशरथ-बसुदेव आदि के पुत्रों के देहों के नाम थे। यदि दशरथ-बसुदेवादि के पुत्रों का भाव राम-कृष्णादि में न लेकर निराकार व्यापक आदि माने, तो वह केवल मनुष्य के मन की कल्पित भावना ही है। फिर तो यह उदाहरण आ जायगा कि—

ई मन बड़ा कि जेहि मन माना। राम बड़ा कि रामहिं जाना॥

॥ बी० ॥

अर्थात् मन मानन्दी बड़ी है कि मन को मानने वाला

चेतन-जीव बड़ा है और कल्पित राम बड़ा है कि राम की कल्पना करने वाला ज्ञाता चेतन जीव बड़ा है ? एवं चेतन जीव ही बड़ा है। अतएव हृदय में रमण करने वाला चैतन्य जीव ही सत्य राम है। फिर इस स्वस्वरूप रमैयाराम को जाने बिना शुक-पक्षी न्याय केवल नाम-रटन से क्या होगा ? कुछ नहीं।

कल्पित भावना मात्र कर्ता का तो कभी दर्शन स्पर्श और सम्बन्ध हो नहीं सकता और हृदय निवासी स्वस्वरूप रमैयाराम का यथार्थ-ज्ञान, अनुभव एवं अपरोक्ष साक्षात्कार के बिना राम-नाम मात्र रटने से क्या होता है ? जैसे धन के कहने से कोई धनिक नहीं होता। तैसे राम-राम कहने मात्र से कोई यथार्थ राम (स्वस्वरूप-ज्ञान और स्थिति) को नहीं पाता। विषय-वाणी का जो पक्ष लेना है, यही हरिभक्तों का बन्धन है। कल्पना का पूर्ण त्याग किये बिना जीव पुनः पुनः गर्भ-संकट भोगता है।

इस ४० वें शब्द से यह समझना चाहिये कि सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब ने रामादि किसी नाम के जपने मात्र से मोक्ष नहीं माना है। यदि कहिये श्रीकबीरसाहेब के बहुत से पदों में राम-नाम भजने का वर्णन है। जैसे इसी शब्द के अन्तिम पंक्ति में "एक राम भजै बिनु" या अन्यत्र "राम-नाम भजु राम-नाम भजु" (कहरा) आदि में वर्णन है। तो सुनिये ! बीजक में जहाँ कहीं 'भजै' शब्द आया है, वह भाजने-भागने

एवं त्यागने का द्योतक है। जैसे इसी ४० वें शब्द की चौथी पंक्ति में है "भोजन कहे भूख जो भाजै।" यहाँ भी 'भाजै' का अर्थ भागना है। "रामहि राम पुकारते' जिभ्यापरिगौ रौस।" "राम वियोगी विकल तन, इन्ह दुखवो मति कोय" एवं "पण्डित बाद वदै सो झूठा।" तथा "जो तू चाहै मूझ को छाड़ि सकल की आश। मुझ ही ऐसा होय रहो, सब सुख तेरे पास॥" आदि साखी-शब्दों से साधारण व्यक्ति को भी अत्यन्त स्पष्ट हो सकता है कि श्रीकबीरसाहेब ने नाम-जपादि से कल्याण न मान कर स्वरूप ज्ञान और स्वस्वरूपस्थिति से ही माना है॥

शिक्षासार—किसी कल्पित नाम-जपादि की आशा त्याग कर सद्गुरु शरण, स्वरूप ज्ञान, गुरु भक्ति, वैराग्यादि द्वारा मोक्ष-कार्य का सम्पादन करना चाहिये।

५४-(रमैनी—७१)

तेहि साहेब के लागहु साथा।
दुइ दुख मेटि के होहु सनाथा॥१॥
दशरथ कुल अवतरि नहिं आया।
नहिं लंका के राव सताया॥२॥
नहिं देवकी के गर्भहिं आया।
नहीं यशोदा गोद खेलाया॥३॥
पृथ्वी रवन धवन नहिं करिया

पैठि पताल नहीं बलि छलिया ॥४॥
नहिं बलिराज सो माँड़लरारी ।
नहिं हरणाकुश बधल पछारी ॥५॥
बराह रूप धरणि नहिं धरिया ।
छत्री मारि निछत्री नहिं करिया ॥६॥
नहिं गोबर्धन कर गहि धरिया ।
नहिं ग्वालन संग बन-बन फिरिया ॥७॥
गण्डुकि शालिग्राम नहिं कूला ।
मच्छ-कच्छ होय नहिं जल डोला ॥८॥
द्वारावती शरीर न छाड़ा ।
ले जगन्नाथ पिण्ड नहिं गाड़ा ॥९॥

साखी—कहहिं कबीर पुकारि कै, वै पन्थे मति भूल ।
जेहि राखेउ अनुमान कै, सो थूल नहीं अस्थूल ॥

उन स्वामी के साथ में प्रेम करो, जो वैराग्यवान् पारखी सन्त हैं । और जन्म-मरण रूप दोनों दुःखों को नष्ट कर कृतार्थ हो जाओ ॥१॥ वह श्रेष्ठ साहेब, यथार्थ बोधकर्ता, उद्धारक, उपास्य दशरथ के कुल में रामअवतार नहीं लिया है और न लंका के राजा रावण को ही मारा है ॥२॥ न वह कृष्ण रूप से देवकी के गर्भ में आया है और न यशोदा ने अपने गोद में उसे खेलाया है ॥३॥ पृथ्वी पर सैना साज

कर और दौड़-धूप कर उसने युद्ध नहीं किया है और न बावन रूप धर कर तथा पाताल में घुस कर राजा बलि को ही छला है ॥ ४ ॥ न रामचन्द्र बनकर बालि राजा से युद्ध ठाना है और न नरसिंह बनकर हिरण्यकश्यपु को ही मारा है ॥ ५ ॥ शूकर रूप धरकर न उसने पृथ्वी को उठाया और न परसुराम बनकर क्षत्रियों को मार कर पृथ्वी को इक्कीस बार निक्षत्री ही किया था ॥ ६ ॥ न कृष्ण बनकर गोबर्धन पर्वत को हाथ पर धारण किया और न ग्वाल-बालों के साथ जङ्गलों में गाय चराया ॥ ७ ॥ न विष्णु बन कर वृन्दा के शाप से गण्डुकी नदी में वह शालिग्राम पत्थर ही हुआ और न मतस्य एवं कच्छप का अवतार धारण कर जल में ही विचरा ॥ ८ ॥ न कृष्ण रूप धर कर द्वारिका पुरी में शरीर ही त्यागा और न लूला रूप से जगर-नाथ में अपना शरीर ही स्थापन करवाया है ॥ ९ ॥

सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—उन भ्रामक पन्थों में मत भूलो। जिनको तुम सबों ने अपना उद्धारक, उपास्य मान रखा है वह न स्थूल है और न सूक्ष्म। अर्थात् कोरी कल्पना है (तात्पर्य यह है कि कर्ता-ब्रह्म आदि का स्वरूप न सूक्ष्म है और न स्थूल, केवल मानव के मन की भावना है। वास्तविक वस्तु जड़-चेतन दो ही हैं।)

व्याख्या—इस ७५ रमैनी का तात्पर्य यह है कि जिन उपास्य देव की शरण में लगने से यथार्थ बोध होकर जीव-

का जन्म-मरण दुःख नष्ट होता है। वे उपास्य देव श्री राम, श्री कृष्ण, नरसिंह, वराह, मतस्य, बावन, परसुराम आदि माने गये अवतार नहीं हैं। क्योंकि ये लोग प्रत्यक्ष ही विषय, युद्ध, हिंसा, छल, कपट करने वाले और अपने-अपने कर्म-फलों के भोगने वाले थे। और अपने उद्धार के लिये ये लोग स्वयं गुरु-भक्ति सन्त-सेवा आदि किये। ये लोग दुष्टों को मारकर साधु-सज्जनों की रक्षा किये, सो राजनीति की दृष्टि से ठीक है। ये लोग एक प्रतापवान्, धर्मवान् राजा थे या बलवान् धर्म रक्षक थे, न कि सबके मालिक या मोक्ष दाता सद्गुरु थे।

शिक्षासार—अतएव जो पूर्ण अहिंसकी, दयावान्, निर्विषयी, सब कल्पना खानी-वाणी जाल से रहित सद्रहस्य सम्पन्न पारखी सद्गुरु-सन्त हैं, वे ही उपास्य देव, यथार्थ बोध कर्ता मोक्ष पथ-प्रदर्शक हैं। उन्हीं के शरण में लगना चाहिये।

५६—(शब्द—११०)

आपन कर्म न मेटो जाई ॥१॥
कर्म का लिखा मिटे धौं कैसे ?
जो युग कोटि सिराई ? ॥२॥
गुरु बसिष्ठ मिलि लगन सोधायो।
सूर्य मन्त्र एक दीन्हा ॥३॥

जो सीता रघुनाथ विवाही ।
पल एक सञ्च न कीन्हा ॥४॥
तीन लोक के कर्ता कहिये ।
बालि बधो बरिआई ॥५॥
एक समय ऐसी बनि आई ।
उनहूँ औसर पाई ॥६॥
नारद मुनि को बदन छिपायो ।
कीन्हों कपि को स्वरूपा ॥७॥
शिशुपाल की भुजा उपारी ।
आपु भयो हरि ठूठा ॥८॥
पार्वती को बाँझि न कहिये ।
ईश्वर न कहिये भिखारी ॥९॥
कहहिं कबीर कर्त्ता की बातें ।
कर्म की बात निनारी ॥१०॥

अपना किया हुआ शुभाशुभ कर्म मिटाया नहीं जा सकता ॥१॥ चाहे करोड़ों युग समाप्त हो जायँ, परन्तु अन्तःकरण रूपी पटपर अंकित किया हुआ शुभाशुभ कर्म संस्कार भला कैसे मिट सकता है? ॥२॥ गुरु वशिष्ठ सतानन्दादिने मिलकर राम-जानकी के विवाह का लग्न-मुहूर्त शोधा । और सूर्य ने आकर मन्त्र दिया ॥३॥ ऐसे उत्तम मुहूर्त में जो जानकी-राम

को व्याही गयीं । वे जानकी जी एक क्षण सुख न पायीं ॥४॥ श्री रामजी को लोग तीनलोक के कर्ता कहते हैं । उन्होंने बालि को जबर्दस्ती मारा॥५॥ परन्तु एक समय (श्रीकृष्णावतार) में ऐसा बन पड़ा कि उन्होंने भी बदला दिया ॥६॥ श्री विष्णु ने नारद का यथार्थ मुख छिपा कर उनका बन्दर का मुख बना दिया । (फलतः नारद के शाप वश विष्णु ने नर अवतार धारण किया और कर्मफल भोगा) ॥७॥ शिशुपाल का हाथ श्री कृष्ण ने उखाड़ लिया । तो आप श्रीकृष्ण जी जगरनाथमें लूले होकर बैठे ॥८॥ क्या पार्वतीको वन्ध्या न कहा जाय ? और क्या शिवजी को भिक्षुक नहीं कहा जायगा? अवश्य कहा जायगा ॥९॥ महात्मा श्रीकबीरसाहेब कहते हैं, कर्ता और कर्म की बात बड़ी विलक्षण है ॥१०॥

व्याख्या—सकाम शुभाशुभ कर्म जितने बना लिये गये हैं । उनका दो प्रकार से अन्त होता है । या तो नर-जन्म में पारख बोध और यथार्थ वैराग्य उत्पन्न होजाय,तब सब कर्म ज्ञान-वैराग्य के प्रताप से दग्ध हो जाते हैं या ज्ञान-वैराग्य न उत्पन्न होने से किये हुए शुभाशुभ-कर्म भोग करके ही समाप्त होते हैं । कर्मी सुखाध्यासी जीवों के कर्म-फल भोग बिना भोग लिये चाहे करोड़ों युग बीत जायँ, परन्तु तो भी कर्म नहीं मिटते । सारांश यह है कि कर्माध्यासी जीवों को अपना कर्म-फल भोगना अवश्य पड़ेगा, चाहे जितना दिन बीत चले । और इसके अतिरिक्त जिस मनुष्य जीव के घट में पूरा

बोध वैराग्य उत्पन्न हो जायगा। उसके चाहे करोड़ों कल्पों के शुभाशुभ कर्म सञ्चित हों, परन्तु यथार्थ बोध-वैराग्य धारण की दशा में सब कर्म संहार (दग्ध) हो जायँगे। इसके विषय में आपने साखी प्रकरण में बताया है—

तौलौं तारा जग मगै, जौलौं उगै न शूर।
तौलौं जीव कर्म वश डोलै, जौलौं ज्ञान न पूर॥

अथवा—"कहहिं कबीर कोई सन्त जन जौहरी,
कर्म के रेख पर मेख मारे॥"

इसके विषय में यदि अधिक देखना हो तो रहनि प्रबोधिनी प्रथम प्रकरण दुखशमन चालीसा चौपाई २६ के 'सञ्चितशमन' को देखिये। 'अपनो कर्म न मेटोजाई।' यह शब्द साहेब ने कर्मी जीवों के प्रति कहा है, वैराग्यवान्-बोधवान् के लिये नहीं।

इस ११० शब्द का मुख्य अभिप्राय यह है कि जिन श्री विष्णु, श्रीराम, श्रीकृष्ण, और श्री शिव आदि को लोगों ने कर्ता ईश्वर या देव माना है, वे सब अपने कर्मफलों को स्वयं भोगे हैं। बिना कर्म-फल भोगों के भोग लिये उन्हें जन्मान्तर में भी छुट्टी नहीं मिली है। फिर उन्हीं के भरोसे जो लोग सद्-साधन और सद्-पुरुषार्थ को छोड़कर अपने कल्याण की आशा करके सोये हैं। उनकी क्या दशा होगी? अतः इन अवतारों को कर्ता मानने वाले लोगों को शीघ्र

सावधान हो जाना चाहिये और सद्गुरु शरण में आकर अपने कल्याण-साधन में डट जाना चाहिये। पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु ये चार जड़-तत्त्व और इनसे पृथक अगणित अविनाशी चेतन जीव। इस जड़-चेतन के अतिरिक्त अन्य कर्ता-कारण का कोई अस्तित्त्व ही नहीं है। फिर प्राकृतिक अवतारों को कर्ता मानना तो और भी बड़ी विडम्बना है। इसके विषय में श्रीकबीरसाहेबने 'तेहि साहेब के लागहु साथा' रमैनी ७५ और 'सन्तो आवे जाय सो माया' शब्द ८ में भली भाँति दर्शाया है। ८ वें शब्द के अन्त में आप ने बताया है—

दश अवतार ईश्वरी माया, कर्ता कै जिन पूजा।
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो, उपजै खपै सो दूजा॥

अतएव बोध-वैराग्य विहीन कर्मी जीवों को अपना कर्म-फल-भोग अवश्य भोगना पड़ता है। देखिये! जनक राजा के पक्ष के सतानन्द और दशरथ के पक्ष के विश्वामित्र तथा गुरु-वशिष्ठ ये सब श्रेष्ठ गुरु-आचार्यों ने मिलकर राम-सीता के विवाह का लग्न-मुहूर्त शोधन किया और सूर्य ने स्वयं आकर आदर पूर्वक अपने कुल की रीति-प्रीत सब कह दिया। श्रीतुलसीदास कृत रामायण बालकाण्ड में ऐसी कल्पित बातें लिखी हैं—

छन्द—कुलरीत प्रीत समेत रवि कहि देत सब सादर किये।
इहि भाँति देव पुजाइ सीतहि सुभग सिंहासन दिये॥

सियराम अवलोकन परस्पर प्रेम काहु न लखि परै।
मन बुद्धि वर वाणी अगोचर प्रगट कवि कैसे करै॥

श्री राम और जानकी का विवाह बड़े विधि-विधान से हुआ, कहा है—

छन्द—आचार करि गुरु गौरि गणपति मुदित विप्र पुजावहीं।
सुर प्रगट पूजा लेहिं देहिं अशीश सुनि सुखपावहीं॥
मधुपर्क मङ्गल द्रव्य जो जेहि समय मुनि मन महँ चहैं।
भरि कनक कोपर कलश सब कर लिये परिचारक रहैं॥

दोहा—होम समय तनु धरि अनल, अति हित आहुति लेहिं।
विप्र वेष धरि वेद सब, कहि विवाह विधि देहिं।

छन्द—वर कुँवरि करतल जोरि, शाखोच्चार दोउ कुल गुरु करैं।
भयो पाणि ग्रहण विलोक, विधि सुर मनुज मुनि आनन्द भरैं।
सुख मूल दूलह देखि दम्पति पुलक तन हुलसैं हिये।
करि लोक वेद विधान कन्यादान नृप भूषण दिये॥

इस प्रकार विधि-विधान से सीता जी का विवाह श्री रामजी से हुआ। परन्तु वे सीताजी श्रीराम के साथ में एक क्षण भी सुख न पायीं। प्रथम परशराम जी का विक्षेप, फिर केकयी-कोप और दशरथ के आज्ञानुसार श्रीराम का वन गमन, साथ-साथ सीता जी का वन में जाना। विराध-राक्षस द्वारा सीता का हरण, जयन्त द्वारा सीता के अंगों का नोचे जाना। रावण द्वारा हरे जाना, पुनः लंका में

दुःखमय निवास। अयोध्या लौटने पर धोबी के ताना मारने पर श्रीराम द्वारा सीता का राज्य से निकाल कर वन में कर देना, अन्त में दुःख पूर्वक सीता का धरणी में समाना—यह सब जीवन पर्यन्त सीता ने दुःख भोगा। अतएव सीता के पूर्व जन्मों के ये अशुभ कर्मों के फल थे। जो श्रीराम के साथ होते हुए भी उन्हें भोगना पड़ा।

राजा दशरथ जी के पुत्र श्रीरामचन्द्रजी को लोग कहते हैं "ये तीन लोक के ईश्वर हैं। यह कितनी विडम्बना है? भला इन्होंने सुग्रीव से अपना स्वार्थ निकालने के लिये उनसे मित्रता किया और सुग्रीव के विरोधी भाई बालि को छिपकर के मारा। परन्तु उसका बदला श्रीरामजी को देना पड़ा। कथा है—श्रीरामजी दूसरे जन्म में श्रीकृष्ण हुए और बालि व्याध हुआ। यदुकुल के नाश हो जाने पर श्रीकृष्णजी जङ्गल में समाधिस्थ बैठे थे। उनके पैर के चमकते तलवे को दूर से व्याध ने देखा, तो समझा कि कोई मृग है। अतः उसने वाण मार दिया और श्रीकृष्ण जी घायल होकर ची-त्कार करने लगे। तब व्याधा आया और क्षमा माँगा। श्री कृष्ण जी ने कहा कि मैं रामावतार में तुम्हें मारा था। उसी का बदला तुम्हारे द्वारा मेरा हुआ है। तुम उस समय बालि नाम से थे। कहीं व्याध को बालि का पुत्र अङ्गद बतलाया गया है। अतएव श्रीराम को भी अपना कर्म फल भोगना पड़ा। नारद मुनि के यथार्थ मुख को छिपाकर श्रीविष्णुजी

ने उनका बन्दर का मुख बना दिया। अतएव नारद की मनो-कामना न पूरी होने से उन्होंने श्रीविष्णु को शाप दिया, जिससे विष्णुजी रामावतार में अपना कर्म-फल भोगे। इसका संक्षिप्त कल्पित उदाहरण ऐसा है—

एक बार नारद जी को काम पर विजयी होने का अभिमान हुआ। यह बात श्रीविष्णु ने जाना। अतःश्रीविष्णु की प्रेरणा से श्रीनगर के शील निधि राजा की विश्वमोहिनी पुत्री में नारद जी मोहित हो गये। उस समय विश्वमोहिनी का स्वयंम्वर था। नारद जी मोहान्ध होकर उस कन्या द्वारा वरे जाने की इच्छा से श्रीविष्णु से सुन्दर रूप माँगे। श्री विष्णु ने उनके सब शरीर के अङ्ग सुन्दर बनाये, परन्तु मुख बूढ़े बन्दर का बना दिया। जिससे कन्याने नारद के गले में जयमाल न डाली। फिर शिव के दूतों ने कहा—हे नारद मुने! आप अपना मुख तो पानी में देखिये, तब विश्व-मोहिनी की इच्छा कीजिये। फिर नारद ने अपना मुख जब पानी में देखा, तो बन्दर का था। अतः मनोकामना पूरी न होने से और अपना अपमान मानकर तथा क्रुध होकर नारद ने श्रीविष्णु को शाप दिया कि जैसे मैं काम से पीड़ित होकर स्त्री के लिये विकल हुआ वैसे आप भी नर-देह धारण कर काम-पीड़ित और स्त्री के लिये विकल होंगे।

इस प्रकार नारदजी के शाप देने के पश्चात् श्रीविष्णुजी ने राम अवतार धारण कर अपना कर्म-फल भोगा। इसी

प्रकार श्रीकृष्णजी ने शिशुपाल का हाथ उखाड़ा और मारा, तब उसके बदले में श्रीकृष्णजी का भी हाथ गल कर कट गया और जगरनाथ में ठूठे (लूले) होकर बैठे। शिशुपल की संक्षिप्त कथा क्रम संख्या ५ रमैनी ४७ में वर्णन कर आये हैं। वहाँ देख लीजिये।

कर्म की गति ऐसी विलक्षण होती है कि सबको भोगनी पड़ती है। देखिये पार्वती जी शिव जी की भार्या थीं, परन्तु कोई कर्म की त्रुटि होने से उनका भी कोख न खुला, जीवन पर्यन्त वन्ध्या रहीं। यदि कहिये उनके तो गणेश जी और स्वामि कार्तिकेय जी दो पुत्र थे? तो ये दोनों पुत्र शिव-जी के वीर्य और पार्वती जी के गर्भ से नहीं हुए थे। इसका कल्पित दृष्टान्त पुराणों में इस प्रकार वर्णन है—

गणेशजी !

एक बारकी बात है, कैलाश पर्वत से शिव जी कहीं विचर गये थे। पार्वती जी विराजमान् थीं। एक दिन उन्होंने अपने शरीर में उबटन लगाया और मैल को इकट्ठा कर कू-तूहल एवं मनोविनोद वश एक बालक की मूर्ति बना दिया, वह मूर्ति उनको बड़ी अच्छी लगी। अतएव उस मूर्ति में उन्होंने प्राण प्रतिष्ठा कर दिया और वह बालक होकर खेलने लगा। वह थोड़े ही दिनों में बड़ा हो गया। एक दिन गणे-शजी को द्वार पर रखवाला रख कर पार्वती जी स्नान करने

चली गयीं। इतने में शिव जी आये और इस अपूर्व सुन्दर युवक से पूछे— तू कौन है ? गणेशजी कहे— मैं पार्वतीजी का पुत्र हूँ। शिवजी बहुत क्रोधित हुए और सोचा यह कोई गड़बड़ बात है। अतएव गणेशजी को मारने के लिये त्रिशूल चलाये, गणेशजी ने भी शस्त्र का प्रयोग किया और दोनों में घमासान युद्ध हुआ। अन्त में शिवजी का त्रिशूल लग जाने से गणेशजी का शिर कटकर पता नहीं कहाँ चला गया। इतने में पार्वतीजी स्नान करके आयीं और पुत्र को शिर रहित मृतक देखकर रोने लगीं। सच्चा समाचार जानकर शिवजी पश्चाताप करने लगे और गणेशजी को जिलाना चाहे। इसलिये उनका शिर खोजने लगे, खोजने पर भी शिर न मिला। इतने में गजासुर नामक दैत्य आ गया, जिसका शरीर हाथी का था। शिवजी ने अपने त्रिशूल से गजासुर का शिर काट-कर गणेशजी के गले पर रख दिया और जिला दिया। फिर गणेशजी का मुख हाथी का हो गया। इसीलिये उनका नाम गजानन पड़ा। इसप्रकार गणेशजी शिव के वीर्य एवं पार्वती के रज और गर्भ से नहीं उत्पन्न हुए हैं, किन्तु पार्वती के शरीर में लगाये हुए उबटन के मैल से हुए हैं। इस प्रकार पुराणों में कल्पित बातें लिखी हैं।

स्वामि कार्तिकेय

एक बार सप्तऋषियोंने यज्ञ आरम्भ किया। यज्ञ में अग्नि-

देव भी बुलाये गये। सप्तऋषियों की स्त्रियोंको देखकर अग्नि देव अत्यन्त कामातुर होगये। परन्तु ऋषि पत्नियों से भोग की सिद्धि नहीं हो सकती थी। क्योंकि वे सब पतिव्रतायें थीं। अतः अत्यन्त काम से पीड़ित होकर अग्निदेव वन में चले गये। इस बात को अग्नि की स्त्री स्वाहा ने जब जाना तब उन्होंने सोचा कि "मैं ही ऋषि पत्नियों का रूप धारण करके उन्हें अपने में आसक्त करूँगी। इससे उनका तो मेरे ऊपर प्रेम बढ़ जायगा और मेरी काम-वासना की तृप्ति होगी।" ऐसा विचार कर स्वाहा ने पहले महर्षि अंगिरा की पत्नी सौंदर्य गुण शीलवती शिवाका रूप धारण किया और-अग्निदेव-के पास जाकर कहने लगी—अग्निदेव! मैं काम-अग्नि में जल रही हूँ। इसलिये तुम मेरी इच्छा पूर्ण करो। यदि तुम ऐसा नहीं करोगे, तो मेरे प्राण नहीं बच सकते। मैं महर्षि अंगिरा की भार्या शिवा हूँ। तब अग्निने बहुत प्रसन्न-होकर उससे समागम किया। स्वाहाने उनके वीर्य को अपने हाथ पर ले लिया और उसे एक सोने के कुण्ड में रख दिया इसी प्रकार स्वाहा ने छः ऋषियों में से प्रत्येक की पत्नी का रूप धारण करके अग्नि की काम-शान्ति की। परन्तु सातवीं ऋषि-पत्नी अरुन्धती के तप और पातिव्रत के प्रभाव से वह उसका रूप धारण नहीं कर सकी। इस प्रकार कामतप्ता स्वाहा ने प्रतिपदा के दिन छः बार अग्नि के वीर्य को उसी स्वर्ण के कुण्ड में रखा। उससे एक ऋषि पूजित बालक उत्पन्न हुआ।

स्खलित वीर्य से उत्पन्न होने के कारण उसका नाम स्कन्द पड़ा। उसके छः शिर, बारहकान, बारह नेत्र, बारह भुजायें तथा एक ग्रीवा और एक पेट था। ये ही स्वामि कार्तिकेय-जी हैं।

ये छः दिन में बढ़कर पूर्ण युवक होगये और जिस धनुष से महादेव ने त्रिपुरासुर का वध किया था, वह धनुष कहीं कार्तिकेय जी को मिल गया। फिर उसी धनुष को ले कर अनेक पर्वतों को मार भगाये और संसार भर को थर्रा दिये। इन्द्र आये, उन्हें भी परास्त कर दिये। फिर इन्द्र कार्तिकेय जी को शरण लिये। इन्द्र कार्तिकेय जी को इन्द्र पद देना चाहे। परन्तु उन्होंने न लिया। तब विवश करके सेनापतिका अधिकार दिया। अतः कार्तिकेयजी इन्द्र तथा देवताओं के सेनापति हुए।

फिर दक्षप्रजापति की कन्या देवसेना से कार्त्तिकेय जी का विवाह हुआ। कार्त्तिकेय जी की स्त्री देवसेना का नाम षष्ठी, लक्ष्मी, आशा, सुखप्रदा, सिनीवाली, कुहू, सद्वृत्ति और अपराजिता भी कहते हैं। फिर अग्निदेव की स्त्री अर्थात् कार्त्तिकेय जी की माता स्वाहा ने आकर कार्त्तिकेय जी से कहा—पुत्र! तू हमारी एक मनोकामना पूरी कर। वह यह है कि मैं दक्षप्रजापति की कन्या हूँ, अग्निदेव हमारे पति हैं। उनपर मेरी बड़ी निष्ठा है, परन्तु हमारे इस अत्यन्त प्रेम को वे नहीं जानते। परन्तु मैं सदा पतिदेव अग्नि के ही पास

रहना चाहती हूँ। तब कार्तिकेय ने कहा, ब्राह्मणों के हव्य-कव्यादि जो भी पदार्थ मन्त्रों से शुद्ध किये हुए होंगे। उन्हें वे 'स्वाहा' ऐसा कहकर ही अग्नि में हवन करेंगे। कल्याणी! इस प्रकार अग्निदेव सर्वदा तुम्हारे पास रहेंगे। इतने में ब्रह्मा जी आये और कार्त्तिकेय जी से कहे—"तुम अपने पिता त्रिपुरविनाशक महादेवजी के पास जाओ। क्योंकि सम्पूर्ण लोकों के हित के लिये भगवान महादेवने अग्नि में और उमा ने स्वाहा में प्रवेश करके तुम्हें उत्पन्न किया है।" ब्रह्माजी की यह बात सुनकर श्रीकार्तिकेय जी 'तथास्तु' कह कर महादेव जी के पास चले गये।

(सं० महाभारत वन पर्व)

इस प्रकार मुख्य शिव के वीर्य तथा पार्वती जी के गर्भ से गणेशजी एवं स्वामि कार्तिकेय जी नहीं उत्पन्न हुए हैं। अतएव पार्वतीजी को वन्ध्या ही कहना पड़ेगा। यद्यपि गणेशजी तथा स्वामिकार्तिकेय की उत्पत्ति-कथा कल्पित है। क्योंकि शरीर में लगाये उबटन के मैल से और वीर्य को सोने के घड़े में रखने से पुत्र की उत्पत्ति मानना अयुक्त है। ऐसा जब आज नहीं होता, तब पहले कैसे होगया?

स्वामिकार्तिकेय और गणेश की उत्पत्ति के विषय में ब्रह्मवैवर्त पुराण में इस प्रकार लिखा है—

स्वामिकार्तिकेय और गणेशजी

पार्वती के साथ शिवजी बहुत काल तक विहार करते

रहे (परन्तु पुत्र न हुआ) फिर देवताओं ने आकर भोग से विरत होने के लिये शिवजी से प्रार्थना किया, शिवजी भोग से विरत हो गये। तुरन्त पृथ्वी पर शिवजी का शुक्र-पात हो गया। अतः उस शुक्र (वीर्य) से स्कन्ध-स्वामि-कार्तिकेयजी उत्पन्न हो गये।

फिर पार्वतीजी ने शिवजी से एक तेजस्वी पुत्र होने की प्रार्थना किया। शिव ने कहा—तुम्हें पुत्र की इच्छा हो, तो पुण्यक नामक व्रत करो। उन्होंने पुण्यक व्रत किया। व्रत के पश्चात् गोलोक निवासी परब्रह्म परमात्मा श्री कृष्ण स्वयं वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण कर शिव के द्वार पर आकर पुकारे कि मैं कई दिनों का भूखा-प्यासा हूँ, मुझे भोजन दो। बात करते-ही-करते वह ब्राह्मण अन्तर्धान हो गया तथा बालक रूप होकर पार्वती की शय्या पर जाकर लेट गया और पार्वती जी घर के भीतर जाकर देखीं, तो एक सुन्दर पुत्र उनकी शय्या पर हाथ-पैर उछाल रहा है। शिव-पार्वती देख कर प्रसन्न हुए।

उस पुत्र को सब देखने आते थे। एक दिन शनिश्चर भी देखने के लिये आये। परन्तु वे आँख मूँद कर नीचे शिर किये थे। पार्वती ने कहा—आप अपना शिर नीचे क्यों किये हैं ? शनिश्चर ने कहा—इसका कारण बतलाना बड़ा लज्जा जनक है। परन्तु मैं बतलाता हूँ। एक बार मैं ध्यान में बैठा था। इतने में मेरी स्त्री ऋतुकालिक स्नान से निवृत्त

होकर आयी और मुझ से रति की इच्छा किया। परन्तु ध्यान में लगे रहने के कारण मैं नहीं उठा। अतः उसने मुझे शाप दे दिया कि तुम जिस वस्तु को देखोगे, वह नष्ट हो जायगी। इसी कारण मैं किसी को नहीं देखता।

पार्वती ने कहा—अच्छा, मेरे तथा मेरे पुत्र की ओर देखो तो। देखें क्या होता है? शनिश्चर ने पार्वती की ओर तो नहीं देखा, परन्तु बालक के मुख की ओर अपने बाँये नेत्र का एक कोना खोल दिया। अतः बालक के मुख पर उनकी दृष्टि पड़तेही उसका शिर कट कर उड़ गया।

पुत्र मृतक हो गया और पार्वती जी मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं। इतने में विष्णु ने एक हाथी का शिर काटकर ले आया और बच्चे के धड़ पर रखकर जोड़ दिया और उसे जिला दिया। इस प्रकार उस लड़के का मुख हाथी का हो गया और उसका नाम गजानन तथा गणेश पड़ा। पुण्यक व्रत में पर्वती जी द्वारा उत्तम-उत्तम अधिक खाद्य पदार्थों का अर्पण हुआ था। अतः उन सब को अधिक खा लेने से ही गणेश जी का पेट बड़ाभारी हो गया इत्यादि।

(ब्रह्मवैवर्त पुराण, गणपति खण्ड)

यह पुराण की गाथा सर्वथा कल्पित है। शिव का वीर्य पृथ्वी पर गिर जाने से कार्तिकेय का उत्पन्न होना। मनुष्य रूप कृष्ण में कल्पित ब्रह्म का आरोप करना। कृष्णरूप वृद्ध

ब्राह्मण का अन्तर्धान होकर पार्वती की शय्या पर बालक बन जाना। शनिश्चर के देखने मात्र से बच्चे का शिर कट कर उड़ जाना तथा हाथी का शिर काट कर बच्चे के धड़ पर जोड़ कर मृतक को जिला देना आदि सर्वथा असम्भव है।

तात्पर्य यहाँ यह लेना है कि इस पुराण के अनुसार शिव का वीर्य पृथ्वी पर गिर जाने से कार्तिकेय जी हुए और कृष्ण स्वयं आकर बालक बनकर पार्वती की शय्या पर लेट गये। अतः पुण्यक व्रत करने पर भी पार्वती का कोख न खुला—उनके गर्भ से कोई बच्चा न हुआ। इसलिये पार्वती वन्ध्या रहीं। इस प्रकार पुराण के ही अनुसार कर्म-फल भोग बतलाकर श्री कबीर साहेब ने शिव-पार्वती आदि को ईश्वर ईश्वरी होने का खण्डन किया है।

इसी प्रकार कर्मों की विलक्षणता देखिये! शिव जी को क्या भिक्षुक नहीं कहा जायगा? अवश्य कहा जायगा। सप्त ऋषि पार्वती जी के प्रेम की परीक्षा लेने के लिये शिव में दोष दिखाते हुए कहते हैं—

निर्गुण निलज कुवेष कपाली। अकुल अगेह दिगम्बर व्याली॥
कहहु कवन सुख अस वर पाये। भल भूलेहु ठग के बौराये॥
पंच कहैं शिव सती बिवाही। पुनि अवडेरि मराइन ताही॥

अर्थात्—गुण हीन, निर्लज, कुवेष, मुण्डमाला धारण करने वाले कुल-घर से रहित, नंगे और सर्प लपेटे॥ कहिये भला! ऐसा पति पाने से कौन-सा सुख होगा? भला!

नारद ठग के बौराये भूल गयी हो ॥ पञ्च कहते हैं कि शिव जी ने सती से ब्याह किया, परन्तु फिर उसे त्याग कर मरवा डाला ॥

दोहा—अब सुख सोवत सोच नहिं, भीख माँगि भव खाहि ।
सहज एकाकिन के भवन, कबहुँ कि नारि खटाहि ॥

अर्थात्—अब सुख से सोते हैं, कोई चिन्ता नहीं है। संसार में भीख माँग कर खाते हैं। स्वाभाविक अकेले रहने वाले के घर में भला कभी नारि ठहर सकती हैं ? ॥ इत्यादि ।

एक कवि ने संस्कृत में एक श्लोक कहा है जिसका अनुवाद यह है—"भावी जो रहती है, होकर रहती है (अपना प्रारब्ध कर्म भोग अवश्य भोगना पड़ता है।) कर्म की दशा विचित्र न होती तो क्या शिव जी ऐसे महान् नग्न रहें, उन्हें वस्त्र न जुरे। और श्री विष्णु जी सर्प शय्या पर सोवें, उहें गद्दा-तकिया और पलंग न मिले ? परन्तु अपना कर्म ।"

इसी से यहाँ श्रीकबीरसाहेब ने कहा है कि कर्ता और कर्म की बात बड़ी विलक्षण है। अर्थात् यह कर्ता चेतन जैसा कर्म करता है, वैसा भोगता है। कर्मी जीवों के साथ में कर्म वासनायें करोड़ों कल्पों से भी अधिक दिन लगी रहती हैं। जब तक फल नहीं दे देतीं, तबतक वे कर्म वासनायें क्षीण नहीं होतीं, चाहे जितना दिन बीत जायँ। सुखाध्यासी

जीवों को कर्म फल अवश्य भोगना पड़ेगा।

कर्म फल कर्मी जीवों को अवश्य भोगने पड़ते हैं। जिन्हें मनुष्यों ने देव-ईश्वर माना है। वे भी अपना कर्म-फल-भोग भोगे हैं। इस बात को सिद्ध करने के लिये पौराणिक रीति से ग्रन्थ कर्ता ने इस ११० शब्द को कहा है। अन्यथा सीता, श्रीराम, नारद-मोह, शिशुपाल, श्रीगणेश, स्वामि कार्तिक इत्यादि के दृष्टान्तोंमें अनेक बातें कल्पित हैं। जैसे सीताराम के विवाहमें जड़ सूर्य का आना एवं जड़-ग्रन्थ वेद का नर शरीर धर कर आना आदि तथा नारद-मोह में काम का रूपवान् होना,क्षण ही में वसन्त ऋतु प्रकट करना, माया की प्रेरणा से श्री नगर १०० योजन का बसना, श्रीविष्णु का नारद को रूप देना और एक जन्म की बातें दूसरे जन्म में स्मरण रहना,पार्वतीजी के शरीर उब-टन से गणेशजी का होना, गणेश के कटेधड़ पर गजासुर का शिर रखकर जिला देना, सोने के घड़े में वीर्य रखने से स्वा-मिकार्तिक का जन्म होना,छः मुख होना आदि अनेक बातें बिल्कुल कल्पित हैं।

यहाँ इन दृष्टान्तों से यही लेना है कि अपना कर्म-फल-भोग सबको भोगना पड़ता है। चेतन जीव के अतिरिक्त कोई विशेष कर्ता नहीं है। अपना कर्म सुधारना चाहिये। ज्ञान-वैराग्य धारण कर और सब कर्म संस्कारों को भस्म कर मुक्त हो रहना चाहिये। नारद-मोह के दृष्टान्त से यह भी

शिक्षा लेनी चाहिये कि अपने ज्ञान का अभिमान नहीं धारण करना चाहिये। यह खूब दृढ़ रखना चाहिये कि यदि सावधानी पूर्वक साधन-सत्संग में रत रहेंगे, तो माया कुछ न कर पायेगी। माया कहीं ऊपर आकाश में नहीं बैठी है, कि शिर पर कूदकर चढ़ बैठेगी। मन की भूल ही माया है। हाँ! यदि सत्संग, सत्साधन और सावधानी छोड़दी जायगी, तो भुलावन रूप शरीर-प्रारब्ध और संसार में मनुष्य अवश्य भूल जायगा। अतः सावधान!

शिक्षासार— जीव कोटि के ऊपर कोई अन्य कर्ता नहीं है। राम-कृष्णादि जिन अवतारों को लोग कर्ता मानते हैं, वे भी हम लोगों की भाँति मनुष्य जीव थे, वे भी अपने शुभाशुभ कर्म-फलों को भोगे हैं। अतः हमें सद्गुरु-शरण लेकर अपने सद्पुरुषार्थ, सत्संग-साधन का भरोसा करना चाहिये और बोध-वैराग्य धारण कर कर्म-जाल को तोड़कर मुक्त हो जाना चाहिये।

५६—(वसन्त-१२)

हमरे कहलक नहिं पतियार।
आप बुड़े नर सलिल धार॥१॥
अन्धा कहै अन्धा पतियाय।
जस बिस्वा के लगन धराय॥२॥
सो तो कहिये ऐसो अबूझ। -

खसम ठाढ़ ढिग नाहीं सूझ ॥३॥
आपन आपन चाहैं मान।
झूठ प्रपञ्च साँच करि जान ॥४॥
झूठा कबहुँ न करि हैं काज।
हौं बरजौं तोहिं सुनु निलाज ॥५॥
छाड़हु पाखण्ड मानहु बात।
नहिं तो परबेहु यम के हाथ ॥६॥
कहहिं कबीर नर किया न खोज।
भटकि मुवा जस वन के रोझ ॥७॥

हमारे निष्पक्ष पारखज्ञानकी बातों पर भूले लोग विश्वास नहीं करते। अपने आप कल्पित वाणी और विषय की धारा में डूबे जाते हैं ॥ १ ॥ पारख हीन अविवेकी के कहने से यह अविवेकी जीव विश्वास करता है। जैसे वेश्या का अनेकों पति (लगवारों) से लगन (समागम) रहता है। तैसे इन विश्वासी जीवों ने नाना देवी-देवादि गुरुओं से सुन कर उन्हें अपना पति (इष्ट) मान लिया है ॥ २ ॥ सो तो इस जीव को ऐसा अविवेकी कहना चाहिये कि नाना मत वादी कल्पित कर्ता पति को जीव के पास कल्पना करके खड़ा करते हैं। परन्तु जीव विना विवेक-विचार किये मान लेता है। इसे यह नहीं समझ पड़ती कि यह कल्पना है। अथवा जीव

इतना अविवेकी हो गया है कि "अपना पारख स्वरूप चैतन्य, जो अपने आप अपना पति है, वह मैं ही हूँ, अन्य देवो देवादि कल्पना व्यर्थ है"—यह नहीं सूझता ॥ ३ ॥ सब मतवादी अपना अपना मान चाहते हैं। और मिथ्या प्रपंच कल्पना को ही सत्य करके मानते हैं ॥ ४ ॥ परन्तु मिथ्या देवी-देवादि कभी जीवका कल्याण नहीं कर सकते। ऐ निर्लज्ज जीव! तू सुन! मैं तेरे को मना करता हूँ कि तू सब पाखण्डों को त्याग दे और मेरे सत्य पारख-बोध को मान ले। नहीं तो तू भ्रमिक, वाणी, काम, अबला और मन रूपी काल के हाथ बारम्बार पड़ेगा ॥ ५-६ ॥ सद्गुरु श्रीकबीर साहेब कहते हैं—इस मनुष्य ने यथार्थ पारखज्ञान की खोज नहीं किया। और जङ्गल के नीलगाय के समान भ्रमते ही मरा ॥ ७ ॥

व्याख्या—जिन्हें अपने मत, सिद्धान्त का पक्षपात रहता है, वे भूले भाई निष्पक्ष विवेकी सन्तों के निर्णयों को नहीं मानते और अपने मत के कल्पित मानन्दी की धारा में ही डूबे रहते हैं। परन्तु यह विवेकी का कार्य नहीं है। क्योंकि इस चेतन जीव का किसी सिद्धान्त, किसी मत-मजहब से मुख्य सम्बन्ध नहीं है। जिस मत, पथ, सिद्धान्त और जिस ग्रन्थ से जीव का दुःख छूट जाय एवं भास, अध्यास, अनुमान और कल्पना का नाश होकर जीवन्मुक्ति दशा दृढ़ हो जाय। वही सिद्धान्त वही ग्रन्थ-पन्थ विवेकी

को मान्य होना चाहिये। यह नहीं कि "जिस मत में पहले पड़ गये हैं, बस उसी मत की मान्यता में और उसी ग्रन्थ के वाक्यों में अपनी बुद्धि को सीमित कर दे।" मनुष्य को सत्संग में स्वच्छन्द निर्णय-विचार करके सत्य निर्णय मानना चाहिये। साखी प्रकरण में आप ग्रन्थकर्ता ने कहा है—

साखी—हीरा सोई सराहिये, सहै घनन की चोट।
कपट कुरङ्गी मानवा, परखत निकरा खोट॥१६८॥

अर्थात्—"सिद्धान्त वही सराहनीय है, जो अनेक तर्कों से न कट सके। और कपटी भ्रमिक मनुष्य का मत (सिद्धान्त) तो परखते ही कच्चा निकल जाता है॥"

अनेक दुआ-भभूत, टोना-टामर करने वाले, यन्त्र-तन्त्र बाँधने वाले, जीव के ऊपर देवी-देवादि बतलाने वाले, परोक्ष भास कर्तार एवं ओत-प्रोत कहने वाले और तीर्थ-मूर्ति में फिराने वाले भूले लोगों का कहा संसारी जीव मानते हैं। जैसे वेश्या के नाना लगवार होते हैं। इसी प्रकार नाना गुरुओं ने इस स्वतन्त्र चैतन्य जीव के ऊपर कल्पना करके नाना देवी-देवादि सिद्ध कर दिया है। चौबीस अवतार, त्रि-देव, सूर्य, योगमाया, गणपति, हनुमान, निर्गुण, सगुण, साकार, निराकार, ब्रह्म, पिशाच, भूत-बेताल, डाकिनी-शाकिनी, काली, दिउहार, भैरव-बटुक, मरी-मशान, जिन्द, नट्ट-बीर, दुर्गा-दानवी पीपर-पाकर, माटी-गोबर, पानी-पत्थर, अष्टधातु एवं नाना देवी देव कर्तादि को जीव के ऊपर बतला-

कर स्वतन्त्र जीव को परतन्त्र बना दिया है। परन्तु यह अविवेकी मनुष्य इतना विश्वासी हो गया है कि मानता जाता है। अपने स्वरूप को नहीं परखता। अतः मनुष्य को विवेक पूर्वक अपने पारख स्वरूपका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

अपने-अपने सम्प्रदाय और मत का जो लोग मान करते हैं और पक्ष लेते हैं और अपनी झूठ बात को भी सत्य कहकर सिद्ध करते हैं। वे ठीक नहीं करते हैं। क्योंकि झूठी बातें कभी भी जीव को मोक्ष नहीं दे सकतीं। मोक्षदायी तो स्वरूप-ज्ञान परिचायक सत्य पारख सिद्धान्त ही है। इसीलिये सब मानव बन्धुओं से गुरु कहते हैं कि हे भाई। मिथ्या कल्पित पाखण्ड को छोड़ दो और सत्य निर्णय बात को मानो। अन्यथा बारम्बार जन्म-मरण चक्र में घूमना न छूटेगा। अतएव जिन्हें भवसागर से पार होना हो, वे मत-पथ का पक्ष त्याग कर और निर्मानता पूर्वक विवेकी पारखी सद्गुरु की शरण लेकर विवेक-विचार करें।

शिक्षासार— किसी मत, पथ, सम्प्रदाय और ग्रन्थ से इस जीव का मुख्य सम्बन्ध नहीं है,अतएव सब मानव-बन्धुओं से नम्र निवेदन है कि नाना-मत-पथ-सम्प्रदाय और ग्रन्थ के पक्ष को त्याग कर अपने कल्याणार्थ निर्मानता पूर्वक विवेकी पारखी सन्तों के सत्संग में सत्य स्वरूपज्ञान की खोज करें और अपने पूर्व भूल कृत मान्यताओं को त्यग कर सत्यस्वरूप में सद्गुण और सद्साधन युक्त दृढ़स्थित होवें।

शब्द

हमारे मन भरम से दूरि रहो ॥ टेक ॥

जड़ चेतन दो वस्तु अनादी, तीसर और न हो ।
जड़ चौ तत्त्व जीव नित नाना, उभय सबन्ध गहो ॥१॥
जड़ के गुण धर्मन से षट् ऋतु, सृष्टि कला सबहो ।
जग अनादि नहिं आदि अन्त कोइ, चेतन ध्यास गहो ॥२॥
पंच विषय अरु देह मोह से, पुनि पुनि जन्म लहो ।
तजि सम्बन्ध-राग जड़ जग से, मुक्त विदेह रहो ॥३॥
बन्ध मुक्ति का और न दाता, ईश्वर ब्रह्म जहो ।
राग अबोध बन्ध, अरु मुक्ती ज्ञान विराग सहो ॥४॥
बोध प्रखावन हार पारखी, सद्गुरु-सन्त महो ।
तिनकी शरण लागि संसृति तरि, नहिं अभिलाष बहो ॥५॥
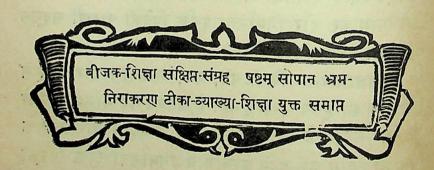
॥ सोपान-फल ॥

अब सब भ्रम-तम का हुआ भंग ।

जड़-चेतन दो वस्तू अनादि,
आरम्भ-हीन, नहिं जगत्-आदि ।
याते कर्ता-गत जगत् नित्य,
जड़-रहित जीव अविकार दित्य ।
नाना चेतन अविचल अभंग ॥अब० ॥१॥

मिश्रित व्यापक मत का विछेद,
प्राकृतिवाद-तम का उछेद ।
कल्पित वाणी का महा जाल,
कट गयी खानि माया कराल ॥
मिट गया मनोमय मल कुरंग ॥अब०॥२॥

सत्-पथ प्रशस्त पारख प्रकाश,
सद्गुरु कबीर का ज्ञान खास ।
मन-माया परख विजाति डार,
निज स्थित पारख निर अधार ॥
चढ़ गया यही अब परख रंग ॥अब०॥३॥

॥ सप्तम-सोपान-महिमा ॥

चेतन साक्षी तू नित्य सत्य ।
तन-मन-इन्द्री स्थूल सूक्ष्म ।
इन सर्व दृश्य से आप घूम ॥
तू नित्य तृप्त अरु पूर्ण काम ।
अज अविनाशी निष्काम-धाम ॥
भ्रम से मन का तू बना भृत्य ॥चेतन०॥१॥
सत-शील-धीर गहि दृढ़ विराग ।
भक्ती सुसंग साधन अदाग ॥
सद्-रहनी में नव नेह जाग ।
निज स्थिति के अभ्यास पाग ॥
तज दे चिन्ता तन-धन असत्य ॥चेतन०२॥
जीवों का जो उद्देश्य मुख्य ।
दुख की निवृत्ति होना अमुख्य ॥
जीवन्मुक्ती का पूर्ण साज ।
करलो है अवसर मिला आज ॥
सोपान सप्त का यह वदत्य ॥चेतन०॥३॥

सद्गुरवे नमः

बीजक-शिक्षा

(संक्षिप्त-संग्रह)
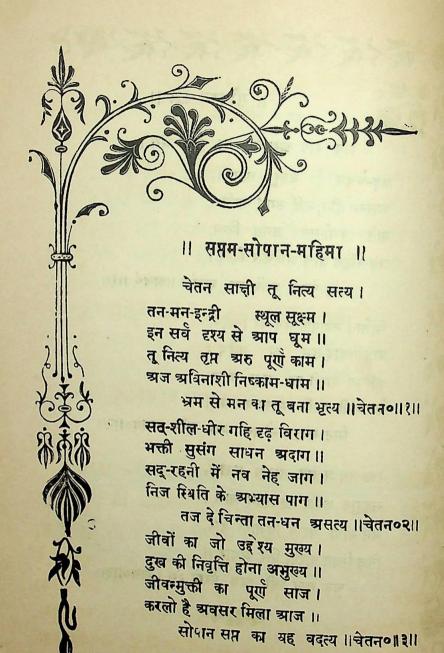
टीका-व्याख्या-शिक्षा युक्त

सप्तम् सोपान

सामूहिक-विषय साखी

१—(साखी—१)

जहिया जन्म मुक्ता हता, तहिया हता न कोय।
छठी तुम्हारी हौं जगा, तू कहँा चला विगोय ॥

जब-जब जीव मुक्त-जन्म अर्थात् स्वतन्त्र नर देह में था या वर्तमान में है, तब-तब तीन खानि की विवशता के बन्धन न थे और न आज हैं। बल्कि अन्नमयादि पञ्च कोशों से रहित जीव का उद्धारक छठी हंस भूमिका (सदाचरण, सद्गुण-समूह) नर शरीर के अन्तःकरण में है, उसको ठुकराकर तुम्हें सांसारिक पदर्थों का अहंकार जागता रहा। सो

हे जीव ! तू अपना कल्याण-साधन नष्ट कर कहाँ पतन-पथ में चला ॥ १ ॥

व्याख्या—इस साखी पर कुछ सज्जन शंका करते हैं कि 'जहिया जन्म मुक्ता हता, तहिया हता न कोय ।' अर्थात् 'जब जीव मुक्त था, तब कोई बन्धन न था । अर्थात् यह जीव शुद्ध-मुक्त था ।' तो यह शंका व्यर्थ है । क्योंकि इस ऊपर की पंक्ति का जो यह अर्थ लगाया गया है कि 'जब जीव मुक्त था । तब कोई बन्धन न था ।' तो यह अर्थ ही अनर्थ है । क्योंकि यदि मूल पद में ऐसा होता कि "जहिया जीव मुक्ता हता" तब तो यह अर्थ करना उचित था कि जीव कभी मुक्त था, परन्तु जब 'जीव-मुक्त' के अतिरिक्त 'जन्म-मुक्ता' मूल पद में है तो कभी जीव मुक्त था, यह शंका ही अयुक्त है । क्योंकि जीव का अर्थ अविनाशी चेतन है और जन्म का अर्थ यहाँ नर-जन्म (मनुष्य-शरीर) है । जो मूल पद में जन्म के साथ मुक्तापद का प्रयोग है,इसका अभिप्राय यह है कि यह नर-जन्म (मानव-शरीर) मुक्त अर्थात् स्वतन्त्र भूमिका या मुक्तिदायी एवं कल्याण साधन करने योग्य है ।

इसके अतिरिक्त— यदि जीव कभी देह बन्धन से मुक्त होता, तो पुनः देह में न आता । देह-सम्बन्ध से रहित शुद्ध विदेह जीव को पुनः बन्धन में आने का कोई हेतु ही नहीं है । क्योंकि विदेह मुक्त जीव के पास तन, मन सूक्ष्म-स्थूल

कोई शरीर नहीं रहता है। अतएव इस साखी के ऊपर की पंक्ति का सरल-सीधा अभिप्राय यह है कि 'जीव जब-जब जन्म-मुक्ता (मुक्त-जन्म) अर्थात् मुक्तिदायी नर-जन्म में रहता है। तब-तब पशु, अण्डज और उष्मज—इन तीन खानियों के परतन्त्रता-मूढ़ता कृत कोई बन्धन नहीं रहते।' यथा—

"साधन धाम मोक्ष कर द्वारा ॥ रामायण ॥"

'छठी तुम्हारी' अर्थात् पञ्च कोशों से भिन्न सद्गुणों की छठी भूमिका का गुरु ने कल्याणार्थ निश्चय किया। पञ्चकोशों का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है—

अन्नमयकोश (स्थूलदेह) प्राणमयकोश (सूक्ष्मदेह) मनोमयकोश (कारणदेह) ज्ञानमयकोश (महाकारणदेह) और विज्ञानमयकोश (कैवल्य देह) है।

(१) गोलक इन्द्रियों का समूह, अन्न से सुरक्षित रहने वाली जो यह स्थूल काया है यही 'अन्नमयकोश' है। इसका कर्म मार्ग है।

(२) मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार और पञ्चप्राण का समूह जो अन्य तत्त्व युक्त, विशेष वायु से रचित है, जो सूक्ष्म शरीर या सूक्ष्म-देह कहा जाता है,*यही 'प्राणमय कोश' है। नाना देवी-देवादि मानकर इसका उपासना मार्ग है।

---

*—स्थूल-सूक्ष्म दो ही देह निर्णय से सिद्ध हैं और अन्य कारण, महा कारण और कैवल्य देह कल्पित हैं।

(३) मनः कल्पित ईश्वर मानकर योग करना, योग समाधि या सुषुप्ति अवस्था में मन, बुद्धि आदि चतुष्टय और जाग्रत-स्वप्नादि का लय होकर संस्कारों का बीज रूप से रह जाना कारण देह माने हैं, इसी को 'मनोमयकोश' कहते हैं इसका योग मार्ग है।

(४) व्यापक ब्रह्म ही जगत् का अभिन्न निमित्त उपादान कारण है, व्यापक ब्रह्मका अन्तःकरणों में पड़े हुए प्रतिविम्ब जीव हैं और माया में पड़ा हुआ प्रतिविम्ब ईश्वर है। अथवा शुद्ध ब्रह्म आश्रय माया जगत् का कारण है, वह ब्रह्म मैं हूँ। 'इत्यादि ऐसी मान्यता ही कारण देह का विस्तार है, इसी को 'ज्ञानमयकोश' कहते हैं इसका ज्ञानमार्ग है।

(५) जीव, ईश्वर, माया तथा जगत् इत्यादि कुछ नहीं सम्पूर्ण जैसा का तैसा एक मैं अद्वितीय आत्मा। इसी मान्यता को कैवल्य देह माने हैं औ सी को 'विज्ञानमय कोश' कहते हैं। इसका विज्ञानमार्ग है।

पञ्चकोश का दूसरे प्रकार वर्णन

अन्नमय—अन्न से सुरक्षित रहने वाला इन्द्रियादिकों का समूह स्थूल शरीर को अन्नमय कोश कहते हैं। इसका कर्म मार्ग मानते हैं।

प्राणमय—अपान, समान, व्यान, उदान और प्राण इन पञ्च प्राणों का समूह, जो स्थूल शरीर-इन्द्रिय को सत्ता

देता है। इसे प्राणमय कोश कहा जाता है। इसका उपासना मार्ग मानते हैं।

मनोमय—सवस्मृतियों (यादगीरियों) का केन्द्र जो मन है, जो प्राणमय कोश को सत्ता देता है। इसे मनोमय-कोश कहते हैं। इसका योग मार्ग माने हैं।

ज्ञानमय—सत्य-असत्य निर्णय करने का साधन जो बुद्धि है, जो मन को सत्ता देती है। इसे ज्ञानमय कोश कहा जाता है। इसका ज्ञान मार्ग माना है।

आनन्दमय—कल्पित ब्रह्मानन्द या विषयानन्द का अहंकृत समूह जो अहंकार है, जो बुद्धि को भी सत्ता देता है। इसे आनन्दमयकोश कहते हैं। इसका विज्ञान मार्ग माने हैं।

उपरोक्त वर्णित पञ्च कोशों के प्रपंच बन्धनदायी हैं। अतएव इन पाँचों कोशों के बन्धनों को त्याग कर छठी 'हंस-भूमिका' है, जिसे मानवता या सद्गुण-समूह कहा जा सकता है, वह कल्याणदायी है। उसे धारण करना चाहिये। उसका स्वरूप यह है—दया, शील, विचार, सत्य, धैर्य, पारख-बोध, वैराग्य और गुरु-भक्ति—ये मुख्य हैं। इसके साथ-साथ शम-दम, सन्तोष, तितिक्षा, क्षमा, अस्तेय, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, असंग्रह आदि जहाँ तक दैवी-सम्पत्ति, साधु-सम्पत्ति या सद्गुण-सदाचरण हैं। यही 'हंस-भूमिका' का स्वरूप है।

मुक्तिदायी नर-जन्म प्राप्त कर इसी 'हंस-भूमिका' का आचरण धारण करना चाहिये। तभी मनुष्य माया के बन्धनों से छूटकर जीवन्मुक्त और प्रारब्धान्त में विदेह मुक्त हो जायगा। जीवन्मुक्त जीव के शरीर छूटते समय 'हंस-भूमिका' (सद्गुण-सदाचरण) का आप ही देह के साथ अभाव हो जायगा। रोग रहने पर औषध की आवश्यकता है, रोग की निवृत्ति-उपरान्त औषध की क्या आवश्यकता ? अतएव जीवन्मुक्त के देह-नाश के साथ-साथ 'हंसभूमिका' का भी अभाव होकर शुद्ध पारख विदेह मुक्त सदैव के लिये ठहर जाता है। क्योंकि जिसमें अपनी स्थित होती है, वह हंस भूमिका से भी भिन्न, अपना स्वरूप ही है। हंस भूमिका तो सद्गुण-सदाचरण को कहते हैं, जो कि स्थिति के सहायक हैं और स्थिति की भूमिका स्व-स्वरूप चैतन्य पारख है।

इसीलिये श्री कबीर साहेब ने कहा है 'छठी तुम्हारी' अर्थात् हे जीव ! तुम्हारे मोक्ष को सिद्ध करने के लिये पञ्च-कोशों से भिन्न सद्गुण धारण रूप छठी * 'हंस-भूमिका' है। परन्तु इस जीव को स्त्री, पुत्र, धन, घर तथा शरीरादि का 'हौं जगा' अर्थात् अहंकार जाग्रत हुआ। अतएव जीव की ऐसी भूल देखकर पुनः श्री कबीर साहेब जीव को सावधान

---

* चौपाई—"छठईं सत्य भूमिका भारी। सतईं पारख भूमि निनारी ॥" निर्णय०

करते हैं—'तू कहाँ चला विगोय' अर्थात् हे जीव ! स्वतन्त्र नर-शरीर के मुक्तिदायी 'हंस-भूमिका' के आचरणों को खो कर तू कहाँ खानी वाणी के माया-मोह में बहा जा रहा है ? शीघ्र चेत और अपना उद्धार कर।

'छठी तुम्हारी हौं जगा, तू कहाँ चला विगोय।' इसका दूसरा अर्थ यह भी किया जा सकता है कि शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये पाँच विषयों का अध्यास जहाँ अङ्कित है, वह छठा मन है, सो उस छठे मन में जीवों को माया का अभिमान जाग्रत होता रहता है। जिससे जीव मुक्त न होकर भव-बन्धन में पड़ा रहता है। जब सब अहंकार-आसक्ति त्याग कर स्वरूप में स्थित हो जाता है, तब मुक्त हो जाता है।

शिक्षासार—मनुष्य शरीर स्वतन्त्र कल्याण-साधन का धाम है। अतः माया का मद त्याग कर सद्गुण-सदाचरण पूर्वक अपना कल्याण करना चाहिये।

२—(साखी—४)

शब्द बिना सुरति आँधरी, कहो कहाँ को जाय।
द्वार न पावे शब्द का, फिर फिर भटका खाय॥

सारशब्द के बिना जीव का लक्ष्य अन्धा है, कहो भला ! वह कहाँ जायगा ? सारशब्द का द्वार न पाने से मनुष्य का लक्ष्य पुनः-पुनः भ्रमता रहता है ॥४॥

व्याख्या—जीवमुख, मायामुख, ब्रह्ममुख और गुरुमुख-

चार प्रकार के शब्द होते हैं। प्रथम के तीन मुख के शब्द जीव के बन्धन दायी हैं और चौथा गुरुमुख ही यथार्थ सार-शब्द एवं निर्णीत वचन है। यहाँ सारशब्द यथार्थ निर्णय वाक्य को माना गया है। कान मूँद कर ब्रह्माण्ड के नाद सुनते हैं—उसको नहीं। तात्पर्य यह है कि नाना मत के गुरु लोग नाना प्रकार के रोचक-भयानकादि कल्पित शब्द ग्रन्थों में कहे हैं। उनको पढ़-सुनकर सब मनुष्य जीव खानी-वाणी के बन्धनों में भूले हैं। पारख ज्ञान युक्त निर्णय वचन (सारशब्दों) के विना जाने जीव का लक्ष्य भ्रमित है। जिस किसी प्रकार कल्पित वाक्यों को जीव सुनता है, विना पारख उसे सत्य मान लेता है। अतएव कल्पित वाणी की कसौटी रूप सारशब्द (पारख निर्णीत वचन) रूप द्वार न पाने से जीव खानी वाणी जाल में भ्रमता रहता है।

शिक्षासार—खानी-वाणी जाल को परखने के लिये सार-शब्द की बड़ी आवश्यकता है। "सारशब्द निर्णय को नामा। जाते होय जीव को कामा॥ पञ्चग्रन्थी"

३—(साखी—१)

शब्द शब्द बहु अन्तरे, सार शब्द मथि लीजै।
कहहिं कबीर जहाँ सारशब्द नहिं, धृग जीवन सो जीजै॥

रोचक, भयानक, और यथार्थ इत्यादि शब्दों में बड़ा भेद है, अतएव निर्णय करके सारशब्द ग्रहण कर लीजिये।

सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—असार शब्द त्यागकर सार-शब्द का ग्रहण जहाँ नहीं है, उस मनुष्य का जीना धिक्कार है॥

व्याख्या—जो लोग किसी मत-ग्रन्थ के वाक्यों को बिना निर्णय-विचार किये भावुकता वश अपने बन्ध-मुक्ति का कारण मान लेते हैं, वे ठीक नहीं करते। बिना विवेक-निर्णय में जँचे बात मान लेने में मनुष्य की हानि होती है। सारशब्द निर्णय वाक्य रूपी कसौटी अपने पास रखना चाहिये जिससे सबके वाणियों को परखा जा सके। यथा—जब तक ना देखै निज नैना। तब तक न मानै गुरु के बैना ॥पञ्चग्रन्थी॥

शिक्षासार—यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति बिना नर-जीवन व्यर्थ है।

४—(साखी--८)

जिन जिन सम्बल ना कियो, अस पुर पाटन पाय।
झालि परे दिन आथये, सम्बल कियो न जाय ॥

ऐसा उत्तम स्वस्थ नर-जन्म और पारखी सन्तों का सत्संग प्राप्त कर भी जिन-जिन लोगों ने अपनी जीवन्मुक्ति स्थिति या परलोकी धन न बना पाया। वृद्धावस्था आने या शरीर छूटते समय मनुष्य से कुछ भी कल्याण-साधन नहीं किया जा सकेगा ॥ ८ ॥

व्याख्या— 'पुर' का अर्थ है—नर-तन और 'पाटन' का भाव है—सत्संग। सो ऐसा नर-तन और सत्संग बड़े

सौभाग्य से मिला है। ऐसा साधन-धाम उत्तम नर तन और शान्ति-सुमति तथा सद्ज्ञानदायी सत्संग को प्राप्त कर भी जो लोग अपना कल्याण-साधन नहीं करते हैं, वे बड़ी भूल करते हैं। ऐसा अवसर शीघ्र पुनः मिलना बड़ा दुर्लभ हो जायगा। मनुष्य को चाहिये कि वैराग्यशील पारखी सद्गुरु की शरण लेकर और सब जगत्-कामना त्याग कर तथा मन-इन्द्रियों को स्वाधीन कर जीवन्मुक्ति स्थिति आज बना ले। जीवन पर्यन्त मन शान्त करके स्ववश स्वरूप लक्ष्य में दृढ़ स्थित रहे—यही जीवन लाभ है। यदि मनुष्य यह न कर सके, तो भक्ति, धर्म, परोपकारादि करके लोक में सुखी रहे और परलोक का सम्बल (खर्चा) कमा ले। यदि मनुष्य मोक्ष न बना पाया और धर्मादि करके लोक-परलोक भी न बना पाया, तो वह मनुष्य पशु से भी नीच गति को प्राप्त होकर बड़ा दुःख पायेगा।

इसके अतिरिक्त अपने कल्याण-साधन करने तथा धर्म-परमार्थ कमाने के लिये वादा (टाल मटोल) तो बिल्कुल करना ही नहीं चाहिये। क्योंकि इस जीवन का किञ्चिन्मात्र भी भरोसा नहीं किया जा सकता। यह क्षण-पल में न रहने वाली वस्तु है। फिर भी यदि अभी यह कुछ दिन रह भी जाय,तो भी नवयौवन या स्वस्थ अवस्था के बीत जाने पर जब अत्यन्त वृद्ध अवस्था आ जायगी और इन्द्रियअन्तःकरण में झाल पड़ जायगी, अर्थात् सब इन्द्रियाँ निकम्मी हो

जायँगी। आँख से दिखाई न देगा, कान से सुनाई न पड़ेगा। हाथ-पैर निर्बल हो जायँगे या मन में कोई दृढ़ निश्चयता तथा विवेक जाग्रत करने की शक्ति न रहेगी। यदि प्रथम से कल्याण-साधन करके परमार्थ का बल प्राप्त नहीं है। तो इस अवस्था में अपना कल्याण-साधन किया जाना बड़ा दुर्गम हो जायगा। अथवा यदि मनुष्य स्वस्थ स्ववश अवस्था में धर्म-परमार्थ नहीं कर लेता, तो अस्वस्थ वृद्ध अवस्था में जबकि वह पराये के अधीन हो जायगा, तब क्या कर सकेगा ? अतएव प्रथम मनुष्य को चेत जाना चाहिये।

शिक्षासार— उत्तम नरतन और पारखी सन्तों का सत्संग मिलना दुर्लभ है, फिर भी आज वह मिला है। अतएव ऐसी योग्यता पाकर वृद्धावस्था और असाध्य रोग जब तक दूर है, मनुष्य को अपना कल्याण-साधन और धर्म-परमार्थ बना लेना चाहिये। घर में आग लगने पर कूप खोदने से कोई काम नहीं बनता।

५—(साखी— ४)

इहाईं सम्बल करले, आगे विषयी बाट।
स्वर्ग बिसाहन सब चले, जहाँ बनिया न हाट ॥

इस नर जन्म और पारखी सन्तों के सत्संग में अपनी जीवनमुक्ति स्थिति या धर्म-परमार्थ कर लो, अन्यथा आगे तीन खानि या खानी-वाणी जाल केवल विषय के मार्ग हैं।

जहाँ वणिक-बाजार कुछ नहीं, वहाँ सब जीव स्वर्ग खरीदने चले। कितनी अज्ञानता है जग में !॥ ९ ॥

व्याख्या— सत्संग करना, यथार्थ निर्णय करना, स्वरूपज्ञान प्राप्त करना, हिंसा, मद्य, मांस, मैथुन, नशा, नाच-रंग इत्यादि मनःकल्पित भोगों का त्यागकर मन-इन्द्रियों का जीतना, स्वपारख स्वरूप में स्थित होकर जीवन्मुक्ति दशा में विचरना एवं धर्म-भक्ति परमार्थ करना— इन्हीं सब का नाम सम्बल (जीव के शान्ति का साधन) है। यह सब कार्य इसी नर-जन्म में कर लेना चाहिये। क्योंकि यह सब कार्य नर-जन्म में ही हो सकता है, अन्य पशु, अण्डज और उष्मज खानि में नहीं। वह तो केवल भोग खानि है। इसके अतिरिक्त यथार्थ स्वस्वरूप का ज्ञान और कल्याण दशा की प्राप्ति पारखी सन्तों की संगत में ही होगी और आगे स्त्री, पुत्र धन, घर और मित्र-गोष्ठी आदि खानी जाल तथा देवी-देव स्वर्गलोक, कर्ता-ओतप्रोत व्यापक वाद आदि वाणी जाल एवं लोक-वेद सब विषय के मार्ग हैं। कोई यथार्थ स्वरूप परिचायक नहीं हैं। अतएव नर-जन्म और पारखी सन्तों की संगत पाकर अपने कल्याण-साधन से चूकना नहीं चाहिये।

जैसे कोई प्रमादी मनुष्य शून्य स्थान पर स्वर्ग खरीदने जाय, तो उसके मन की दौड़ ही मानी जायगी। क्योंकि न स्वर्ग कोई यथार्थ वस्तु है और न शून्य कोई यथार्थ वस्तु है। इसी प्रकार खानी-वाणी जालों से सुख और कल्याण

की आशा करना अपनी अज्ञानता का परिचय देना है।

शिक्षासार—नर-जन्म और पारखी सन्तों का सत्संग कल्याण-साधन में अधिक महत्वशाली हैं।

६—(साखी—१०)

जो जानहु जिव आपना, करहु जीव को सार।
जियरा ऐसा पाहुना, मिलै न दूजी बार॥

यदि अविनाशी जीव को अपना यथार्थ स्वरूप समझो, तो उस अपने जीव स्वरूप को सार अर्थात् स्थित करो। इस नर-जन्म में जीव पहुनावत् आया है, दुबारा शीघ्र आना दुर्लभ है॥ १०॥

व्याख्या—कुछ मत के लोग ऐसे हैं कि जो इस जीव को प्रतिविम्ब, अंश-टुकड़ा, किञ्चिज्ञ, स्वरूप से बन्धन युक्त मानते हैं, और कुछ लोग कहते हैं कि "जीव के स्वरूप में इच्छा, प्रयत्न, सुख-दुःखादि हैं। अतएव जीव सदा के लिये मुक्त हो ही नहीं सकता। और इस जीव के ऊपर ईश्वर-ब्रह्म या दैव गोसैयाँ है, वही सब कुछ है।" परन्तु यह नाना मतों की निरी कल्पना और भूले लोगों के मन का स्वप्न है। जो चेतन जीव अविनाशी सत्य है, केवल वासना-आवरण से बँधा है, अन्यथा स्वरूप से इच्छा, प्रयत्न, सुख-दुःख, राग-द्वेषादि रहित सर्वथा शुद्ध-बुद्ध और मुक्त है। ऐसे चेतन जीव को तो प्रतिविम्ब, अंश और स्वरूप से सरुज मान लिये

और जो कर्ता-व्यापकादि खपुष्प वत् सर्वथा असत्य है, उसे सत्य, शुद्ध मान लिये, कितना अन्धेर है ? अतएव लोक-वेद खानी-वाणी सबकी कल्पना करने वाला चेतन जीव ही सत्य अपरोक्ष और शुद्ध-बुद्ध पदार्थ है। वही अपना स्वरूप है, अर्थात् वही मैं हूँ।

'जानहु जिव आपना' के प्रथम जो श्री कबीर साहेब ने 'जो' पद लगाकर ऐसा कहे हैं कि 'जो जानहु जिव आपना' उसका भाव यह है कि बहुत से लोग जीव को प्रतिबिम्ब-अंश या बन्ध रूप मानकर स्वयं कल्पित ब्रह्म बनते हैं। उनके लिये तो कुछ कहना ही नहीं है,परन्तु 'जो' नाम यदि कोई विवेकी इस अविनाशी चेतन जीवको'आपना' अर्थात् अपना यथार्थ स्वरूप समझता हो, तो उसे चाहिये कि वह अपने जीव एवं स्वरूप को 'सार' अर्थात् साधनयुक्त स्थित कर ले। यह जीव इस नर-देह में पहुना के समान थोड़े दिन के लिये आया है। यदि इसने अपना पूर्ण कल्याण-साधन न किया, तो मुक्त तो होगा ही नहीं। परन्तु यदि मानवता का आचरण न रखा, तो जीव पुनः शीघ्र नर-जन्म रूप आतिथ्य का अतिथि भी न हो सकेगा। अर्थात् नर-जन्म में आकर शीघ्र कल्याण दशा से मिल भी न पायेगा। अतएव मनुष्य को साधन करके मोक्ष प्राप्त कर लेना चाहिये और यदि मोक्ष प्राप्त न कर सके, तो हिंसा, चोरी, व्यभिचार, अधिक विषयासक्ति झूठ, छल, जबर्दस्ती, अभक्ष्य भोजन आदि पाप-

कर्म त्याग कर भक्ति, सत्संग, और धर्मादि कर के पुनः मानव-तन-प्राप्ति का तो अवश्य अधिकारी होना चाहिये।

शिक्षासार—मल, विक्षेप, आवरणोंसे सर्वथा रहित जीव का स्वरूप बिल्कुल शुद्ध-मुक्त और नित्य है, वही मैं हूँ। केवल जड़-वासना के आवरण से बन्धन है। तिसे त्यागकर हमें आज नर-जन्म में मुक्त हो जाना चाहिये।

७—(साखी—११)

जो जानहु जग जीवना, जो जानहु सो जीव।
पानि पचावहु आपना, तो पानि माँगि न पीव॥

संसार में यदि जीवन-कला (चेतन जीव) के अस्तित्त्व का बोध आप को है, और उस जीव ही को यदि आप अपना स्वरूप समझते हैं, तो विजाति विषय-वाणीकी आसक्ति ध्वंस करदो, और वाम-वञ्चक से विषय-वाणी की याचना करके पुनः ग्रहण न करो ॥११॥

व्याख्या—संसार में बहुत-से लोग ऐसे हैं कि जो चेतन जीव के अविनाशी होने और पुनर्जन्म होने का उन्हें ज्ञान ही नहीं है। परन्तु यह उन भाइयों की बड़ी भूल है। और यह मान्यता व्याघात दोष युक्त है। व्याघात दोष उसे कहते हैं, जैसे कोई कहे हमारे मुख में जीभ नहीं है या हमारा पिता बालब्रह्मचारी है। तो विचारिये! बिना उसके जीभ हुए वह यह कहता कैसे है कि 'हमारे मुख में जीभ

नहीं है' या उसका पिता जब बालब्रह्मचारी है, तो वह स्वयं कैसे पैदा हुआ ? इसी प्रकार जो कहते हैं कि संसार में केवल जड़-ही-जड़ है, चेतन कोई पदार्थ नहीं है। वे स्वयं सत्य चेतन हैं। उस बोलता सत्य चेतन के बिना जड़-पदार्थों को कौन जाने, कौन कथन करे ? उस सत्य चेतन के बिना जड़ का कोई मूल्य नहीं है। अस्तु ! जिन्हें चेतन पदार्थ का बोध है और अंश-अंशी, कर्ता-कारण-कार्य, व्याप्य-व्यापक भाव रहित उस अखण्ड-शुद्ध पारख स्वरूप चैतन्य जीव ही को अपना स्वरूप जानते हैं। उन्हें चाहिये कि पानी का अंश वीर्य और वीर्य का भाव कामासक्ति और पानी नाम वाणी अर्थात् देवी-देव, भास, अध्यास, अनुमान, कल्पनादि। सो कामासक्ति और कल्पित वाणी द्वारा नाना अनुमान-भ्रम जो मन में हैं। उन्हें विवेक से ध्वंस करदें और पुनः भ्रमिक नर-नारी से काम-कल्पना की याचना न करें। अर्थात् काम-कल्पना त्याग कर अपने चेतन जीव का उद्धार करें।

शिक्षासार—चेतन जीव शुद्ध-बुद्ध और अविनाशी है तथा वही अपना स्वरूप है। अतएव विषय-वाणी का अध्यास त्यागकर उसी में दृढ़ स्थित होना चाहिये।

८—(साखी—१२)

पानी पियावत क्या फिरो, घर घर सायर बारि।
तृषावन्त जो होयगा, पीवेगा झख मारि॥

उपदेश देते क्या फिरते हो ? घट-घटमें विषय-वासना और कल्पित वाणियों का समुद्र भरा है। जो निर्णय-वचन का प्यासा होगा, वह पक्ष त्याग कर स्वयं आप से निर्णय ग्रहण करेगा ॥ १३ ॥

व्याख्या—अपने विवेक-विचार और कल्याण-साधन को त्याग कर जो दूसरे को रात-दिन उपदेश देकर चेताने के लक्ष्य में विकल रहते हैं। उनके प्रति सद्गुरु का कहना है कि भाई ! अपना विचार-सुधार और स्थिति-साधन त्याग कर तुम क्यों उपदेश देने के लिये संसारियों के पीछे-पीछे लगे रहते हो। यह समझ लो कि सब जीवों को नाना कल्पित वाणियों का और अज्ञान तथा पाँचों विषयों के भोगों का पक्षपात दृढ़ है। जब तक उनका भी कुछ लक्ष्य न होगा, तब तक तुम्हारे उपदेश के झड़ी लगाने मात्र से उन्हें ज्ञान न होगा। और विचार रहित सब के सुधारने के फेर में पड़कर तुम्हारा ही बिगाड़ हो जायगा। अतएव यह विचार दृढ़ रखो कि जो तुम्हारे उपदेश का या कल्याण का इच्छुक होगा, वह अपना अभिमान त्याग कर और इच्छुक बनकर स्वयं तुम्हारे उपदेश को आकर ग्रहण करेगा। फिर उपदेश देने के पीछे विकल क्यों होते हो ?

शिक्षासार— अपना कल्याण-साधन करते हुए सहज भाव से अधिकारी को यथायोग्य शिक्षा देनी चाहिये। अपना

साधन-वैराग्य त्याग कर उपदेश देने के पीछे अशान्त नहीं होना चाहिये ।

९— (साखी— १४)

हंसा तू सुवर्ण वर्ण, क्या वर्णों मैं तोहिं ।
तरिवर पाय पहेलिहो, तबै सराहों तोहिं ॥

हे चेतन ! तू तो शुद्ध ज्ञान रंग है, मैं तेरे को क्या वर्णन करूँ ? परन्तु इस नर तन को पाकर सब बन्धनों को परीक्षा पूर्वक त्याग कर जब स्वरूप स्थिति करोगे, तभी मैं तुम्हारी प्रशंसा करूँगा ॥ १४ ॥

व्याख्या— 'हंसा' का भाव चेतन है, 'सु' कहते हैं शुद्ध को, और 'वर्ण' का अर्थ रंग है तथा वर्ण कहते हैं अक्षर को, अक्षर का अर्थ क्षर (नाश) रहित अविनाशी है । 'तरिवर' का भाव नर-देह है और 'पहेलिहो'का अभिप्राय समझना-परखना-बन्धन त्यागना है। यहाँ साहेब का कहना है— हे चेतन हंस ! तू शुद्ध ज्ञान रंग तथा अविनाशी है । ज्यों-का-त्यों तेरा स्वरूप कथन में नहीं आ सकता । अथवा देह सम्बन्ध लेकर तू ही सबका वर्णन कथन करने वाला है, फिर तेरे को कौन वर्णन करे ? तू सब जड़-पदार्थों का द्रष्टा शुद्ध ज्ञान रंग है और आँख, कान, नाक, जीभ और त्वचा से दिखते हुए रूप, शब्द, गन्ध, रस और स्पर्श तथा अन्तःकरण भास सर्व मनोमय जड़ विकारी कुरंग हैं । इस शरीर-संसार

में केवल तुझ चैतन्य की ही श्रेष्ठता है। परन्तु इस नर-जन्म में जो आये हो, तो पूर्वोक्त सब पञ्च विषय मनोमय का अभाव कर शम, दम, विवेक, वैराग्यादि पूर्वक यदि अपने चेतन पारख स्वरूप में दृढ़ स्थित होओगे, तो तुम्हारी प्रशंसा है। अन्यथा पशु खानि में जाने के समान नर-देह में भी तुम्हारा आना है।

शिक्षासार—चेतन जीव शुद्ध ज्ञान रूप और अविनाशी है, इसका नर-देह में आने का फल सद्पुरुषार्थ द्वारा मोक्ष की प्राप्ति है।

१०—(साखी—१५)

हंसा तू तो सबल था, हलकी अपनी चाल।
रंग कुरंगे रंगिया, तैं किया और लगवार॥

हे चैतन्य ! तू तो ज्ञान से अत्यन्त ठोस महान् शक्तिशाली है, परन्तु तू अपने दुराचरण से हलका हो गया है। तू बुरे भावों से भावित हो गया है, और भूलवश अपने सन्तुष्टि के लिये तू कामिनी-कल्पना रूप अन्य से सम्बन्ध जोड़ रखा है॥१५॥

व्याख्या—संसार में जड़ और चैतन्य—ये दो पदार्थ भिन्न-भिन्न अनादि और सत्य हैं। इन दोनों की शक्ति अपने-अपने क्षेत्रों में महान है। जड़ में चार तत्त्व-पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु हैं तथा चेतन जीव अगणित-अनन्त हैं। प्रथम

थोड़ी जड़ की शक्ति सुनिये—पृथ्वी अपनी धारणा शक्ति से अनन्त पदार्थों के सहित आकाश में निराधार स्थित है। इस पृथ्वी से अनेकों पदार्थ पेड़-पहाड़, वनस्पति, लोहा, ताँबा, राँगा, जस्ता, सोना, चाँदी, कोयला तथा सोरा-गन्धक इत्यादि उत्पन्न होते रहते हैं। भूकम्प आने पर पूरा हलचल हो जाता है। जल का अथाह स्थल समुद्र इस पृथ्वी में स्थित है। जल से बादल, वर्षा, वर्फ,ओला, पाला, नदी, नाला इत्यादि बनते रहते हैं। अखण्ड जल-वृष्टि में सारा प्रदेश जल मग्न होकर जहाँ-तहाँ गाँव, मनुष्य, नाना जन्तु और फसलों को डुबा देता है। पृथ्वी के ऊपर आकाश में वातावरण (वायु-मण्डल) स्थित है। आँधी-बौडर तूफान इससे बनते रहते हैं। यह कभी मन्द चलता, कभी तीव्र चलता अधिक तूफान आने पर वृक्षों को उखाड़ एवं तोड़ डालता, है, मनुष्यादि प्राणियों और नाना वस्तुओं को ढकेल देता तथा उड़ा ले जाता है। इसी प्रकार अग्नि का महान् पुञ्ज आकाश में सूर्य मण्डल है। यह निराधार अपनी शक्ति से स्थित है। इसका प्रचण्ड तेज सब को विदित ही है। इस अग्नि से बिजली चिराग, दीपक, गैस आदि के प्रकाश बनते हैं। यह जल, गीलावस्त्र, फसल, नमीभूमि को सुखाता है, वर्फ पिघलाता है इत्यादि।

इन चारों तत्त्वोंमें छः भेदहैं—धर्म, गुण, क्रिया, शक्ति, मेल तथा आकार। पृथ्वी, जल,तेज,वायु–इनका क्रमशः छः

भेद इस प्रकार है—

धर्म-कठोर, शीतल, गर्म (प्रकाश) और कोमल।

गुण—गन्ध, रस, रूप और शब्द तथा स्पर्श।

क्रिया—पृथ्वी के परमाणुओं में क्रिया है, जिससे नाना पदार्थ बनते हैं और साइंस के मत से पश्चिमसे पूर्व जाने की दैनिक क्रिया और एक वार्षिक क्रिया, जल का अधोगमन तेज का उर्ध्वगमन तथा वायु का तिरछीगमन।

शक्ति-धारण, रसायन, दाह्य तथा स्नेह।

मेल—चारों का चारों तत्त्वों से।

आकार—पृथ्वी-जल स्थूलाकार और अग्नि-वायु सूक्ष्माकार।

इस प्रकार इन चारों तत्त्वों के छः भेद होने से तत्त्वों में अनेक शक्तियाँ हैं। जिससे छः ऋतु[१] वर्षा, शीत, धूप इत्यादि होते रहते हैं। अतएव जड़तत्त्व अपने क्षेत्रमें महान शक्तिशाली हैं। इन चारों तत्त्वों में सुख-दुःख ज्ञानशक्ति कुछ नहीं है। अतएव ये केवल जड़ हैं।

पूर्वोक्त जड़-तत्त्वों से भिन्न अगणित चेतन जीव हैं, जो वासना-वश, मनुष्य, पशु-पक्षी और कृमि-कीटादि का शरीर धारण कर सुख-दुःख आदि का ज्ञान करते रहते हैं। और

१—चैत्र वैशाख वसन्त ऋतु, जेष्ठ-असाढ़ ग्रीष्म ऋतु, श्रावण-भाद्रव वर्षा ऋतु, कुवार-कार्तिक शरद ऋतु, अगहन-पौष हेमन्त ऋतु, माँघ-फाल्गुन शिशिर ऋतु, ये षट्ऋतु हैं।

नाना कर्म करते रहते हैं। अन्य खानिमें रहे हुए चेतन जीव अल्पज्ञ रहते हैं। केवल भोजन, मैथुन, निद्रा तथा भय आदि का उन्हें ज्ञान रहता है। परन्तु मनुष्य शरीर में रहा हुआ चेतन बहुत बुद्धिमान होता है। मनुष्य, पशु, अण्डज और उष्मज—इन चारों खानियों के चेतन एक समान ज्ञान रूप अविनाशी हैं। परन्तु जैसे भिन्न-भिन्न शक्ति वाले काँच का चश्मा लगाने से भिन्न-भिन्न प्रकार देखने की शक्ति हो जाती है। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न शक्तिवाले देहों में गये हुए चेतन को भिन्न-भिन्न शक्ति प्राप्त होती है। सब से श्रेष्ठ मानव-देह है। अतः मानव-देह में आया हुआ चेतन महान बुद्धिशाली रहता है। रेल, तार, मोटर, सिनेमा, हवाई जहाज, ग्रामोफोन, रेडियो एटमबम, अणुबम तथा राकेट इत्यादि नाना यन्त्र, कला कौशल आदि सारा चरित्र जड़ तत्त्व का आधार लेकर इस चेतन का रचा हुआ है। स्त्री-पुत्र, घर-धन, शरीरादि को निर्माण कर अपने आप उसमें फँसा है। जगत् को स्वतः अनादि न जानकर जगत् का कर्ता, व्यापक ब्रह्म, नाना देवी-देव, भूत-प्रेत, स्वर्ग-नर्क-यम-लोक, तथा नाना दैव लोकों की भूल वश मिथ्या कल्पना इस नर-देह में रहा हुआ चेतन जीव ही ने किया है। जिस चेतन से खानी-वाणी का अमित विस्तार है, वह चेतन उसी अपने बनाये जाल में उलझ रहा है।

इस देह में रहा हुआ चेतन-विज्ञानी जड़-विज्ञान(साइंस)

का शोधन और निर्माण करके उसी अपनी रचना जड़-विज्ञान में भूल गया। अपने आप विज्ञानी (चेतन स्वरूप) को कहता है कुछ नहीं है। और जो चेतन का रचा जड़-विज्ञान है। उस कृत्रिम-विज्ञान को कहता है यही सब कुछ है, इसी प्रकार चेतन जीव द्वारा कल्पित कर्ता-व्यापक देवी-देव इत्यादि जो कृत्रिम मनोमय हैं, उसे कहता है यही सब कुछ है और अपने-आप को कहता है मैं तो अल्पज्ञ, अंश, इच्छा प्रयत्न, सुख-दुःख वाला बन्धमान हूँ। कृत्रिम पंच विषय भोगों में आसक्ति टिकाकर उसी में आप भोक्ता बनकर चेतन अर्पण हो रहा है। अहो ! जिस चेतन की सत्ता मात्र से खानी-वाणी का बड़ाभारी विस्तार चल रहा है। जिस चेतन विज्ञानी ने जड़-विज्ञान कला-कौशल का शोधन करके हद कर दिया है। वही स्वतन्त्र शक्तिशाली महान् चेतन जीव अपनी कल्पनाओं का शिकार हो रहा है। शरीर, मन तथा इन्द्रियों का दास हो रहा है। यह अपनी सन्तुष्टि के लिये कर्ता-लोकादि और पञ्च-भोग बाह्य प्राणी-पदार्थों की आवश्यकता समझता है। इसी से जड़ प्रकृति क्षेत्र में ठोकरें खा रहा है।

शिक्षासार—चेतन जीव स्वरूप से स्वतः स्वतन्त्र, शुद्ध, अविनाशी और ज्ञान शक्ति से पूर्ण है। यह अपनी भूल और भोगों की आसक्ति वश बन्धमान है, अतः विषयाध्यास त्याग कर मुक्त हो रहना चाहिये।

११— (साखी— १७)

हंस बकु देखा एक रँग, चरे हरियरे ताल।
हंस क्षीर ते जानिये, बकुहिं धरेंगे काल ॥

हंस और बकुला एक रंग उज्ज्वल होते हैं, दोनों एक हरे-भरे तालब में चर रहे हैं। परन्तु उन दोनों की परीक्षा इस प्रकार कीजिये कि मिले हुए जल-दूध में से जल को त्याग कर हंस दूध ग्रहण कर लेगा, और बकुला काल रूप होकर मछली आदि जन्तुओं को धर खायेगा ॥ १७ ॥

व्याख्या— यह संसार एक हरा-भरा ताल है, विवेकवान्-वैराग्यवान् सन्त हंस हैं, अविवेकी भेषधारी बकुला हैं। परन्तु दोनों का भेष उज्ज्वल एक समान साधु का है। फिर इनकी परीक्षा कैसे किया जाय ? सो सुनो ! जो हंस वत् विवेकवान्, वैराग्यवान् सन्त होंगे वे स्त्री के दृढ़ त्यागी होंगे। घर, धन, स्त्री, पुत्र, नात, गोत में रागवान् नहीं होंगे। मन-इन्द्रियों को जीते होंगे। कामी, क्रोधी, लोभी, मोही और मदी नहीं होंगे। भोगों से उपराम होंगे। पक्षपाती, हठी, ईर्ष्यालु और आपास्वार्थी नहीं होंगे। जड़वाद, कल्पनावाद के त्यागी होंगे। सरल, सुशील, वैराग्यप्रिय, क्षमावान्, सन्तोषी, जितेन्द्रिय, समतालु और हरक्षण परमार्थ साधन रत होंगे। और जो साधु-भेष में बकुला होगा, वह स्त्री आदि में

अनुरक्त, पैसा* का दास, कुटुम्ब का ममतालु, इन्द्रियपरायण, स्वार्थी, हठी, पक्षपाती, दुआ-भभूत, यन्त्र-मन्त्र-तन्त्र का प्रयोग करने वाला, अमली, कामी-क्रोधी, लोभी, मोही, अहंकारी और खानी-वाणी प्रपंच का बँधुआ होगा।

गृहस्थों में हंस और बकुले कौन हैं? इसकी परीक्षा करनी चाहिये क्योंकि धोती, कुर्ती, टोपी; मिर्जई या कोट कमीज, पतलून, पायजामा, फूलपैंट, बुशशर्ट, हैट, बूट, घड़ी तथा टाई इत्यादि पहने सब लोग बाहर से एक ही प्रकार सफेद पोश दिखलाई देते हैं। फिर इनमें कौन बकुले हैं और कौन हंस हैं? सो सुनो! जीव हिंसा करने वाले गाय, भैंस, बैल, भैंसा, भेड़, बकरा-मुर्गी-मुर्गे, अण्डे, बतख, कबूतर, सूअर, मछली, साँप, मेढक, कच्छप इत्यादि जन्तुओं के मांस खाने वाले, शराब पीने वाले, गाँजा, भाँग, इत्यादि जितने नशीले पदार्थ हैं, इनको पीने खाने वाले। चोरी, व्यभिचार, झूठ, कपट, छल, जबर्दस्ती, असत्यभाषण, बेईमानी, धोखेबाजी और घूसखोरी करने वाले बकु हैं। और हिंसा-मांस तथा नशीली वस्तुओं से रहित स्वच्छ, अन्न, साग, फल, फूल, दूध, घृत, मेवा मिष्टानादि शुद्ध साकाहार करने वाले, किसी प्रकार दुराचार-दुर्गुण न धारण करने वाले। सत्य-न्याय से जीविका चलाने वाले। सतोगुण, सदाचार, सरलता, अन्तर-बाहर की पवि-

---

*—यहाँ का तात्पर्य यह नहीं है कि पैसा छूना ही नहीं चाहिये। हाँ! पैसा से केवल प्रयोजन हल करे, उसका दास न बने।

त्रता, समता, परोपकार और अहिंसादि सद्गुण-सदाचार धारण करने वाले गुरु-भक्ति, सत्संग, सद्धर्म करने वाले हंस है।

शिक्षासार—गृहस्थ-विरक्त को बकुला वत् काल नहीं बनना चाहिये। बल्कि हंस वत् विवेकी-सज्जन एवं दयाल बनना चाहिये।

१२—(साखी—२४)

रंगहि ते रँग ऊपजै, सब रँग देखा एक।
कौन रंग है जीव का, ताका करो विवेक॥

जड़ तत्त्वों के रंग से ही प्रकृति-सृष्टि में विविध रंग उत्पन्न होते हैं, परन्तु विचार करके देखिये तो कार्य-पदार्थों के जितने रंग हैं, सब एक जड़-तत्त्व के ही हैं। यहाँ समझना यह है कि जीव का कौन रंग है? इसका विवेक करो ॥२३॥

व्याख्या—मूल जड़-तत्त्वों में रङ्ग होने से ही उनसे उत्पन्न हुए वृक्ष, वनस्पति, फल, फूल, काँसा, ताँबा, राँगा, जस्ता, सोना, चाँदी, वस्त्र, बर्तन इत्यादि स्थूल पदार्थों में विविध रंग दिखलाई देते हैं। परन्तु सब रंग एक जड़-तत्त्व के हैं।

चेतन का क्या रंग है? इसका विवेक करना चाहिये। यहाँ श्रीकबीरसाहेब ने चेतन का स्वरूप पहचानने का साधन विवेक बतलाया है "कौन रंग है जीव का ताका करौ वि-

वेक।" जड़-प्रकृति-क्षेत्र में शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये पाँच विषय हैं। इन पञ्च विषयों को जानने के लिये क्रम से कान, त्वचा, नेत्र, जीभ और नाक—ये पाँच ज्ञान इन्द्रियाँ हैं। छठाँ न कोई विषय है और न छठी कोई ज्ञान-इन्द्रिय ही है। शब्द-विषय को केवल कान से जाना जाता है, अन्य कोई भी इन्द्रिय से शब्द का ज्ञान नहीं होगा। स्पर्श-विषय त्वचा से जाना जाता है, अन्य से नहीं जाना जा सकता। रूप-विषय नेत्र से जाना जाता है, अन्य से नहीं। रस-विषय जीभ से जाना जाता है, अन्य से नहीं। गन्ध-विषय नाक से जाना जाता है, अन्य इन्द्रिय से नहीं। फिर बताइये! जब अपने एक विषय के अतिरिक्त अन्य विषय का ही ज्ञान इन्द्रियों से नहीं होता। तब जो पाँचों विषयों से रहित शुद्ध ज्ञान रूप है, वह इन्द्रियों से कैसे जाना जा सकता है?

इसलिये अपने स्वरूप को यथार्थ जानने के लिये विवेक ही साधन है। यद्यपि विवेक का करने वाला भी वही चेतन जीव है, तथापि भूल दृष्टि से घिरे हुए मनुष्य को स्वरूप ज्ञान समझाने के लिये ऐसा कहा जाता है कि वह विवेक से अपने चेतन स्वरूप को यथार्थ रूप से जाने। उस विवेक का संक्षिप्त स्वरूप यह है —

"प्राणियों का संग त्याग कर और युक्त सात्त्विक आहार करके किसी एकान्त स्थल में जाकर दृढ़ आसन से बैठ जाय और देखना, सुनना, सूँघना, स्पर्श करना और

चखना इन भोगों की क्रियाओं तथा भावनाओं को बिल्कुल त्याग दे। इस प्रकार इन्द्रियों की चञ्चलता को त्याग कर निराधार मौनवृत्ति पूर्वक हृदय में ऐसी पक्की निश्चयता बनावे कि हमारे सब स्मरण शान्त हो जायँ। पुनः शुभाशुभ सब स्मरणों को त्यागने के ध्येय से भिन्न देखता रहे कि मुझ में कोई स्मरण नही हैं। सब स्मरण हम से भिन्न हैं। इस प्रकार स्मरणों को त्यागते-त्यागते जिस काल में सब स्मरण निरसन होकर बिल्कुल शांत हो जायँ और कोई स्मरण न उठे। तो सब स्मरणों के शान्त होने पर जो शेष बच रहता है वही अपना चेतन स्वरूप है। 'अब कोई स्मरण नहीं उठते' जो ऐसा जानने वाला है, वही अपना स्वरूप है। वह मैं ही हूँ।"

इसी को अपरोक्ष स्वरूप-ज्ञान कहा जाता है। यह अत्यन्त गूढ़ है। परन्तु मुमुक्ष के लिये सर्वथा सरल है। इस अपरोक्ष ज्ञान की प्राप्ति के लिये मनःकल्पित भोगों का त्याग और विवेक-वैराग्य पूर्वक एकान्त-सेवन की महान आवश्यकता है। साधारण रूप से भी अपने चेतन जीव का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है—जो सबको जानने वाला है, वह सबसे भिन्न रहता है। सूर्य सब वस्तुओं को प्रकाशता है और स्वयं प्रकाश रूप ही है। अतएव सूर्य को प्रकाश करने के लिये अन्य की आवश्यकता नहीं है। इसी प्रकार ज्ञानरूप चेतन सब को जानता है और वह स्वयं जान

रूप रहता है, उसको जानने के लिये अन्य पदार्थ की आवश्यकता नहीं है और न अन्य पदार्थ उसे जान ही सकते हैं। क्योंकि अपने चेतन स्वरूप से पृथक् सब पदार्थ जड़ हैं। वह जो सबका जानने वाला है, वह मैं ही हूँ। क्योंकि मैं ही सब को जानता-मानता रहता हूँ।

यहाँ ग्रन्थकर्ता का यह प्रश्न है कि "कौन रंग है जीव का" इसका उत्तर आगे की साखी में स्वयं देते हैं—

१३—(साखी—२५)

जाग्रत रूपी जीव है, शब्द सोहागा सेत।
जर्द बुन्द जल कूकुही, कहहिं कबीर कोइ देख॥

जीव ज्ञान रंग है, यह शुद्ध कंचन वत् जीव विषय-कल्पना के शब्द रूपी सोहागा को पाकर अनादिकाल से जड़ाध्यासी होता रहा और होता रहता है। अतः माता का रज और पिता के वीर्य का सम्बन्ध करके जल बुदबुदावत् इस काया को अपनी सत्ता से निर्माण करता रहता है। सद्गुरु श्री कबीरसाहेब कहते हैं—इस प्रकार कोई बिरले विवेकी समझते हैं ॥२५॥

व्याख्या—२४ वें साखी में ग्रन्थकर्ता ने जो यह शंका उठाया था कि 'कौन रंग है जीवका' उसका समाधान आप इस २५ वें साखी के प्रथम चरण में करते हैं कि 'जाग्रत रूपी

जीव है' जाग्रत कहते हैं ज्ञानको और रूपी का भाव'रंग का' है। अर्थात् जीव ज्ञान रंग का है। तात्पर्य यह है कि प्राकृतिक रंगों के समान जीव में कोई हरा-पीलादि रंग नहीं है, वह केवल जाग्रत-ज्ञान रूप या चैतन्य स्वरूप है। वह देह-इन्द्रियोंका सम्बन्ध लेकर बाह्य वस्तुओं को जानता है, और देह-इन्द्रिय सम्बन्ध रहित केवल अपने आप शान्त रहता है।

अब यहाँ यह प्रश्न उठता है कि ऐसा शुद्ध ज्ञान रूप चैतन्य जीव जन्म-मरण और देह-सम्बन्ध रूप अवगति को क्यों और कब प्राप्त हुआ? तो इसका उत्तर यह है कि जीव यद्यपि स्वरूप से सर्वथा शुद्ध ज्ञानरूप है, परन्तु अनादि काल (सदा-सर्वदा) से वासना-वश जन्म-मरण एवं देह-सम्बंध में पड़ा है। यदि ऐसा माने कि जीव पहले देह-संबंध से रहित मुक्त था और बीच में देह-बंधन में पड़ गया। तो यह बात अयुक्त प्रतीत होती है। क्योंकि बिना देह-सम्बंध के वासना नहीं बनती और बिना वासना के देह-सम्बन्ध नहीं होता। अतः जब पहले देह-सम्बन्ध ही नहीं था, तब वासना रहित जीव कैसे देह-बंधन में पड़ा? बिना बीज के वृक्ष होना असम्भव है और बिना वृक्ष के बीज का होना भी असम्भव है। अतः जीव अनादि काल से बन्धन में रहते आया है।

अब इस पर यह शंका हो सकती है कि अनादि बन्धन मिटेगा नहीं, क्योंकि अनादि वस्तु का नाश नहीं होता। फिर बन्धन रूप अनादि वस्तु का नाश कैसे होगा? तो इस-

का समाधान यह है कि जो वस्तु अनादि और अनन्त होती है, उसका नाश अवश्य नहीं होता। परन्तु जो वस्तु अनादि और सान्त (अन्त सहित) है उसका नाश हो जाता है। बारम्बार देह-सम्बन्ध कराने वाला जो वासना-बन्धन है, यह अनादि होते हुए भी सांत (ज्ञान से नष्ट होने वाला) है। जैसे बीज-वृक्ष दोनों अनादि हैं। बिना वृक्ष के बीज नहीं और बिना बीज के वृक्ष नहीं। इस प्रकार बीज-वृक्ष अनादि होने पर भी आम, कटहल, गेहूँ, चने आदि किसी के बीज को यदि अग्नि में भून दिया जाय, तो उस बीज से पुनः वृक्ष न होगा। इसी प्रकार देहरूपी वृक्ष और वासनारूपी बीज अनादि होते हुए भी ज्ञान-वैराग्यादि सद्साधनों से देहासक्ति तथा कामादिक वासनाओं को मिटा देनेपर पुनः देहरूप वृक्ष न होगा। फिर देह न होने से पुनः वासना न बनेगी और वासना न बनने से देह न होगी। जैसे अन्धकार कोई यथार्थ वस्तु नहीं है, केवल अग्नि रूप प्रकाश का अभाव ही अन्धकार है। तैसे वासना कोई यथार्थ वस्तु नहीं हैं, केवल यथार्थ-स्वरूप ज्ञान के अभाव से ही वह कल्पित है। जैसे किसी स्थान पर अनादिकाल से अन्धकार हो, परन्तु वहाँ पर लेजाकर प्रकाश जला दिया जाय, तो अन्धकार तुरन्त नष्ट हो जायगा। तैसे अनादिकाल की मिथ्या अन्धकार रूप वासना ज्ञान उदय होने पर तुरन्त नष्ट हो जाती है। अतएव ज्ञानवैराग्य से वासना बीज को नाश कर जीव सदैव के

लिये देह-सम्बन्ध और जन्म-मरण रूप अवगति से छूटकर सर्वथा मुक्त हो जायगा। यह निःसन्देह है।

अब यहाँ यह शंका उठती है कि ज्ञानरूप जीव बारम्बार दुःख रूपी जन्म-मरण में क्यों पड़ा करता है ?, तो इसका उत्तर ग्रन्थकर्ता ने स्वयं दिया है कि "शब्द सोहागा सेत" अर्थात् जैसे सोहागा डालकर आँच दिखाने से सोना पिघल जाता है। तैसे भ्रमिक नर-नारियों के विषय-भोग और नाना अनुमान-कल्पना की वाणी को सुनकर यह देह-निवासी चेतन जड़ाध्यासी होता रहता है। 'सेत' का अर्थ है, उज्ज्वल, उज्ज्वल होता है जल। जल से अर्थ लेना है जल के अंश वीर्य का और वीर्य का भाव यहाँ कामासक्ति है। अतएव प्रकारान्तर से 'सेत' का अभिप्राय कामासक्ति हुई। सेत का दूसरा अर्थ है जड़-चेतन मिश्रित माना हुआ शुद्ध अद्वैत। सो यह जीव खानी-वाणी के कल्पना कृत शब्दों को सुनकर काम रूप या जड़-चेतन मिश्रित शुद्ध अद्वैत रूप अपने को मानकर विषयासक्त एवं जगत्-रूप ही हो रहा है। इसलिये खानी-वाणी के विषय-वासना वश 'जर्द बुन्द जल कूकुही' अर्थात् 'जर्द' माता के पीत रक्त और बुन्द पिता के श्वेत वीर्य का सम्बन्ध लेकर यह जीव बारम्बार कर्म वासना वश 'जल कूकुही' अर्थात् पानी का फेना रूप काया का निर्माण अपनी सत्ता से करता है। (या उष्मज खानि

में तत्त्वों के आधार से शरीर धरता रहता है।) ग्रन्थकर्ता कहते हैं कि इस प्रकार जीव का स्वरूप से शुद्ध ज्ञान रूप अविनाशी होना और विषय वासना तथा खानी-वाणी की कल्पना वश जन्म-मरण तथा कर्म-फल भोग होना कोई विरले विवेकी जानते हैं।

शिक्षासार—चेतन जीव ज्ञान रूप स्वरूप से शुद्ध अविनाशी है, वासना-वश अनादि से देह-बन्धन है, पारख-बोध और वैराग्यादि सद्रहस्य द्वारा 'विजाति वासनाओं को मिटाकर मोक्ष लाभ प्राप्त करना चाहिये।

१९—(साखी—३७)

चन्दन बास निवारहू, तुझ्झ कारण बन काटिया।
जियत जीव जनि मारहू, मुये सबै निपातिया॥

हे चेतन! तू सब वासनाओं का त्याग कर, तेरे कल्याणार्थ मैंने लोक-वेद और खानी-वाणी का सब जङ्गल काट डाला है। जीते जीव को मत कष्ट दो, जीव के निकल जाने पर तो शरीर-इन्द्रिय स्वयं नष्ट हो जायँगी॥ ३७॥

व्याख्या—'चन्दन' शब्द से चैतन्य को संकेत करके ग्रन्थकर्ता कहते हैं—हे चेतन जीव! तेरे कल्याण के लिये स्त्री, पुत्र, धन घर, शरीरादि पञ्च-विषय भोग रूप खानी जाल का और स्वर्ग लोकादि कर्ता, व्यापक, मिश्रितवाद आदि अनुमान-कल्पना रूप वाणीजाल का जो बड़ा भारी

जङ्गल था, उसको मैंने काट डाला है। अब हे चैतन्य! तेरा यही परम् कर्तव्य है कि तू उपरोक्त खानी-वाणी की सर्व वासनाओं को मिटाकर अपने शुद्ध पारख स्वरूप में दृढ़ स्थित होकर जीवन्मुक्त होजा।

बहुत-से भूले लोग ऐसा समझते हैं कि पञ्च-अग्नि तापने से, जलशयन करने से, उर्ध बाँहु रहने से, द्वारिका में अग्नि तपाये हुए चिन्ह का छाप लगवाने से और अन्न-जल त्याग कर देह सुखाने से मोक्ष हो जायगा। परन्तु यह बिल्कुल भूल है। साहेब कहते हैं जीते जीव को मत कष्ट दो। यदि शरीर-इन्द्रियों को कष्ट देने से कल्याण होवे, तो मृत्यु समय में शरीर-इन्द्रिय का सहजिक निपात (नाश) हो जाता है। फिर सब जीव क्यों नहीं मुक्त हो जाते ?

शिक्षासार—सद्गुरु कृपा करके बीजक ग्रन्थ में खानी-वाणी के सब बन्धनों को परखा कर पारख स्वरूप की स्थिति दर्शा दिये हैं। अतएव सब वासनाओं को त्याग कर मोक्ष प्राप्त कर लेना चाहिये। शरीर इन्द्रियों को कृशित करने से मोक्ष नहीं होगा। मोक्ष होता है नाच-रंग, हिंसा, मांसाहार, मद्यपान, नाना व्यसन और मैथुनादि मनःकल्पित भोगों को त्याग कर पञ्च विषयों की वासनाओं को ध्वंस करने से। अतः मनःकल्पित भोग-क्रिया और भोग वासनाओं को त्याग कर मुक्त हो रहना चाहिये। गोस्वामी श्रीतुलसीदास जी ने कहा है—

दोहा—देह सुखाय पिञ्जर किये, धरे रैन दिन ध्यान ।
तुलसी मिटै न वासना, बिना विचारे ज्ञान ॥

१५—(साखी-३८)

चन्दन सर्प लपेटिया, चन्दन काह कराह ।
रोम रोम विष भीनिया, अमृत कहाँ समाय ॥

चेतन मनुष्य को विषय-अभिमान ने भलीभाँति ग्रस लिया है, यह चेतन क्या करे ? इसके रोम-रोम में विषयासक्ति रूप विष भीना है, फिर ज्ञानविचार कहाँ समावेंगे ? ॥३८॥

व्याख्या—मूल से शाखा पत्र पर्यन्त चन्दन के वृक्ष में यदि सर्प लिपटा हो, तो किञ्चत् अवकाश न होने से न तो उसमें से सुगन्ध निकल सकता है और न उसमें कोई उत्तम द्रव्य प्रवेश किया जा सकता है। यहाँ 'चन्दन' शब्द से चैतन्य का संकेत करते हुए श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—इस चैतन्य को पञ्च विषयासक्ति और पञ्च अभिमान रूप सर्प ने लपेट लिया है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये पञ्चविषय हैं। इनकी आसक्ति जीव के हृदय में खूब दृढ़ है। विश्व, तैजस, प्राज्ञ, प्रत्यगात्मा और निरंजन ये पाँच अभिमान हैं। (१) स्त्री, पुत्र, धन, घर, जगह,जमीन, राज्य, काज, मान, बड़ाई, शासन, पद, प्रतिष्ठा इत्यादि का पक्ष-आसक्ति होना विश्व-अभिमान है। इसका कर्म-काण्ड है। (२) योगक्रिया द्वारा कल्पित सिद्धियों का प्राप्त होना और अपने को

बड़ा सिद्ध मानना तैजस-अभिमान है। इसका योग-काण्ड है। (३) अपने ऊपर-ईश्वर, दैव-देवी या स्वर्ग लोकादि मान कर, अपने को लघु मानकर ईश्वर तथा देवी-देवादि का पक्ष लेना प्राज्ञ-अभिमान है। इसका उपासना काण्ड है। (४) मैं ब्रह्म एक अद्वैत हूँ, ईश्वर, जीव तथा माया सब मेरे से हैं। मेरे से यह स्थावर-जङ्गम हुआ है। इत्यादि मानना प्रत्यगात्मा-अभिमान है। इसका ज्ञान-काण्ड है। (५) न जीव, न ईश्वर, न माया, न जगत् सब मिथ्या। मैं ब्रह्म आत्मा ज्यों-का-त्यों अनिर्वचनीय ऐसा मानना निरंजन अभिमान है। इसका अद्वैत-काण्ड है इस प्रकार ये पंचविषय और पञ्च-अभिमान रूप सर्प ने जीव के नस-नस में आसक्ति का विष भर दिया है। विष से तरबतर हुआ मनुष्य-जीव विवेकी पारखी सन्तों का पारख ज्ञान रूप अमृत नहीं ग्रहण करता है। जैसे जल से भरे हुए घड़े में और जल रखा जाय तो उसमें टिकता नहीं, बह जाता है। इसी प्रकार जीव के अन्तःकरण में विषयासक्ति और अभिमान होने से यथार्थ ज्ञान-भक्ति नहीं समाती।

शिक्षासार— विषयासक्ति और सब अभिमान हृदय से निकाल कर सन्तों का यथार्थ ज्ञान-गुण रूपी अमृत धारण करना चाहिये।

१६—(साखी—३४)

ज्यों मोदाद समसान शिल, सबै रूप समसान।

कहहिं कबीर वह सावज की गति,तबकी देखि भुकान ॥

जैसे समसान शिला पर जो अन्य वस्तु रहती है, वह भी उसी शिला के रंग में भासती है। तैसे अपने अन्तःकरण के निश्चय अनुरूप मनुष्य को सिद्धान्तों की सत्यता-असत्यता भासती है। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—जैसे काँच-मन्दिर में अपने प्रतिबिम्ब को देखकर भूकते-भूकते श्वान प्राण तज दिया, तैसे पूर्व-पूर्व जन्मों से आज तक के रचित अन्तःकरण रूपी काँच मन्दिर में अपनी अनुमान-कल्पना रूपी प्रतिछाया को देखकर और उसे सत्य मानकर यह जीव खानी-वाणी प्रतिपादक वचनों को कथन करने लगताहै॥३९॥

व्याख्या—मोदाद कहते हैं प्रमाण को, समसान अथवा समान नामक एक शिला (पत्थर) होती है। उस शिला का यह प्रभाव है कि उसपर जो वस्तु रख दी जाती है, वह उसी शिला के रंग-समान भासती है, परन्तु जब उस शिला पर से वस्तु हटा ली जाती है, तब जिस रंग की वस्तु रहती है,उसी रंग की भासती है। इसी प्रकार मनुष्यों के अन्तःकरण का निश्चय है,जैसे उसे अपने अन्तःकरण में निश्चय रहता है, तैसे सिद्धान्तों के विषय में सत्य-असत्य प्रतीत होता है। तात्पर्य यह है कि जिसे एक अद्वैत का पक्ष दृढ़ है, वह इस जगत् को देख कर कहता और सोचता है कि यह स्थावर-जङ्गम तो कुछ नहीं है,केवल भ्रम से प्रतीत होता है। वास्तव

में एक ब्रह्म ही सत्य है। वही मैं हूँ, अर्थात् मैं ही सब कुछ हूँ। जिसे जगत् का कर्ता ईश्वर इत्यादि निश्चय है, वह जगत्-सृष्टि को देखकर कहता और सोचता है कि प्रभुकी लीला बड़ी विचित्र है। ईश्वर ने कैसा सुन्दर स्थावर-जङ्गम की रचना की है? एक ईश्वर ही सर्वश्रेष्ठ है और मैं जीव तो किञ्चिज्ञ-अल्पज्ञ कुछ लायक नहीं। जिसे जड़-वाद निश्चय है, वह कहता और सोचता है यह प्रकृति ही सत्य है, जीव शीव कुछ नहीं, आवागमन किसका? इस प्रकृति और देह से भिन्न मेरी कोई सत्ता नहीं है। जिसे विषय-भोग में सुख निश्चय है, वह विषय-भोग ही जीवन लाभ मानता है। अतएव यह निर्णीत बात है कि भिन्न-भिन्न गुरुओं और ग्रन्थों से सुन-पढ़ कर मनुष्य के अन्तःकरण में जैसे निश्चय है, वैसे ही उसे सत्य भासता है*। परन्तु अन्तःकरण की भ्रम-निश्चयता से हट कर जब अन्तःकरण का भी द्रष्टा होकर मनुष्य शुद्ध विवेक करता है, तब उसे यथार्थ भासता है।

अतः अन्तःकरण की भ्रम-निश्चयता और भ्रम-मानन्दी का द्रष्टा बनकर मनुष्य को विवेक करना चाहिये कि जड़-चेतन जब दोनों भिन्न-भिन्न भासते हैं और चेतन जीव जब नाना दिखते हैं। तब अद्वैत कहाँ है और जगत् मिथ्या कहाँ है? जगत् अपने क्षेत्र में प्रवाह रूप नित्य सत्य है और

---

* जिन अवधू गुरु ज्ञान लखाया। ताकर मन ताही ले धाया ॥ बी०

अगणित चेतन अपने-अपने स्वरूप से नित्य हैं। पृथ्वी आदि चार तत्त्वों में गुण, धर्म, शक्ति, क्रियादि स्वभाव सिद्ध होने से और भूमण्डल, वातावरण, समुद्र, सूर्य, चन्द्र, तारागणादि अनादि होने से षट्-ऋतुओं और नाना क्रियाओं से तत्त्वों में कारण-कार्य होकर जड़ात्मक सृष्टि स्वाभाविक हो ही रही है। और इधर अनन्त चेतन जीव कर्म वासना-वश मनुष्य, पशु, अण्डज और उष्मज इन चार खानियों में शरीर धर-धर कर बीज-वृक्षवत् अपना कर्मफल भोग ही रहे हैं। फिर इस जड़-चेतन मय जगत् का कर्ता मानना भ्रम ही है। जड़-तत्त्वों के कारण-कार्यों में जब चेतनत्व नहीं है और जड़ पदार्थों के द्रष्टे चेतन जब स्वयं प्रत्यक्ष जड़ से भिन्न दर्शित होते हैं और वासना-वश आवागमन भी प्रत्यक्ष है। कर्मानुसार रोगी-निरोगी, धनी, निर्धनी, सुखी-दुखी जब प्राणी प्रत्यक्ष दिख रहे हैं। तब जड़वाद मिथ्या क्यों न होगा? और विषयासक्ति-वश कामना तृष्णा, दुर्गुण- दुराचार, अतृप्ति, जन्म-मरण जब प्रत्यक्ष हैं। तब विषयभोग सुख रूप कैसे हो सकते हैं? अतएव अन्तःकरण के भ्रम-निश्चय से पृथक् होकर और सबका द्रष्टा रहकर यथार्थ निर्णय करना चाहिये।

'कहहिं कबीर ता सावज की गति' सावज का अर्थ है शिकार, यहाँ सावज का भाव कुत्ता है। जैसे कुत्ता काँच के मन्दिर में घुस गया और उसमें चारों ओर देखने लगा, तो

सब ओर उसे अपना प्रतिबिम्ब दिखाई दिया। फिर उस प्रतिबिम्ब को वह अपना प्रतिद्वन्द्वी सच्चा कुत्ता मान कर अज्ञानतावश भूकने लगा ! यहाँ तक कि भूकते-भूकते प्राण त्याग दिया।

इसी प्रकार भ्रम, अज्ञान रूपी शिकारी का शिकार रूपी सावज-जीव पूर्व-पूर्व से आज तक के रचित अन्तःकरण में अपने कल्पित प्रतिबिम्ब को देखकर भूकने लगा। तात्पर्य यह है कि इस वासना-वशी जीव के साथ में रहा हुआ जो अन्तःकरण है, अनादिकाल से इसमें भ्रम, अज्ञान का कूक भरते आया है। और इसी अन्तःकरण में विषयासक्त जीव नित्य रहता है अतः यह जीव इस अन्तःकरण में निवास कर के भ्रम, अज्ञान वश खानी-वाणी कृत जिन-जिन कल्पनाओं को पूर्व से किया है या आज करता है। उन कल्पनाओं की भावना रूप प्रतिछाया काँच मन्दिर रूप अन्तःकरणमें दर्शता है। उसे यह स्वान रूपी जीव सत्य मान कर खानी-वाणी पुष्टक नाना वाणियों का प्रलाप करने लगता है।

शिक्षासार—अपने निश्चयता और सिद्धान्त का पक्ष-अभिमान न कर के। निश्चय-मानन्दी, अन्तःकरण आदि सर्व दृश्यों का द्रष्टा बनकर स्वतन्त्र विवेक करना चाहिये।

१७—(साखी—४८)

मलयागिरि को वास में, वृक्ष रहा सब गोय।
कहबे को चन्दन भया, मलयागिरि नहिं होय॥

चेतन की चेतना में सब शरीर छिप रहे हैं, यद्यपि अज्ञानियों के देखने में यह काया चेतना रूप भासती है, परन्तु यह काया चेतन युक्त चेतन कदापि नहीं हो सकती ॥४८॥

व्याख्या—मलयागिर वृक्षके आस-पास रहेहुए जो अन्य रसीले वृक्ष रहते हैं वे मलयागिरके सुगन्धिसे वासित होजाते हैं। फिर उन्हीं मलयागिर के सुगन्धि से वासित वृक्षों को चन्दन कहा जाता है। परन्तु वे मलियागिर नहीं हो सकते हैं। इसी प्रकार जब तक इस जड़ काया में चेतन रहता है, तबतक इस चेतन की चेतना (वासना) रूपी बास से(मनुष्य, पशु, अण्डज और उष्मज इन चारों खानियों की) सब देहें वासित रहती हैं। अर्थात् चेतन की चेतना रूपी सत्ता से जड़ शरीर चलता-फिरता और नाना क्रिया करता हुआ दिखता है,परन्तु चेतन के निकल जाने पर यह काया पृथ्वी पर काष्टवत् पड़ी रहती है और अन्त में धूल में मिल जाती है। अतएव चेतन जीव और शरीर दोनों सर्वथा भिन्न हैं।

इस साखी का दूसरा अर्थ यह भी किया जा सकता है कि चेतन जीव के वास अर्थात् वासना-मनोमय में चारों खानियों की सब देहें बीजरूप से गोय एवं छिपीं हैं, वे कर्मानुसार समय-समय पर जीव को प्राप्त होती हैं। परन्तु वे मनोमय और चारों खानियों के बीज शुद्ध-चेतन स्वरूप में नहीं हैं और न उनका कोई यथार्थ सरूप ही है। अतः

ज्ञान-वैराग्य द्वारा उसका नाश करके मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है।

शिक्षासार—चेतन जीव और शरीर दोनों सर्वथा और सर्वदा भिन्न-भिन्न हैं। चेतन जीव नित्य सत्य ज्ञान रूप और अपना स्वरूप है तथा शरीर अनित्य, झूठा, जड़ और विजाति है। अतः शरीर का अभिमान त्याग कर मोक्ष प्राप्त करना चाहिये।

१८—(साखी—४९)

मलयागिरि की वास में, बेधा डाक पलास।
बेना कबहुँ न बेधिया, युग-युग रहिया पास॥

सन्तों के ज्ञान-गुण निराभिमानी मनुष्य धारण कर लेते हैं। परन्तु अभिमानी मनुष्य चाहे सदैव सत्संग में रहें, तो भी उन्हें सत्संग का असर (ज्ञान-गुण) नहीं बेधता ॥४९॥

व्याख्या—ढाँक-पलास इत्यादि यद्यपि छोटे-छोटे वृक्ष हैं, परन्तु उनमें सरसता होने से मलयागिर की सुगन्धि बेध जाती है। परन्तु बेना अर्थात् बाँस लम्बा-बड़ा होने पर भी रस से हीन गाँठयुक्त होने से उसमें मलयागिर की सुगन्धि नहीं बेधती, चाहे वह सदा-सर्वदा मलयागिर के पास रहे। ठीक इसी भाँति जिनमें दीनता-कोमलता और निराभिमानता है। सत्संग का असर उनपर शीघ्र पड़ता है, वे सत्संग-भक्ति करके अपना जीवन शीघ्र सुधार लेते हैं। परन्तु जो बाँसवत् कड़े

और कपट-कुटिलता तथा अभिमान से पूर्ण हैं, उनका कभी भी सुधार नहीं होता। चाहे वे सदैव सत्संग में बसे रहें। जैसे सैकड़ों वर्ष जल में पत्थर पड़ा रहे। परन्तु वह कोमल नहीं होता और उसे जल में से निकाल कर यदि ठोंका जाय तो उसमें आग की चिनगारी निकलती है। तैसे अभिमानी तथा कपटी-कुटिल लोग सौ वर्ष सत्संग-सेवन के पश्चात् भी ज्यों-के-त्यों मूर्खानन्द रहते हैं उनमें भक्ति, नम्रता-कोमलता और सद्गुण-सद्विचार नहीं समाते। जब तक मनुष्य अभिमान कपट लिये रहेगा, तब तक उसे सत्संग फल न देगा।

शिक्षासार—अभिमान, कपट और टेढ़ान त्याग कर नम्रता-भक्ति पूर्वक सत्संग का सेवन करना चाहिये।

दोहा—अति ऊँचे भूधरिन पर, भुजगन के स्थान।
तुलसी अति नीचे सुखद, ईख अन्न अरु पान॥
(वैराग्य-संदीपनी)

१६—(साखी—५७)

पारस रूपी जीव है, लोह रूप संसार।
पारस ते पारस भया, परख भया टकसार॥

जीव चैतन्य रूप है, और जगत् (कारण-कार्य तत्त्व) जड़ रूप है। ज्ञानी के संग (स्पर्श-भाषण) से लोग ज्ञानी होते हैं, और सब की परीक्षा इस बीजक ग्रन्थ से होती है॥ ५७॥

व्याख्या—लोग प्रमाण देते हैं कि पारस-पत्थर* में लोहा छुआ (स्पर्श करा) देने से वह सोना हो जाता है, परन्तु पारस नहीं होता। इसी प्रकार जो यह जीव है, पारस अर्थात् चैतन्य रूप है। और जो पृथ्वी, जल, तेज, वायु ये चार कारण तत्त्व तथा अनन्त कार्य पदार्थ रूप जगत् है, यह बिल्कुल जड़ है। यहाँ का भाव यह है कि जड़ रूपी काया चैतन्य रूपी जीव के स्पर्श से चैतन्य-सी भासती है। अथवा रेडियो, ग्रामोफोन, सिनेमा, रेल, मोटर इत्यादि जड़-पदार्थ चेतन के स्पर्श (सत्ता) से चेतन के समान भासते हैं। परन्तु शरीर और रेडियो, ग्रामोफोन आदि जड़-यन्त्र कभी भी चैतन्य नहीं हो सकते। जैसे पारस के स्पर्श से लोहा सोना होता है, परन्तु पारस नहीं होता। तैसे चैतन्य की सत्ता से शरीर-यन्त्रादि जड़-पदार्थ चेतन वत् भासते हैं। परन्तु चैतन्य नहीं होते। क्योंकि चैतन्य जीव जब शरीर और यन्त्रादि से अपनी सत्ता हटा लेता है। तब वे शरीर-यन्त्रादि नियमित क्रिया से हीन जड़ ही रहते हैं, अतएव चेतन और जड़ दोनों का स्वरूप सर्वथा भिन्न-भिन्न है।

परन्तु 'पारस ते पारस भया' अर्थात् स्वरूपज्ञानी पारखी सन्त के संग से अन्य अज्ञानी चेतन मनुष्य भी

---

*पारस पत्थर का केवल प्रमाण लोग देते हैं। परन्तु उसकी सत्यता में सर्वथा सन्देह है।

स्वरूपज्ञानी एवं पारखी हो जाते हैं। इसी से किसी कवि ने कहा है—

दोहा—जो लोहा को सोना करे, सो पारस है कच्चा।
जो लोहा को पारस करे, सो पारस है पक्का॥

तो ज्ञानी पारखी सन्त ऐसे ही होते हैं कि अज्ञानी मनुष्य को भी अपनी संगत में पाकर उसे ज्ञानी और पारखी बना देते हैं। और सम्पूर्ण भास, अध्यास, अनुमान, कल्पना तथा चेतन-जड़ का यथार्थ पारख टकसार (इस बीजक सद्ग्रन्थ) से होता है। जैसे टकसार से निकले हुए सिक्के प्रमाणित होते हैं, तैसे इस बीजक ग्रन्थ के वाक्य प्रमाणित होने से इसे टकसार कहा गया है।

शिक्षासार—चैतन्य-जड़ दो पदार्थ नित्य सत्य और भिन्न-भिन्न हैं। पारखी सन्त के संग से मनुष्य पारखी होकर जीवन्मुक्त हो जाता है। सब बन्धन-मुक्ति की परीक्षा बीजक से होती है। अतः अपने चैतन्य स्वरूप को जड़ से भिन्न समझ कर और पारखी सन्तों का संग और इस बीजक तथा बीजकोक्त ग्रन्थों का मनन करके जीवन्मुक्त हो रहना चाहिये।

२०—(साखी ५६)

दर्पण केरी गुफा में, स्वनहा पैठा धाय।
देखि प्रतीमा आपनी, भूँकि भूँकि मरिजाय॥

खानी-वाणी की कल्पना में यह मन दौड़ कर घुस बैठा और अपनी कल्पित भावना को सत्य मान कर उसी के प्रतिपादन (सिद्धि) में जड़ाध्यासी हुआ ॥ ५९ ॥

व्याख्या—जैसे शीशे (काँच) के महल में कुत्ता दौड़ कर घुस गया और उसमें चारों ओर अपनी प्रतिछाया देखकर तथा उसे सत्य कुत्ता मान कर प्रतिद्वन्द्विता वश भूँक-भूँक कर मर गया। इसी प्रकार यह मनुष्य का मनरूपी कुत्ता नाना कल्पित वाणी रूपी काँच-मन्दिर में घुसा और उस कल्पित वाणी को सत्य मानकर उसी की सिद्धि करने लगा। अथवा यह मन अन्तःकरण और शरीर रूपी काँच-मन्दिर में प्रवेश कर नाना खानी-वाणी कृत कल्पना खड़ा किया और उसे सत्य मानकर उसी में भूला !

शिक्षासार—सब मनःकल्पित कल्पनाओं का द्रष्टा हो कर अपने आप में शान्त होना चाहिये।

२१—(साखी—६०)

ज्यों दर्पण प्रतिविम्ब देखिये, आप दुहुन मा सोय।
यह तत्त्व से वह तत्त्व है, याही से वह होय

जैसे शीशे में मुख रूपी विम्ब का प्रतिविम्ब देखा जाता है। तो विम्ब-प्रतिविम्ब दोनों में चेतन की सत्ता है। इसी प्रकार मनुष्य की यह—खानी-वाणी कृत मानन्दी से ही वह— विषयाध्यास, कर्ता और मिश्रितवाद की दृढ़ भावना

होती है, अर्थात् यह मानन्दी से ही वह भावना पुष्ट है। परन्तु ये खानी-वाणी कृत मानन्दी-भावना दोनों चेतन के कल्पित हैं ॥ ६० ॥

व्याख्या—— जैसे मुख और मुख की दिखती हुई दर्पण में परिछाहीं ये दोनों दृश्य हैं, इन दोनों को इन्द्रियों द्वारा देखने, जानने और मानने वाला जो चेतन है, वह मुख रूपी बिम्ब तथा शीशे, की परिछाहीं रूपी प्रतिबिम्ब इन दोनों से भिन्न है। दोनों का द्रष्टा है। इसी प्रकार स्वरूप की भूल और अनादि विषय अभ्यास वश विषयों में जीव की सुख मानन्दी पुष्ट हो गयी है और नाना गुरुओं तथा मत-पथों के नाना कल्पित वाणियों को सुन-सुनकर चेतन जीव से भिन्न सर्व समर्थ कर्ता देवी-देवादि तथा मिश्रित अद्वैत व्यापक-वाद की मानन्दी दृढ़ हो गयी है। अतएव उस मानन्दी रूपी बिम्ब का दृढ़-भावना रूपी प्रतिबिम्ब अन्तःकरण रूपी शीशे में जीव को भास होता है। जैसे जिसको भूत-प्रेत की मानन्दी है, वह रात समय एकान्त में जब कहीं पड़ जाता है, तब उसे भूत-प्रेत की दृढ़ भावना होती है और भयभीत हो जाता है। यदि पहिले वह भूत की मानन्दी न किये होता, तो भूत की भावना होती ही नहीं। तैसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन पञ्च विषयों में तथा नर-नारियों की देहों के स्पर्श में प्रथम से ही मानन्दी (निश्चय) पुष्ट है कि इसमें सुख है, तब उन पञ्चविषयों और नर-नारियों की देहों के

स्पर्शों का जब-जब स्मरण होता है, तब-तब सुख की दृढ़-भावना अन्तःकरण दर्पण पर झलकती है। इसी प्रकार प्रथम नाना कल्पित देवी-देवादि तथा शब्द ज्योति, साकार या निराकार रूप कर्ता इत्यादि की जैसी-जैसी भ्रम-मानन्दी बना ली गयी है। वैसी-वैसी भावना अन्तःकरण में मनुष्य जीव को दर्शती है। उसी भावना को लोग साक्षात्कार होना मानते हैं। इसी प्रकार जिसने जड़-चेतन मिश्रित एक अद्वैत की मानन्दी पुष्ट किया है, उसकी भावना में स्थावर-जङ्गम एक आत्मा ही दीखता है।

परन्तु यह विषय-सुख और देवी-देव, कर्ता तथा मिश्रित-वाद रूप जहाँ तक मानन्दी रूपी विम्ब है और उस मानन्दी विम्ब का अन्तःकरण रूपी शीशे पर दिखता हुआ भावना रूपी जहाँ तक प्रतिविम्ब है। यह विम्ब-प्रतिविम्ब और दर्पण आदि सब दृश्य, जड़ हैं। इन तीनों का द्रष्टा चेतन जीव है। 'यह तत्त्व से वह तत्त्व है' अर्थात् इस मानन्दी रूपी तत्त्व से ही वह भ्रम-भावना रूपी तत्त्व है। 'आप दुहुनमा सोय' 'आप' यह चेतन है, यह चेतन जीव ही का 'दुहुनमा' अर्थात् विम्ब-प्रतिविन्ब एवं मानन्दी-भावना (इन दोनों) में सत्ता है। अतएव विम्ब-प्रतिविम्ब तथा मानन्दी-भावना ये सब जड़ दृश्य जीव के कल्पित हैं और जीव उसका द्रष्टा शुद्ध-बुद्ध अविनाशी है।

शिक्षासार—विषयासक्ति कर्ता एवं मिश्रितवाद आदि

की मानन्दी-भावनादि त्यागकर और अन्तःकरण को अपने से भिन्न देख कर स्वपारख स्वरूप की स्थिति दृढ़ करनी चाहिये।

२२—(साखी—६४)

सब ते साँचा भला, जो साँचा दिल होय।
साँच बिना सुख नाहिना, कोटि करै जो कोय॥

सत्य सिद्धान्त का ग्रहण और तन, मन तथा वाणी में सत्य का व्यवहार ही सबसे अच्छा है। परन्तु यदि हृदय में सच्चाई धारण करके यह सब किया जाय, तब पूरी सत्यता है। चाहे कोई करोड़ों उपाय करे, परन्तु सत्य के बिना सुख नहीं है॥ ६४॥

व्याख्या—पृथ्वी, जल, तेज और वायु से चार जड़ तत्त्व हैं और इनसे सर्वथा पृथक् भिन्न-भिन्न अगणित चैतन्य जीव हैं। बस यही पाँच पदार्थ अनादि और अनन्त (नित्य) हैं। पृथ्वी कारण-समूह से भूमण्डल है, जल कारण-समूह से समुद्र, वायु कारण-समूह से वातावरण (पृथ्वी के ऊपर वायु का घेरा) और अग्नि कारण-समूह से सूर्य है और इन्हीं चार तत्त्वोंके कारण-समूह चन्द्र, तारागणादि भी हैं। ये भूमण्डल, समुद्र, वातावरण, सूर्य, चन्द्र तथा तारागणादि अनादिऔर अनन्त पदार्थ हैं। इनकी कभी उत्पत्ति-प्रलय नहीं होती। पृथ्वी आदि मूल चार कारण तत्त्वों में धर्म, गुण, क्रिया,

शक्ति, मेल और आकार ये छः भेद हैं। पृथ्वी, सूर्यादि में क्रिया है। जिससे छः ऋतु और वृक्ष, वनस्पति, अन्न, बादल, वर्फ, इत्यादि जड़ात्मक सृष्टि का प्रवाह सदैव तत्त्वों के गुण-धर्मादि से स्वाभाविक लगे रहते हैं। इनका कभी आदि अंत नहीं है। और इनसे सर्वथा और सर्वदा पृथक् जो अगणित चेतन जीव हैं, वे वासना-वश मनुष्य, पशु, अण्डज, उष्मज इन चारों खानियों में अनादि काल से बारम्बार देह धरते-छोड़ते रहते हैं और जब मानवतन में यथार्थ पारख बोध को पाकर विषयासक्ति से छूट जायँगे। तब प्रारब्धान्त होने पर सदैव के लिये विदेह मुक्त होकर दुःख द्वन्दों से सर्वथा (अत्यन्त) छूट जायँगे, अपने चेतन स्वरूप में स्थित हो जायँगे। संक्षिप्त रूप से यही सत्य सिद्धान्त है, इसी को पारख सिद्धान्त कहा जाता है। इसके अतिरिक्त जगत् आरम्भ-परिणाम मानना, कर्ता-मिश्रितवाद या जड़वाद आदि सब भ्रम कल्पना है। इसके अतिरिक्त तन से, मन से और वचन से सत्य आचरण रखना चाहिये। अर्थात् शरीर (इन्द्रियों) में सदाचरण, मन में सद्गुण और वचन में मीठा सत्य भाषण का व्यवहार रखना चाहिये।

उपरोक्त सत्य पारख-सिद्धान्त तब काम देता है, जब सब पक्ष-आसक्ति त्याग कर हृदय में धारण किया जाय और सत्य भाषण भी तभी माना जायगा जब हृदय में झुठाई का कपट न हो। उपरोक्त सत्य-सिद्धान्त और सत्याचरण को

धारण किये बिना कोटि कर्म करने पर भी जीव का मोक्ष नहीं हो सकता।

शिक्षासार—सत्य पारख-सिद्धान्त और सत्याचरण धारण करो।

२३—(साखी—६५)

साँचा सौदा कीजिये, अपने मन में जानि।
साँचे हीरा पाइये, झूठे मूलहु हानि॥

भलीभाँति अपने मन में समझ कर सच्चा ज्ञान ग्रहण कीजिये। तभी सत्य स्वरूप की स्थिति (मोक्षपद) को प्राप्त होओगे। अन्यथा मिथ्या-ज्ञान में पड़कर मोक्ष-लाभ के विपरीत मूल अर्थात् जीव की हानि एवं दुःखों की प्राप्ति होगी॥ ६५॥

व्याख्या—ऊपर की साखी में जो सत्य पारख सिद्धान्त का निर्णय किया गया है, उसी को ग्रहण करने से मनुष्य को परमपद की प्राप्ति हो सकती है। अतः आप अपने मन में उसको जान-समझ कर धारण कर लीजिये और जो उसमें शंका हो, वह पारखी सन्तों से पूछ कर समाधान करा लीजिये। यहाँ निर्णय को मुख्य स्थान दिया जाता है। अन्धे के लकड़ी पकड़ाने के समान केवल यहाँ शब्द-प्रमाण या अन्धी श्रद्धा ही नहीं मानी जाती। यदि निर्णय करके सत्य ज्ञान न ग्रहण करोगे, तो अपने को अंश, किञ्चिज्ञ, विवश, इच्छा,

प्रयत्न, सुख-दुःख, राग द्वेष वाला या व्यापक मिश्रित मान कर और अपने से पृथक् अन्य देवी-देवादि की कल्पना करके या भोगी नास्तिक होकर दुःखों के पात्र बनोगे।

शिक्षासार—निर्णय करके सत्यज्ञान ग्रहण करो, तभी कल्याण होगा। किसी के मतों की गहनता और अन्ध परम्परा में मत पड़ो, नहीं दुःख पाओगे।

२४—(साखी-६६)

सुकृत वचन माने नहीं, आपु न करे विचार।
कहहिं कबीर पुकारि के, सपनेहु गया संसार॥

विवेकी पारखी सन्तों के निर्णय-वचन को भूले लोग मानते नहीं, और स्वयं भी यथार्थ विचार नहीं करते। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—ये संसारी जीव स्वप्नवत् नर-तन को खो देते हैं॥६६॥

व्याख्या—जो लोग विवेकवान् के निर्णय नहीं मानते हैं और स्वयं भी सत्यासत्य पर विवेक नहीं करते। वे लोग स्वप्न के समान स्त्री, पुत्र, घर, धन, भोग और देवी-देवादि कल्पना में अपना कल्याण-दायी नर-जन्म खो देते हैं। स्त्री-पुत्रादि माया जाल सब स्वप्न के समान झूठ हैं। इनमें कुछ भी सार नहीं है। परन्तु जिहें सत्य-निर्णय और सत्संग प्रिय नहीं है, वे इसी माया में अपने अनमोल नर-जन्म को नष्ट कर देते हैं।

शिक्षासार— सत्य-निर्णय को ग्रहण करके अपने नर-तन का सदुपयोग करना चाहिये ।

२५—(साखी – ७०)

जहर जिमी दै रोपिया, अमी सींचै सौ बार ।
कबीर खलक ना तजै, जामें जौन विचार ॥

जीव ने अन्तःकरण में विषय-कल्पना को धारण कर लिया है, अतः उसे सैकड़ों बार सत्य पारख निर्णय का उपदेश दिया जाय । तो भी जिसमें जो मानन्दी घुस गयी है, उसे संसारी जीव नहीं छोड़ते ॥ ७० ॥

व्याख्या—जैसे कोई विषका पेड़ लाकर पृथ्वी में रोप (लगा) दे और उसे सैकड़ों बार अमृत से ही क्यों न सींचे, परन्तु वह विषका वृक्ष अमृत नहीं होता । तैसे पञ्चविषयों को और नाना भ्रम-वाणियों की सुख मानन्दियों को मनुष्य हृदय में धारण कर रखा है । परन्तु उससे जीव का कल्याण कदापि न होगा । क्योंकि वह खानी-वाणी का पसारा विषम-विष है । अथवा—हृदय में विषयासक्ति और कल्पना को धारण करने वाले इन जीवों को नाना विधि से बारम्बार समझाये जाने पर भी ये संसारी जीव अपने भ्रम-कल्पना को नहीं छोड़ते हैं । तात्पर्य यह है कि विषयासक्ति और वाणी जाल का पक्ष लोगों को खूब दृढ़ हो गया है । जो निष्पक्ष निर्मानी होता है, वही निर्णय को मानता है । अन्यथा

अन्य संसारी जीव माने हुए बड़े-बड़े मनुष्यों का और अपने-अपने मतों के कल्पित शब्द प्रमाणों का पक्ष लेकर सब कल्पना में लटक रहे हैं। यथार्थ नीर्णय तो निष्पक्ष सज्जन-विवेकी ही मानते हैं।

शिक्षासार—किसी मत, पथ, ग्रन्थ और मान्यता से जीव का मुख्य सम्बन्ध नहीं है। जिस मत, पथ, ग्रन्थ और मान्यता से जीव का दुःख छूट जाय, वही सत्य और ग्रहण करने योग्य है। अतः पक्षपात त्याग कर निर्णय पर ध्यान देना चाहिये।

२६—(साखी—७२)

बिरह की ओदी लाकड़ी, सपचै और धुँधुवाय।
दुखसे तबही बाँचिहो, जब सकलो जरि जाय॥

विषय और वाणी के मोह में आसक्त हुआ जीव विकल होता और रोता रहता है। हे जीव! क्लेशों से तू तभी बचेगा, जब सब विषय और वाणी जाल के मोह नष्ट हो जायँगे॥ ७२॥

व्याख्या—जैसे जल से भीगी लकड़ी में आग लगा देने पर वह धूँआ देकर सुलगती है और शब्द करती है। सुलगने और शब्द करने से वह तभी छुट्टी पाती है, जब जलकर राख हो जाती है। इसी प्रकार विषयासक्त मनुष्य रात-दिन इच्छा-तृष्णा और चिन्ता की होली में सुलगता है और

नाना दुःख-प्रलापों को करता है। अथवा जिसे कल्पित कर्ता-प्राप्ति का बिरह लगा है, वह उसके लिये रात-दिन विकल होता और चीत्कार मार कर रोता है। इन दुःखों से मनुष्य तभी बचेगा। जब पारख ज्ञानाग्नि में विषय और कल्पित कर्ता-प्राप्ति की सब मोह-मानन्दी जल जायगी। क्योंकि विषयों में स्थिर-सुख और कल्पित-कर्ता वन्ध्या पुत्रवत् मिथ्या है। अथवा जो लोग साधु-ब्रह्मचारी भेप धर कर भी विषयों का चिन्तन करते हैं। भीतर-भीतर विषयाग्नि में सुलगते हैं। वे बड़े दुःख के पात्र हैं, उनका दुःख तभी छूटेगा, जब सर्वथा विषय-चिन्तन का अभाव हो जायगा।

शिक्षासार—जीव का कल्याण तभी होता है, जब वह स्व-स्वरूप के अतिरिक्त सब की ममता छोड़ दे।

२७—(साखी—७३)

बिरह बाण जेहि लागिया, औषध लगै न ताहिं।
सुसुकि सुसुकि मरि मरि जिवै, उठै कराहि कराहि ॥

विषय-कल्पना के मोह-वाणी रूपी वाण जिसके लगे हैं, उसे ज्ञान-विचार रूपी औषध नहीं लगता। वह रो-रो कर मूर्च्छित होता और पुनः जागता है तथा हाय-हाय कर उठता है ॥७३॥

व्याख्या—जिसे बाम के श्रामक वाण घायल किये हैं,

जो अत्यन्त विषयासक्त हो गया है। जो स्त्री, पुत्र, धन,घर शरीरादि की दृढ़ ममता किये है। वह सदैव चिन्ता-शोक और दुःखों का सिकार बना रहता है। इसी प्रकार जिसे गुरुओं के विरह-वाण लगे हैं, वह कल्पित खसम की प्राप्ति अर्थ बुमकार छोड़कर रोता है, उस खसम हित बेचैन होकर बेभान हो जाता है, पुनः जागता है और हाय खसम ! हाय खसम ! कहकर विकल होता और अपनी अज्ञानता का परिचय देता है।

शिक्षासार— इस चेतन के ऊपर कोई अन्य खसम नहीं है, अतः कल्पित खसम-प्राप्ति-अर्थ चिन्ता त्याग कर स्व-स्वरूप में स्थित होना चाहिये।

२८— (साखी-- ७५)

जो तू साँचा बाणिया,साँची हाट लगाव।
अन्दर झारू देइके, कूरा दूरि बहाव॥

ऐ चेतन मनुष्य ! यदि तू ज्ञान का सच्चा व्यापारी है, तो सत्संग रूपी सच्चा बाजार लगा। अन्तःकरण में विवेक-विचार रूपी झाड़ू देकर विषयासक्ति और कल्पना-अनुमान रूपी कचड़ा को दूर बहा दे॥ ७५॥

व्याख्या-- सब लोग ज्ञान के सच्चे भूखे नहीं रहते। जिन्हें ज्ञान और कल्याण-प्राप्ति की तीव्र इच्छा नहीं है, उन्हें विवेकी सन्तों का निष्पक्ष सत्संग करना और दुर्गुण-पक्षों

का त्याग करना नहीं सधता। इसलिये श्रीकबीरसाहेब यहाँ कहते हैं कि भाई! तुम यदि ज्ञान के सच्चे क्रय-विक्रय करने वाले व्यापारी हो, तो विवेकी सन्तों के सत्संग रूपी बाजार में निष्पक्ष होकर ज्ञान-सौदा करो और सत्संग से ज्ञान होने के पश्चात् विवेक-विचार द्वारा सब अज्ञान-भ्रम, विषयासक्ति, कल्पनादि विकारों को साफकर अन्तःकरण निर्मल बनालो और कल्याण के पात्र बन जाओ।

शिक्षासार— निष्पक्ष होकर सत्संग करना चाहिये और दुर्गुणों का त्याग करना चाहिये।

२६—(साखी—७८)

ढिग बूड़ा उतरा नहीं, याहि अँदेशा मोहिं।
सलिल मोह की धार में, क्या नींद्रि आई तोहिं॥

कल्याण-साधन के निकट आकर जीव विषय-कल्पना रूपी नदी में डूब गया और उतराया नहीं, यही मेरे को बड़ी चिन्ता है। हे जीव! अज्ञान के जल-प्रवाह में तेरे को क्या नींद लग रही है?॥ ७८॥

व्याख्या—इस मनुष्य-शरीर में कल्याण के साधन प्राप्त रहते हैं। सद्गुरु का सत्संग-सद्बोध धारण कर मनुष्य अपना कल्याण कर सकता है। परन्तु मोक्ष के निकट इस मनुष्य शरीर में आकर भी जीव विषय-मोह और अज्ञान की नदी में डूब रहा है। इस नदी से उतराता नहीं। 'सलिल

मोह की धार में' सलिल नाम पानी, पानी नाम पानी का अंश वीर्य, वीर्य का भाव काम, सो काम के मोह-धारा में हे प्रबुद्ध चेतन मनुष्य! तू क्यों असावधान होता है? अथवा सलिल का भाव पानी और पानी का अर्थ वाणी, सो वाणी के मोह-धारा में हे जीव! तू क्यों जड़ाध्यासी हो रहा है?

अथवा जैसे कोई नदी का लम्बा पाट तैरते हुए तट के निकट आकर डूब जाय, तो बड़े दुःख की बात है। तैसे कोई भक्त, मुमुक्षु और साधु-दशा धारण करके और कल्याण-मार्ग में अधिक चलकर यदि पुनः अपने पद से पतित होकर विषयासक्त हो गया, तो यह बड़ी ही खेद जनक घटना है। ऐसे के प्रति श्री कबीर साहेब कहते हैं, हे प्रिय! विषय और कल्पना के मोह में तुम्हें क्यों नींद लग रही या लग गयी है?

शिक्षासार—ऐसे कल्याण-साधन करने योग्य नर-तन को पाकर मोह-नीद से बिल्कुल जाग्रत होकर अपना उद्धार करना चाहिये।

३०—(साखी—७६)

साखी कहै गहै नहीं, चाल चली नहिं जाय।
सलिल धार नदिया बहै, पाँव कहाँ ठहराय॥

अपने साक्षीपने और साखी शब्दों को लोग कहते हैं,

परन्तु उसका भाव नहीं ग्रहण कर पाते, सदाचरण में चला नहीं जाता। विषय-वाणी-प्रवाह की नदी बहती है, फिर (उन वाचिक ज्ञानियों का) धैर्य कहाँ स्थिर रह सकता है? अर्थात् नहीं रह सकता ॥ ७९ ॥

व्याख्या—जो लोग मुख से कहते हैं कि मैं शुद्ध, अपरोक्ष सब का साक्षी हूँ, परन्तु पारख पद का भाव दृढ़ता पूर्वक अपने हृदय में धारण नहीं करते। अथवा बहुत-से साखी शब्द, कवित्त, छन्द, श्लोक और दृष्टान्त कह कर दूसरे के लिये शिक्षा की झड़ी लगाते रहते हैं। परन्तु स्वयं उसके भाव को नहीं गहते। अच्छी चाल से नहीं चलते। उनकी बड़ी भयंकर दशा होती है। क्योंकि यह संसार पाँचों विषयों का ठाट है और पंच ज्ञान इन्द्रियों में अनादि से पंच विषयासक्ति का कूक खूब भरा है। जो-जो इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों के सम्मुख पड़ती हैं, अविवेकी की वे-वे इन्द्रियाँ तुरन्त जाग्रत हो कर विषयोन्मुख हो जाती हैं। इधर नाना गुरु लोगों की वाणी पृथक् ही गर्ज रही है। जो असावधान लोगोंको फँसाया करती है। फिर बतलाइये! आचरण-हीन, सत्संग भक्ति और साधन-रहित मनुष्य का विषय-वाणी के प्रवाह में कैसे पैर ठहरेगा? कैसे वह धैर्य पूर्वक रह सकता है?

शिक्षासार—कथन से अधिक आचरण पर ध्यान देना चाहिये।

३१—(साखी—८०)

कहन्ता तो बहुते मिले, गहंता मिला न कोय।
सो कहन्ता बहि जानदे, जो न गहंता होय॥

ज्ञान-कथन करने वाले तो बहुत लोग मिले, परन्तु भाव आचरण ग्रहण करने वाला कोई न मिला (बहुत कम मिले) अतः उन वाचिक ज्ञानियों को बह जाने दो, जो कि भाव-आचरण नहीं ग्रहण करते॥ ८० ॥

व्याख्या-- संसार में वाचिकज्ञानी बहुत घूमते हैं। परन्तु आचरण युक्त वक्ता बिरले-बिरले मिलते हैं। अतः सज्जन-जिज्ञासुओं को चाहिये कि जो सद्आचरण युक्त न हों, ऐसे वाचिकज्ञानियों को विषय-वाणी की धारा में बह जाने दें, उनके पीछे स्वयं न पड़ें। आचरण-हीन वक्ताकी संगत तक नहीं करनी चाहिये। हाँ ! दोष दर्शन त्याग कर मधुकर वत् गुणग्राही तो अवश्य ही होना चाहिये।

शिक्षासार— कथन के साथ-साथ सदाचरण धारण करने की महान् आवश्यकता है।

३२— (साखी— ८१)

एक एक निरुवारिये, जो निरुवारी जाय।
दोय मुख की बोलना, घना तमाचा खाय॥

सत्संग में एक-एक बात का क्रमशः निर्णय करना

चाहिये। इस रीति से ही यथार्थ— निर्णय हो सकता है। और जो परस्पर विरोधी दो मुखी बातें करता है,वह जन्मादिक दुःख रूपी कठिन चपेतों को खाता है॥ ८१ ॥

व्याख्या— इस साखी से अनुमान किया जाता है कि श्रीकबीरसाहेब के पास कोई मनुष्य सत्संग करने आया, तो वह क्षण में पूर्व-पक्ष लेकर वाद-विवाद करे और क्षण में उत्तर-पक्ष लेकर तर्क-वितर्क करे। अथवा एक शंका का समाधान न होने पावे और चार-छः शंका उस पर करता जाय। शैली युक्त वह कोई बात न करे। तब साहेब ने कहा, भाई! 'एक-एक निरुवारिये' अर्थात् एक-एक प्रश्न या विषय का निर्णय करिये-कराइये। जिससे यथार्थ निर्णय किया जा सके। परन्तु तुम तो दो मुखी बोली के समान क्षण-क्षण में विपरीत पक्ष लेते हो और हमारे समाधान पर ध्यान न देकर केवल शंका ही करते जाते हो। इससे तुम्हारा अज्ञान रूपी दुःख नहीं छूट सकता। अथवा साहेब कहते हैं हे जीव! तेरे ऊपर जो मिश्रितवाद इत्यादि की एक कल्पना खड़ी है, उसे त्याग दे। क्योंकि मिथ्या मानन्दी त्यागने से छूट जाती है। अन्यथा तू जीव-मुख, माया-मुख, आदि दो मुखी वाणियों में पड़ा गर्भ-संकट भोगा करेगा।

शिक्षासार—धीरतापूर्वक ग्राह्य बुद्धि से सत्संग करना चाहिये और सब बन्धनों को त्याग कर निर्बन्ध हो रहना चाहिये।

३३—(साखी—८२)

जिभ्या केरे बन्द दे, बहु बोलन निरुवार।
पारखी से संग करु, गुरुमुख शब्द विचार॥

बहुत बोलना त्याग कर जीभ को संयम में (स्वाधीन) रखो। पारखी सन्तों की संगत करो और गुरुमुख सार शब्दों का विचार करो॥ ८२॥

व्याख्या—मुमुक्षु को चाहिये कि वह भ्रम-प्रतिपादक जीव-मुख, माया-मुख और ब्रह्म-मुख की वाणियों को न बोले और अनावश्यक बात न बोले, अनधिकारी (कुपात्र) को शिक्षा न दे। अपने जीभ को जहाँ तक बन सके रोक कर रखे। साधक को अधिक बातूनी नहीं होना चाहिये, समय पर निर्णय करना हो, तो खूब करे। परन्तु अन्य समय आवश्यकता मात्र वाक्य बोले और अधिक-से-अधिक चुप रहे। वाक्य-संयम और एकान्त सेवन शान्ति में बहुत सहायक हैं।

गोस्वामी जी ने वैराग्य संदीपनी में कहा है—

दोहा—की मुख पट दीन्हें रहे, यथा अर्थ भाषंत।
तुलसी या संसार में, सो विचार युत संत॥

अर्थात्—'या तो मुख को बन्द रखते हैं या तो सत्य-प्रिय और उचित भाषण करते हैं। गोस्वामी जी कहते हैं, इस संसार में वे ही विवेक सम्पन्न सन्त हैं।'

कुसंगत का त्याग कर सदैव विवेकी-पारखी सन्तों की संगत करनी चाहिये और सारशब्द का सदैव विचार करते रहना चाहिये।

शिक्षासार—वाङ्य संयम, पारखी सन्तों का संग और पारखोक्त गुरुमुख शब्द का विचार सदैव करना चाहिये। ऐसी गुरु की आज्ञा है।

३४—(साखी—८३)

जाके जिभ्या बंद नहिं, हृदया नाहीं साँच।
ताके संग न लागिये, घाले बटिया माँझ॥

जिसकी जीभ वश में नहीं है, और हृदय में सत्य पारख ज्ञान की स्थिति नहीं है। ऐसे वाचाली-भ्रमिक का साथ मुमुक्षु कभी भी न करे, अन्यथा वह बीच मार्ग में ही छोड़ देगा। गन्तव्य स्थान तक न पहुँचा सकेगा॥ ८३॥

व्याख्या—जो अपने मुख से नाना अनुमान-कल्पनाओं की बातें बोलता रहता है। कल्पित दैव, कर्ता, मिश्रितवाद और जड़वाद, नास्तिकवाद का विवाद करता रहता है। अथवा जो बिना आवश्यकता के फक्क-फक्क हरक्षण प्रपंच वार्ताओं को करता है। मुख्य शुद्ध निर्वाहिक-व्यावहारिक और सारनिर्णय के वचनों को बोलकर बाकी समय में जो अपने जीभ को अपने वश में नहीं रखता। और सब भास वादों से रहित अपने भासिक रूप पारख स्वरूप का ज्ञान

और उसकी स्थिति हृदय में नहीं है। तो ऐसे मनुष्यों की संगत नहीं करनी चाहिये। क्योंकि जब वह स्वयं कल्पना या चंचलता में पड़ा है, फिर तुम्हें मुक्ति-स्थिति तक वह क्या पहुँचावेगा ? बीच ही (अज्ञानदशा) में छोड़ देगा॥

शिक्षासार—

साखी—पूरा साहेब सेइये, सब विधि पूरा होय।
ओछे से नेह लगाय के, मूलहु आवे खोय॥

३५—(साखी—८४)

प्राणी तो जिभ्या डिगा, छिन छिन बोल कुबोल।
मन के घाले भरमत फिरै, कालहिं देत हिडोल॥

मनुष्य की जीभ तो चञ्चल है, वह क्षण-क्षण बुरे शब्दों को बोलता रहता है। मन ने इसे भ्रम चक्र में डाल दिया है, अतः यह भ्रमता फिरता है और कल्पनायें इसे दुःख-सुख एवं हर्ष-शोक के झूले में झुला रही हैं॥ ८४॥

व्याख्या—वासनाओं का इतना कूक भरा है, कि मनुष्य स्थिर नहीं रह पाता। वह अपने जीभ (मन-इन्द्रियों) को वश में नहीं कर पाता और क्षण-क्षण प्रापंचिक बातें अनुमान-कल्याण कृत बातें और विषयाग्नि उत्तेजक बातें बोला करता है। जो लोग खानी-वाणी बन्धन पुष्टक बातें बोलते हैं, वे तो अपना और अन्य का गला ही घोटते हैं। परन्तु जो लोग प्रपंच वार्ता करते हैं, झगड़ा-झंझट और हँसी

मखौल, गाली-दिल्लगी, निन्दा-चुगुली, कर्कस, तीव्र, कटु, असत्य इत्यादि बोलते हैं। जो अपने समान दूसरे का मन न जान कर दूसरे को गर्म-नर्म सुनाया करते हैं, अनावश्यक सैल-सपाटा करते हैं, वे ठीक नहीं करते हैं। इससे उनकी हानि होती है (शान्ति-भङ्ग होती है) झगड़ा और राग-द्वेष बढ़ता है। और दूसरे को दुःख और बिगाड़ होता है। परन्तु इस जीव को मन ने इतने भ्रम चक्र में डाल रखा है कि यह एक क्षणभी स्थिर नहीं रह पाता। बिना दृढ़ साधन (एकान्त सेवन, स्वभाव-निरीक्षण) के जीव अपने को स्ववश नहीं कर सकता है। क्योंकि हर्ष-शोक, हानि-लाभ, मान-अपमान, सुख-दुःख तथा राग-द्वेष की कालरूपी नाना कल्पनायें जीव को चंचल बनाये रहती हैं। यद्यपि सब इन्द्रियोंसे शिश्न-इन्द्रिय अधिक बलवान् है। तथापि जीभ भी अन्य इन्द्रियों से बड़ी बलवती है और मन तो सबसे प्रबल है। परन्तु दृढ़ साधन के बल से इन सब मन-इन्द्रियों को स्वाधीन किया जा सकता है।

शिक्षासार—अन्य इन्द्रियों के सहित जीभ और मनको शीघ्र जीतना चाहिये।

३६ – (साखी—८८)

संशय सब जग खण्डिया, संशय खण्डे न कोय।
संशय खण्डे सो जना, जो शब्द विवेकी होय॥

अज्ञान ने सारे संसारी जीवोंको भ्रमाया, परन्तु पारख-हीन किसी ने अज्ञान का पूर्ण नाश न कर पाया। अज्ञान का नाश तो वही करता है, जो सार-असार शब्दों का विवेकी होता है ॥८८॥

व्याख्या—अपने चैतन्य पारख स्वस्वरूप की भूल से कल्पना-भ्रम तथा विषय देह की आसक्ति और मानन्दी जो पुष्ट है। यही संशय-अबोध या अज्ञान का सरूप है। इस अज्ञान ने सबको भ्रमाया है। जिन्हें जड़-चेतन का यथार्थ निर्णय और पारख बोध हो गया है, वे ही इस अज्ञान-संशय को जड़ मूल से विनष्ट कर दिये हैं। अन्यथा खानी-वाणी के पक्षी सब संशय सागर में गोते लगा रहे हैं।

शिक्षासार—निष्पक्ष होकर अज्ञान का नाश कर यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

३७—(साखी-८९)

बोलन है बहु भाँति का, तेरे नैनन किछउ न सूझ।
कहहिं कबीर विचारि के, तैं घट घट बानी बूझ॥

संसार में शब्द, ग्रन्थ और सिद्धान्त अनेकों प्रकार से हैं, परन्तु तेरे नेत्रों से कुछ दीखता नहीं। सदगुरु श्रीकबीर-साहेब विचार पूर्वक कहते हैं, हे जिज्ञासु ! तू अनेक घटों से उच्चरित वाणियों की परीक्षा कर ॥८९॥

व्याख्या—चार-वेद, छः-शास्त्र, अठारह-पुराण, अनेकों-

उपनिषद्, स्मृति, संहिता तथा इसके अतिरिक्त भी अनेकों शास्त्र, अनेकों साहित्य, अनेक मतों के ग्रन्थ तथा अनेक महाकाव्यों एवं वाणियों की संसार में अत्यन्त भरमार है। इन नाना मत-पथ और ग्रन्थों की वाणियों को बिना यथार्थ परीक्षा किये न असत्य मानना चाहिये और न तो सत्य ही मानना चाहिये। विवेक-हीन मनुष्य जिस वाणी को सुनता है, उसी को सत्य मान लेता है। परन्तु इससे मनुष्य की हानि होती है। मनुष्य को चाहिये कि वह जड़-चेतन का निर्णय करके यथार्थ पारख ग्रहण करे। फिर यथार्थ पारख होने पर सब की वाणियों की यथार्थ परीक्षा उसे होती रहेगी। वह सब की कसर-खोट और सारत्व समझ कर मधुकरवत् सब से केवल गुणग्राही होगा। अनुमान-कल्पना नहीं ग्रहण करेगा।

शिक्षासार—यथार्थ परख करके किसी की बात सत्य-असत्य मानना चाहिये।

३८--(साखी-९०)

मूल गहे ते काम है, तैं मति भरम भुलाव।
मन सायर मानसा लहरि, बहे कतहु मति जाव॥

मुख्य अपने चेतन स्वरूप के ज्ञान एवं स्थिति ग्रहण करने से अपना कल्याण है, हे जीव! तू भ्रमे और भूले मत। मन-समुद्र की इच्छा-तरङ्गों में बह कर तू कहीं मत जा॥९०॥

व्याख्या—अतुल धन, ऊँचा सुन्दर महल, बड़ा लम्बा कारबार, शासन, मान, बड़ाई, सुन्दर स्त्री-पुत्र, मन-भावन मित्र-संयोग, मानी हुई उत्तम जाति, सर्वांग सुन्दर शरीर, यौवन लालित्य, अधिक विद्वता, वेद शास्त्र, उपनिषद्, स्मृति, संहिता, इत्यादि नाना ग्रन्थों की जानकारी, शिष्य-सेवक, मठ-मकान काव्य-लेखन और प्रवचन की शक्ति आदि किन्हीं भी बाहरी वस्तुओं की कल्याण में आवश्यकता नहीं है। मुमुक्षुओं को इन उपरोक्त बातों में भूलना भ्रमना नहीं चाहिये। और न तो तीर्थ-भ्रमण, योग-साधन, कल्पित देव पूजन, कर्ता उपासन की ही आवश्यकता है। मात्र सद्गुरु की भक्ति करते हुए मूल अर्थात् सब की कल्पना करने वाला जो पारख स्वरूप चैतन्यजीव है, उसी का यथार्थ ज्ञान और स्थिति ग्रहण करने से अपना मोक्ष सिद्ध हो जायगा। वही चैतन्य पारख स्वरूप मैं हूँ। मैं ही सब वाणी, कल्पना, भास, अध्यास का मानने वाला सत्य अपरोक्ष हूँ। अतएव विजाति वासना त्याग कर मुझे अपने आप ज्ञान स्वरूप में शान्त होना चाहिये। साहेब का कहना है कि हे जीव! मन ही सायर अर्थात् समुद्र है और मनसा (विषय-इच्छा) ही लहरी अर्थात् तरङ्ग हैं, इनके प्रवाह में बह कर तू कहीं मत जावे।

शिक्षासार—मुमुक्षु को बाह्य खानी-वाणी के जाल में और जगत् प्रसिद्धि में न भूल कर मन-वासनाओं के वेगों को

रोक कर स्व-स्वरूप में दृढ़ स्थित होना चाहिये।

३४—(साखी—४८)

राम वियोगी विकल तन, इन्ह दुखवो मति कोय।
छूवत ही मरि जायँगे, तला बेली होय॥

शरीर से व्याकुल रहने वाले जो राम के बिरही हैं, इन्हें कोई मत दुखाओ। क्योंकि यथार्थ बातें कहते ही ये तलमला उठेंगे॥ ९८॥

व्याख्या—रमैया राम स्वरूप के अतिरिक्त दशरथी राम या अन्य कल्पित राम को अपना पति मानकर उसकी प्राप्ति के लिये जो रात-दिन व्याकुल रहते हैं। उन्हें कोई ऐसा कहकर मत दुखाओ कि "जिसकी विरह तुम्हें है, वह है ही नहीं, फिर मिलेगा क्या?" क्योंकि ऐसा यथार्थ कहते ही वे तलफ उठेंगे। उनको बड़ा दुःख होगा। क्योंकि उन्होंने भ्रम ही को सत्य माना है। यहाँ श्री कबीर साहेब पारखी सन्तों को समता पूर्वक उपदेश और सत्संग करने का नियम बताये हैं कि किसी के धार्मिक मानन्दी का कटु-वाक्यों में खण्डन न किया जाय और जो पात्र न हो, उसे यथार्थ निर्णय ज्यों-का-त्यों न सुनाया जाय। सामाजिक शिक्षा केवल धर्म-भक्ति और सद्गुण-सदाचरण के विषय में दिया जाय, जो प्रायः सर्व मतों में मान्य है और सिद्धान्तों का सार असार निर्णय जिज्ञासु मुमुक्षु से किया जाय। किसी

मनुष्य को वही शिक्षा देनी चाहिये या वही निर्णय सुनाना चाहिये जो उसे प्रसन्नता पूर्वक ग्रहण कर सके या समाज में वही शिक्षा-निर्णय कहना उचित है, जिसे सुनकर समाज के अधिक-से-अधिक लोग प्रसन्न हों और उनको उन बातों से अपना सुधार भी जँचे। सत्यवादिता और सत्य सिद्धान्त का जोश भर कर जो लोग समता, शान्ति और विचार रहित समाज में खरी-खरी बातें कह कर सब को दुखाया करते हैं। वे अपने धार्मिक शिक्षाओं द्वारा भी जनता को लाभ पहुँचाने से वंचित रह जाते हैं। संसार के अधिक-से-अधिक लोग सत्यपारख सिद्धान्त को ग्रहण कर लें—यह तो उत्तम ही है। परन्तु सहसा सबको सत्य-सिद्धान्त ग्रहण होना दुर्गम है। अतएव सरलता-समता और अविरोधिता पूर्वक अपने सत्य पारख सिद्धान्त का निर्णय करते हुए सब मतों के मनुष्य को प्रियकर, लाभकर जो सद्‌गुण-सदाचरण और सद्‌धर्म हैं, उसी का निर्णय- व्याख्यान अधिक करना उपदेशक का धर्म है। उपदेशक यही चाहता है कि 'हमारी बातों को सब मान लें' परन्तु समझना चाहिये कि यथार्थ निर्णय होने पर भी पक्षपात और अज्ञान के कारण जो मनुष्य शुद्ध पात्र नहीं है, वह नहीं मानेगा। बल्कि खरा-खरा निर्णय सुनने से उसके मन का विरोधी होने से दुःख ही मान लेगा। पीतल की थाली में अच्छा दही रखने से थाली-दही सब खराब हो जाती है। तैसे अपात्र को सत्य निर्णय सुनाने

से वह निर्णय को भी ठुकरा देता है और दुखी भी होता है। इसके अतिरिक्त जब हम सबका सुधार चाहते हैं, तब हमारे उपदेश से लोग जब प्रसन्न होंगे, तभी वे उपदेश मानेंगे और तभी उनका सुधार भी होगा। (प्रसंग-४ वचन-सुधार में इस ९८ साखी का प्रमाण देकर एक दृष्टान्त दिया गया है, वह मनन करने योग्य है।)

शिक्षासार—अतएव किसी की मान्यता का अनुचित खण्डन-मण्डन नहीं करना चाहिये। समता-शान्ति पूर्वक मीठे वचनों में पारख सिद्धान्त को झलकाते हुए अविरोध धर्म, सद्गुण और सदाचरण की शिक्षा देनी चाहिये। पञ्चग्रन्थी में कहा है—

जाकी बुद्धि जहाँ मढ़ी, तहँ पावे विश्राम।
सो ताके चित से उठै, उपदेशी को काम॥

४०—(साखी—१००)

करक करेजे गड़ि रही, वचन वृक्ष की फाँस।
निकसाये निकसै नहीं, रही सो काहू गाँस॥

कल्पित शब्द समूहों का बन्धन काँटा रूप होकर जीव के हृदय में गड़ रहा है। निकालने से वह निकलता नहीं, अविवेकियों के दृढ़ हो रही है॥१००॥

व्याख्या—वचनों का समूह ही वचन-वृक्ष है, यहाँ 'वचन' से नाना कल्पित मतों की वाणियों का अभिप्राय

है। ये नाना मतों की अनुमति-कल्पित वाणियाँ जीव के हृदय में काँटावत् चुभी हैं। कोई विवेकी यदि इस कल्पना-काँटे को निकालना चाहते हैं, तो जीव और अधिक दुखित होता है। क्योंकि अविवेकियों को वाणी के बन्धन अधिक ग्रस लिये हैं।

शिक्षासार—जैसे काँटा धीरे से निकाला जाता है, तैसे कल्पना-वाणी का धीरे-धीरे सहारे से खण्डन करके निकालना चाहिये। जिससे उसे दुःख न हो।

४१—(साखी—१०१)

काला सर्प शरीर में, खाइन सब जग झारि।
बिरले ते जन बाँचिहैं, जो रामहिं भजे बिचारि॥

भयंकर अभिमान-सर्प सब प्राणियों के शरीरों में बसता है, और सब संसारी मनुष्यों को भली भाँति काट खाया (विवेक हीन कर दिया) है। जो विचार पूर्वक माया-अभिमान से भागेगा, और स्वरूप में निरत होगा वही बिरला सज्जन बचेगा ॥१०१॥

व्याख्या—विश्व आदि पाँच अभिमान ही काला सर्प है। तात्पर्य यह है कि स्व-स्वरूप के अतिरिक्त जहाँ तक खानी-वाणी का अभिमान है, यही भयंकर काला सर्प है, यह अभिमान सर्प सब संसारियों को काट खाया है। अर्थात्

सब मद-मान वश बेभान हैं। जो शरीरादि सब पदार्थों को असत्य समझ कर और वाणी जाल को मिथ्या समझ कर विचार पूर्वक स्थूल-सूक्ष्म का अभिमान छोड़ देता है और स्वरूपराम में ही आराम करता है, वही इससे बचता है।

शिक्षासार—अभिमान करना ही काल के मुख में जाना है, और अभिमान रहित होना ही कल्याण-दशा है। अतः अभिमान रहित होना परम् आवश्क है।

४२—(साखी—१०२)

काल खड़ा शिर ऊपरे, तैं जाग बिराने मीत।
जाका घर है गैल में, सो कस सोवे निश्चिन्त॥

माया में मोहा हुआ ऐ मित्र! तेरे शिर के ऊपर काल खड़ा है, तू सावधान हो जा। जिसका घर काल के पथ में है, वह असावधान होकर क्यों सोवे? ॥ १०२ ॥

व्याख्या—यह जीव माया में मुग्ध है, इसके शिर के ऊपर अभिमान काल खड़ा है। परन्तु मनुष्य जाग्रत नहीं होता। यह नहीं समझता कि अभिमान वश ही जीव की जन्मादिक यन्त्रणायें हो रही हैं। सद्गुरु मनुष्यों को सावधान करते हैं, भाई! तुम अभी सावधान हो जाओ और सब अभिमान त्यागकर कल्याण-साधन करो। अथवा काल का अर्थ है 'काम' सो काम सब संसारियों का शिर मुकुट हो रहा है। और यह जीव मोहवश नर-नारी के घटों में आनन्द मानकर

रमण करता है। फिर काम-काल से कैसे बचेगा ? ये शरीर-इन्द्रिय तथा संसार अभिमान-काल और काम-काल के पथ हैं। इनमें रहकर जो हरक्षण सावधान न होगा। वह अवश्य अभिमान और काम-काल का कवल हो जायगा।

अथवा हे माया-मुग्ध मानव-मित्र ! तेरे शिर के ऊपर मृत्यु मड़ला रही है,तू नित्य मृत्यु के अति निकट होता जा रहा है। आज कल में मृत्यु तुम्हें अपना ग्रास बना लेगी। अतः तू शीघ्र सावधान हो जा ! जब तक तू मृत्यु के मुख नहीं पड़ गया है, तब तक अपना कल्याण साधन करले। आगे की आशा रूपी असावधानी में मत पड़े। मृत्यु के पथ रूप परिवर्तनशील प्रकृति-शरीर में जब तक तुम्हारा निवास है, तब तक तू असावधान होकर मत सोवे। पता नहीं कब काया का प्रलय हो जाय। मृत्यु का दिन तो नित्य निकट आ रहा है। हो सकता है, आज ही, इसी ही घड़ी यह शरीर न रह जाय। अतः शरीर की आशा-भरोसा आज ही से त्याग कर अथवा विचार से इस शरीर का आज ही अन्त समझ कर कल्याण साधन में तीव्र रूप से डट जाओ।

शिक्षासार—जीवन को अनित्य और असुख रूप समझ कर अपना उद्धार शीघ्र करो, वैराग्य शतक में भर्तृहरि जी कहते हैं—

छप्पय—शतहि वर्ष की आयु रात में बीतत आधे।

ताके आधे आध वृद्ध बालकपन साधे ॥
रहे यहै दिन आधि व्याधि गृह काज समोये ।
नाना विधि बकवाद करत सबहिन दिन खोये ॥
जल की तरंग बुद-बुद सदृश, देह खेह होय जात है ।
सुख कहो कहाँ इन नरन को, जासों फूलत गात है ॥

४३—(साखी—१०३)

कल काठो काल्ह घुना, यतन यतन घुन खाय ।
काया मध्ये काल बसत है, मर्म न काहू पाय ॥

दुःख रूपी काया में काल रूप घुन लगा है, वह यत्न पूर्वक खा रहा है। शरीर के बीच में काल रहता है, परन्तु यह भेद कोई (पारख-हीन) नहीं पाते हैं ॥ १०३ ॥

व्याख्या—कल अर्थात् कलह-दुःखरूप, और काठी (काष्ठ से बनी हुई वस्तु के समान जड़ रूप) यह काया है। इसमें अभिमान, काम और समय का घुन लगा है। वह धीरे-धीरे खा रहा है। तात्पर्य यह है कि अभिमान और काम जीव को जड़ाध्यासी बना दिये हैं जैसे लकड़ी के भीतर घुन लगकर उसे भीतर-ही-भीतर खोखला कर देते हैं। वह लकड़ी ऊपर चिकनी और साररूप दिखते हुए भी भीतर निस्सार रहती है। तैसे विषयी मनुष्यों के भीतर अभिमान और काम रूपी घुन चालकर उसे खोखला कर देते हैं। वह ऊपर से चिकना-चुथड़ा दिखते हुए भी भीतर से

खोखला-सारहीन रहता है। वह भीतर-ही-भीतर चिन्ता-ज्वाला में जला करता है। अथवा जीवन का समय हरक्षण बीतता जाता है और मृत्यु का समय निकट आता जाता है। मनुष्य को शीघ्रतिशीघ्र सावधान हो जाना चाहिये। काया में रहे हुए अभिमान काम रूपी काल को मारकर पुनः जीवन-धारण रूपी काल से मुक्त हो जाना चाहिये।

शिक्षासार—विवेक पूर्वक पंच अभिमान और काम को जीतकर जब जीव जीवन्मुक्त हो जाता है, तब काल से पार हो जाता है।

४४—(साखी—१०४)

मन माया की कोठरी, तन संशय का कोट।
विषहर मन्त्र माने नहीं, काल सर्प की चोट॥

मन माया की कोठरी है और शरीर सन्देहों का घर है, काल-सर्पने मनुष्य के हृदय में ऐसा घाव कर दिया है कि वह विषहारी अमृत-शिक्षा को मानता ही नहीं ॥१०४॥

व्याख्या—अनादि काल से देख, सुन और भोग करके पञ्चविषयों के भोगों का चित्र मन में खिचा हुआ है। जो यह अनेक विषयों के चित्र (संस्कारें) हैं, यही माया है। जैसे जिस वस्तु की जो कोठरी रहती है, उस वस्तु से वह पूर्ण रहती है। तैसे यह मन माया की कोठरी है। इस मन में माया-ही-माया भरी है। इसीलिये जिसका मन अभी

नहीं शुद्ध किया जा चुका है, उसके मन में नाना भोगों के मोह हर क्षण उठा करते हैं। इसी प्रकार यह शरीर सन्देहों-भ्रमों का किला है। भाव यह है कि बिना यथार्थ बोध के शरीर वासी जीव को नाना भ्रम घेरे रहते हैं। अभिमान और काम रूपी काल ने जीव को ऐसा मोहित किया है कि पारखी सद्गुरु के विषहारी शिक्षा को प्रायः मानता ही नहीं। इतनी विषयासक्ति की महिमा है।

शिक्षासार—तन-मन के विकारों को जीत कर शुद्ध होना चाहिये।

४५—(साखी १०७)

मन सायर मनसा लहरि, बूड़े बहुत अचेत।
कहहिं कबीर ते बाँचि हैं, जाके हृदय विवेक॥

मन समुद्र है, इच्छायें तरंग हैं, इसमें असंख्यों असावधान डूब गये हैं। सद्गुरु श्री कबीरसाहेब कहते हैं—इससे वे ही उबरेंगे, जिनके हृदय में विवेक होगा ॥१०७॥

व्याख्या—मन एक समुद्र है, वासना का उसमें अथाह जल भरा है तथा इच्छाओं के उसमें तरंग उठते रहते हैं। जो लोग असावधान हैं, जिन्हें जगत्-दुःखों का ज्ञान नहीं है। जिन्हें यथार्थ पारख नहीं प्राप्त हुआ है। ऐसे असंख्यों प्राणी इसमें डूबे और डूबते हैं। इससे बचने का साधन केवल वैराग्य पूर्वक विवेक है।

शिक्षासार—अतः वैराग्य युक्त विवेक उत्पन्न कर मन-वासना और इच्छाओं से पार हो जाना चाहिये।

४६—(साखी—१०६)

मानुष होय के न मुआ, मुआ सो डाँगर ढोर।
एको जीव ठौर नहिं लागा, भया सो हाथी घोर॥

मानवता को धारण करके जीव शरीर नहीं त्यागा, बल्कि पशु का आचरण धारण करके असावधानी में नर-तन तज दिया। अतएव इनमें से एक जीव भी स्थिति को न पाये और हाथी-घोड़े आदि खानियों में गये॥१०९॥

व्याख्या—दया, शील, क्षमा, सत्य, धैर्य, विचार, गुरु-भक्ति, विवेक, वैराग्य, समता, सन्तोष एवं शान्ति आदि सद्गुणयुक्त जो विजाति वासना त्यागकर स्व-स्वरूप में दृढ़ स्थित होकर जीवन्मुक्त हो गया है। उसी को यहाँ मनुष्य कहा गया है। पूर्वोक्त सद्गुणों की धारणा ही मानवता है और जो धारण करे वह मनुष्य है। परन्तु पूर्वोक्त प्रकार से पूर्ण मनुष्य होकर जीव शरीर न तजा। बल्कि हिंसा, व्यभिचार, विषयासक्ति अभक्ष्य-सेवन और क्रोध-कामादि पशु के आचरणों को धारण कर जीवन अन्त कर दिया। अत-एव फल यह हुआ कि नर-तन पाकर भी इन पशु-आचरण-धारी नर-पशुओं में से किसी एक ने भी अपना ठीक-ठौर (मोक्ष-दशा) को न प्राप्त कर सके। बल्कि असावधानी

ही में नर-तन त्याग कर हाथी घोड़ा, बैल, पक्षी और कीट-पतंगादि योनियों में गये।

शिक्षासार—कल्याण-साधन करने योग्य नर-तन को पाकर जीव को असावधान नहीं होना चाहिये।

४७—(साखी—११२)

मानुष विचारा क्या करे, जाके शुन्य शरीर।
जो जिव झाँकि न उपजै, तो कहा पुकार कबीर॥

पशु-आचरणधारी जिस मनुष्य का अन्तःकरण सद्भाव से सर्वथा शून्य है, ऐसे नरपशु को विचारे विवेकी मनुष्य क्या समझायेंगे? जिस जीव के अन्तःकरण में सत्संग-साधन और कल्याण के लिये तनिक-भी झाँकी अर्थात् प्रेम नहीं उत्पन्न होता, तो हे सन्तो! ऐसे पशु-जीव के समझाने के पीछे क्या पड़े हो? ॥११२॥

व्याख्या—जिसके हृदय में सद्विचार नहीं है, जो प्रेम-श्रद्धा से शून्य है, जिसका सन्त-दर्शन, सन्त-शिक्षा संत-सेवा और सत्संग में अनुराग नहीं जगता। जो रात-दिन केवल कमाने-खाने और मलिन भोगों के भोगने में लगा है। धर्म-परमार्थ का नाम सुनकर जिसे बुखार चढ़ आता है एवं जो अत्यन्त भद्दा तथा धर्म की ओर से अत्यन्त मन्द है। ऐसे पशु-स्वभाव-मनुष्य को विवेकी मनुष्य क्या ज्ञान देंगे?

जिसका प्रेम सत्संग में नहीं लगता, उसे कितना ही ललकार कर शिक्षा दिया जाय, सब निष्फल हो जाता है।

शिक्षासार—पात्र को ही शिक्षा देना योग्य है या पात्र-अनुसार शिक्षा देनी चाहिये।

४८—(साखी—११३)

मानुष जन्म नर पाय के, चूके अबकी घात।
जाय परे भव चक्र में, सहे घनेरी लात॥

कल्याण-साधन करने योग्य उत्तम नर-तन प्राप्त कर भी जो अबकी बाजी में असावधान हो गया। वह कीट-पतङ्गादि नीच योनियों के जन्मादिक चक्र में पड़कर अत्यन्त कठिन लात खाया करेगा॥ ११३॥

व्याख्या—इस नर-जन्म में जीव सद्गुरु की शरण लेकर और साधन करके अपना कल्याण कर सकता है। परन्तु यदि इस अवसर में चूक गया, तो यहाँ के किये नाना नीच कर्मों के परिणाम में कीट-पतङ्गादि दुःख रूपी योनियों में पड़ जायगा। तब वह मनुष्यों और पशुओं के पैरों के नीचे दब-दबकर बारम्बार मरा करेगा और पुनः जन्मता रहेगा।

शिक्षासार—आज नर-तन में अपने कल्याण-साधन से चूकना नहीं चाहिये।

४९—(साखी—११४)

रतन का यतन करु, माँड़ी का श्रृङ्गार।

आया कबिरा फिर गया, झूठा है हंकार ॥

रत्न तुल्य नर-तन पाकर कल्याण-साधन करो, सब माया दिखावा मात्र की है। इस संसार-सराय में अनेकों जीव आते-जाते रहते हैं, यहाँ का अभिमान करना व्यर्थ है ॥११४॥

व्याख्या—इस उत्तम नर-तन को पाकर मोक्ष-प्राप्ति के लिये सत्संग और साधन करना चाहिये। श्री तुलसीदासजी ने कहा है। 'साधन धाम मोक्ष को द्वारा।' अथवा 'नर-तन भव वारिध को बेरो।' अतः ऐसी उत्तम योग्यता में चूकना नहीं चाहिये। जिसमें मोह-ममता करके जीव अपना कल्याण साधन भूलता है, वह सब शृङ्गार माड़ी का है। घर-धन, स्त्री-पुत्र, शासन-मान-बड़ाई, पद-प्रतिष्ठा, जवानी-विद्या, फैसन इत्यादि जहाँ तक माया का पसारा है, यही शृङ्गार है। माड़ी कहते हैं जो कपड़ा को चिकना बनाने के लिये लगाया जाता है। माड़ी लगा हुआ कपड़ा चिकना दिखता है। परन्तु कपड़े के एक ही बार धोने से माड़ी निकल जाती है और कपड़े का चिकनापन चला जाता है। इसी प्रकार जहाँ तक माया-भोग रूप शृंगार है, सब माड़ी (दिखावामात्र-फेनावमात्र।) से ललित भासता है। इस में कुछ भी सार नहीं है।

कितने-कितने जीव नर-तन पाकर नामी-ग्रामी, राजा-

रईश, शूर-वीर और विद्वान् बने। परन्तु बिना विवेक-विचार के उनका नर-जन्म जड़ भोगों के संग्रह और भोग में स्वप्न-वत् चला गया। कितने अज्ञानी मनुष्य राजा बने, धन स्त्री पृथ्वी और शासन के लिये करोड़ों प्राणी का गला घोटे। कितनों का धर्म नाश किये। अन्य को जीत-जीतकर अपना धन-राज्य बहुत बढ़ा लिये। सोने के सिंहासन पर बैठ गये। परन्तु अन्त में क्या हुआ ? एक दिन मक्खी की भाँति मर गये और आग की ढेर में जला दिये गये या मिट्टी के गड्ढे में दबा दिये गये अथवा जल में फेंक दिये गये। एवं युद्ध इत्यादि में मार डाले गये और चील्ह-गीध आदि नोच खाये। रावण, कंस, दुर्योधन, आल्हा-ऊदल, जयचन्द, पृथ्वी-राज, मुहम्मदगोरी, मुगल के अनेक रजवाड़े, औरङ्गजेब, हिट-लर इत्यादि का आज केवल थोड़े समय के लिये नाम रह गया है। इन जीवों ने अपनी क्या स्थिति की ? अतः यहाँ के नाशवान् पदार्थों का अभिमान करना सर्वथा व्यर्थ है। वैराग्य शतक में भर्तृहरि जी ने कहा है—

दोहा—इन्द्र भये धनपति भये, भये शत्रु के साल।
कल्प जिये तौऊ गये, अन्त काल के गाल॥

शिक्षासार—सब माया छूटने वाली नाशवान् है। इस-लिये अपना कल्याण-साधन करना चाहिये।

५०—(साखी—११५)

मानुष जन्म दुर्लभ है, बहुरि न दूजी बार।
पक्का फल जो गिर परा, बहुरि न लागै डार॥

मनुष्य तन का मिलना बहुत दुर्लभ है। अतः इसे पाकर ऐसा पुरुषार्थ करना चाहिये कि जिससे 'बहुरि न दूजी बार' अर्थात् पुनः दुबारा जन्म न धारण करना पड़े। अर्थात् मोक्ष हो जाय। विवेकादि पक्की हंस-रहनी में चलकर जीवन समाप्त करने पर पुनः कभी भी जन्म नहीं धारण करना पड़ेगा ॥११५॥

व्याख्या—पूर्व नर-जन्मों के पुण्य संस्कारों से आज उत्तम नर-तन हमें मिला है। अतः हमारा कर्तव्य है कि हम ऐसा पुरुषार्थ करें, जिससे पुनः दुःख रूपी काया में न आना पड़े। परन्तु यह कब होगा ? जब काम, क्रोध, लोभादि दुर्गुणों को त्यागकर दया, शील, क्षमा, सत्य, धैर्य, विवेक-वैराग्यादि सद्गुण रूप पक्के हंस-रहनी में रहकर चलेंगे और उसी में जीवन समाप्त कर देंगे। तब जैसे पका फल गिरने पर पुनः डगाली में नहीं लगता। तैसे पक्के हंस गुण से चलते-चलते शरीरान्त करने पर पुनः काया में नहीं आना पड़ेगा।

दूसरा अर्थ—जैसे पका फल के गिर जाने पर पुनः वह डगाली में नहीं लगता। परन्तु उसके बीज से दूसरा वृक्ष

होता है। तैसे यह तन छूट जाने पर इस तन में वह जीव पुनः नहीं प्रवेश करता। परन्तु इस काया के वासना-बीज शेष रह जाने से अबोधी जीव को अन्य काया मिलती है। यहाँ कोई यह प्रश्न कर सकता है कि श्रीकबीरसाहेब पके ही फल का उदाहरण क्यों दिये, कच्चा फल भी तो डगाली से टूटकर गिरने पर पुनः डगाली में नहीं लगता। तो उसका उत्तर यह है कि कच्चा फल डगाली से गिर कर पुनः डगाली में लगता भी नहीं और उसके बीज से दूसरा वृक्ष होता भी नहीं। परन्तु पका फल डगाली से गिर कर केवल पुनः डगाली में नहीं लगता है। किन्तु उसके बीज से दूसरा वृक्ष उत्पन्न हो जाता है। तैसे इस शरीर के छूट जाने पर यह शरीर जीव युक्त सुरक्षित तो नहीं रहता। परन्तु इस शरीर की वासनायें शेष रहने से दूसरे शरीर की प्राप्ति अबोधी जीव को अवश्य होती है। अतः यहाँ कच्चे फल का उदाहरण न देकर पके फल का ही देने योग्य था। यहाँ का अभिप्राय यह है कि इस नर-तन के छूट जाने पर इसमें जीव का पुनः न आगमन होगा और न इसे किसी विज्ञान-प्रयोग द्वारा संचालित ही किया जा सकता है और यदि मानवता के सद्‌गुण जीव के नहीं रहे, तो शीघ्र इस कल्याण-साधन करने योग्य उत्तम नर-तन का मिलना भी नहीं होगा। बल्कि पशुपक्षी और कीट-पतंगादि नाना योनियों

में बहुत काल भटक कर पुनः नर-तन-प्राप्ति की योग्यता जीव को मिलेगी। अतः आज प्राप्त-समय का हमें दुरुपयोग न करके सदुपयोग करना चाहिये। अर्थात् कल्याण-साधन करके कल्याण का अधिकारी हो जाना चाहिये।

शिक्षासार—मोक्ष हेतु सत्संग-साधन करना परमावश्यक है।

५१—(साखी—११६)

बाँह मरोरे जात हो, मोहि सोवत लिये जगाय।
कहहिं कबीर पुकारिके, ई पिण्डे होहु कि जाय॥

जिज्ञासु ने कहा हे गुरो! हमें स्थिति-दशा दर्शा कर और अपना बाँह छुड़ाकर क्यों जाते हो? मेरे को तो आप ही ने मोह-निद्रा से जगाया है। तब सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब ने समझा कर कहा—इस नर-जन्म में सद्पुरुषार्थ करके अपने चैतन्य पारख स्वरूप में दृढ़ता पूर्वक स्थित हो जाओ, नहीं तो भ्रम में चले जाओगे॥ ११६॥

व्याख्या—ऊपर की (११५) साखी कह कर जो सद्गुरु ने यह भाव झलकाया कि विवेक-वैराग्यादि पक्के सद्गुणयुक्त जीवन पर्यन्त चलकर यदि शरीरान्त करे, तो जीव पुनः भव में न आवे। तो यह बात सुनकर जिज्ञासु को पूरा बोध न होने से उसने इस (११६ वीं) साखी में सद्गुरु से शंका किया कि हे सद्गुरुदेव! आप बोध- वैराग्यादि पूर्वक

चलने से मोक्ष बतला कर, इतने ही में छुट्टी लेना चाहते हैं। परन्तु मैं तो यह सब कुछ जानता नहीं। मैंने तो केवल आप का पल्ला पकड़ा है। आप ही हमारे उबारने वाले हैं। तब सद्गुरु ने उत्तर दिया—हे जिज्ञासु ! तू व्यर्थ कल्पना क्या करता है ? जैसे अजर, अमर, अखण्ड, शुद्ध चैतन्य पारख स्वरूप मैं* हूँ। तैसे अजर, अमर, अखण्ड, शुद्ध चैतन्य पारख स्वरूप तू है। जो गुरु पद मेरा है, वही गुरु पद तेरा है। तेरे-मेरे समानता में किञ्चिन्मात्र भी अन्तर नहीं है। अतः तू सब वासनाओं को सर्वथा त्याग कर अपने चेतन स्वरूप में दृढ़ता पूर्वक स्थित होजा। सब वासनाओं के त्याग-पश्चात् सबका त्याग करने वाला द्रष्टा जो शेष बच रहता है। वही तेरा स्वरूप है। तू अन्य कल्पना में मत भ्रमे। इस साखी के उत्तरार्ध की टीका जो श्री पूरण साहेब किये हैं, उसे यहाँ उद्धृत कर देते हैं—

गुरुमुख—'कहहिं कबीर पुकारि के' (अर्थात् श्रीकबीर साहेब कहते हैं—) हे विचारवान् जीव ! तुम यथार्थ पारख करके देखो कि जाको तुम कबीर कहते हो और गुरु कहते हो, सो कहाँ है ? हक नाहक मिथ्या धोखे में पड़ो मत, इस पिण्ड में पारख पर स्थित होओ। जासें† तुमने सब परखा,

---

*—चौ० "पारख में हम तुम हैं एका। देह भाव से भिन्न विवेका॥ नि०

†—सा०—"जाते सकलो परखिया, सो पारख निज रूप।
तहाँ होय रहु थीर तू, नहीं झांई भ्रम कूप ॥ त्रिजा०॥

सोई पारख और गुरुपद, ताके उपर और कुछ नहीं। यह जान के तुमहूँ पारख होहु कि भ्रम में चले जाओ मत। "हम तो कहीं आयँ नहिं जायँ। सदा एकरस नाहिं नशायँ॥" सो तू कहीं घबराय के पारख छोड़ के मत जाना।"

(त्रिजा से)

यहाँ ग्रन्थ कर्ता के कथन का सारांश यह है कि किसी कल्पित कर्ता—ब्रह्म या कबीर, गुरु के स्वरूप में घुल-मिल कर जीव का मोक्ष नहीं है। कर्ता-ब्रह्मादि तो कल्पित ही हैं। और गुरु-शिष्य दोनों का चेतन स्वरूप भिन्न-भिन्न और समान है। अतः विजाति वासना त्याग कर अपने-अपने चेतन स्वरूपमें ही जीव की अविचल स्थिति होती हैं। बोध-दाता गुरु है, और बोध गहीता शिष्य है। व्यवहार में जीवन पर्यन्त गुरु-शिष्य की भिन्न मर्यादा है, गुरु सेव्य है और शिष्य सेवक है। परन्तु सद्गुण युक्त स्वरूप स्थिति दोनों की समान होने से परमार्थ में एक समानता* है। जैसे गुरु की शान्ति दशा, तैसे शिष्य की शान्ति दशा।

शिक्षासार—जीवन पर्यन्त गुरु की भक्ति करते हुए स्व-स्वरूप की स्थिति करनी चाहिये।

---

* चौ०—"पारख में समता होय जाई।
शिष्य भाव न रहै गुरुवाई॥ नि०॥

५२—(साखी—११९)

हाथ कटोरा खोवा भरा, मग जोवत दिन जाय।
कबीर उतरा चित्त ते, छाँछ दियो नहिं जाय॥

अन्तःकरण रूपी हाथ के प्रेम रूपी पात्र में बोध रूपी खोया भरकर जिज्ञासुओं का मार्ग देखते ही विवेकी सद्गुरु-सन्तों के दिन जाते हैं। परन्तु जब गुरु के चित्त से जीव उतर जाता है, तब बोध रूप खोया कौन कहे उस जीव के प्रति मट्ठा रूप व्यावहारिक शिक्षा भी देने का मन नहीं कहता ॥११९॥

व्याख्या—जैसे कोई मनुष्य खोये से पात्र भर कर हाथ में लिये-लिये अपने मित्र का मार्ग देखे कि कब हमारा मित्र आवे और मैं उत्तम खोया खिला कर उसे प्रसन्न करूँ। तैसे विवेक-वैराग्यादि सम्पन्न सद्गुरु-सन्त-महात्मा जन अपने अन्तःकरण रूपी हाथ के प्रेम रूपी पात्र में पारख बोध (यथार्थ स्वरूपज्ञान) रूपी खोया भर कर लिये हैं और नित्य जिज्ञासुओं का पथ देखते हैं। तात्पर्य यह है कि बोध-वान् सद्गुरु सन्त-जन यह सदैव चाहते हैं कि संसार के सब जीव बोध-वैराग्य धारण कर जगत्-बन्धनों से मुक्त हो जायँ। अतएव अपने दया स्वभाव से वे सबका उद्धार चाहते हैं। परन्तु जो जीव गुरु-ज्ञान को कुछ दिन धारण कर और पुनः उसे त्याग कर गुरु-ज्ञान से विपरीत हो जाता है और सब

भाँति उल्टा आचरण धारण कर ज्ञान से टेढ़े ही रहता है। अर्थात् महा अहंकारी, कपटी-कुटिल हो जाता है या पहले से ही अहंकारी, कपटी-कुटिल, शठी-हठी है तथा सब भाँति उल्टा चलता है। तो उसे बोध-वैराग्य की शिक्षा तो दूर रही, व्यावहारिक शिक्षा देने का भी मन नहीं करता।

इस साखी में यह शंका हो सकती है कि जब गुरुपद-संतपद नैराश्य दशा युक्त है। तब (मग जोवत दिन जाय-अर्थात्) सब के सुधार के प्रपंच में पड़कर वे संसारियों का मार्ग सदा क्यों देखेंगे ? और जब वे दयालु-क्षमालु हैं, तो (छाँछ दियो नहिं जाय-अर्थात्) शठी-हठी को शिक्षा क्यों नहीं देंगे ? क्या वे भी वैसे हो जायँगे? तो इसका समाधान यह है कि नैराश्य-दशा युक्त होते हुए भी विवेकी सद्गुरु-सन्त जन सहज भाव से सबका हित चाहते हैं। यह नहीं कि प्रचार की तृष्णा में अपना साधन और शान्ति-दशा छोड़ देते हैं। अपनी शिक्षा द्वारा सदैव सबका हित चाहते हुए भी वे सब से सदैव नैराश्य रहते हैं। इस रहस्य का ज्ञान मनुष्य को पूर्ण रूप से तब होता है, जब या तो वह उस श्रेष्ठ दशा को स्वयं प्राप्त कर लेता है या तो निर्मानता-सरलता पूर्वक समझने की श्रद्धा रहती है। दूसरे जो 'छाँछ दियो नहिं जाय' पर शंका है। तो यह नहीं है कि विवेकी सद्गुरु सन्त भी हठी-शठी लोगों से ईर्ष्या कर लेते हैं। उसका

तात्पर्य यह है कि उसको सर्वथा पात्र-हीन देखकर शिक्षा देने की इच्छा नहीं होती। क्योंकि वे यह जानते हैं कि इसका किञ्चिन्मात्र भी श्रद्धा शिक्षा पर नहीं है। बल्कि सद्शिक्षा पर ही इसकी दोष-दृष्टि है। अतः उस कुपात्र के लिये शिक्षा देना निष्फल समझ कर वे सद्गुरु-सन्त जनशिक्षा देने की इच्छा नहीं करते। क्योंकि 'जो जिव झाँकि न ऊपजै, तो काह पुकार कबीर।' और दुष्ट से विवेकी जन ईर्ष्या नहीं करते, वे तो सब पर समान दृष्टि रखते हैं।

शिक्षासार—अपने ऊपर सद्गुरु की महान अनुकम्पा समझ कर उनकी भक्ति करते हुए अपना कल्याण-साधन करना चाहिये।

५३—(साखी—१२०)

एक कहौं तो है नहीं, दोय कहौं तो गारि।
है जैसा रहै तैसा, कहहिं कबीर विचारि॥

अद्वैत ब्रह्म को यदि सत्य कहता हूँ, तो सत्य है नहीं, और जीव के ऊपर दूसरा कर्त्ता-ईश्वर कहूँ, तो वह भी मिथ्या है। अतः सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब विचार करके कहते हैं कि जैसा यह जीव जड़ से भिन्न अनादि स्वतः स्वतन्त्र चैतन्य पारख रूप सत्य पदार्थ है, वैसे ही निर्विषय आचरण रखकर मुक्त हो जाना चाहिये॥१२०॥

व्याख्या—जड़-चेतन, बन्ध-मोक्ष आदि अनेकों विरोधी

वस्तु होने से अद्वैत वाद सर्वथा कल्पित है। परन्तु अनादि जड़-चेतन के ऊपर अन्य कर्त्ता भी असत्य है। इसलिये जैसा अपना पारख स्वरूप चैतन्य जीव है, तैसा ही रहस्य आचरण में रहना चाहिये और पारख स्वरूप में दृढ़ स्थित होकर मुक्त हो जाना चाहिये। (यहाँ का विषय यदि स्पष्ट समझना हो तो सोपान ६ पूरे भ्रम निराकरण को या क्रम संख्या ५२ शब्द ११५ के अन्त भाग में इस साखी का भाव देखिये।)

शिक्षासार—द्वैताद्वैतादि और जड़वाद से रहित श्रीकबीरसाहेब का पारख-सिद्धान्त है। जिसमें जड़-चेतन स्वतः अनादि माने जाते हैं ।

५४—(साखी—१२१)

अमृत केरी पूरिया, बहु विधि दीन्हा छोरि।
आप सरीखा जो मिलै, ताहिं पियाऊँ घोरि॥

अविनाशी स्वरूपस्थिति का रहस्य (आचरण) अनेक प्रकार से स्पष्ट निर्णय कर दिया है। यदि अपने समान कोई मुमुक्षु मिले, तो उसे उक्त निर्णय पूर्ण समझा दूँ ॥१२१॥

व्याख्या—अमृत अविनाशी को कहते हैं, सो गुरु ने इस अविनाशी जीव का यथार्थ स्वरूप और जीवन्मुक्ति का आचरण दर्शा दिया है। साथ-साथ आप प्रतिज्ञा करते हैं

कि यदि कोई चाहे, तो मैं उसे उस अमृत-ज्ञान से अभी तृप्त कर दूँ ।

शिक्षासार—गुरु की दया असीम है, साधक को कल्याण-साधन में पुरुषार्थ करने का विलम्ब है ।

'२५—(साखी—१२२)

अमृत केरी मोटरी, शिर से धरी उतार ।
जाहि कहौं मैं एक है, सो मोहि कहै दुइ चार

कल्याण के आचरण को मनुष्य ने अपने अन्तःकरण से निकाल कर पृथक् रख दिया है । जिसको मैं कहता हूँ कि एक जीव कोटि सत्य है, वह मुझे दो-चार बतलाता है १२२

व्याख्या—कल्याणदायी आचरण ही अमृत की मोटरी हैं, परन्तु मनुष्यों ने उसे तो अपने शिर से उतार कर पृथक् रख दिया है । अर्थात् सत्संग-हीन मनुष्य कल्याण-साधन से करोड़ों कोस दूर हो गये हैं । अपने क्षेत्र में यद्यपि चार तत्त्व भी सत्य हैं, परन्तु वे निस्सार हैं । अतः एक चैतन्य जीव ही सत्य और सार पदार्थ है, वही अपना स्वरूप है । परन्तु लोगों ने जीव के ऊपर अन्यकर्ता की कल्पना करके जीव-ईश्वर दो और ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा गणपति ये चार तथा नाना देवी-देवादि अपना उद्धारक माना है । यह सब मनोमय का तमाशा है ।

शिक्षासार—जड़ से भिन्न चेतन जीव का स्वरूप है,

वही मैं हूँ। मेरे ही समान भिन्न-भिन्न सब जीव हैं और इसके अतिरिक्त सब मनोभास है।

५६—(साखी—१२८)

तीन लोक चोरी भई, सबका सरबस लीन।
बिना मूँड़ का चोरवा, परा न काहू चीन्ह॥

पारख-हीन सतोगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी—इन तीनों लोकों में चोरी हो गयी, और चोर ने सब का सर्वस्व हरण कर लिया। परन्तु चोर बिना शिर के है, अतः उसे कोई पहचान न पाया॥१२८॥

व्याख्या—भास, अध्यास, काम, क्रोध, लोभ, मोहादि युक्त जो यह मन है, यही बड़ा विकट चोर है। इसने सब पारख-हीन असावधानों के हृदय से ज्ञान-धन चुरा लिया है और विषयासक्त एवं भ्रमिक बना रखा है। यद्यपि यह मन बिना शिर-पैर के है, अर्थात असत्य रूप है। परन्तु इस मन के सरूप को यथार्थ कोई पारख-हीन लोग परख नहीं पाते। रजो-तमोगुणियों को तो इसने दाना-दाना लूटा ही है। परन्तु सतोगुणी रूप सत्कर्मी और नाना शास्त्रज्ञानी को भी कल्पित स्वर्ग, दैव, कर्ता, कारण एवं व्यापक भास में फँसा कर यथार्थ ज्ञान से हीन बनाया है।

शिक्षासार—अपने चैतन्य स्वरूप से भिन्न परोक्ष-प्रत्यक्ष जहाँ तक सुखमानन्दी है, यही मन का रूप है। मन-मानन्दी

को त्यागकर अपने आप में दृढ़ स्थित होना चाहिये।

५७—(साखी—१२९)

चक्की चलती देखि के, मेरे नैनन आया रोय।
दुइ पाट भीतर आय के, साबुत गया न कोय॥

अज्ञान रूप जन्म-मृत्यु की चलती हुई चक्की देखकर मेरे नेत्रों से रोवाई आ गयी। खानी-वाणी रूप दोनों पाट के भीतर आकर कोई कल्याण पद को न प्राप्त हुआ॥१२९॥

व्याख्या—जन्म-मरण की चलती हुई चक्की बड़ी दुःख मयी है। क्योंकि जन्म के प्रथम गर्भवास का दुःख सहना पड़ता है। फिर जन्म-दुख, बाल्यकालिक-दुःख, यौवन के प्रमाद और कामान्धता का दुःख, वृद्धपन के तृष्णा-चिन्ता का दुःख, शरीर-शिथिल-रोगी होने का दुःख, जीवन-निर्वाहिक झंझटों का दुःख, त्रय ताप का दुःख और पुनः मृत्यु का दुःख। इस प्रकार जन्म-मृत्यु के कठिन दुःखों की चलती हुई चक्की देखकर श्रीकबीरसाहेब के दृढ़ निर्वेद अर्थात् ग्लानि या उपरामता हुई। अतएव वैराग्य-विवेक धारण करके इस दुःखमय जन्म-मरण से वे तो मुक्त ही हो गये। साथ-साथ अन्य जीवों के दुःख-निवृत्ति के लिये यथार्थ पारखज्ञान और विवेक-वैराग्यादि का उपदेश दे गये। आपने कहा—भाई खानी-वाणी रूप दो पाट के भीतर आकर कोई कल्याण रूप नहीं हो सकता। अतः

इसके बन्धन से पृथक् होने पर ही दुःखों की निवृत्ति है। स्त्री, पुत्र, घर, धन शरीरादि मोटी माया खानी जाल है। और कल्पित स्वर्ग, देव, भूत, कर्ता, व्यापक आदि मानना वाणी जाल है।

शिक्षासार—मुमुक्षु को खानी-वाणी से पार होकर स्वरूप स्थिति करनी चाहिये।

५८—(साखी—१३५)

घुँघुची भर के बोइये, उपजा पसेरी आठ।
डेरा परा काल का, साँझ सकारे जात॥

जीव युक्त थोड़ा ही वीर्य नारी क्षेत्र में बो देने से (पाँच विषय और तीन गुण युक्त) आठ पसेरी का शरीर उत्पन्न हो जाता है। यही काल का डेरा पड़ना है, प्रातः-सायं के समान सब अज्ञानी जीव जन्म-मरण चक्र में घूम रहे हैं॥१३५॥

व्याख्या—इस साखी में मुख्य दो बातें बतलाई गयी हैं। एक तो यह बात बतलायी गयी है कि जीव युक्त रज-वीर्य का सम्बन्ध होने से ही नारी के गर्भ ठहर कर सन्तान होता है। जब तक जीव वहाँ प्रवेश नहीं करता, तब तक अनेकों बार के रज-वीर्य सम्बन्ध होने पर भी सन्तान नहीं होता। दूसरी बात यह बतलायी गई है कि इस शरीर का निर्माण होना ही काल का डेरा पड़ना है। तात्पर्य यह है

कि शरीर रूप यम-सदन का मनही काल (यमराज) है। सो इस मन रूप यमराज का डेरा रूप शरीर बारम्बार पड़ता रहता है। अर्थात् मनयुक्त शरीर बनकर जीव के दुःख भोगने का कारण होता रहता है। और जब तक जीव विषय-वासना त्याग कर स्वरूप में दृढ़ स्थित नहीं होता है। तब तक जैसे बारम्बार प्रातःकाल और सायंकाल होता रहता है, तैसे बारम्बार जीव का यम-सदन रूप शरीर में आना-जाना लगा रहता है।

शिक्षासार—जीव जड़ से भिन्न है, वह वासना वश यम-सदन रूप शरीर में दुःख भोग रहा है। अतः इस यम-सदन से पुरुषार्थ करके मोक्ष प्राप्त करना चाहिये।

५४—(साखी —१३६)

मन भर के बोइये, घुँघची भर नहिं होय।
कहा हमार माने नहीं, अन्तहु चले बिगोय॥

जीव-रहित यदि एक मन वीर्य नारी-क्षेत्र में कोई स्थित कर दे, तो भी किञ्चिन्मात्र भी सन्तान का पिण्ड न उत्पन्न होगा। विवेकी के कथन को ये जीव मानते नहीं, अन्त में दुःख के पात्र होकर गर्भ-संकट में जाते हैं ॥१३६॥

व्याख्या—कितने ही बार नर-नारी का सम्पर्क हो, नारी-क्षेत्र में कितना ही वीर्य का कोई सिञ्चन करे। परन्तु

यदि वहाँ जीव नहीं गया है, तो सन्तान का एक छोटा पिण्ड भी नारी के गर्भ से नहीं हो सकता। परन्तु भूले लोगों ने तो चेतन जीव का कोई तत्त्व न समझ कर केवल नर-नारी के सम्पर्क से या जड़तत्त्वों के संयोग से ही सचेतन सन्तान की उत्पत्ति मानता है। इन भौतिकवादी-देहवादी भाई लोगों को जड़ से भिन्न चेतन का अस्तित्त्व और कर्म-वासना वश कर्म-फल भोग तथा वासना त्याग से मोक्ष आदि न निश्चय होने से न तो हिंसा-अभक्ष्य सेवन तथा कामादि दुराचरण-दुर्गुणों का त्याग ही करते हैं और न तो अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य तथा दया, शील, विवेक-वैराग्यादि सदाचरण-सद्गुण धारण ही करते हैं। अत-एव देहवादी होकर नाना अवकर्म करके और दुःख के पात्र बनकर नीच योनियों में बारम्बार जाते रहते हैं।

शिक्षासार—जड़ देह का पक्ष त्याग कर अपने को चेतन समझना चाहिये। वासना-वश कर्म-फल भोग होता है और वासना त्याग से मोक्ष होता है। ऐसा समझकर हिंसादि पाप का त्याग कर सदाचारी होना चाहिये।

६०—(साखी—१३७)

आपा तजै हरि* भजै, नख शिख तजै विकार।
सब जीवन से निर्वैर रहै, साधु मता है सार॥

---

* श्री विष्णु, शिव, ब्रह्मा, इन्द्र, सिंह, बानर, सर्प, मेढक, तोता, यम,

अभिमान को तज दे, माया-मोह से दूर भाग जाय, नख से शिखा तक के सम्पूर्ण दुर्गुण-विकारों को मिटा डाले। सब जीवों से वैर-विरोध-त्याग कर रहे और शील-स्वभाव धारण करे—तब जीवन का सार (लाभ) मिलता है ॥ १३७॥

व्याख्या—जीवन का सार-लाभ-प्राप्ति के लिये अथवा नर-जन्म के ध्येय-पूर्ति के लिये सद्गुरु श्री कबीरसाहेब ने यहाँ पाँच साधन बतलाया है—(१) अभिमान का त्यागना,

---

धनुष, हाथी, कामदेव, सूर्य, हिरण, पपीहा, घोड़ा, चन्द्रमा, वायु, मोर, अग्नि, पर्वत, पानी, मार्ग, घन, आकाश, मनु, प्राण, मोती, भौंरा, अमृत, कमल, सोना इत्यादि हरि के अनेक अर्थ विद्वानों ने किया है। अतः यहाँ हरि का अर्थ यम या माया है। और भजै का अर्थ त्याग या भागना है। इसके विषय स्पष्ट समझना हो तो क्रम संख्या ५४ शब्द ४० की व्याख्या देखिये।

यदि कोई कहे कि हरि का अर्थ विष्णु ही होना चाहिये। क्योंकि 'हरिभजै' पद साखी में है। तो सुनिये! श्री विष्णु को श्री कबीर साहेब कभी इष्ट नहीं माने हैं। बल्कि आपने कहाहै—साखी—'मच्छ रूप माया भई, जवरहिं खेलै अहेर। हरि हर ब्रह्मा न ऊबरे, सुर नर मुनि केहि केर ॥ बीजक—रमैनी ४६ ॥" आपने बीजक में हरिहरादि को एक विख्यात उत्तम कोटि के सविषयी मनुष्य माना है। जैसे कि वास्तव में वे थे, फिर मायासक्त व्यक्ति का भजन या चिन्तन करने को आप क्यों कहेंगे? अतः बीजक में जहाँ कहीं 'हरि' पद है, सब माया या बन्धनप्रद-यम वाचक है और जहाँ कहीं 'भजै' पद है सब भागने या त्यागने का वाचक है। हरि को आप ने माया ही माना है, यथा—हरि ठग ठगत ठगौरी लाई ॥ बीजक ॥"

(२) माया का त्यागना, (३) नख-शिख सब विकारों-दुर्गुणों का त्यागना, (४) सब जीव से निर्वैर रहना, और (५) साधु-मत अथवा शील स्वभाव धारण करना, प्रथम-विचार पूर्वक अभिमान का खण्डन करना चाहिये। स्त्री, पुत्र, धन घर, जाति, यौवन-अवस्था, सुन्दरता, विद्या, मान-बड़ाई, मत-पथ, वेद-वाणी—सब अपने चेतन स्वरूप जीव से भिन्न कल्पित हैं और विवश, छूटने वाले हैं। अतः उनका अभिमान कैसा ? दूसरे—जब पाँचों विषय की आसक्ति, वाम-वंचक रूप माया सदैव जीव को बन्धन एवं दुःख देते हैं। तब इनका धीरता-वीरता पूर्वक त्याग करना ही आवश्यक है। तीसरे—अनादि-काल से इस असत्य विकारी शरीरके विकारों में पड़कर जीव अत्यन्त विकारी अर्थात् दुर्गुणी हो गया है, इस विषयासक्त जीव के दुर्गुणों की गणना नहीं है। यहाँ संक्षिप्त रूप से तन, मन और वचन के दश दुर्गुणों का नाम बताया जाता है। तन के—चोरी, हिंसा, व्यभिचार। मन के—ईर्ष्या, क्रोध, मान, छल। वचन के गाली, निन्दा और झूठ—इन दश दोषों को यदि त्याग दिया जाय, तो सब विकारों का नाश हो जायगा। चोथे—सब जीवों को अपने समान और भूला समझ कर द्रोह-ईर्ष्या और वैर का नाश करना चाहिये। पाँचवे—सब कठोरता और टेढ़ापन त्याग कर शील स्वभाव धारण करना चाहिये।

अभिमान के त्याग देने पर—विचार। मायासक्ति

त्याग देने पर—धैर्य। देहासक्ति—दुर्गुणों को त्याग देने पर—सत्य। वैर-विरोध त्याग देने पर—दया और कठोरता-टेढ़ापन त्याग कर साधु-मत धारण करने पर—शील शेष रहता है।

शिक्षासार—अभिमान, माया, देहासक्ति-दुर्गुण, वैर-विरोध और कठोरता त्याग कर विचार, धैर्य, सत्य, दया और शील धारण कर जीवन लाभ-कल्याण का भागी बनना चाहिये।

६१—(साखी – १३९)

बड़े गये बड़ापने, रोम रोम हंकार।
सतगुरु के परिचय बिना, चारों बरण चमार॥

अपने को बड़ा मानने वाले बड़ापन के मद में पतन हुए या पतन होते हैं, क्योंकि उनके रोम-रोम में स्वाभिमान का नसा भरा था या भरा है। ब्रह्मादि गुरुओं की वाणी की परीक्षा किये बिना चारों वर्ण चमार हैं १३९॥

जो लोग अपने को सबसे बड़ा मानते हैं। वर्ण, आश्रम, जाति-पाँति, धन, बल, विद्या, मान, बड़ाई, रूप, सौंदर्य तथा स्त्री-पुत्रादि का अभिमान धारण करके घनघोर मदरूपी मद्य पीकर बेभान हैं। वे इन क्षणिक कल्पित पदार्थों के मद वश ही पतन हो जाते हैं। खानी-वाणी की कल्पना त्यागे बिना सब जीव बारम्बार चमड़े के शरीर को धारण करते हैं।

अथवा यथार्थ पारखी सद्गुरु से पारख प्राप्त हुए बिना चमड़े की देह, जाति, वर्ण इत्यादि में आसक्त होकर चारों वर्ण चमार ही हैं।

शिक्षासार—अभिमान करना ही मूर्खता का चिह्न और पतन का पथ है, अभिमानी मनुष्य सबसे नीच है। जो चमड़े के शरीर में आसक्त रहता है, वास्तव में वही चमार है

६२—(साखी - १४०)

माया तजे क्या भया, जो मान तजा नहिं जाय।
जेहि माने मुनिवर ठगे, सो मान सबन को खाय॥

स्थूल माया का त्याग करने से क्या होता है, जब कि उसका अभिमान नहीं त्यागा जाता। जिस मान-अभिमान या कल्पित मानन्दी में पड़कर बड़े-बड़े मुनि भी ठगा गये, वह मान ही सब को पतन करता है ॥१४०॥

व्याख्या—जो लोग स्त्री-पुत्र, भाई-बन्धु और घर-धन छोड़कर तथा साधु का भेष धर कर संसार में विचरने लगते या जङ्गल-पहाड़ में जाकर निवास करते हैं। परन्तु वे अभिमान और नाना परोक्ष मानन्दी नहीं छोड़ते, तो उनके मोटी माया त्यागने से ही क्या हुआ? स्वरूप से भिन्न परोक्ष-प्रत्यक्ष की नाना मानन्दी-मोह से और नाना अभिमान के धारण से ही बड़े-बड़े कहलाने वाले माया से न छूटे। यह मान-अभिमान ही सबको भ्रमाता है। जबतक साधक अभि-

मान नहीं छोड़ता, तब तक स्थूल माया के त्यागने पर भी शान्ति नहीं आती।

दृष्टान्त—एक शिष्य ने अपने गुरु से जाकर कहा—हे सद्गुरो ! मुझे शान्ति नहीं मिलती, कृपया शान्ति-प्राप्ति की युक्ति बतलाइये। गुरु ने कहा—सर्व-त्याग करो। यह सुनकर शिष्य ने कुटी का त्याग करके जङ्गल में रहने लगा। परन्तु शान्ति न आयी। अतः पुनः शिष्य ने आकर गुरु से वही प्रश्न किया कि शान्ति नहीं मिलती। गुरु ने पुनः कहा-सर्व-त्याग करो। अब शिष्य ने वस्त्र,आसन और कमण्डलु को भी त्यागकर वन में विचरने लगा। परन्तु शान्ति न आयी और गुरु से वही प्रश्न किया कि शान्ति नहीं मिलती। गुरु ने पुनः कहा—सर्व-त्याग करो। अबकी बार शिष्य ने अन्न फलादि भोजन छोड़ दिया और निराहारी रहने लगा। परन्तु फिर भी शान्ति न आयी। गुरु से वही प्रश्न किया। गुरु ने पुनः बताया—सर्व-त्याग करो। शिष्य ने कहा—हे गुरुदेव ! मैंने त्याग करते-करते सब कुछ त्याग दिया, अब केवल शरीर मात्र रह गया है। इसे भी कूयें में डाल कर त्याग कर दूँ और क्या बाकी है ? गुरु ने कहा—हे शिष्य ! शरीर के त्यागने से सर्व-त्याग न होगा। अभिमान और संकल्प का त्याग ही सर्व-त्याग है,बिना अभिमान त्याग कर सब संकल्पों का साक्षी हुए शान्ति नहीं मिलेगी।

स्त्री, मैथुन, विलास, हिंसा, मोह, अभक्ष्य-सेवन, नशा, नाच, रंग और माया-व्यवहार का सर्वथा सम्बन्ध त्यागते हुए अभिमान और संकल्प के त्यागने से ही सर्व-त्याग होगा। यह शिक्षा सुनकर सब अभिमान त्याग कर और संकल्पों का भी साक्षी होकर शिष्य शान्ति को प्राप्त हुआ।

शिक्षासार—स्थूल प्रपंच को त्यागते हुए अभिमान-संकल्प का त्याग ही सर्व-त्याग है।

६३—(साखी—१४१)

माया के झक जग जरे, कनक कामनी लाग।
कहहिं कबीर कस बाचिहो, रुई लपेटी आग ॥

कनक-मामिनी रूपी माया की आसक्ति—ज्वाला में सब संसारी जीव जल रहे हैं। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—आग लपेटी रूई के समान हे जीव! तू कैसे बचेगा? ॥ १४१ ॥

व्याख्या—सद्गुरु का कहना है—जैसे आग से लपेटी हुई रूई बच नहीं सकती, वह तुरन्त भस्म हो जायगी। इसी प्रकार कनक-कामिनी रूपी आग में मनुष्य लिपटा है, फिर मनुष्य का छुटकारा कहाँ है? जो लोग अधिक द्रव्य संग्रह करके, बहुत जगह-जमीन और ऊँचा महल, नवयौवन सुन्दर शरीर, सुन्दर रमणी, पुत्र, ऐश्वर्य इत्यादि की आसक्ति में रात दिन भीने रहते हैं। उनकी बड़ी भयंकर दशा होती

है। जैसे बकरे को हरी-हरी पत्ती खिला कर बधिक उसको मारता है और जैसे उत्तम-उत्तम व्यंजन खिलाकर अपराधी को फाँसी दी जाती है। ठीक यही दशा उस मनुष्य की है, जो कनक-कामिनी और नाना ऐश्वर्य भोगों में आसक्त है। वह इसी आसक्ति के कारण बलि-पशु बनकर संयोग-वियोग, सुख-दुःखादिरूप संसार-प्रपंच का सारा भार, सारी परतन्त्रता और सारा रोग-दोष तथा गर्भ, जन्म, देहोपाधि, त्रिविधि ताप एवं मरण के संकट रूप फाँसी के दुःखों को बारम्बार भोगता रहता है।

शिक्षासार—माया की आसक्ति ही महान फाँसी है।

६४—(साखी—१४३)

साँप बिछू का मन्त्र है, माहुरहू झारा जाय।
बिकट नारि के पाले परे, काढ़ि कलेजा खाय॥

सर्प-बिच्छू के विष उतारने के वैद्य-डाक्टर के अनेकों राय हैं, औषध खिलाकर विष भी टट्टी वमन द्वारा झाड़ देते हैं। परन्तु भयंकर स्त्री के जो साथ में पड़ जाता है, उसका कलेजा अर्थात् हृदय के विवेक-विचारादि को निकाल कर वह नष्ट कर देती है॥१४३॥

व्याख्या—कल्पित मन्त्रों के झाड़ने से सर्प-बिच्छू का विष नहीं उतरता। अतः यहाँ मन्त्र का अर्थ सलाह-शिक्षा या राय है। अर्थात् वैद्य-डाक्टरों के ऐसे अनेकों

राय हैं कि उसको मानने से और उसका प्रयोग करने से सर्प-बिच्छू का विष उतर जाता है। वह वैद्यों-डाक्टरों का राय यही औषध इत्यादि करना ही है। सारांश यह है कि कल्पित मन्त्रों के झाड़ने से सर्प-बिच्छू का विष नहीं उतरता, औषध आदि से उतरता है। और विष भी औषध से गिर जाता है। परन्तु कठिन दुःखदायी स्त्री* का विष उतरना बड़ा दुर्गम है। इसका विष तभी उतरता है, जब यथार्थ विवेक-वैराग्य और पारखज्ञान उदय होता है। यह स्त्री और काम का विष बड़ा कठिन है। मानसरामायण आरण्य काण्ड में श्रीराम जी लक्ष्मण जी से कहते हैं—

लक्ष्मण देखत काम अनीका। रहहिं धीर तिनकी जग लीका।
याहि के एक परम् बल नारी। तेहिते उबर सुभट सोइ भारी॥

अर्थात्—हे लक्ष्मण ! काम सेना को देख कर जो धीर रहता है (काम में नहीं बहता) उसी की जगत् में मर्यादा रहती है॥ इस काम के एक प्रबल शक्ति स्त्री है। इस स्त्री से जो पृथक् हो जाता है, वही महान् योद्धा है॥

दोहा—तात तीन अति प्रबल खल, काम क्रोध अरु लोभ।
मुनि विज्ञान निधान कहँ, करहिं निमिष महं क्षोभ॥
लोभ के इच्छा दम्भ बल, काम के केवल नारि।
क्रोध के परुष वचन बल, मुनिवर कहहिं विचारि॥

---

* दोहा— 'नाहर के नख में बसे, मुख में बसे भुजंग।
बीछी के पूँछी बसे, नारी के सब अंग॥

अर्थात्—हे भाई ! काम, क्रोध और लोभ ये तीन बड़े प्रबल दुष्ट हैं। ये विज्ञान में प्रवीण मुनि को भी (असावधान होने पर) क्षण में मोहित कर देते हैं ॥ (यदि साधक असावधान न हो, तो ये कुछ नहीं कर सकते ।) लोभ का बल अर्थात् सैना इच्छा और पाखण्ड है, काम का बल केवल स्त्री है तथा क्रोध का बल कठोर वचन है, ऐसा श्रेष्ठ मुनि विचार कर कहते हैं ॥

इसी आरण्य काण्ड के अन्त में नारद जी ने श्रीरामजी से पूछा कि मैं जब शीलनिधि की कन्या विश्वमोहनी से व्याह करना चाहा था, तो आप क्यों नहीं करने दिये ? (यह नारद-मोह मानसरामायण बालकाण्ड में है। इस ग्रन्थ के छठें प्रसंग क्रम संख्या ५५ शब्द ११० में यह दृष्टान्त संक्षिप्त रूप में लिखा गया है। वहाँ से देख लें ।) तब श्री राम जी ने नारद को उत्तर दिया—

दोहा—काम क्रोध लोभादि मद, प्रबल मोह की धार ।
तिन महँ अति दारुण दुखद, माया रूपी नार ॥

अर्थात्—काम, क्रोध, लोभ और मदादि ये अज्ञान की प्रबल सैना हैं। परन्तु तिसमें यह जो माया रूपी स्त्री है, अत्यन्त कठिन दुःखदायी है ॥

सुनु मुनि कह पुराण श्रुति सन्ता ।
मोह विपिन कँह नारि बसन्ता ॥

जप तप नियम जलाशय झारी।
होय ग्रीष्म शोषै सब नारी॥

अर्थात्—हे मुने सुनो! वेद, पुराण और सन्त ऐसे कहते हैं कि मोह रूपी वन को प्रफुल्लित करने वाली स्त्री वसन्त ऋतु के समान है॥ जप, तप और नियम रूप जलाशयों-झरनों को ग्रीष्म (गर्मी) ऋतु होकर स्त्री सुखा देती है॥

काम क्रोध मद मत्सर भेका। इनहिं हर्ष प्रद वर्षा एका।
दुर्वासना कुमुद समुदाई। तिन कहँ सरद सदा सुखदाई॥

अर्थात्—काम, क्रोध, अहंकार और ईर्षा रूपी मेढ़कों को आनन्द देने वाली स्त्री वर्षा के तुल्य है॥ बुरी वासना रूप कोइयाँ-समूहों को स्त्री रूपी सरद ऋतु सुख देने वाली है।

धर्म सकल सर सीरुह बृन्दा।होइ हिम तिनहिं देत दुख मन्दा॥
पुनि ममता जवास बहुताई। पलुहै नारि शिशिर ऋतु पाई॥

अर्थात्—सम्पूर्ण धर्म रूपी कमल-समूहों को वर्फ रूप हो कर यह मलिन स्त्री दुःख देती है। फिर बहुत से ममतारूपी कटैले झाड़ स्त्री रूपी शिशिर ऋतु पाकर बढ़ते, पुष्ट होते हैं।

पाप उलूक निकर सुखकारी। नारि निविड़ रजनी अँधियारी॥
बुधि बल शील सत्य सब मीना।बंशी सम तिय कहहिं प्रबीना॥

अर्थात्—पाप रूपी उलूक पक्षी-समूहों को यह स्त्री रूपी अँधियारीरात सुख देने वाली है॥ बुद्धि, बल, शील, सत्य रूप मछलियों को फँसा कर मारने वाली यह स्त्री बंशी

(कटिया) के समान है, ऐसा बुद्धिमान कहते हैं ॥

दोहा—अवगुण मूल शूल प्रद, प्रमदा सब दुख खानि ।
तातें कीन्ह निवारण,मुनि मैं यह जिय जानि॥

अर्थात्—दुर्गुणों की जड़,कष्ट देने वाली,स्त्री सब दुःखों की खानि है । हे मुने ! ऐसा हृदय में जानकरके ही मैंने विश्व मोहिनी से आप को विवाह नहीं करने दिया ॥

इन पदों को पढ़ कर किसी भाई को दुःख नहीं मानना चाहिये । क्योंकि यदि इतनी दोष-दृष्टि वैराग्यवान् न रखे, तो मन का मोह छूटे ही नहीं । ऐसे ही दोष-दृष्टि मुमुक्षा स्त्रियों को पुरुष के प्रति रख लेना चाहिये । चाहे स्त्री हो, चाहे पुरुष; कामासक्ति को धारण करने वाले सब एक-को-एक दुःखदायी हैं । रहा ! स्त्री का घट अधिक मोहक होने से और पुरुषों का मन उनमें लगा रहने से तथा पुरुष को ही अधिक वैराग्य का अधिकारी समझकर स्त्री-घट पर अधिक दोष-दृष्टि सन्तजन वर्णन करते हैं । यह सब दोष-दृष्टि मुमुक्षा-स्त्री पुरुष पर घटा लें । वास्तव में कामुकता ही स्त्री है । उसी का खण्डन है ।

शिक्षासार—स्त्री, पुरुष का पारस्परिक स्पर्शाशक्ति (काम) ही बड़ा दुःखदायी है । इसे सर्वथा त्याग करना मुमुक्षु स्त्री-पुरुषों का परम् कर्तव्य है ।

६५—(साखी—१४६)

मन मतङ्ग गइयर हने, मनसा भई सचान ।
यन्त्र मन्त्र मानै नहीं, लागो उड़ि उड़ि खान ॥

मनरूपी उन्मत्त हस्ती जीव महावत् को मारता है, और नाना विषय-इच्छायें बाजपक्षी होकर तथा उड़-उड़कर जीवों को खाती हैं, वे यन्त्र-मन्त्र कुछ मानती नहीं ॥१४६॥

व्याख्या—विषयों में मतवाला मन रूपी पागल हाथी जीव-महावत् को विषयाग्नि में डालकर बड़ा कष्ट देता है। इस मन के वश होकर ही यह जीव ऊँच-नीच नाना योनियों में भ्रमता है। और विषयों की जो अमित इच्छायें हैं, ये बाजपक्षी के तुल्य हैं, ये जीव रूपी बटेरों को खाती हैं। अर्थात् विषय-इच्छायें जीव को सदैव भ्रमाया करती हैं।

शिक्षासार—मन और मन की इच्छाओं को पूर्ण जीत लेने पर ही कल्याण है।

६६—(साखी—१४६)

मन गयन्द मानै नहीं, चलै सुरति के साथ ।
महावत विचारा क्या करे, जो अंकुश नाहीं हाथ ॥

मन रूपी हस्ती मानता नहीं, वह लक्ष्य के साथ चलता रहता है। महावत रूपी जीव विचारा क्या करे, जब विवेक रूपी अंकुश उसके पास नहीं है ॥१४६॥

व्याख्या—बिना अंकुश लिये पागल हाथी पर चढ़ना मानो अपने को मृत्यु के हाथ में सौंपना है। इसी प्रकार इस विषयी मन के साथ रहना और विवेक-वैराग्यादि का अभ्यास न रखना मानो अपने को संसार-सागर में पतन करना है। भाव यह है कि जब तक शरीर में रहना है, तब तक भुलावन रूप मन साथ ही है। अतएव सदैव विवेक-वैराग्यादि का मार्जन करते रहना चाहिये। विवेक-वैराग्यादि के अभ्यास से मन की सब विषयासक्ति छूटकर वह शुद्ध हो जायगा।

शिक्षासार—जीवन पर्यन्त मन-वासना का सम्बन्ध जानकर विवेक-वैराग्यादि में रत रहना साधक का परम् कर्तव्य है।

६७—(साखी— ४७)

ई माया है चूहड़ी औ चुहड़ों की जोय।
बाप पूत अरुझाय के, संग न काहू के होय॥

यह माया-काया राक्षसी या भंगिन है, और यह मन रूपी राक्षस या भंगी की स्त्री है। यह बाप-पूत रूप सब मनुष्यों को या बाप-जीव और पूत मन को आपस में फँसा कर किसी के साथ नहीं होती है॥१४७॥

व्याख्या—मुख्य माया यह काया है, यह चूहड़ी अर्थात् राक्षसी या भंगिन है। क्योंकि इसमें सदैव हाड़-मांस, मल-मूत्रादि भरे रहते हैं और जीव को त्रिविध ताप, निर्वाह

का भार एवं भोगासक्ति रूपी सन्ताप देती रहती है। इस शरीर रूपी राक्षसी का पति मन रूपी राक्षस है। अर्थात् शरीर से परे मन है और मन से परे जीव है। मन जीव का कल्पित पुत्र है। अर्थात् जीव के मानने से ही मन है। सो यह शरीर रूपी राक्षसी पिता रूपी जीव और पुत्र रूपी मन को एक में फँसा कर अन्त में किसी के साथ नहीं होती है। अर्थात् शरीराध्यास वश मन के चक्र में पड़ा जीव सदैव दुःख भोगता रहता है।

दृष्टान्त—एक ग्राम में पिता-पुत्र दो प्राणी रहते थे। पुत्र की विवाहिता स्त्री की एक आँख छोटी थी। इसलिये वह उस स्त्री को न लाकर दूसरी सुन्दरी स्त्री से सगाई करके उसे घर में लाया। पिता के लगभग डेढ़ हजार रुपये थे। परन्तु इस बात को पिता ने पुत्र को नहीं बताया था। एक दिन पिता को रुपये गिनते पुत्र की स्त्री ने देख लिया। अतएव रुपये के लोभ से वधू पिता (ससुर) से प्रेम करने लगी। वह पिता भी महान् पापी और दुरात्मा था, जो पुत्री तुल्य पुत्रवधू से सम्बन्ध जोड़ लिया। यह घटना देखकर पुत्र को बड़ा दुःख हुआ और एक रात में अपनी स्त्री और पापी पिता को एकान्त कोठरी में एकत्र देखा। अतः परशा लेकर कोठरी में पहुँच गया और कहा—

अनुज बधू भगनी सुत नारी। सुन शठ कन्या ये समचारी॥

इनहिं कुदृष्टि विलोकइ जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई॥

अर्थात्—"छोटे भाई की स्त्री, बहन, पुत्रवधू (पतोह) और कन्या—हे शठ! ये चारों बराबर हैं॥ इन्हें कोई यदि बुरी दृष्टि से देखता है, तो उसे मार डालने में कोई पाप नहीं है[1]।"

ऐसा कहते हुए पुत्र ने पिता को परशे से मारने दौड़ा। पिता ने भी लाठी लेकर पुत्र के ऊपर वार चलाया। दोनों में लड़ाई होते देखकर स्त्री को अवसर मिल गया और पिता (ससुर) का रखा हुआ रुपया लेकर तुरन्त रात-ही-रात भाग गयी। इधर पुत्र का परशा लग जाने से पिता तुरन्त मर गया, मुकद्दमा चलने पर न्याय द्वारा पुत्र का आजीवन कारावास (जन्मजेल) हो गया। इसी प्रकार माया-काया रूपी स्त्री पिता-जीव और पुत्र-मन को फँसा कर अन्त में छूट जाती है। साथ-सङ्ग नहीं होती।

शिक्षासार—शरीराभिमान और मन को दमन करके मुक्त हो रहना चाहिये।

६८—(साखी—१४८)

कनक कामिनी देखिके, तू मत भूल सुरंग।

१—जान बूझकर शक्ति चले तक चाहे जिसे मारा जाय, तो पाप अवश्य होता है। यहाँ गोस्वामी जी के पद अनुसार केवल अनुवाद कर दिया गया है॥

मिलन बिछुड़न दुहेलरा, जस केचुल तजत भुवंग

हे ज्ञान रंग जीव ! तू कनक-कामिनी को देख कर मत भूले। क्योंकि जैसे सर्प के केचुली ग्रहण करने और त्याग करने में उसे महान् कष्ट होता है, तैसे द्रव्य-स्त्री के मिलने-बिछुड़ने दोनों में जीव को बड़ा सन्ताप होता है॥ १४८॥

व्याख्या—सर्प को जब केंचुली प्राप्त होती है, तब वह आँख से अन्धा और शरीर से भारी-सा हो जाता है। अतः वह जहाँ-तहाँ कंटक-खाईं में गिर कर बड़ा दुःख पाता है। और जब केंचुली निकल जाती है, तब उसकी नयी त्वचा अत्यन्त कोमल होने से कंटक-कंकड़ और तृण इत्यादि गड़ते हैं और चींटी-चींटा आदि काटकर दुःख देते हैं। जैसे यह केंचुली के मिलने-बिछुड़ने दोनों में सर्प को कष्ट होता है। इसी प्रकार द्रव्य और स्त्री की प्राप्ति में प्रथम बड़ी पर-वशता लेनी पड़ती एवं बड़ी चिन्ता और बड़ा पुरुषार्थ करना पड़ता है। पुरुषार्थ के पश्चात् मन अनुकूल स्त्री-द्रव्य आदि मिलते भी नहीं। पुनः उनकी रक्षा, वृद्धि और अनु-कूल रखने में बड़ा पुरुषार्थ सन्ताप और राग-द्वेष का भार उठाना पड़ता है। फिर उनके बिछुड़ने के समय तो महान सन्ताप की प्राप्ति होती है। अतः हे जीव ! तू शुद्ध ज्ञान स्वरूप है, स्वतः सन्तुष्ट और निष्काम है। तेरे अपने तृप्ति के लिये द्रव्य-स्त्री-ऐश्वर्य की किञ्चिन्मात्र भी आवश्यकता

नहीं है। ये तो उल्टे बड़े भयंकर कष्टदायी हैं।

शिक्षासार—माया के मोह से सर्वथा-सर्वदा और सवत्र रहित रहना चाहिये।

६६—(साखी—१५२)

ताकी पूरी क्यों परे, जाके गुरु न लखाई बाट।
ताके बेड़ा बूड़िहैं, फिरि फिरि औघट घाट॥

जिसको विवेकी पारखी सद्गुरु ने सीधा कल्याण का मार्ग नहीं बताया है, उस मुमुक्षु का ध्येय-धाम (मोक्ष) प्राप्ति की कामना कैसे पूर्ण होगी? उसका मानव-शरीर रूपी जहाज बारम्बार खानी-वाणी रूपी कुघाट में डूबता रहेगा ॥१५२॥

व्याख्या—मोक्ष की इच्छा पूर्वक वैराग्य धारण करने पर भी जब तक यथार्थ स्वरूप का बोध सद्गुरु द्वारा नहीं मिलता, तब तक जीव का मोक्ष नहीं होता। जिस किसी भी अहिंसकी मत-सम्प्रदाय में रहकर विचार-वैराग्य या सदाचरण पूर्वक चलने से बारम्बार उत्तम मनुष्य-तन का भागी जीव होगा और धर्माङ्ग पुष्ट होने से अधिक शरीर-सुख उसे मिलता रहेगा। परन्तु उसका जन्म-मरण से छुटकारा होकर सर्वथा मोक्ष तभी होगा। जबकि पारखी (सत्यासत्य के यथार्थ परीक्षक) सद्गुरु द्वारा कर्ता-कारण, अंश-अंशी, व्याप्य-व्यापक, मिश्रित अद्वैत जगत्-ब्रह्म

और जड़-भास से सर्वथा पृथक् अपने शुद्ध चैतन्य पारख स्वरूप का यथार्थ बोध होकर विवेक-वैराग्य और सदाचरण पूर्वक स्वस्वरूप में दृढ़ स्थिति हो जायगी।

शिक्षासार—पारखी सद्गुरु के शरणागत होना मुमुक्षु को महान् आवश्यक है।

७०—(साखी—१५३)

जाना नहीं बूझा नहीं, समूझि किया नहिं गौन।
अन्धे को अन्धा मिला, राह बतावे कौन॥

यथार्थ पारखी सद्गुरु से कल्याण-मार्ग जान, बूझ और समझ कर मुमुक्षु प्रस्थान नहीं किया। बल्कि अविवेकी मुमुक्षु को अविवेकी गुरुआ मिल गये, फिर कल्याण का यथार्थ-मार्ग कौन बतावे ? ॥ १५३ ॥

व्याख्या—मतों की ऐसी गहनता होती है कि मनुष्य अपनी बात झूठी जान लेने पर भी नहीं छोड़ता। वह विवेकी पारखी सद्गुरु-सन्तों से यथार्थ न्याय नहीं समझता, बल्कि प्रख्यात मनुष्यों और बड़ी-बड़ी पोथियों का पक्ष लेकर अज्ञान के पर्दे में पड़ा रहता है। निर्णय-विवेक युक्त उपासना को स्थान न देकर अन्ध परम्परा न्याय केवल उपासना को ही स्थान देता है। निर्णय-विवेक करना ही नहीं चाहता। जैसे एक अन्धे पथिक को दूसरा अन्धा मार्ग में मिल जाय, तो ठीक-ठीक मार्ग कौन बतायेगा ? कोई नहीं।

इसी प्रकार यथार्थ पारख बिना नाम-मात्र के गुरु लोग मुमुक्षु को कल्याण-पथ क्या बतायेंगे ?

शिक्षासार—सच्चे पारखी सद्गुरु की खोज करके उनकी शरण लो।

७१—(साखी—१५४)

जाका गुरु है आँधरा; चेला काह कराय।
अन्धे अन्धा पेलिया, दोऊ कूप पराय ॥

जिसका गुरु अविवेकी है, वह शिष्य क्या कल्याण प्राप्त करेगा ? बल्कि गुरु-शिष्य दोनों अविवेकी होने से अज्ञान कूप में पड़े रहेंगे ॥१५४॥

व्याख्या—कर्ता-कारण, व्याप्य-व्यापक, अंश-अंशी, जगत्-ब्रह्म तथा जड़वर्ग से भिन्न अपने यथार्थ चैतन्य पारख स्वरूप का बोध और यथार्थ वैराग्य एवं सदाचरणादि जिन गुरुओं में नहीं है। वे विवेक-रहित हैं। फिर उनके शिष्यों को कौन-सा यथार्थ ज्ञान होगा ? जैसे मार्ग में दो अन्धों के मिल जाने पर एक-को-एक ढकेल कर दोनों कूयें में गिर पड़ें। तैसे गुरु-शिष्य विचारे जब दोनों यथार्थ पारख (परीक्षा) से रहित हैं, तब दोनों खानी-वाणी और जन्म-मरण कूयें में डूबते ही रहेंगे।

शिक्षासार—विवेकी-पारखी सद्गुरु से प्रेम करो।

७२—(साखी—१५६)

साहु चोर चीन्हें नहीं; अन्धा मति का हीन ।
पारख बिना बिनाश है, कर विचार होहु भीन ॥

संसारी मनुष्य इतने अविवेकी और बुद्धि से हीन हो गये हैं, कि सच्चे सद्गुरु और अविवेकी गुरुओं को परख नहीं पाते। हे जीव ! यथार्थ पारख-ज्ञान बिना तुम्हारा अधःपतन है, अतएव विचार करके अविवेकी गुरुओं के फन्दों से पृथक् हो जाओ ॥ १५९ ॥

व्याख्या—जड़-चेतन का यथार्थ निर्णय करके स्व-स्वरूप का परिचय देने वाला (साहु) सच्चा सद्गुरु है। और जड़-चेतन एक में मिलाकर स्वरूप से भिन्न कल्पना, भास, अध्यास और जड़ में फँसाने वाला (चोर) अविवेकी गुरुआ है। सच्चे सद्गुरु द्वारा जीव का कल्याण है और अविवेकी विषयासक्त गुरुओं से अकल्याण है। परन्तु अज्ञानी, निर्बुद्धि मनुष्यों को इसका ज्ञान न होने से अविवेकी गुरुओं की भूल में फँसकर कल्याण से हीन हो जाते हैं। श्री कबीरसाहेब का कहना है कि यथार्थ पारख बिना जीव का भयंकर पतन है। अतः विचार करके खानी-वाणी जाल से न्यारे हो जाना चाहिये।

शिक्षासार—पक्षपात त्यागकर पारखज्ञान का अवलम्ब लेना चाहिये।

७३—(साखी—१६०)

गुरु सिकलीगर किजिये, मनहिं मस्कला देय।
शब्द छोलना छोलि के, चित दर्पण करि लेय॥

हे मुमुक्षु ! गुरु विवेकी को करो, जो मन को विवेक का माँज देकर और निर्णय-शब्द के छोलने से दोषों को छोलकर चित्त को दर्पण वत् निर्मल बना ले ॥ १६० ॥

व्याख्या—जैसे सिकलीगर सान पर छूरा, चाकू या खड्ग आदि रखकर मस्कला देकर उसके मुर्चे को झाड़ देता है और उसे स्वच्छ तथा तीव्र बना लेता है। इसी प्रकार ऐसे विवेकी सद्गुरु की शरण लेनी चाहिये, जो जड़-चेतन के यथार्थ निर्णय रूप सान पर जिज्ञासु के मन या चित्त को चढ़ा कर और खूब विवेक का रगड़ा देकर तथा निर्णय शब्द के छोलने से मल, विक्षेप एवं आवरण रूपी दोषों को छोलकर सर्वथा निर्मल बना दे। इस प्रकार जब यथार्थ निर्णय विवेक से अन्तःकरण शुद्ध हो जायगा, तब जिज्ञासु को यथार्थ ज्ञान होगा। किसी कविने कहा है—

कवित्त—

पीजिये विष आदर औ निरादर अमी त्याग,
करना हो जो आज उसे काल मत कीजिये।
कीजिये तो हानि लाभ पहले ही सोच कर,
करि के पछिताय उसे कूर मान लीजिये॥

लीजिये न साथ दास उत्तर को देन हार,
भनै दिग्विजय दान दरिद्र को दीजिये ।
दीजिये न काहू उर अन्तर की बात कोई,
गुरु कीजै जानि पानी छानि कर पीजिये॥ १॥

शिक्षासार—वैराग्य प्रिय विवेकी पारखी गुरु की शरण लो

७३—(साखी—१६१)

मूरख के सिखलावते, ज्ञान गाँठि का जाय।
कोयला होय न ऊजरा, जो सौमन साबुन लाय ॥

मूर्ख को शिक्षा देने से अपने हृदय की शान्ति चली जाती है। कोयला उजला नहीं होता, चाहे सौ मन साबुन से उसे धोया जाय ॥ १६१ ॥

व्याख्या—जो अत्यन्त विषयासक्त हठी-शठी-विवादी एवं कुतर्की है, वही मूर्ख है। ऐसे मनुष्य को यदि शिक्षा दिया जाय, तो वे कुछ मानते नहीं। बल्कि हठ-विवाद और मनमाना कुतर्क करते हैं। अतएव उनकी इस मूर्खता को देख कर यदि सावधान न रहे,तो अपने हृदय का बोध-भाव अर्थात् शान्ति-दशा का भङ्ग होता है। या उन हठियों के साथ अपने अमूल्य समय का दुरुपयोग (अकाज या व्यर्थ पुरुषार्थ) करना पड़ता है और वे हठी-शठी मूर्ख लोग तो उसी प्रकार ज्ञानी नहीं हो सकते, जैसे कोई सौ मन साबुन

लाय कर काले कोयला को धोवे, तो भी वह उजला नहीं होता । जब तक मनुष्य हठी-शठी-कुतर्की और मूर्ख बना रहेगा, तब तक कोयले के समान ही उसका ज्ञानी होना असम्भव है । और जब वह निर्णय मानने लगेगा, तब उसकी मूर्खता की संज्ञा नहीं रह जायगी ।

शिक्षासार—अनधिकारी को शिक्षा नहीं देना चाहिये।

७५—(साखी—१६२)

मूढ़ कर्मिया मानवा, नख शिख पाखर आहि ।
बाहन हारा क्या करे, जो बान न लागे ताहि॥

मूढ़कर्मी मनुष्य के एड़ी से चोटी तक जड़ता का पत्थर पड़ा रहता है। उपदेश देने वाला क्या करे ? जब उसका उपदेश उस पर लगता ही नहीं ॥ १६२ ॥

व्याख्या—अत्यन्त विषयासक्ति, अभक्ष्य-सेवन, मद्यपान हठ, पक्ष, कुतर्क और उदण्डता—यही सब मूढ़-कर्म हैं। इसको जो करे वह मूढ़ कर्मिया मनुष्य है । ऐसे हठी-शठी मनुष्यों के नख से शिखा पर्यन्त अज्ञानता का पत्थर या पर्दा पड़ा रहता है। अथवा लोहे के झिल्लम या बक्तर को पाखर कहते हैं, उसे पहन लेने पर चाहे कोई कितना वाण मारे, तो भी उसको वेध कर शरीर-छेदन नहीं करता । इसी प्रकार जिन भूले लोगों ने अज्ञानता और हठता का पाखर (झिल्लम) पहन लिये हैं। उनके हृदय में बाहनहारा अर्थात् उपदेशक

का बान नाम वाणी-उपदेश नहीं लगता। फिर उपदेशक का क्या दोष है? कुछ नहीं। दोष तो मूर्ख-कर्मी मनुष्य का है।

शिक्षासार—प्रथम बात—हठीशठी और पक्षपाती को उपदेश नहीं देना चाहिये। दूसरी बात—मनुष्य को हठ-पक्ष त्याग कर निर्मानता पूर्वक सत्संग करना चाहिये। (बात बोलने और उपदेश देने की शैली का स्पष्ट वर्णन चतुर्थ सोपान वचन-सुधार, क्रम संख्या ४१, रमैनी ७० की व्याख्या देखें।)

७६—(साखी—१६३)

सेमर केरा सूवना, छिउले बैठा धाय।
चोंच सँवारे शिर धुनै, ई उसहो को भाय॥

सेमर-वृक्ष का निवासी शुक-पक्षी दौड़कर आक (मदार) पर जा बैठा। परन्तु उसकी भी निःसारता देखकर और चोंच सिकोड़ कर शिर पटकने लगा और सोचने लगा—यह भी उसी सेमर का भाई है॥ १६३॥

व्याख्या—सेमर का फूल देखने में बड़ा सुन्दर होता है, उसमें फल भी लगता है। अतः उसके फल-फूल को सुन्दर देखकर उससे सुस्वाद युक्त भोजन की आशा करके उस फल का सेवन शुक-पक्षी (सुग्गा) करता है। परन्तु जब वह सेमर का फल पक कर फूटता है और तृप्ति की आशा से शुक-पक्षी

उसमें अपनी चोंच मारता है, तब स्वाद और भोजन के अ-तिरिक्त उसमें से निःसार-भूई (रोआँटा) निकलती है; अतएव सेमर से निराश होकर शुक-पक्षी उड़ चला! इतने में एक आक (मदार) का वृक्ष फल से लदा हुआ देखने में आया। शुक-पक्षी ने सोचा कि सम्भवतःइसके फल से हमारी तृप्ति हो जाय। अतः उस आक के वृक्ष पर दौड़कर बैठ गया और उसके फल पर जब चोंच मारा तब उसमें भी सेमर फल के समान निःसार भूई निकली। तब शुक-पक्षी बहुत शोकित हो और चोंच सिकोड़-सिकोड़ कर शिर पटकने लगा और सोचने लगा अहो! यह आक भी उसी सेमर का भाई है। अर्थात् दोनों निःसार हैं।

यहाँ छिवले का अर्थ आक अर्थात् मदार किया गया है, क्योंकि इन दोनों के निःसारता की समानता है। अतः यही अर्थ करना उचित प्रतीत होता है। और यदि छिवले का अर्थ ढाक-पलास भी किया जाय,तो ढाक-पलास में भी जो फल लगता है। वह कोई बड़ा अच्छा नहीं होता। उसके फल में किञ्चित्-किञ्चित् सार (गूदा)होता है। वह भी कुस्वाद युक्त लगता है। अतः वह भी निःसार ही है। परन्तु सेमर के समान आक के फल की ही निःसारता है। अतः छिवले का भाव यहाँ आक ही मानलिया जाय तो अच्छा है। रह गया, यह तो दृष्टान्त है, सिद्धान्त में यहाँ यह लेना है—

यह स्त्री-पुत्र, धन-धामादि युक्त गृहस्थी सेमर फल के समान निःसार है। मनुष्य रूप-शुक-पक्षी गृहस्थी से भागकर नाना भेष धारण करता है। परन्तु जब तक पारखी गुरु द्वारा शुद्ध स्वरूपज्ञान और यथार्थ वैराग्य को नहीं प्राप्त होता। तब तक बोध-वैराग्य-रहित आक रूप भेष भी निःसार होने से जीव की तृप्ति उससे नहीं होती। अथवा सेमर फल रूप इहलोक के भोगों से निराश होकर निःसार आकरूप परलोक या कल्पित स्वर्ग लोक के भोगों की आशा करके यह शुक-पक्षी रूपी जीव निःसार भोगों में भटकता रहता है।

शिक्षासार—निःसार जगत्-भेष और लोक-परलोक के सुखों की आशा सर्वथा त्याग कर दृढ़ विवेक-वैराग्य पूर्वक स्वस्वरूप में दृढ़ स्थिति बनानी चाहिये।

७९—(साखी—१६४)

सेमर सुवना बेगि तजु, तेरी घनी बिगुर्ची पाँख।
ऐसा सेमर जो सेवे, जाके हृदया नाहीं आँख॥

हे जीव! सेमर फल के समान जगत्-भेष और लोक-परलोक के निःसार भोगों की आशा तू शीघ्र त्यागकर, इन भोगों की आशाओं में तेरी बुद्धि बहुत खराब हो गयी है। ऐसे निःसार भोगों का सेवन और आशा तो वह करे जिसके हृदय में विवेक-विचारादि रूप नेत्र न हों॥१६४॥

व्याख्या—'सुवना' पद से चेतन का केत करते हुए ग्रन्थकर्ता कहते हैं—हे जीव ! तू स्त्री-पुत्र और धन-धामादि रूप जगत् भोगों को और मान-बड़ाई नाना अनुमान-कल्पना रूप भेष प्रपञ्चों को तथा लोक और परलोक के समस्त भोगों को सेमर फल के समान निःसार समझ कर सबकी आशा छोड़ दे। क्योंकि इन सांसारिक भोगों में जीव की सन्तुष्टि तो क्या होगी, बल्कि उत्तरोत्तर भयंकर सन्तापों-कष्टों की प्राप्ति होती है। और इन्हीं भोगों के सेवन से तुम्हारी पाँख अर्थात् बुद्धि भी घनी नाम बहुत बिगुचीं एवं खराब हो गयी है। प्रबुद्ध चेतन मनुष्य! तू तो विवेक-शक्ति सम्पन्न है। तू इन सन्तापदायी भोगों का सेवन क्यों करता है ? इन भोगों का सेवन तो उन पशु-पक्षी तथा कृमि आदि को करना चाहिये। क्योंकि उनके हृदय में विवेक-विचार के नेत्र नहीं हैं। फिर तू विवेक सम्पन्न मनुष्य शरीर धारणकर उन पशु-पक्षियों के समान भोगी-रोगी-शोगी क्यों बन रहा है ? शीघ्र चेतकर।

शिक्षासार—लोक-परलोक के भोगों को निःसार जानकर मनुष्य को भोगों से वैराग्य करना चाहिये।

७८—(साखी—१६५)

सेमर सुवना सेइया, दुइ ढेंढ़ी की आश।
ढेंढ़ी फूटि चनाक दे, सुवना चले निराश॥

दो ढेढ़ी (फल) के आशा से शुक-पक्षी ने सेमर फल का सेवन किया। परन्तु जब सेमर का फल चनाक से फूटा और उसमें से भूई उड़ी, तब निराश होकर शुक-पक्षी उड़ चला ॥१६५॥

व्याख्या—पूर्वोक्त रीति से जगत्-भेष और लोक-परलोक के सुखों की आशा से जीव ने नाना कर्म किया। परन्तु सेमर फल के समान उनकी निःसारता अन्त में जीव को ज्ञात हुई और जीव निराश होकर गर्भवास में पुनः गमन किया।

संसार के भोगों में सुख और सारतत्त्व नहीं है। इन भोगों की निःसारता सब के सामने प्रकट है। परन्तु अविद्यावशी मनुष्यों को वह दिखती नहीं। संसार के सभी भोगों के अन्त में निःसारता और दुःख का ही बोध होता है।

शिक्षासार—मनुष्य को मनःकल्पित भोगों को त्याग कर कल्याण-साधन करना चाहिये।

७६—(साखी—१६६)

लोग भरोसे कौन के, बैठ रहे अरगाय।
ऐसे जियरहिं यम लुटै, जस मटिया लुटै कसाय॥

अभिमानी और पुरुषार्थ-हीन होकर ये लोग किसके भरोसे बैठे हैं? बाम-वंचक और मन-कल्पना जीव को उसी प्रकार लूटते हैं, जैसे मांस को कसाई ॥१६६॥

व्याख्या—"मैं किञ्चिज्ञ हूँ, अल्पज्ञ हूँ, मूढ़ और हरि-

माया के अधीन हूँ। जो कुछ करे वह सब ईश्वर या प्रभू ही कर सकता है। वही चाहे तारे, चाहे डुबावे।" इत्यादि कल्पना करके चेतन मनुष्य स्वयं विवेक-वैराग्यादि और स्वरूपस्थिति के पुरुषार्थ से हीन, महा मलीन हो रहा है। 'जो कुछ करेगा वह ईश्वर या दैव ही करेगा, इस कल्पना रूपी दुर्बलता को सर्वथा छोड़कर विवेक-वैराग्यादि सद्पुरुषार्थ किये बिना तीन काल में कभी भी मनुष्य का कल्याण नहीं हो सकता। इस दुर्बलता पर योगवाशिष्ठ में श्रीरामजी से वशिष्ठजी ने कहा है—हे राम! "दैव ही हमारा उद्धार कर देगा।" यह अज्ञानता को छोड़कर सद्पुरुषार्थ करो। अपने सद्पुरुषार्थ से ही कल्याण है। दैव तो कल्पित है।" इसी प्रकार सेतुबन्ध रामेश्वर पर श्रीरामजी से लक्ष्मण जी भी कहे हैं—

दैव दैव आलसी पुकारा। कादर मन कर एक अधारा॥
नाथ! दैव कर कौन भरोसा। सोषिय सिन्धु करिय मन रोषा॥

इस चैतन्य के ऊपर अन्य कर्ता-दैव कोई समर्थ नहीं है। यह चैतन्य जीव ही अपना कल्याण करने में सर्व-समर्थ और स्वतन्त्र है। परन्तु ऐसा न जानने से इस जीव को यम रूप कल्पना, भास अध्यास और बाचाल नर-नारी अज्ञान में डालकर रुलाया करते हैं।

शिक्षासार—अन्य कल्पित दैव-कर्ता की सर्वथा आशा त्यागकर अपने पुरुषार्थ से अपना कल्याण प्राप्त करना चाहिये।

८०—(साखी—१६८)

हीरा सोई सराहिये, सहै घनन की चोट।
कपट कुरंगी मानवा, परखत निकरा खोट॥

सिद्धान्त वही प्रशंसनीय है, जो नाना तर्कों की चोट सहन कर अटल रहे। परन्तु कल्पित मार्गावलम्बी कपटी मनुष्यों के कल्पित मिथ्या सिद्धान्त की परीक्षा करते ही, वह खोटा (असत्य) निकल जाता है ॥१६८॥

व्याख्या—श्रद्धा पूर्वक निर्णय-सत्संग और विवेक को स्थान न देकर केवल अपने प्राचीन मूल ग्रन्थों के प्रमाणों से ही जिनके सिद्धान्त की सिद्धि है। उनका सिद्धान्त कभी भी सत्य नहीं हो सकता। क्योंकि नाना परस्पर विरोधी सिद्धान्तों के हर मूल ग्रन्थों में अपने-अपने सिद्धान्तों के प्रतिपादक (पुष्टक) प्रमाण भरे ही हैं.और अपने-अपने मूल-ग्रन्थों को सभी ने ईश्वर या खुदा रचित तथा अपुरुषेय एवं सर्वथा प्रामाणित माना है। फिर किनका ग्रन्थ-पन्थ सत्य सिद्ध होगा और किनका असत्य ? परस्पर विरोधी होने से सब का तो सत्य सिद्ध नहीं हो सकता। अतएव अपने मत-पथ-सिद्धान्त और ग्रन्थ का पक्ष अभिमान त्याग कर सत्संग-निर्णय और विवेक करने से ही यथार्थ सिद्धान्त की सिद्धि हो सकती है। क्योंकि सब सिद्धान्त का मानने वाला, वेद, शास्त्र, पुराण, गीता, कुरान, बाइबिल और

अन्यान्य ग्रन्थों को रचने वाला तथा कर्ता-कारण, अंश-अंशी व्याप्य-व्यापक, देवी-देवादि की कल्पना करने वाला यह मानव तन वासी चेतन जीव ही है।

शिक्षासार—जड़-चेतन युक्त जगत् प्रवाह रूप स्वयं अनादि है। जगत् का कारण-कर्ता अन्य नहीं है। जड़ कारण-कार्य से भिन्न अगणित चेतन जीव हैं, वे सब अपने-अपने स्वरूप से पृथक्-पृथक् स्वतन्त्र, अविनाशी हैं। जड़ विषयों के वासना-वश अनादि से जन्म-मरण में भ्रमते आये हैं। कर्म-भूमिका रूप नर-शरीर में जैसा शुभाशुभ कर्म करते हैं, तद्नुसार बीज-वासनानुसार स्वयं कर्म-फल भोग चारों खानियों में देहें धर-धर कर भोगते रहते हैं। नर-देह में सद्-गुरु द्वारा यथार्थ पारख स्वस्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर सर्व सद्गुण-सदाचरण पूर्वक चलने से स्वरूप में स्थित होकर प्रारब्धान्त में जीव सदा के लिये दुःख द्वन्द्वों से छूट कर सर्वथा मुक्त हो जाते हैं—संक्षिप्त रूप से यही सत्य सिद्धान्त का परिचय है।

८१—(साखी—१६४)

हरि हीरा जन जौहरी, सबन पसारो हाट।
जब आवे जन जौहरी, तब हीरों की साट॥

हरि-कर्ता इत्यादि रूप कल्पित ज्ञान को हीरा रूप मानकर नाना मत के पथिक रूप व्यापारियों ने संसार में

बाजार लगाया है। परन्तु जब हीरा का सच्चा जवाहिरी आकार सच्चे हीरे से इनके हीरे का साट (समता) करेगा। तब इन सबका हीरा कच्चा ठहर जायगा ॥ १६९ ॥

व्याख्या—व्यापारियों के कच्चे हीरे का मूल्य तभी तक रहता है, जब तक कोई सच्चा जवाहिरी नहीं मिलता। इसी प्रकार नाना प्रकार की कल्पित बातें कोई तभी तक सिद्ध कर सकता है, जब तक यथार्थ पारखी-सन्त नहीं मिलते। पारखी-सन्तों के पारख तुला पर चढ़ते ही सब सिद्धान्तों की वास्तविकता का स्पष्टीकरण हो जाता है।

शिक्षासार—पारख सिद्धान्त ही सर्वोपरि है, क्योंकि उसमें सच्चा पारख है।

८२—(साखी—१७०)

हीरा तहाँ न खोलिये, जहाँ कुजरों की हाट।
सहजै गाँठी बाँधि के, लगिये अपनी बाट॥

यथार्थ पारख-सिद्धान्त का प्रवचन वहाँ न कीजिये, जहाँ कर्मी-उपासक और नाना मताभिमानियों का समाज लगा है। बल्कि अपने हृदय में उस यथार्थ ज्ञान का मनन करते हुए सीधे अपने मार्ग-चले जाइये ॥ १७० ॥

व्याख्या— साधारण साग-भाजी बेचने वाले कुजड़ों के बाजार में यदि जवाहिरी अपना बहुमूल्य हीरा दिखलावे, तो उसके हीरा का वे बेपारखी कुजड़े क्या मूल्य समझेंगे ?

कुछ नहीं। इसी प्रकार नाना भोगों में आसक्त विषयी-पामर या नाना वाणी जाल में आसक्त कर्मी-उपासकादि बिचारे पारख-सिद्धान्त स्वस्वरूपज्ञान का मूल्य क्या समझेंगे? अतएव विवेकियों का कर्तव्य है कि अनधिकारियों को बहुमूल्य शिक्षा न देकर अधिकारी ही को शिक्षा दें। क्योंकि अनधिकारी को शिक्षा देना निष्फल जाता है।

शिक्षासार—आप के उपदेश का मूल्य जो समझे, उसी को आप उपदेश दें। पीतल के थाली में उत्तम दही रखना व्यर्थ है।

८३—(साखी—१७१)

हीरा परा बजार में, रहा छार लपटाय।
केतहि मूरख पचि मूये,कोइ पारखी लिया उठाय॥

जैसे बहुमूल्य हीरा संसार-बाजार में पड़ा हो और उसपर धूल-मिट्टी आदि लिपट रहे हों। हीरा की खोज में कितने ही अज्ञानी जन वहाँ आ-आकर और कष्टित होकर मर जायँ, परन्तु धूल-मिट्टी से लिपटे हुए हीरे को काँच की गोली समझ कर उसे न लेने से उनकी कामना पूर्ण न हो। परन्तु कोई हीरों का पारखी उसे हीरा जानकर उठा लेवे॥ १७१॥

व्याख्या—इसी प्रकार अविनाशी शुद्ध चैतन्य जीव रूपी हीरा संसार-बाजार या शरीर में पड़ा है। इसके ऊपर हाड़-चाम और मल-मूत्र का शरीर-पिञ्जर आच्छादित है,

भूख-प्यास शीत-धूप और मल-विक्षेप-आवरणों से यह लिपटा है। अतः कितने ही लोग इस चेतन जीव को परतन्त्र, अंश, नाशवान्, व्यापक या श्वास, वीर्य, तेज रूप या जड़ रूप मानकर यथार्थ स्वरूपज्ञान से हीन होकर जन्मादिक कष्टों में पचते और मरते रहते हैं। कोई विरले पारखी अपने चेतन स्वरूप जीव को अंश-अंशी व्याप्य-व्यापक, कारण-कार्य-कर्ता-भाव रहित जड़-देह से सर्वथा भिन्न अजर-अमर, अखण्ड, स्वतन्त्र, शुद्ध-चैतन्य जान कर यथार्थ-बोध रूप हीरा को प्राप्त हो जाते हैं। अथवा विवेकी पारखी सन्त जन संसार-बाजार में विचरते हैं। उनके खान-पान, वस्त्र-पहिरन, चलन-बोलन इत्यादि देखकर संसारी जीव उन्हें अपने सदृश साधारण मनुष्य समझते हैं। कितने ही भूले लोग विवेकी सन्तों की निन्दा-उपहास करते, कटु कहते और निरादर करते हैं। परन्तु विवेकी सन्तों को पहचानने वाले सन्तों के जो पारखी सज्जन होते हैं, वे विवेकवान् सन्तों को परख लेते हैं और उनकी सेवा-आदर करके अपना कल्याण कर लेते हैं।

शिक्षासार—मनुष्य को परीक्षक होना चाहिये।

८४—(साखी—१७२)

हीरों की ओबरी नहीं, मलयागिर नहिं पाँति।
सिंहों के लेहड़ा नहीं, साधु न चले जमाति॥

हीरों से भरा मन्दिर नहीं होता, पंक्ति-का-पंक्ति मलयागिर नहीं होता। सिंहों के झुंड नहीं होते, इसी प्रकार पूर्ण साधु पद को प्राप्त जीवन्मुक्त पुरुष जमात-के-जमात नहीं होते ॥१७२॥

व्याख्या—हीरा कहीं-कहीं मिलता है, ऐसा नहीं देखा जाता कि हीरों से ओबरी (कोठरी या मन्दिर) भरा हो, अथवा जैसे अन्य पत्थरों से महल-मन्दिर बनाया जाता है, तैसे हीरे से मन्दिरों की भित्त नहीं चुनाई जाती। क्योंकि हीरा अधिक होता नहीं। ऐसे मलयागिर कहीं-कहीं रहता है और सिंहों के समूह-के-समूह नहीं देखे जाते। तैसे जो सन्तों की जमातें देखी जाती हैं। वे सब पूरे साधु (जीवन्मुक्त) ही नहीं रहते। भास, अध्यास, अनुमान, कल्पना के पारखी दृढ़ वैराग्य युक्त स्वतः पारख स्वरूप में स्थित कोई बिरले-बिरले ही जीवन्मुक्त होते हैं। परन्तु जैसे कक्षा एक में पढ़ते हुए या एम० ए० में पढ़ते हुए तथा वेद-शास्त्र पढ़ते हुए सब लड़के छात्र या विद्यार्थी कहे जाते हैं । तैसे जीवन्मुक्त सन्त और साधारण सदाचारी सन्त सब साधु-सन्त कहे जाते हैं। अतएव जीवन्मुक्त पुरुषों की सबसे अधिक प्रतिष्ठा रखते हुए अन्य सदाचारी सन्तों की भी यथायोग्य पूजा-सेवा करनी चाहिये। (परन्तु कोई साधु भेष-धारी यदि कामी-कुचाली गुरुन्याय का द्रोही और असद् अचारण युक्त हो, तो उसको बिल्कुल त्याग देना चाहिये।)

साखी—साधु साधु सबही बड़े, अपनी अपनी ठौर।
सन्त विवेकी पारखी, ते माथे के मौर॥ पं०

शिक्षासार—जीवन्मुक्त-सन्त बिरले-बिरले होते हैं।

८५—(साखी—१७६)

मूरख सो क्या बोलिये, शठ सो काह बसाय।
पाहन में क्या मारिये, जो चोखा तीर नशाय॥

मूर्ख से क्या बोलियेगा ? शठ से क्या चलेगा। पत्थर में मारने से क्या होगा ? पैना तीर भी तो नष्ट हो जायगा।

व्याख्या—जैसे पत्थर में कितना ही तीव्र तीर मारा जाय, परन्तु पत्थर को नहीं वेधता। बल्कि स्वयं नष्ट होता है। इसी प्रकार शठी-हठी और मूर्खों को शिक्षादेने से उनका तो सुधार होता नहीं। बल्कि अपना मूल्यवान् उपदेश तथा परिश्रम व्यर्थ जाता है।

शिक्षासार—अनधिकारी को शिक्षा नहीं देनी चाहिये। यथासम्भव मूर्ख और हठी-शठी से बोलना नहीं चाहिये।

८६—(साखी—१७७)

जैसी गोली गुमज की, नीच परी ढहराय।
तैसा हृदया मूर्ख का, शब्द नहीं ठहराय॥

जैसे मन्दिर के भीतर से ऊपर गुम्मज में गोली यदि मारी जाय, तो वह टकराकर पुनः नीचे गिर पड़ती है।

इसी प्रकार मूर्ख का हृदय उल्टा और कठोर होता है, उसके हृदय में सत्योपदेश नहीं ठहरता ॥ १७७ ॥

व्याख्या—शठी-हठी, मूर्ख और विवादी लोग हृदय के बड़े कठोर होते हैं। रात-दिन विषयासक्ति हिंसा, अभक्ष्य-सेवन, चोरी-बेईमानी और पाप-कर्मों में वे रत होते हैं। सन्तों में उनका पूज्य एवं आदर भाव नहीं होता। ऐसे कठोर लोगों के हृदय में उपदेश का प्रभाव पड़ना बड़ा कठिन रहता है।

शिक्षासार—अतः ऐसे कठोर लोगों से चुप रहना ही अपना शान्ति-साधन हैं।

८७—(साखी—१७८)

ऊपर की दोऊ गयी, हियहु की गयी हेराय।
कहहिं कबीर जाकी चारिउगई, ताको काह कराय॥

ऊपर के दोनों नेत्र जिनके फूट गये हैं और हृदय के विवेक-विचारादि रूप नेत्र भी खो गये हैं। इस प्रकार जिनके बाहर-भीतर के चारों नेत्र नष्ट हो गये हैं, सद्गुरु श्रीकबीर-साहेब कहते हैं—उनके उद्धार की क्या युक्ति है? कोई नहीं ॥ १७८ ॥

व्याख्या—विवेकवान् सदाचारी सन्तों के और सज्जनों के आचरणों को अपने चर्म-चक्षु से देखकर अथवा सद्ग्रन्थों का अवलोकन करके जो अपना आचरण नहीं सुधारता

और न तो हृदय में स्वयं विवेक-विचार उत्पन्न करके अच्छा मार्ग पकड़ता है। तो ऐसे बाहर-भीतर ज्ञान-शून्य मनुष्य के लिये उद्धार का कौन-सा उपाय बताया जाय ?

शिक्षासार—विवेकवान् सन्त-सज्जनों के अच्छे गुणों का अनुकरण करके और स्वयं विवेक-विचार से शोध-शोधकर सदैव सदाचरण से चलना चाहिये।

८८—(साखी—१७९)

केते दिन ऐसे गया, अनरूचे का नेह।
ऊषर बोये न ऊपजै, जो घन बरषे मेह॥

(अनरूचे) श्रद्धाहीन-लापरवाह मनुष्यों से प्रेम करते हुए कितने ही दिन बीत गये। परन्तु उनको यथार्थ सद्-शिक्षा उसी प्रकार नहीं लगती, जैसे अत्यन्त जल-वृष्टि होने पर भी ऊषर में बीज बोने से कुछ नहीं उपजता॥१७९॥

व्याख्या—जो श्रद्धाहीन है, जिसे सन्तों की शिक्षा में और उनके सङ्ग, सेवा-सुश्रूषा में प्रेम नहीं जगता। जो मन्दा भद्दा और आलसी है। उसको कितनी ही सुन्दर-शैली युक्त शिक्षा दिया जाय, परन्तु उसका प्रभाव उसके ऊपर नहीं पड़ता।

शिक्षासार—जो श्रद्धाहीन हो, जिसमें लघुता और शिष्य का भाव न हो, उसे शिक्षा देना व्यर्थ है।

८४—(साखी—१८०)

मैं रोवों यह जगत् को, मोको रोवे न कोय।
मोको रोवे सो जना, जो शब्द विवेकी होय॥

कष्ट उठाकर मैं संसारी जीवों के लिये उपदेश करता हूँ, परन्तु संसारी कोई भी मेरे वचनों पर विचार नहीं करते। मेरे उपदेश से लाभ उठाने के लिये तो वही पुरुषार्थ करता है, जो सार-शब्दों (सत्य उपदेशों) का विवेक करने वाला होता है॥१८०॥

व्याख्या—जन्म-मरण और तीनताप के कष्टों को देख कर करुणा पूर्वक विवेकी सद्गुरु-सन्तजन सत्योपदेश देकर संसारी जीवों को उबारने का प्रयत्न करते हैं। परन्तु जिन्हें विवेक-विचार कुछ नहीं है। उन्हें सन्तों के सद्शिक्षा पर विचार करना और उन सन्तों की सेवा-आदर करके यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना और कल्याण करना तो बहुत दूर रहा। बल्कि सन्तों का निरादर करते हैं, व्यर्थ समझते हैं। यहाँ तक कि बहुत से भूले भाई सन्तों को और उनकी शिक्षाओं को हानिकारी समझते हैं। विवेकी सन्तों और सन्तों की सद्शिक्षाओं का मूल्य तो वही समझता है और उनसे लाभ भी वही उठाता है, जो उनके उपदेश भरे वाक्यों का विवेकी होता है। ठीक ही है—जो जाको मर्म न जाने, सो ताको काह कराय॥ अथवा—

गुणिया तो गुण ही कहै, निर्गुणिया गुणहिं घिनाय।
बैलहिं दीजै जायफर, क्या बूझै क्या खाय॥
(बीजक)

शिक्षासार—सन्तों के और सन्तों के उपदेशों के मूल्य को अज्ञानी विषयासक्त नहीं जानते। उनके मूल्य को श्रद्धावान् या विवेकी ही जानते

६०—(साखी—१८१)

साहेब साहेब सब कहैं, मोहि अँदेशा और।
साहेब से परिचय नहीं, बैठोगे केहि ठौर॥

साहेब-साहेब सब कहते हैं, परन्तु मेरे को तो और ही शंका हैं कि यथार्थ साहेब से इनको परिचय तो है नहीं, फिर इनकी यथार्थ स्थिति किस स्थान पर होगी ? ॥१८१॥

व्याख्या—साहेब का अर्थ है स्वामी या श्रेष्ठ, सो कोई तो अपने से भिन्न कल्पित-कर्ता को स्वामी मानते हैं। कोई निराकार-शून्य, कोई साकार-प्रकृति, कोई अग-जग एक अद्वैत को स्वामी मानते हैं। कोई सूर्य, गणपति, आदि-शक्ति-जगदम्बा, हनुमान, खुदा, गार्ड-यहोबा, नाना देवी-देव, भूत-प्रेत-ब्रह्म, तीर्थ-मूर्ति, गद्दी, तकिया, खड़ाऊँ मस-जिद-मन्दिर, कबर, समाधि, पुस्तक-ग्रन्थ, यहाँ तक कि पीपर-पाकर, साँप, माटी-गोबर, पानी-आग और वायु को भी अपना स्वामी उद्धारक मानकर भूले लोग उनकी उपा-

सना करते हैं । और इन्हीं को अपना स्वामी या साहेब मानते हैं । इसलिये यहाँ श्री कबीर साहेब कहते हैं—भाई ! साहेब-साहेब तो सब कहते हैं,परन्तु मुझे तो यही बड़ी शंका है कि यथार्थ रूप से जो इन उपरोक्त सभी कल्पनाओं का साहेब हृदय-निवासी चैतन्यजीव है, उसका परिचय तो इन लोगों को है नहीं । फिर इनकी यथार्थ स्थिति कहाँ होगी ? अर्थात् स्वरूपज्ञान हुए बिना जीव जगत्-चक्र में भ्रमते ही रहेंगे ।

शिक्षासार—जहाँ तक पाँचों ज्ञानइन्द्रियों से जाना जाय और जहाँ तक मन से माना जाय—ये सब अपने से पृथक् दृश्य, जड़ और निःसार हैं । जो अपना पारख स्वरूप चैतन्य है, वह अपने आप अपना स्वामी है । वही मैं हूँ । जीव का अन्य कोई स्वामी नहीं है ।

९१—(साखी—१८२)

जीव बिना जिव बाँचे नाहीं,जीव का जीव अधार।
जीव दया करि पालिये, पण्डित करो विचार ॥

जीव के बिना अन्य जीव की रक्षा नहीं होती,जीवका जीव ही आश्रय है । हे पण्डितो ! इस बात का विचार करो, और दया करके जीवों की रक्षा करो ॥ १८२ ॥

व्याख्या—जीव सब एक-के-एक घातक हो रहे हैं,चींटी, मच्छड़, छिपकली, सर्प, बिच्छू, मेढक, बिल्ली,बकुला,बाज,

सियार, भेड़िया तथा सिंहादि तीन खानि के जीव एक-को-एक धर-धर खाते हैं। उन्हीं पशुओं के आचरण धारण करने वाले जो मनुष्यों में भूले लोग होते हैं। वे भी बैल-गाय-भैंस, ऊँट, भेड़ा, बकरा, सूअर, बतख, मुर्गा, मछली, साँप तथा मेढक तक को निर्दयता पूवक मारखाते हैं। यदि इन लोगों को यथार्थ बुद्धि हो जाय, यदि ये लोग उन समस्त पशु-पक्षी और कृमि आदि को अपना स्वजाति चेतन-बन्धु समझ लें, यदि इनके मन में तनिक भी साम्यवाद का झलक आजाय, तो ये लोग कभी भी किसी जीव की हिंसा भरसक न करें। परन्तु ये लोग घोर अंधकार में पड़े हैं। अन्य तीन खानि के जीव चाहे जो कुछ हिंसादि करें, उनको दोष नहीं लगता। क्योंकि उन्हें कोई यथार्थ ज्ञान नहीं रहता है। परन्तु ज्ञानवान्, सर्वसमर्थ मनुष्य को कभी भी किसी प्राणी की भरसक हिंसा नहीं करनी चाहिये। क्योकि मनुष्य को दोप अवश्य लगता है।

शिक्षासार—हे प्रिय बन्धुओ ! जीव-हिंसा बिल्कुल त्याग कर दो।

४२—(साखी—१८३)

हम तो सब की कही, मोको कोई न जान।
तब भी अच्छा अब भी अच्छा, युग युग होऊँ न आन॥

मैंने सब के हित के लिये सबका भेद बताया, परन्तु

इन भूले लोगों में से कोई मेरे यथार्थ पारख स्वरूप को न जाना। किन्तु भूत, वर्तमान और भविष्य-हर समय मैं अजर-अमर शुद्ध चैतन्य पारख स्वरूप हूँ, कभी भी मैं दूसरा नहीं होता ॥१८३॥

व्याख्या—ग्रन्थकर्ता का कहना है कि मैंने सब मत-पथ, वाणी, भास और कल्पनाओं के गुण-दोषों को बताकर स्वतः पारख-बोध रूप उद्धार का मार्ग दर्शाया। परन्तु जो लोग अभिमानी हैं और पक्षपात या अज्ञान में पड़े हैं, उन लोगों में से किसी ने भी मेरे यथार्थ पारख-बोध रूप वास्तविक सिद्धान्त को न जान सका। जो लोग निष्पक्ष-निराभिमानता पूर्वक लक्ष्य दिये, वे ही यथार्थ-मार्ग जाने। किन्तु कोई जाने-माने या न जाने-माने, इसमें मेरा किञ्चिन्मात्र भी बिगाड़ नहीं है। मैं तो तीनों काल में शुद्ध चैतन्य पारख स्वरूप हूँ। कभी भी अन्य नहीं होता।

शिक्षासार—शिक्षक के उपदेश मानने-न-मानने वाले की ही लाभ-हानि होती है। शिक्षक यदि आचरण युक्त स्वरूपस्थ है, तो उसकी उसमें कुछ लाभ-हानि नहीं है। अतः शिक्षक के सद्शिक्षा पर जिज्ञासु को ध्यान देना चाहिये।

९३—(साखी—१८५)

देश विदेशे हौं फिरा, मनही भरा सुकाल।
जाको ढूँढत हौं फिरौं, ताका परा दुकाल ॥

सद्गुण युक्त स्वस्वरूप-देश में स्थित होकर विदेश रूप जड़-जगत् अज्ञानी जीवों के बीच में जन-उद्धार हित विचरण किया। परन्तु संसारी लोग मानन्दी अज्ञान को ही हितकारी समझकर मन में भरे हैं। जिस सत्पात्र मुमुक्षु को मैं खोजता-फिरता हूँ, उसका दुकाल पड़ा है ॥१८५॥

व्याख्या—अपना चैतन्य स्वरूप ही अपना मुख्य देश है और विजाति जड़ काया तथा जगत् ही विदेश है। सद्गुरु का कहना है कि मैंने दया, शील, क्षमा, सत्य, धैर्य, विचार, विवेक तथा वैराग्यादि सद्गुण युक्त अपने अजर, अमर, अखण्ड पारख चैतन्य स्वरूप में स्थित होकर जन-उद्धार निमित्त प्रपंची संसार में भ्रमण करता और उपदेश देता फिरा। परन्तु खानी-वाणी जाल में भूले लोग, जोकुछ विषय-सुख और कल्पना, भास, अध्यास सुकाल अर्थात् हितकारी मान रखे हैं, वही मन में भरे हैं। जैसा निष्पक्ष-निराभिमानी और जिज्ञासु-मुमुक्षु सत्पात्र होना चाहिये। वैसा तो कहीं बिरले-बिरले मिलते हैं।

शिक्षासार—मनुष्य को सत्पात्र बनना चाहिये।

९४—(साखी—१८६)

कलि खोटा जग आँधरा, शब्द न माने कोय।
जाहिं कहौं हित आपना, सो उठि बैरी होय॥

खानी-वाणी की कल्पना बुरी है, संसारी जीव अविवेकी

हैं,इन लोगों में से निर्णय-उपदेश कोई मानता नहीं। जिस-के स्वयं हित के लिये मैं उपदेश करता हूँ, वही उठकर वैरी बनता है ॥ १८६ ॥

व्याख्या—स्त्री, पुत्र, धन-घर और शब्दादिक पञ्च विषय भोगों का पसारा खानी-जाल है, और नाना देवी-देव, स्वरूप से भिन्न परोक्ष मानन्दी वाणी जाल है। इन दोनों की कल्पनायें जीवों को दुःखदायी हैं। अतएव दुःख-दायी होने से ही खोटी अर्थात् बुरी हैं। परन्तु संसारी भूले जीव विवेक से हीन होने से खानी-वाणी भ्रम नाशक सत्य-निर्णय वाक्यों को नहीं मानते। जीव सब बन्धनों से छूट-कर स्वतन्त्र मुक्त हो जायँ—इसके लिये मैं खानी-वाणी की आसक्ति छुड़ाने के लिये सत्योपदेश करता हूँ। परन्तु विषय और कल्पना के अध्यासी जीव उपदेशक को ही वैरी मान लेते हैं। भाव यह है कि साधु-गुरु के जितने निर्णय-उपदेश होते हैं,सब सुखाध्यासी मन के उल्टे होते हैं। अतएव सुखाध्यासी जीव साधु-गुरु के निर्णय को ही बुरा और उपदेशक साधु-गुरु को वैरी मान लेता है।

शिक्षासार—मन की प्रतिकूलता को सहन करके साधु-गुरु के निर्णय को सादर स्वीकार कर अपना सुधार-उद्धार करना चाहिये।

शब्द—

या जग अन्धा, मैं काको समझाओं।
इक दुइ होय उन्हें समझाओं, सबहिं भुलान पेट कै धन्धा ॥
पानी कै घोड़ा पवन असवरवा, ढरकि परै जस ओस कै बुन्दा ॥
गहरी नदिया अगम बहै धरवा, खेवन हारा पड़िगा फन्दा ॥
घर की वस्तु निकट नहिं आवत, दियना बारि कै ढूढ़त अंधा ॥
लागी आग सकल बन जरिगा, बिन गुरु ज्ञान भटकिगा बन्दा ॥
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, इक दिन जाय लँगोटी झार बन्दा॥

९२—(साखी—१८८)

फहम आगे फहम पाछे, फहम दाहिने डेरि।
फहम पर जो फहम करे, सो फहम है मेरि॥

भविष्य, भूत और वर्तमान तीनों की समझ पर जो यथार्थ पारख-समझ करता है, वह मेरी समझ है ॥१८८॥

व्याख्या—मनुष्यों द्वारा भविष्य काल की बातों को जानने के लिये जो अनेकों प्रकार अनुमान या शोधन किया जाना है, यही 'फहम आगे' भविष्य की समझ है। और भूत पूर्व की बीती बातों को अनुमान या शोधन द्वारा जानना, यही 'फहम पाछे' भूत की समझ है। 'दाहिने' दक्षिण या शुद्ध मार्ग और 'डेरि' बाम या अशुद्ध मार्ग, इन दोनों मार्गों में जो वर्तमान में लोग चलते हैं, यही 'फहम दाहिने डेरि' वर्तमान की समझ है। परन्तु इन सब समझों

की समझ जिस चैतन्य द्वारा होती है, उस चैतन्य पारख स्वरूप का यथार्थ ज्ञान और उसमें दृढ़ स्थित होना—यह सब समझों पर मेरी मुख्य समझ (ज्ञान या सिद्धान्त) है।

इस साखी का अधिक स्पष्ट भाव यह है कि कोई तो भविष्य काल की बातों को जानने के लिये अनेक शोधन या पुरुषार्थ करते हैं और उसी में अपनी समझ को उच्च मानते हैं। कोई भूतकाल की बातों के संशोधन में अपनी समझ को अधिक महत्त्वशाली मानते हैं। कोई हिंसा-मांसाहार त्याग कर सदाचार पूर्वक कल्पित ईश्वर की भक्ति या ज्ञान मार्ग से चलकर अपनी बुद्धि श्रेष्ठ समझते हैं। कोई मीन, मैथुन, मद्य, मुद्रा तथा मांसादि पंच मकार का सेवन कर बाम मार्ग पर चलने से मोक्षमान कर अपनी समझ को बड़ी मानते हैं।

उपरोक्त समझों में से भूत-भविष्य की बातें जानना केवल व्यावहारिक होने से परमार्थ में कोई अधिक महत्त्वशाली नहीं है। और बाम मार्ग तो महा पाप मार्ग है, वह समझ अच्छी क्या होगी, बल्कि महा बुरी है। रह गया सदाचार पूर्वक उपासना या ज्ञान मार्ग अर्थात् दक्षिण या शुद्ध-मार्ग उपरोक्त अन्य समझों से अच्छी अवश्य है। क्योंकि इसमें सदाचार होने से जीव को सुखदाई है। परन्तु स्वतः पारख स्वरूप का यथार्थ बोध न होने से यह भी चर्मसीमा की वास्तविक समझ नहीं है। फिर वास्तविक समझ क्या

है ? सो सुनो ! उपरोक्त चार समझें या संसार में जितनी भी समझें खानी-वाणी के जहाँ तक मत, पथ, सिद्धान्त और समझ हैं। इन सब समझों की समझ जहाँ से होती है। उसका वास्तविक ज्ञान होना ही यथार्थ समझ है। भाव यह है कि यह हृदय-निवासी चैतन्य जीव ही द्वारा सब अच्छी-बुरी समझों-मन्तव्यों का निर्माण हुआ है। यही भूत-भविष्य-वर्तमान का शोधक है, यही अपने-आप की भूल से दक्षिण और वाम मार्ग का कर्ता है। यही स्त्री-पुत्र पंचविषय भोग और कर्ता, मिश्रितवाद या नाना देवी-देवादि का मानने वाला है। परन्तु यह जीव जहाँ तक मन से मानता है, उन मानन्दियों से भिन्न शुद्ध अविनाशी ज्ञान मात्र रहता है और जहाँ तक मानता है, वह मानन्दी मिथ्या रहती है। सबका जानने-मानने वाला वह चैतन्य जीव ही मैं हूँ। इस प्रकार सब समझों की समझ मुझ शुद्ध चैतन्य से ही होती है। अतः मुझे अपने आप चैतन्य पारख स्वरूप को यथार्थ समझकर और अपने आप में वासना-रहित स्थित होना ही सब समझों पर महान् समझ है। इस अपने पारख चैतन्य स्वरूप का यथार्थ ज्ञान और स्थिति ही श्रीकबीर साहेब ने अपना फहम अर्थात् मुख्य समझ या सिद्धान्त बतलाया है। इस साखी का दूसरा अर्थ यह भी लगाया जा सकता है—

आगे-पीछे, दाहिने-बाँये सब ओर हर मनुष्य या कम-से-कम साधक को सावधान रहना चाहिये। व्यवहार या

मुख्य परमार्थ के कर्तव्यों में कहीं भी असावधान नहीं होना चाहिये। जो सावधानी-पर-सावधानी रखता है। अर्थात् इन्द्रिय-मन, प्राणी-पदार्थों से प्रतिक्षण सावधान रहता है—साहेब कहते हैं–यही मेरी फहम अर्थात् सावधानी है।

शिक्षासार—सब भासों से अपने: शुद्ध चैतन्य पारख स्वरूप को सर्वथा भिन्न समझना और मन-इन्द्रिय, प्राणी-पदार्थों के राग-द्वेषादि द्वन्द्वों से हर समय रहित रहकर स्वरूप में स्थिति-रत रहना–श्रीकबीरसाहेब–यही अपनी फहम-समझ या सावधानी बतलाये हैं। इसे हमें धारण करना चाहिये।

८६—(साखी—१८८)

हद चलै सो मानवा, बेहद चलै सो साध।
हद बेहद दोऊ तजै, ताकर मता अगाध॥

सदाचार पूर्वक गृहस्थी धर्मानुसार जो चलता है, वह मनुष्य है, जो गृह धर्म त्यागकर त्याग मार्ग से चलता है, वह साधु है। परन्तु जो इन दोनों मार्गों को त्यागकर सद्गुण युक्त स्वतः पारख स्वरूप स्थिति के मार्ग में चलता है, उसका सिद्धान्त सर्वोपरि अथाह है॥१८९॥

व्याख्या—हिंसा, अभक्ष्य-भक्षण, मद्यपान, अमल, नशा आदि त्यागकर अहिंसा, दया, शील, क्षमा विचारादि सदा-

चरण-सद्गुणों को धारण कर जो अच्छे मार्ग से चलता है। देह से भिन्न अविनाशी जीव का ज्ञान जानकर जो लोक-परलोक सुधारने के लिये दया, दान, परोपकार, सन्त सेवा यथाशक्ति करता है, सद्गुरु की भक्ति, माता-पिता तथा गुरुजनों और बड़े बूढ़ों का आज्ञापालन और सेवा करता है। सद्ग्रन्थ और सत्पुरुषों में श्रद्धा-विश्वास रखता है। यथाशक्ति विषयासक्ति का त्याग रख कर सब से नम्रता पूर्वक चलता और अतिथि का सत्कार करता है, वह गृहस्थी धर्म से चलता हुआ प्राणी—मनुष्य है।

और जो गृहस्थी-कर्म त्यागकर वैराग्य लेकर किसी अहिंसक-सदाचारी साधु-सन्यासी सम्प्रदाय में सम्मिलित होकर और किसी गुरु का आश्रय लेकर ब्रह्मचर्य पूर्वक उपासना-ज्ञान इत्यादि के मार्गों में चलता है, वह साधु है। परन्तु जो गृहस्थी-कर्म और नाना सम्प्रदायों की कल्पनाओं को त्याग कर खानी-वाणी से पृथक् अपना चेतन पारख स्वरूप समझता है और पारखी गुरु की भक्ति करते हुए सदाचरण-सद्गुण एवं विवेक-वैराग्य पूर्वक अपने पारख स्वरूप की स्थिति करता है। उसका मत अथाह सर्वोपरि और सर्वश्रेष्ठ है।

शिक्षासार—अपने-अपने श्रेणी में सब को पुरुषार्थ-रत होना चाहिये। सबको त्यागकर जो स्वतः पारख स्वरूप में स्थित है, वह सर्वश्रेष्ठ है।

६७—(साखी—१६०)

समुझे की गति एक है, जिन समझा सब ठौर।
कहहिं कबीर ये बीच के, बलकहिं और के और॥

जिन-जिन ने सब खानी-वाणी की कसरों को जानकर अपने पारख स्वरूप को सब से भिन्न स्वतन्त्र समझ लिये हैं, उन सब समझदारों की एक दशा (स्थिति) है। सद्गुरु श्री कबीर साहेब कहते हैं—पूरे तत्त्व तक न पहुँचे हुए ये बीच के जीवही अन्य-का-अन्य बक रहे हैं॥१९०॥

व्याख्या—जो हद्द और बेहद्द अर्थात् खानी और वाणी जाल में उलझे हुए मनुष्य हैं, वे ही बीच के हैं। क्योंकि वे पूरे ध्येय-धाम (स्वतः पारख स्वरूप-ज्ञान) तक नहीं पहुँचे हैं। अतएव वे कुछ अन्य-का-अन्य ही बलकते अर्थात् बकते हैं। कहीं अपने को अंश, परिछिन्न, किञ्चिज्ञ, पराधीन कहते हैं, कहीं अपने को अस्थावर-जङ्गम पेड़-पहाड़ सब कुछ बताते हैं, कहीं अपने को कहते हैं मैं शरीर, मन, प्राण या वीर्य हूँ, इत्यादि। परन्तु जो हद्द-बेहद्द से परे हैं और सबठौर अर्थात् खानी-वाणी के सब जालों को दुःखरूप परखकर उन सबों से भिन्न पारख स्वरूप के ज्ञानी हैं, उनका मत अगाध है। उन सब पारखी जनों का कथन, आचरण, गुण और रहस्य एक समान है। स्वरूप स्थिति दशा उन सबों की एक तुल्य है।

शिक्षासार—खानी-वाणी जाल के अन्तर्गत पड़े हुए जीव ही नाना मत की कल्पना करके अन्य-का-अन्य बकते हैं। अन्यथा पूरे समझदार पारखी-विवेकियों की दशा एक है।

९८—(साखी—१९१)

राह विचारी क्या करे, जो पन्थी न चले बिचार।
आपन मारग छोड़िके, फिरै उजार उजार॥

विचारे अच्छे मार्ग का क्या दोष है? जब पथिक विचार पूर्वक नहीं चलता। और अपना शुद्ध एवं सीधा मार्ग छोड़कर जङ्गल और काँटा-खाईं में भटकता फिरता है॥१९१॥

व्याख्या—जड़-चेतन का भिन्न-भिन्न विविध निर्णय करके और यथार्थ ज्ञान-प्रकाशक सद्ग्रन्थों की रचना करके साधु-गुरु ने गृहस्थ-विरक्त सभी को अपनी-अपनी रीति से चलने के लिये सीधा मार्ग (सिद्धान्त) दर्शा दिया है। दया, क्षमा, सन्तोष, अहिंसा, गुरु-भक्ति, सेवा, परोपकार, सर्व हितैषिता धारण कर लोक-परलोक सुधार का, यहाँ तक कि विवेक-वैराग्यादि पूर्वक स्वस्वरूप में स्थिति (मोक्ष) दशा तक के सीधे मार्ग को साधु-गुरु ने दर्शाया है। अब यदि मनुष्य इन आचरणों को धारण करके अपना सुधार नहीं करता है, बल्कि उजार-उजार नाम शून्य में एवं नाना वाणी

मास और विषयासक्ति हिंसा अभक्ष्य सेवनादि पापकर्मों में रत रहता है। तो विवेकी साधु-गुरु और उनके यथार्थ मार्ग (सिद्धान्त) का क्या दोष है ? कुछ नहीं।

शिक्षासार—मनुष्य को अपना आचरण शीघ्र सम्हालना चाहिये।

४४—(साखी—१९२)

मूवा है मरि जाहुगे, मुयेकि बाजी ढोल।
सपन सनेही जग भया, सहिदानी रहिगो बोल॥

पूर्व के लोग सब मर चुके हैं, हे मनुष्य ! तू भी एक दिन मर जायगा, मुर्दे की तो ढोल ही बज रही है। स्वप्न के प्रेमी-तुल्य यह जगत् की माया है, थोड़े दिन के लिये लोगों का वचन मात्र चिह्न रह जाता है॥ १९२॥

व्याख्या—प्राचीन काल में कितने-कितने नामी-ग्रामी राजा-रानी-शूर-वीर हुए। परन्तु वे सब ही अज्ञानता पूर्वक काल के गाल में चले गये। कोई भी बचा नहीं। हे भूला मनुष्य ! उसी प्रकार तू भी इस संसार से चल बसेगा। तेरा यहाँ का अभिमान करना उचित नहीं है। जैसे मुर्दे चाम की ढोल बजती है, तैसे तुम्हारा भी चिन्ह कुछ दिन के लिये बोली मात्र रह जायगी। जैसे स्वप्न में कोई मन-भावन मित्र मिले और उससे बड़ा प्रेम हो जाय। परन्तु जागने पर कुछ नहीं। इसी प्रकार धन, पुत्र, स्त्री, घर-पृथ्वी शासन-

अधिकार तथा जवानी आदि हैं। ये सब स्वप्न के पदार्थ तुल्य असत्य हैं।

शिक्षासार—मूर्दा शरीर की आसक्ति वश जीव बार-म्बार जन्मता-मरता है। मनुष्य को अपनी मृत्यु निकट समझ कर शीघ्र शरीराभिमान जीतकर जन्म-मरण रोग से मुक्त हो जाना चाहिये।

१००—(साखी—१६३)

मूवा है मरि जाहुगे, बिन शिर थोथी भाल।
परेहु करायल वृक्षतर, आज मरहु की काल॥

पूर्व के लोग मर चुके हैं,तुम भी बिना शिर का अनुमान करके मिथ्या कल्पना में ही मर जाओगे। अपने कर्तव्य रूप वृक्ष के नीचे ड़ेप हो, आज मरो या कल॥ १६३॥

व्याख्या—मृतक (मुर्दा) देह के अभिमान को त्याग कर जो अविनाशी चैतन्य स्वरूप में स्थित हो जाता है, यद्यपि परिणामी शरीर उसका भी एक दिन छूटता है, परन्तु भविष्य के लिये वह पुनः जन्म-मरण से रहित हो जाता है। शरीर मरता है, चैतन्य जीव कभी भी नहीं मरता। अतः जो अपने को शरीर मानता है, वही मरता है और जो शरीर से भिन्न अपने को अविनाशी चेतन समझता है वह मरता नहीं, केवल उसकी काया छूट जाती है और वह शरीर धरने छोड़ने से छुट्टी पाकर मुक्त हो जाता है। यहाँ

सद्गुरु ने अबोधी देहाभिमानियों को कहा है कि सब अज्ञानी मनुष्य प्रथम भूल-दशा ही में मर गये हैं और यदि तुम भी बिना शिर-पैर के अनुमान में और थोथी भाल अर्थात् मिथ्या-वाणी भास में तथा विषयासक्ति में फँसे रह जाओगे, तो अबोध ही में तुम भी मर जाओगे। क्योंकि अपने बचने के लिये जिस खानी-वाणी रूप वृक्ष का आधार तुम लिये हो, वह तो करायल नाम तुम्हारा ही कल्पित-कर्तव्य है। फिर अपने (कर्ता) स्वरूप को भूल कर कर्तव्य ही में मोह रहे हो, तो कैसे बचोगे ? अतएव कल्पित-कर्तव्य का मोह त्याग कर (कल्पना-कर्ता) स्वस्वरूप में स्थित होओ। तब काल से बचोगे।

शिक्षासार—विजाति भास त्यागकर और स्वतः पारख स्वरूप में स्थित होकर मुक्त होना चाहिये।

१०१—(साखी—१९६)

पायन पुहुमी नापते, दरिया करते फाल।
हाथन पर्वत तौलते, तेहि धरि खायो काल॥

पैरों से जो पृथ्वी नाप डालते थे, और नदी-समुद्र को जो कूद जाते थे। तथा हाथों पर जो बहुत समय तक पर्वत उठाये रहते थे, उन्हें भी कल्पना-काल ने पकड़ खाया॥१९६॥

व्याख्या—कल्पित दृष्टांत ऐसा है कि बावन ने पृथ्वी को पैरों से नाप डाला था और हनुमान जी लंका जाते

समय समुद्र कूद गये थे तथा श्री कृष्ण जी गोवर्धन पर्वत कई दिन हाथ पर रखकर जल-वृष्टि से वृज की रक्षा की थी। परन्तु ऐसे शक्तिशाली पुरुषों को भी काल ने न छोड़ा, फिर साधारण मनुष्य अपने शरीर इत्यादि का क्या अभिमान करता है ? मुख्य भाव यह है कि यथार्थ पारख-ज्ञान से रहित खानी-वाणी की कल्पना में ही उक्त पुरुषों ने शरीरान्त कर दिया।

शिक्षासार—मनुष्य को चाहिये कि वह पक्ष-अभिमान त्यागकर यथार्थ ज्ञान ग्रहण करे और अपना मोक्ष प्राप्त करे।

१०२—(साखी—१९९)

मानुष तेरा गुरा बड़ा, मासु न आवै काज।
हाड़ न होते आभररा, त्वचा न बाजन बाज॥

ऐ मनुष्य ! दया, शीलादि तुम्हारे सद्गुण ही बड़े हैं, अन्यथा तेरा मांस तो किसी के काम में नहीं आता है। न तुम्हारे हाड़ का कोई गहना बने, न तुम्हारे चमड़ा का बाजा ही बनकर बजे ॥१९९॥

व्याख्या—सद्गुणों को छोड़कर मनुष्य-शरीर की कुछ विशेषता नहीं है। हिंसा, मांसाहार, मद्यपान, चोरी व्यभिचार, झूठ, छल जबर्दस्ती आदि दुराचरणों को त्यागकर दया, शील, क्षमा, सत्य, धैर्य, विचार परोपकार गुरु-भक्ति ब्रह्मचर्य, सन्तोष समता, शान्ति आदि सदाचरण-सद्गुण

यदि मनुष्य में हैं, तो जानो वह वास्तविक मनुष्य है। अन्यथा केवल पशु-तुल्य कमाने-खाने और विषयों के भोगने में लगा हुआ मनुष्य-पशु ही है। और चोरी, डकैती, हिंसा, व्यभिचार अभक्ष्य-भक्षणादि करने वाला मनुष्य तो पूरा नर-पिशाच ही है। चारो वेदों का ज्ञाता ब्राह्मण-कुल उत्पन्न रावण महान पंडित और विद्वान् था। परन्तु इन्हीं हिंसा, अभक्ष्य सेवन और व्यभिचारादि के करने से ही वह राक्षस कहा गया है। मानव आकारधारी प्राणी के यदि मानवता(सद्गुण) नहीं है। तो वह पूरा पशु है। बल्कि यदि उसमें दुराचार हैं, तो मानव आकार का विकट दानव है।

शिक्षासार—जिस मनुष्य में हिंसा, व्यभिचार, अभक्ष्य-भक्षणादि दोष हैं, वह तो पूरा दानव है और जिसमें ये दोष न हों,परन्तु तो भी यदि उसमें सद्गुण न हों,केवल पेट-भोग ही जानता हो, तो वह पशु तुल्य है। जिसमें सद्गुण हों, वही वास्तविक मनुष्य है। अतः हमें मनुष्य बनने के लिये सद्गुणी होना चाहिये।

१०३—(साखी—२०५)

तौ लौं तारा जगमगै, जौ लौं उगै न सूर।
तौ लौं जीव कर्म वश डोलै,जौ लौं ज्ञान न पूर॥

तभी तक तारागण जगमगाते हैं, जब तक सूर्य नहीं उगता। इसी प्रकार सञ्चितादि कर्मों के वश होकर जीव

तभी तक भ्रमता है, जब तक पूरा ज्ञान नहीं होता॥२०५॥

व्याख्या—सूर्य न उगने तक ही तारों की ज्योति रहती है। इसी प्रकार जब तक पूर्ण अपने शुद्ध पारख स्वरूप का ज्ञान नहीं होता और दृढ़ पुरुषार्थ द्वारा जब तक अपने स्वरूप में स्थित नहीं हुआ जाता, तब तक सञ्चितादि कर्म देह धराने में हेतु होते हैं। परन्तु पूर्ण-बोध-वैराग्य-रूप सूर्योदय में सञ्चितादि कर्म-बन्धनों का सर्वथा नाश होकर जीव कल्याण रूप हो जाता है।

शिक्षासार—स्वरूप-ज्ञान और सद्पुरुषार्थ द्वारा इसी जन्म में सर्व कर्मों का नाश करके जीव मुक्त हो सकता है। अतः यही करना परम् कर्तव्य है।

१०४—(साखी - २०७)

संगति कीजै साधु की, हरै और की व्याधि।
ओछी संगत कूर की, आठों पहर उपाधि॥

विवेकी सन्तों की संगत करो, क्योंकि वे अन्य के मानस-रोग (कष्ट) को हर लेते हैं। और टेढ़े मनुष्यों की संगत तो बहुत बुरी होती है, वहाँ आठों पहर झंझट लगी रहती है॥ २०७॥

व्याख्या—यह तो स्पष्ट है, सब जान सकते हैं कि भली संगत से भलाई और बुरी संगत से बुराई उत्पन्न होती है और भलाई से सुख तथा बुराई से दुःख जीव को मिलता

है। 'देखी-देखा पाप, देखी-देखा पुन्य।' अतः बुद्धिमान् मनुष्यों को चाहिये कि वे विचारशील सन्त-सज्जनों की संगत करें। गोस्वामी श्री तुलसी दास जी कहते हैं—

हानि कुसंग सुसंगति लाहू। लोकहु वेद विदित सब काहू॥
गगन चढ़ै रज पवन प्रसंगा। कीचहि मिलै नीच जल संगा॥
साधु असाधु सदन सुक मारी। सुमिरहिं राम देहिं गुण गारी॥

अर्थात्—कुसंग करने से हानि और सुसंग से लाभ होता है, यह लोक-वेद हर स्थलों पर विदित है॥ ऊपर बहने वाले वायु के संग में धूल ऊपर आकाश में चढ़ जाती है और नीचे बहने वाले जल के संग वही धूल नीचे आकर कीचड़ हो जाता है॥ सज्जनों के घर में पले हुए तोता-मैना सुसंग के गुण से राम-राम कहते हैं और दुष्टों के यहाँ पलने से वे ही गाली देते हैं॥

सुन्दर दास जी कहते हैं —

सर्प डसै सु नहीं कुछ तालक, बीछी लगै सु भली करि मानो।
सिंहहु खाय तो नाहिं कछू डर, जो गज मारत तो नहिं हानो॥
आगिजरौ जल डूबि मरौ, गिरिजाय गिरो कछुभय मति मानो।
"सुन्दर" और भले सबही यह, दुर्जन सङ्ग भले जनि जानो॥

शिक्षासार—

दोहा—कबीर संगत सन्त की, ज्यों गन्धी की बास।
जो कुछ गन्धी दे नहीं, तो भी बास सुवास॥

१०५—(साखी—२०८)

संगति से सुख ऊपजै, कुसंगति से दुख होय।
कहहिं कबीर तहाँ जाइये, जहाँ अपनी संगत होय॥

सुसंग से सुख उपजता है, और कुसंगत से दुःख मिलता है। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबकहते हैं—वहाँ पर जाना चाहिये, जहाँ अपनी अच्छी संगत हो॥ २०८॥

व्याख्या—जब विवेकवान् सन्तों का सत्संग किया जाता है, उस काल का सुख ज्यों-का-त्यों मुख से वर्णन नहीं किया जा सकता। सत्संग का सुख अपार है, क्योंकि सत्संग द्वारा दुःख मूल दुर्गुणों का नाश और अमृत तुल्य सद्गुणों की प्राप्ति होती है और इतना ही नहीं, सत्संग से ऐसे अनुभव प्राप्त होते हैं, जो संसार दृश्य से रहित परम् पद और परम्स्थिति के दर्शावक रूप हैं। गोस्वामीजी तो इतना अतिशयोक्ति अलङ्कार युक्त कह दिये हैं कि—

दोहा—सात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला इक अंग।
तुलै न ताहिं सकल मिलि, जो सुख लव सत्संग॥
(रामायण)

जैसे सत्संग से अपार सुख मिलता है, तैसे कुसंगत करने से अपार दुःख भी मिलता है। प्रत्यक्ष्य है, चोर बदमाश एवं व्यभिचारियों की संगत करने से अच्छे मनुष्यों के भी दाग लगता है और उनके साथ में बड़ा कष्ट उठाना पड़ाता

है। अतएव कुसंग का त्याग और सत्संग में अनुराग करना चाहिये।

शिक्षासार—मनुष्य को सदैव सत्संग करना चाहिये।

१०६—(साखी—२१०)

आज काल दिन कइक में, स्थिर नाहिं शरीर।
कहहिं कबीर कस राखिहो, काँचे बासन नीर॥

तुम्हारा शरीर स्थिर नहीं है, आज कल या कइक अर्थात् कुछ दिन में अवश्य नाश होगा। सद्गुरु श्रीकबीर-साहेब कहते हैं—मिट्टी के कच्चे बर्तन में जल कैसे रखोगे? ॥ २१० ॥

व्याख्या—यह काया बिल्कुल नाशवान् है, इसका कुछ भी आशा-भरोसा नहीं किया जा सकता है। आज-कल में यह काल के गाल में अवश्य चला जायगा। यदि आज-कल में यह नहीं नाश हुआ, तो दश-पाँच दिन में या कुछ दिनों में तो अवश्य छूट जायगा। मिट्टी के कच्चे घड़े में यदि जल भर दिया जाय, तो वह तुरन्त गल जाता है। इसी प्रकार इस कच्ची काया का बहुत शीघ्र अन्त हो जाता है। समय जाते विलम्ब नहीं लगता। एक दिन जब कल्प का भी अन्त हो जाता है, तब इस अल्प कालीन जीवन लीला का क्या ठिकाना है? फिर भी मनुष्य चेत नहीं करता, भर्तृहरि जी वैराग्य शतक में कहते हैं—

छप्पय—

उदय अस्त रवि होत आयु को छीन करत नित ।
गृह धन्धे के माहि समय बीतत अजान चित ॥
आँखिन देखत जन्म-जरा अरु विपति मरण नित ।
तऊ डरत नहिं नेक शंकहू करत न कछु चित ॥
जग जीव मोह मदिरा पिये, छाके फिरत प्रमाद में ।
गिर परत उठत फिर-फिर गिरत, विषय वासना स्वाद में ॥

शब्द—

भजन कब करिहो जनम सिरान ।
गर्भवास में बहु दुख पायो, बाहर आय भुलान ।
बालापन तो खेल गँवायो, तरुनाई अभिमान ॥
वृद्ध भये तन काँपन लाग्यो, शिर धुनि धुनि पछितान ।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, जम के हाथ बिकान ॥

शिक्षासार—मृत्यु को निकट जानकर अपना कल्याण-साधन तीव्र करना चाहिये ।

१०७—(साखी—२११)

बहु बन्धन से बाँधिया, एक बिचारा जीव ।
की बल छूटै आपने, की रे छुड़ावै पीव ॥

एक जीव बिचारा बहुत बन्धनों में बँधा है । या तो यह अपने बल से मुक्त हो जाय, या तो पीव अर्थात् सद्गुरु देव इसके जाल को परखा कर छुड़ा दें ॥ २११ ॥

व्याख्या—खानी और वाणी के अपार जालों से यह जीव अत्यन्त बन्धमान है। लोक-वेद, वर्ण-आश्रम, कर्म-धर्म-स्त्री-पुत्र, धन-घर, विद्या-पद, शरीर-पञ्चविषय, देवी-देवता, भूत-प्रेत, परोक्ष भास, मिश्रितवाद, जड़वाद, नास्तिकवाद और कामादि अनेक भव-बन्धनों में यह बिचारा जीव जकड़ा है। विषय और अनुमान-कल्पना के अनेक फन्दे इस पर पड़े हैं। इसके यह सब बन्धन तभी छूट जायँगे, कि या तो इसमें अनेक नर-जन्मों के विशेष शुभ संस्कारों का उदय होकर यह स्वयं अपने बन्धनों को परख लेगा, या तो इसे पारखी सद्गुरु मिल जायँगे और इसे यथार्थ पारख बोध दे देंगे। सद्गुरु द्वारा यथार्थ बोध होकर मोक्ष होना तो सरल है, परन्तु अन्य गुरु की अपेक्षा-रहित अपने आप का स्वयं शोधन करके बन्धनों से मुक्त होना—यह सरल काम नहीं है। यह घटना सद्गुरु श्री कबीरसाहेब में घटी थी। वे सब के नाना प्रकार के कल्पित मत-पथ-सम्प्रदायों को देखकर सबकी कसरों को हटा कर यथार्थ अपने पारख चैतन्य स्वरूप का शोधन किये थे। वे किसी अन्य गुरु की आवश्यकता नहीं रखे। जो लोग कहते हैं कि श्रीकबीर साहेब रामानन्द जी के शिष्य थे। यह असत्य बात है। हाँ ! ऐसा हो सकता है कि जब तक यथार्थ शोधन न हुआ रहा होगा, तब तक रामान्द जी के समाज में वे रहते रहे होंगे। क्योंकि जो अकाट्य पारख सिद्धान्त श्रीकबीरसाहेब का है, उसका

एक अंश भी रामानन्द जी को ज्ञान न था। फिर वे श्रीकबीर साहेब के गुरु कैसे हो सकते हैं? साहेब का मुख्य ग्रन्थ 'बीजक' माना जाता है। परन्तु बीजक में आपने किसी की वन्दना नहीं की है। बल्कि रामानन्द जी के प्रति आपने ऐसी बात अवश्य कही है कि—

रामानन्द राम रस माते। कहहिं कबीर हम कहि कहि थाके।

(बीजक शब्द ७७)

अर्थात्—'रामानन्द जी (स्वरूप राम को छोड़कर) कल्पित राम-रस में मते,साहेब कहते हैं—हम कहते-कहते थक गये, परन्तु वे हठ न छोड़े।'

यह समझ लेना चाहिये कि बीजक में जहाँ कहीं 'माते' पद का प्रयोग है, वह खण्डन प्रकरण है। जैसे—

'सन्तो मते मातु जन रंगी।''सबही मद माते कोई न जाग।' इत्यादि। पञ्चग्रन्थी में आया है—

देखि अनेक रीति अकुलाना। निज शोधन तब कियो सुजाना॥
ठहरि यथारथ पारख कीन्हा। लहत प्रकाश स्वतः पद चीन्हा॥
स्वतः दृष्टि जब जेहि भई भाई। सोई गुरुपद ठहर प्रखाई॥
पारख में ठहरे बुधि वन्ता। देखि दशा निज नाहिन हन्ता॥

सद्गुरु श्री विशाल साहेब द्वारा प्रमाणित श्री प्रेम साहेब का लेख है—

"(१) अखण्ड सुख की इच्छा करना,(२) दुःख में

कष्टित होना, (३) अनेक जन्मों के शुभ संस्कार समय पर उदय होना,(४) विषयों में सुख मानकर भोगते हुए बार-बार असंतुष्ट ही रह जाना, (५) मोक्ष की इच्छा करना, (६) अनेक मनुष्य तथा अन्य जन्तुओं के संग से अनेक प्रकार के ज्ञान का उत्पन्न होना, (७) स्वयं अपर प्रकाश। ये सात योग्यतायें जिस घट में एकत्र हुए, वे स्वयं जंगल में बूटी शोध लेने वत् स्वतः पारख पद का प्रकाश किये हैं।"

(मुमुक्षु-स्थिति १७ वीं शिक्षा)

सद्गुरु श्री विशाल साहेब और कहते हैं—

साखी—अबोध से होवे बोध है, जीव अबन्ध के हेत।
स्वयं गुरू ह्वै जात है, पाय योग्यता जेत॥
बोध मिलै जेहि और से, तेहि को और से भेष।
स्वयं बोध को प्राप्त जो, सो तो स्वयं सुवेष॥१०
झूठ इष्ट लखि जाहि जब, नहिं तेहि भेष सोहान।
सत्य प्रिये सिद्धान्त लखि, तेहि का भेष मिठान॥११

(सत्य-निष्ठा, गुरु-निर्णय)

शिक्षासार—उपर्युक्त सब योग्यता जिन महापुरुष में एकत्र हो जाती है। अन्य गुरु की अपेक्षा-रहित वे स्वयं बोध का शोधन करके मुक्त हो जाते हैं। ऐसे पुरुष श्री कबीर साहेब हो गये हैं। अन्य जिज्ञासुओं को सद्गुरु की शरण लेकर बन्धनों से रहित होकर बोध-निष्ठ होना चाहिये।

१०८—(साखी—२१२)

जीव मति मारो बापुरा, सबका एकै प्राण।
हत्या कबहुँ न छूटिहैं, जो कोटिन सुनो पुराण॥

बेचारे प्राणियों को मत मारो, सब का प्राण एक समान है। जीव-हत्या का पाप कभी नहीं छूट सकता, चाहे करोड़ों पुराण सुन डालो ॥२१२॥

व्याख्या—मनुष्य, पिण्डज, अण्डज और उष्मज—इन चार खानि के किसी भी प्राणी को भरसक, जान बूझ कर मत मारो। क्योंकि अज्ञानता वश दुःखरूपी काया धारण करके यह जीव बापुरा अर्थात् अत्यन्त लाचार एवं विवश हो गया है। फिर दुखी को और दुखाना कितनी नादानी है? इसके अतिरिक्त यह भी समझो कि जितने चलते-फिरते प्राणी हैं, सब में ऐक-सा प्राण चलता है, अतः सबको दुःख होता है। फिर जब हम दुःख नहीं चाहते, तो अपने भाई रूप दूसरे प्राणी को दुःख क्यों देते हैं? तीसरे यह समझना चाहिये कि चाहे कोई करोड़ों पुराण सुने या यज्ञ-हवन तथा तीर्थ करे, परन्तु जीव-हत्या का फल बिना भोगे छुटकारा नहीं है। (यहाँ बोधवान्-वैराग्यवान् के विषय में यह शंका नहीं की जा सकती कि "उनके यदि पूर्व भूल दशा के हिंसादि कर्म सञ्चित होंगे, तो उन्हें भी भोगना पड़ेगा।" बोधवान् के कोई सञ्चित बाधा नहीं कर सकते।)

शिक्षासार—जीव-हत्या करना बड़ा भारी पाप है, यह कभी भी नहीं करना चाहिये ।

१०९—(साखी—२१३)

जीव घात ना कीजिये, बहुरि लेत वे कान ।
तीरथ गये न बाँचि हो,जो कोटि हिरा देहु दान ॥

जीव की हिंसा न करो, अन्यथा समय पाकर वे तुम से कान नाम बदला लेंगे । चाहे तीर्थ करो,चाहे करोड़ों हीरा दान दो, परन्तु जीव-हिंसा का बदला बिना दिये छुट्टी न पाओगे ॥ २१३ ॥

व्याख्या—जो लोग मनुष्य, पशु, पक्षी आदि किसी भी चलते-फिरते प्राणी को मारते हैं,उन्हें समझ लेना चाहिये कि उसका बदला उन्हें अवश्य देना पड़ेगा । जितना वे दूसरे को दुःख देंगे, उससे अधिक वे आज या अन्य-अन्य देह धर कर दुखाये जायँगे। कोई चाहे कि हम जीव-हिंसा कियाकरें और तीर्थ-भ्रमण एवं द्रव्य-दानादि करके उसके पाप से छूट जायँ, तो यह उनकी महान भूल है। जीव-हिंसा के परिणाम में अपने को बड़ा कष्ट मिलता है।

शिक्षासार—प्यारे मनुष्यो ! जीव हिंसा सर्वथा त्याग दो ।

११०—(साखी—२१४)

पानी ते अति पातला, धूँवा ते अति झीन ।

पवनहु ते उतावला, सो दोस्त कबीरन कीन ॥

जल से अत्यन्त पतला, धूँवा से अत्यन्त महीन, वायु से अत्यन्त वेगवान् जो मन है, उससे सब जीवों ने मित्रता किया है ॥ २१९ ॥

व्याख्या—ये पानी आदि का उदाहरण केवल एक अंश में दिया गया है। अन्यथा पानी, धूँवा और वायु तो पदार्थ हैं, मन तो कोई पदार्थ नहीं, केवल मनन मात्र है। अनादि से विषयासक्ति में पड़ा-पड़ा यह मन अत्यन्त वेगवान, चंचल और नीच हो गया है। यह मन हिंसा, अभक्ष्य-सेवन, व्यभिचार तथा विषयासक्ति आदि में ही लगा रहना चाहता है। इसी नीच मन से कबीरन अर्थात् अज्ञानी जीवों ने मित्रता की है। तो भला इनका कल्याण कैसे होगा ?

शिक्षासार—मन को परख कर उसके फन्दे से पृथक् रहो।

१११—(साखी—२२५)

सोना सज्जन साधु जन, टूटि जुरैं सौबार।
कुजन कुम्भ कुम्हार का, एकै धका दरार ॥

सोना, सज्जन और सन्त जन सौबार टूटकर भी मिलते रहते हैं। परन्तु दुष्ट और कुम्हार का घड़ा एक ही ठोकर में टूट जाने पर पुनः ज्यों-के-त्यों नहीं मिलते ॥२२५॥

व्याख्या—जैसे सोना को अनेक बार तोड़-तोड़ कर

पुनः सोहागा छोड़कर एवं आँच में गलाकर एक में मिलाया जाता है। तैसे यदि कारण वश सज्जन या साधुजन में कोई किसी से कुछ अन्तर-सा लोगों के देखने में आवे, तो वास्तव में समझना चाहिये कि उनके हृदय में राग-द्वेष नहीं होता, वे सौबार वियुक्त होकर भी मिलते रहते हैं। यदि व्यवहार में मिलते-से न दिखाई देते हों, तो भी उनके हृदय में ईर्ष्या-द्वेषादि नहीं होते। अल्पकाल के लिये सज्जन में चाहे कुछ राग-द्वेष की कसर भी हो जाय, तो भी वे पुनः आपस में मेल-मिलाप कर लेते हैं। गाँठ नहीं बाँधते (हठ-अहं नहीं रखते) और जल के तेज धारा में जैसे लाठी मारने से उसका चिह्न जल में नहीं पड़ता। तैसे विचारशील सन्तों के हृदय में तो राग-द्वेष कदापि बन ही नहीं सकते। यह पूर्ण विश्वास रखना चाहिये कि विवेकी सन्तों में राग-द्वेष का गन्ध भी नहीं होता। परन्तु दुष्ट लोग तो ऐसे हैं कि जैसे कुम्हार का घड़ा टूट जाने पर पुनः वैसे नहीं जुड़ता, तैसे वे दुष्ट जन पुनः यथार्थ रूप से नहीं मिलते। राग-द्वेष बनाये ही रह जाते हैं।

शिक्षासार—सन्त राग-द्वेष से सर्वथा रहित होते हैं, हमें भी राग-द्वेष-रहित होना चाहिये।

११२—(साखी—२२६)

काजर केरी कोठरी, बुड़ता है संसार।

बलिहारी तेहि पुरुष को, जो पैठि के निकरन हार ॥

अज्ञान की कोठरी रूप इस संसार में सब भूले जीव डूब रहे हैं। उस पुरुष की प्रशंसा है,जो इस कालिख रूप संसार में आकर और इससे निकल कर निर्विषयी हो जाता है ॥ २२६ ॥

व्याख्या—जैसे कज्जल से भरी हुई कोठरी में कोई घुस जाय और पुनः बिना दाग के निकल आवे, तो उसकी लोग बड़ी प्रशंसा करें। इसी प्रकार यह खानी-वाणी का पसारा जगत् कज्जल अर्थात् अज्ञान-दुर्गुणों का घेरा है। इसमें सब जीव डूब रहे हैं। परन्तु उस पुरुष का अत्यन्त गौरव है, जो ऐसे अज्ञान मय संसार में रहकर और इसके अज्ञान दुर्गुणों से मुक्त हो जाता है।

शिक्षासार—सत्संग-सद्ग्रन्थ और सद्विचार द्वारा मनुष्य अज्ञान-दुर्गुणों से अपना उद्धार करके मुक्त हो सकता है।

११३—(साखी—२२७)

काजर ही की कोठरी, काजर ही का कोट।
तोंदी कारी ना भई, रहा सो ओटहिं ओट ॥

यह शरीर रूपी कोठरी अज्ञान से भरी है, और संसार रूप कोट भी अज्ञान से पूर्ण है। परन्तु इसमें रहकर भी जिसका मन विकारी नहीं होता, और जीवन पर्यन्त विवेक-

विचार एवं गुरु-पारख के आधार-ही-आधार में रह जाता है—वह धन्य है ॥ २२७ ॥

व्याख्या—संसार के भ्रमिक और विषयासक्त नर-नारी जीव को हरक्षण वास्तविक ध्येय से भुला देने वाले हैं,संसार पाँचो विषयों से पूर्ण है। अपनी इन्द्रियाँ और अन्तःकरण विषय-वासनाओं से अनादि काल से भली भाँति अध्यासित हैं। विषयासक्ति वश काम,क्रोध, लोभ, मोह, भय,राग, द्वेष, ईर्ष्या, चंचलता, उद्विग्नता और हिंसादि नाना दुर्गुण-दुराचरणों का संस्कार अन्तःकरण में जमा है। इस प्रकार ऐसे महा विकट भुलावन वन रूप संसार-शरीर में निवास करके भी जो सदैव सत्संग, सद्ग्रन्थ-अध्ययन, सन्त-सेवा, गुरु-भक्ति, वाक्य-संयम, एकान्त-सेवन, विचार, विवेक,वैराग्यादि एवं पारख दृष्टि की दृढ़ धारणा के प्रयत्न पूर्वक अचल आश्रय लेकर रहता है और अपने मनको राग-द्वेषादि से कलुषित नहीं होने देता है। उसकी कोटिशः धन्यता है। वही संसार में पुरुष है,वही वीर,पराक्रमी,विज्ञानियों का भी विज्ञानी और शान्शाह छत्रपति है। जो मन-इन्द्रियाँ जीत लिया, उससे बड़ा कोई नहीं है। यहाँ तोंदी का अर्थ नाभि है और नाभि का अर्थ वृत्ति है, वृत्त कहते हैं मनको। अतएव प्रकारान्तर से तोंदी का अर्थ मन है।

शिक्षासार—सर्वाङ्ग साधनों को लेने से मनुष्य मन-इन्द्रियों के विकार से छूटकर मुक्त हो सकता है।

११४—(साखी—२३३)

समुझाये समुझै नहीं, पर हाथ आप बिकाय।
मैं खैंचत हौं आपको, चला सो यमपुर जाय॥

यह जीव समझाने से नहीं समझता, यह स्वयं पराये के हाथ में बिका जाता है। मैं अपनी (कल्याण-मार्ग की) ओर खींच रहा हूँ, परन्तु यह जीव यमपुर अर्थात् वासनाओं के घेरे में चला जा रहा है ॥२३३॥

व्याख्या—अधिकांश भूले जीवों के हृदय में विषयासक्ति तथा अभिमान इतना दृढ़ होगया है और इतनी मूढ़ता हो गयी है कि उन्हें कितनी भी स्पष्ट शैली युक्तज्ञान की शिक्षा दिया जाय, तो भी वे नहीं समझते। बल्कि विषय सुख हित बाम-बंचक और मन-वासनाओंके हाथ बिके जाते हैं। विवेकी साधु-गुरु इस जीव को कल्याण-मार्ग की ओर खींचते हैं। नाना प्रकार उपदेश देकर सुमार्ग में लगाते हैं। परन्तु यह अविवेकी मनुष्य गर्भवास के हेतु रूप मन के रेंच-पेंच में पड़ा हुआ बाम बंचक और वासनाओं के घेरे में धँसा जाता है।

शिक्षासार—सत्संग पाकर अपना उद्धार अवश्य करना चाहिये।

११५—(साखी—२३४)

नित खरसान लोहा घुन छूटे।

नित की गोष्ठि, माया मोह टूटे ॥

नित्य खरसान पर चढ़ाने से जैसे लोहे का मुर्चा (जंग) छूट जाता है और छूट कर पुनः नहीं जमता है। वैसे नित्य के सत्संग करने से माया का मोह नष्ट होता है ॥ २३४ ॥

व्याख्या—अनादि काल से अनन्त जन्मों के अनेक विषयों की वासनायें जीव के हृदय में दृढ़ हैं। जिससे जिव विवेक-हीन निष्तेज हो रहा है। परन्तु 'लोहा-खरसानवत्' नित्य के सत्संग करते रहने से सब माया की ममता एवं राग-द्वेष नष्ट होकर जीव शुद्ध हो जाता है।

शिक्षासार—साधक को नित्य सत्संग में लीन रहने की महान् आवश्यकता है।

११६—(साखी—२४०)

कैसो गति संसार की, ज्यों गाड़र की ठाट।
एक पड़ा जो गाड़ में, सबै गाड़ में जात ॥

संसारी जीवों की कैसी दशा है कि जैसे गड़रिया की भेड़ियों की। एक आगे वाली भेड़ी यदि गड्ढे में गिर पड़ी, तो उसके देखा-देखी पीछे वाली सब भेड़ियाँ गड्ढे में गिरती जाती हैं ॥ २४० ॥

व्याख्या—भेड़ियों का यह स्वभाव होता है कि आगे वाली भेड़ी यदि गड्ढे में गिर गयी, तो पीछे वाली भेड़ियाँ

भी उस गड्ढे में गिरती जायँगी। इसी प्रकार अज्ञानी संसारी जीव सब इतने विवेक-हीन हैं कि एक के पीछे एक कल्पना में गिरते जाते हैं।

दृष्टान्त—एक वेश्या मार्ग पकड़ कर जा रही थी। चलते-चलते उसे लघुशंका (पेशाब) लगी। चारों ओर मनुष्य थे। अतः उसने बीच मार्गमें बैठकर लघुशंका कर दिया और उठते ही उसपर ४-५ मुट्ठी धूल छोड़ दिया। पीछे कुछ लोग आ रहे थे। वेश्या को पाँच मुट्ठी धूल मार्ग में छोड़ते देखा। अतः वे लोग सोचने लगे यहाँ कोई देवी-देवता का स्थान है, हमें भी पाँच मुट्ठी धूल चढ़ानी चाहिये। अतः वे लोग भी पाँच-पाँच मुट्ठी धूल वहाँ उस मूत्र पर चढ़ाये। इस प्रकार पीछे के लोग जितने आते गये, देखा-देखी सब लोग पाँच-पाँच मुट्ठी धूल चढ़ाते गये। फिर तो चारों ओर वहाँ यह प्रचार हो गया कि अमुक गाँव के मार्ग में एक देवी जी निकली हैं, वहाँ पाँच मुट्ठी धूल चढ़ाई जाती है। इस प्रकार कुछ लोगों द्वारा धूल चढ़ाते-चढ़ाते वहाँ मार्ग में एक भिट्ठ हो गया। उस भिट्ठ पर एक सुन्दर मन्दिर बन गया और धूल पर सुन्दर वेदी रची गयी। वहाँ ओझा, सोखा, नाउत, बैगा और पण्डा-पण्डित रहने लगे। वहाँ लोग पुत्र-धन माँगने, रोग से छूटने के लिये आने लगे। कल्पित भूत-प्रेत और ब्रह्म-जिन्द झड़वाने-पकड़वाने आने लगे। सूअर, बकरे मुर्गे चढ़ने लगे, देवी-भागवत का

पाठ और हवन इत्यादि का पूरा वहाँ प्रपंच प्रसारा हो गया। विचार कीजिये वह देवस्थान था कि..............?

इसी प्रकार भूले लोग भूत-प्रेत, मरी-मशान और नाना कल्पित जड़ देवी-देव मान कर नाना गुरुओं के चक्कर में पड़कर माटी, पानी, आग, हवा, पीपल, नीम बरगद, तुलसी, अष्टधातु, कागज-गोबर, कबर-समाधि, ग्रन्थ, खड़ाऊँ, गद्दी आदि जड़-पदार्थों को पूजते और मानते हैं। ये लोग शून्य में हाथ उठाने वाले, जड़ पदार्थों के पुजारी चैतन्य के ज्ञान से हीन होकर बारम्बार अविवेक वश गर्भ-जन्मादि के संकटों को भोगते रहते हैं।

शिक्षासार—अन्ध परम्परा का त्याग करके और निष्पक्ष, निराभिमानता पूर्वक सत्य पर विवेक और पारखी सन्तों का सत्संग करना चाहिये।

११७—(साखी—२४२)

मारी मरे कुसंग की, केरा साथे बेर।
वै हालैं वै चीधरैं, विधिना संग निबेर॥

कुसंग-वश यह जीव उसी प्रकार अत्यन्त विषयासक्त-दुखी होता चला जाता है, जैसे बेर के साथ में केला। वायु से बेर हिलता है और केला के पत्ते फटते हैं, परन्तु हे कर्त्तव्यों का विधता मनुष्य! तू कुसंग त्याग कर सत्संग पूर्वक अपना कल्याण करले॥ २४२॥

व्याख्या—एक स्थान पर केला और बेर के वृक्ष जब लगे रहते हैं, तब वायु के चलने पर काँटा-युक्त बेर हिलता है, अतः केला के पत्ते फट-फट कर नष्ट होते हैं। इसी प्रकार बाम-वंचक और बन्धनदायी जहाँ तक वस्तु,प्राणी की संगत है। इन्हीं से जीव विषय-कल्पना रूपी बन्धनों में पड़ता और दुखी होता है। परन्तु संग-कुसंग धारण और शुभ-अशुभ कर्म आदि का विधाता यह मनुष्य जीव स्वयं है। चाहे कुसंग-कुकर्म करके अपने को उत्तरोत्तर दुःखों में डाले रहे और चाहे सुसंग-सुकर्मों को धारण कर अपना कल्याण करले। यह सब मनुष्य के अधीन है।

शिक्षासार—मनुष्य को चाहिये कि वह कुसंग-कुकर्मों को सर्वथा त्यागकर और सुसंग-सुकर्मों को धारण कर अपना शीघ्र कल्याण करले।

११८—(साखी—२४३)

केरा तबहि न चेतिया, जब ढिग लागी बेर।
अब के चेते क्या भया,जब काँटन लीन्हा घेर॥

जीव तभी नहीं सावधान हुआ, जबकि उसके पास कुसंग का आवरण होने लगा था। अब के पछिताने से क्या हुआ? जब कुसंग ने भली-भाँति आवरण करके दबा लिया॥ २४३॥

व्याख्या—जब केला के साथ कटेला बेर लगा था,

यदि उसी समय बेर उखाड़ दिया जाता, तो केले की हानि न होती। परन्तु जब बेर बड़ा होकर केले को चारों ओर से घेर लिया, तब केले की रक्षा कैसे हो ? यह दृष्टान्त एक अंग का है। मुख्य-भाव यह लेना है कि बाम-बंचकादि के कुसंगों का जब आवरण होने लगे, तभी मनुष्य को चेत जाना चाहिये। नहीं तो भ्रमिक-विषयासक्त स्त्री-पुरुषों की संगत से जब अपनी बुद्धि मैली हो जाती है। तब शीघ्र कुसंग का त्याग करना दुर्गम हो जाता है। यों तो मनुष्य में निश्चय-प्रयत्न की इतनी प्रबल शक्ति है, कि जब चाहे, तब कठिन-से-कठिन कुसंग-कुकर्म और कुबुद्धि को सर्वथा त्याग कर अपना शीघ्र उद्धार कर सकता है। तो भी कुसंग कुकर्म के पहले ही चेतना सर्वोत्तम है ; क्योंकि यदि कुसंग-कुकर्म में ही जीवन समाप्त करके अन्तिम वृद्धता (अत्यन्त-जरजरता) आने पर चेतता है, तो उसका कल्याण-साधन बनना बड़ा ही दुर्गम हो जाता है। कहा है—

साखी—"आछे दिन पाछे गये, कियो न गुरु सो हेत।
अब क्या चेतै मूढ़ तू, चिड़िया चुनि गयी खेत॥"

शिक्षासार—कुसंगत से अपने को शीघ्र छुड़ा लेना चाहिये। क्योंकि कुसंगत बहुत पतनकारी है।

११९—(साखी—२४५)

जाको सद्गुरु ना मिला, व्याकुल दहुँ दिश धाय।
आँखि न सूझै बावरा, घर जरै घूर बुताय॥

जिसे वैराग्यवान् विवेकी पारखी सद्गुरु नहीं मिले हैं, वह पागल के समान दशों दिशा में दौड़ता है। उस बावरे को आँख से दिखाता नहीं, जरता तो है घर और बुझाता है घूर ॥ २४५ ॥

व्याख्या—जब तक स्वरूप-परिचायक यथार्थ सद्गुरु नहीं मिलते, तब तक यह जीव चार वेद, छः शास्त्र तथा नाना वाणियों के और विषय-वासनाओं के हिलोरे में जहाँ-तहाँ भ्रमता-रहता है। जैसे किसी पागल और अन्धे के घर में आग लग जाय,तो वह घर को न बुझाकर घूरको बुझावे। इसी प्रकार विषयासक्त तथा कल्पना में पागल और विवेक-विचार रूपी नेत्र से अन्धे (अविवेकी) जीव की दशा है। आग तो लगी है उसके अन्तःकरण रूपी घर में और वह बुझाता है बाहर नाना कर्म-भर्म तीर्थ-व्रत एवं कल्पित जड़-देवादि को।

शिक्षासार—सच्चे सद्गुरु की शरण लेकर और बाहरी कल्पनाओं को त्याग कर तथा सन्त-सेवा धर्म-परोपकारादि करते हुए मनुष्य को विवेक-विचारादि द्वारा अपने अन्तःकरण की काम-कल्पनादि अग्नि को शान्त करना चाहिये।

१२०—(साखी—२४६)

बस्तू अन्तै खोजै अन्तै, क्यों कर आवै हाथ।
सज्जन सोई सराहिये, जो पारख राखै साथ॥

पदार्थ कहीं पृथक् हो और खोजा जाय कहीं पृथक्, फिर वह पदार्थ कैसे मिलेगा ? उसी सज्जन की प्रशंसा है, जो साथ में पारख रखता है ॥२४६॥

व्याख्या—जो अपना चैतन्य स्वरूप जीव है, उसमें स्थिति ही मनुष्य का अन्तिम-लक्ष्य है। वही यथार्थ वस्तु है। वह अपने हृदय में विराजमान् अपना स्वरूप ही है। अर्थात् वह चैतन्य मैं ही हूँ। इसप्रकार विवेक द्वारा अपने को न जानकर बाहर जड़-पदार्थोंमें जो यथार्थ स्वरूप को खोजता है। उसे यथार्थ स्वरूप-ज्ञान की प्राप्ति कैसे होगी ? अतः उसी विचारशील की महिमा है। जो साथ में परीक्षा-दृष्टि रखता है और विजाति भास-अध्यास त्याग कर स्वस्वरूप में ही दृढ़ स्थित होता है।

शिक्षासार—अपना पारख राम स्वरूप अपने घट ही में है, वही मैं हूँ। बाहर खोजने जाना नहीं है।

१२१—(साखी—२४८)

बाजन दे बाजन्तरी, तू कल कुकुही मत छेर।
तुझे बिरानी क्या परी, तू अपनी आप निबेर ॥

विवादियों को विवाद करने दो, कलह का कूक भर कर लड़ने वाले झगड़ालुओं से तू छेड़कानी मत करे। दूसरे को जीतने की तुम्हें चिन्ता क्यों है ? तू अपने आप के बन्धनों का विवेक पूर्वक त्यागकर ॥२४८॥

व्याख्या—ग्रन्थकर्ता यहाँ साधकों को निर्विवादी, शांत, साधन-रत रहने को संकेत करते हुए कहते हैं—जो मतों या अपनी बातों का पक्ष पकड़कर झगड़ा करने वाले हैं, उन लोगों को झगड़ा करने दो। तुम उस बीचमें मत पड़ो यहाँ तक कि विवादियों को छेड़ो तक मत। वे सामने आकर यदि गर्म नर्म तुम्हें सुनाने लगें, तो भी तुम मौन हो जाओ। देखो! मतवाद या तर्क करके सबको जीतने की चिन्ता से तुम्हें क्या प्रयोजन है? कभी भी ऐसा नहीं हो सकता कि सबका एक यथार्थ मत हो जाय। अतएव तुम्हारा कर्तव्य है कि वाद-विवाद में अपने रत्न समय को न खर्च करके अपने कल्याण-साधन में खर्च करो।

शिक्षासार—मुक्ति-इच्छुक को निर्विवादी-शान्त होना बहुत आवश्यक है।

१२२—(साखी—२४८)

गावै कथै बिचारै नाहीं, अनजाने का दोहा।
कहहिं कबीर पारस परसे बिना, जस पाहन भीतर लोहा॥

दोहा-साखी और शब्दादि को गाते हैं और समाज में उसका व्याख्यान भी करते हैं, परन्तु उन आचरणों को विचार करके धारण नहीं करते, तो अनजाने के समान ही रह जाते हैं। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—पारस के स्पर्श बिना जैसे पत्थर के भीतर लोहा पड़ा रहे, तो भी सोना नहीं होता, तद्वत् ॥२४९॥

व्याख्या—जैसे अन्य पत्थरों के बीच में लोहा के पड़े रहने पर भी वह सोना नहीं होता। अथवा मुर्चा (जंग) से भलीभाँति आच्छादित लोहा यदि पारस-पत्थर के बीच ही में पड़ा रहे, तो भी वह लोहा मुर्चा के कारण पारस में[1] स्पर्श न होने से सोना नहीं होता। तैसे ही साखी-शब्द, छन्द-प्रबन्ध को गाते-कथते हुए भी जब तक उसके यथार्थ रहस्य को हृदय में विचार पूर्वक नहीं धारण करेगा, तब तक वह अनजाने अर्थात् मूर्ख के समान ही दुःखों का पात्र बना रहेगा।

शिक्षासार—केवल कथनी से कल्याण नहीं होता। कथनी से अधिक आचरण की आवश्यकता है।

१२३—(साखी—२५५)

ज्ञान रतन की कोठरी, चुम्बक दीन्हों ताल।
पारखी आगे खोलिये, कुञ्जी बचन रसाल॥

ज्ञान-रत्न के अन्तःकरण-कोठरी में विचार और वाक्य-संयम रूप चुम्बक एवं दृढ़ ताला विवेकवान् लगा लेते हैं। उस ताले को मीठे वचन रूप कुञ्जी से किसी ज्ञान-रत्न के पारखी के आगे खोलते हैं॥२५४॥

व्याख्या—विवेकवान् सन्तों के अन्तःकरण रूप कोठरी

१—पारस पत्थर कल्पित प्रतीत होता है। यहाँ केवल सिद्धान्त से प्रयोजन है।

में उत्तम-उत्तम ज्ञान रूप रत्न भरे हैं। और उस अन्तःकरण-कोठरी में विचार और वाक्य-संयम का वे मजबूत ताला लगाये रहते हैं। तात्पर्य यह है कि अनधिकारी (कुपात्र) के सामने विवेकी जन अपना बहु-मूल्य ज्ञान-रत्न नहीं खोलते, जब कोई उनके उत्तम ान-रत्नों को परखने वाला परीक्षक मिलता है, तभी वे मीठे वचन रूप कुञ्जी से अपने अन्तःकरण कोठरी के विचार और वाक्य-संयम रूप ताला को खोलकर ज्ञान-रत्न दिखला देते हैं—अधिकारी को मीठे वचनों में भली भाँति ज्ञानोपदेश कर देते हैं।

शिक्षासार—विवेकी जन अधिकारी को ही शिक्षा देते हैं, कहा है—

दोहा—की मुख पट दीन्हें रहें, यथा अर्थ भाषंत।
तुलसी यह संसार में, सो विचार युत संत॥

१२४—(साखी—२५६)

सकलो दुर्मति दूर करु, अच्छा जन्म बनाव।
काग गौन गति छाड़ि के, हंस गौन चलि आव॥

सब दुर्बुद्धि त्याग करके अपने उत्तम नर-जन्म का सुधार करलो। काक के कुबुद्धि-मार्ग को त्याग कर हंस-आचरण द्वारा अपने कल्याण-पद पर आकर स्थित हो जाओ॥२५६॥

व्याख्या—परोक्ष-कर्ता, मिश्रतवाद, जड़वाद, नास्तिकवाद, विषयासक्ति, काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, मदमा-

नादि रूप सम्पूर्ण दुर्बुद्धि को सर्वथा त्याग करके और कल्याण का साधन करके अपने उत्तम नर-जन्म को सफल बना लेना चाहिये। हिंसा, अभक्ष्य-भक्षण, मद्यपान, चोरी विषयासक्ति आदि काक-कुबुद्धि का आचरण है। इसको बिल्कुल त्याग देना चाहिये और दया, शील, सत्य, धैर्य, विचार, विवेक, वैराग्य, भक्ति, समता, क्षमा, सन्तोष, अन्तर-बाहर की पवित्रता, सरलता आदि हंस-आचरण हैं। इसे धारण करके मनुष्य को कल्याण का भागी होना चाहिये।

शिक्षासार—अज्ञान, दुर्गुण एवं दुराचरणों को छोड़ कर तथा यथार्थ ज्ञान, सद्गुण और सदाचरणों को धारण कर कल्याण प्राप्त करना चाहिये। यही मानव-जन्म की सफलता है।

१२५—(साखी—२२७)

जैसी कहै करै जो तैसी, राग द्वेष निरुवारे।
तामें घटै बढ़ै रतियो नहिं, यहि विधि आप सँवारे॥

जैसा उत्तम कथन करे वैसा ही आचरण रखे, और मोह-वैर को नष्ट करदे। इस आचरण में रत्ती भर कम-विशेष न होने दे, इस प्रकार अपना कल्याण करे॥ २५७॥

व्याख्या—दुःख न चाहने वाले मुमुक्षु को चाहिये कि जैसे सद्गुरु-सन्त जन उपदेश करें अथवा विवेक-वैराग्यादि

का जिस प्रकार वह स्वयं उत्तम कथन करता होवे। उसी प्रकार उत्तम आचरणों को धारण करे। अनादि काल से विषयासक्ति,सुखाध्यास और देहाभिमान पुष्ट होने से राग-द्वेष हृदय में दृढ़ रूप से गड़े हैं। अतः इस जीव को जहाँ मन-इन्द्रियों का सुख मिलता है, वहाँ राग करता है और जहाँ दुःख एवं प्रतिकूलता मिलती है, वहाँ द्वेष करता है। वर्तमान सम्बन्ध में भी राग-द्वेष बनने का सम्भव रहता है। अतः साधक को चाहिये कि अत्यन्त सावधानता पूर्वक राग-द्वेष रूप शत्रुओं को दमन कर दे और इनसे सदैव सावधान रहे। स्थिति-आचरण की कक्षा (मर्यादा) से किञ्चन्मात्र भी इधर-उधर न जाकर अपने मोक्ष-कर्तव्य को पूर्ण करे।

शिक्षासार—आचरण-रहस्य धारण करने की बड़ी आवश्यकता है।

१२६—(साखी—२६२)

हौं जाना कुल हंस हो, ताते कीन्हा संग।
जो जानत बगु बावरा, छुवै न देतेउँ अँग॥

हे चेतन मनुष्य ! मैं जानता हूँ कि तुम सब हंस कुल के विवेकी हो, इसलिये तुम लोगों के प्रति ज्ञानोपदेश करने के लिये तुम लोगों को अपने संग में लिया है। यदि यह जानता कि तुम लोग बगु-बावरा (अविवेकी) हो, तो अंग-स्पर्श तक न होने देता, ॥२६२॥

व्याख्या—यह मनुष्य जीव हंस अर्थात् विवेकी है, इसमें स्वभाव से ही विवेचन-शक्ति है। इसीलिये साधु-गुरु इसे ज्ञानोपदेश देते हैं। यदि यह बकु-बावरा अर्थात् स्वभाव से अविवेकी होता, तो सद्गुरु-सन्तजन इसे ज्ञान का उपदेश क्यों देते ? हे हंस चेतन मनुष्य ! यदि अनादि से तेरे स्वरूप-भूल वश हृदय में विषयासक्ति है। तो वह भी सूर्य पर बादल ढक्कन न्याय तेरे ऊपर आवरण मात्र है, तेरे मुख्य स्वरूप में नहीं है। अतएव तू सब भूल-भ्रम और विषयासक्ति को नष्ट करके अपने शुद्ध दशा में आजा। अपने हंस स्वरूप का ध्यान कर।

शिक्षासार—मनुष्य-शरीर में आया हुआ चेतन स्वभाव से ही विवेचन-शक्ति-सम्पन्न है। इसे सत्संग करके उस विवेचन-शक्ति को शुद्ध और तीव्र कर लेना चाहिये।

१२७—(साखी—२६३)

गुणिया तो गुण ही कहै, निर्गुणिया गुणहिं घिनाय।
बैलहिं दीजै जायफर, क्या बूझै क्या खाय॥

सद्गुणी मनुष्य सदैव सद्गुण का ही वर्णन करता है, और सद्गुण-हीन मनुष्य सद्गुणों से घृणा करता है। बैलको यदि उत्तम सुगन्धित जायफल दिया जाय, तो वह क्या समझेगा और क्या खायेगा ? ॥२६३॥

व्याख्या—जो विचारशील हैं, जिनमें सद्गुण विरा-

जते हैं। वे सद्गुण को ही उत्तम बतलाते हैं और सद्गुण का ही आचरण करते हैं। परन्तु जो सद्गुण-हीन है, जिसमें विवेक-विचार नहीं हैं। वह सद्गुणों से घिनाता है। वह बैल के तुल्य है। जैसे बैल को जायफल दिया जाय, तो वह उसके गुण को क्या जानेगा और क्या खायेगा ? तैसे पशु-तुल्य जीव को यदि ज्ञान-चर्चा और सद्गुणों का वर्णन सुनाया जाय, तो वह न उसे यथार्थ समझता है और न धारण ही कर सकता है।

दृष्टान्त—दो-तीन भङ्गी एक नदी में मछली मारने गये। मछली मारकर लौटे जा रहे थे, इतने में जल बरसने लगा। सब दौड़े-दौड़े पासके राजा के फुलवारी में गये और एक वृक्ष के नीचे ठहर गये। फुलवारी में फूलों की अधिकता होने से फुलवारी सुगन्धी से भरी थी। भङ्गी जब वहाँ खड़े हुए, अधिक सुगन्धी आने से सब विकल हो गये और "भाई ! यहाँ तो बड़ी दुर्गन्धी आती है।" ऐसा कहकर जिसमें मछली बाँधते थे, उस कपड़े को सब लोगों ने अपने-अपने नाकों में लगा लिये। वहाँ के उपस्थित अन्य लोगों ने इन लोगों के चरित्र देखकर हँसने लगे और कहने लगे, कि देखो इन्हें फूलों की सुगन्धी तो दुर्गन्ध रूप भासती है और मछली के दुर्गन्धी से अत्यन्त वासित कपड़ा सुगन्ध युक्त लगता है। अहो क्या आश्चर्य है ?

इसी प्रकार मनुष्य आकार वाले अज्ञानी पशु-जीव को

दुर्गुण ही अच्छे लगते हैं, वह सद्गुणों से घिनाता है। परन्तु इसका परिणाम भी लोक-परलोक में बड़ा बुरा होता है।

शिक्षासार—मनुष्य को दुर्गुणों को त्यागकर सद्गुण-ग्राही होना चाहिये।

१२८—(साखी—२६८)

नारि कहावै पीव की, रहै और संग सोय।
जार मीत हृदया बसे, खसम खुशी क्यों होय॥

कोई नारी यदि पति की स्त्री कहलावे, परन्तु पराये पुरुष से व्यभिचार करे। तथा वही व्यभिचारी मित्र के प्रति उसके हृदय में प्रेम भी हरक्षण लगा रहे, तो उसका वास्तविक पति उस पर कैसे प्रसन्न होगा? ॥२६८॥

व्याख्या—उक्त दृष्टान्त का सिद्धान्त यह है कि पारखी सद्गुरु का कोई शिष्य भक्त कहलावे और नाना भूत-प्रेत देवी-देवता, परोक्ष-कर्ता, शून्य, व्यापक, मिश्रितवादकी उपासना करे। पारखी सद्गुरु की भक्ति-उपासना त्यागकर जड़ देवी-देवादि तथा भूत-प्रेत को पूजे और उसी का प्रेम मन में रखे तो उस शिष्य-भक्त के ऊपर सद्गुरु कैसे प्रसन्न होंगे? और उसको यथार्थ ज्ञान प्राप्त होकर कल्याण की प्राप्ति भी कैसे होगी?

शिक्षासार—भूत-प्रेत, देवी-देवादि सबकी कल्पना त्याग कर केवल सद्गुरु-सन्त की सेवा-उपासना करनी चाहिये।

१२९—(साखी—२७६)

बोल तो अमोल है, जो कोइ बोलै जान ।
हिये तराजू तौलि के, तब मुख बाहर आन ॥

बातें तो ऐसी-ऐसी होती हैं जिसका कोई मूल्य नहीं चुका सकता, परन्तु यदि कोई बात बोलने का नियम जाने तो । वह नियम यह है कि हृदय रूपी तराजू पर भली भाँति तौल कर, तब बात को मुख से बाहर निकालनी चाहिये ॥

व्याख्या—"प्राणी तो जिभ्या डिगा, छिन छिन बोल कुबोल । मन के घाले भरमत फिरे, कालहि देत हिण्डोल ॥" के न्यायानुसार चञ्चल मनुष्य अपनी जीभ को सदैव चञ्चल बनाये रहता है । वह बिना काम के अधिक-से-अधिक फक-फक हरक्षण बोला करता है । इसीलिये उसकी बात की लोग मर्यादा नहीं मानते, कोई मूल्य नहीं समझते । यदि वह अपने हृदय में भलीभाँति विचार-विचार कर वचन बोले, तो उसके वचन की लोग बड़ी मर्यादा करें । उसको भी सभ्य समझें । देखिये ! दो आँख, दो कान मिला करके चार हैं और जीभ एक है । अतः आँख-कान से चार बातें देख-सुनकर तब कहीं जीभ से एक वचन विचार पूर्वक बोलना चाहिये । कोई व्यक्ति यदि कोई मुख्य बात पूछे, तो तुरन्त उत्तर न देना चाहिये । तुरन्त उत्तर देने से प्रायः ठीक नहीं होता, उद्वेग पूर्वक या असत्य भाषण आदि हो

जाता है। अतः वहाँ पर चाहिये कि थोड़ा समय शान्त हो जाय और दो-चार स्मरणों को उठकर पच जाने देवे। जब शान्त-हृदय में बात को भलिभाँति विचार ले, तब मीठे और सत्य वचनों में उचित उत्तर दे। जिस समय हृदय में क्रोध, राग-द्वेष, इर्ष्या या विक्षेपता हो, हृदय किसी प्रकार चंचल हो, उस समय नहीं बोलना चाहिये। क्योंकि हृदय पराधीन (दुर्गुणों के वश) होने से अनुचित भाषण होगा। जिस समय व्यवहार या अधिक मनुष्यों के सम्बन्ध में रहे। उस समय भी कम-से-कम बोलना चाहिये। क्योंकि सम्बन्ध-दोष और व्यवहार करने से मन-इन्द्रियों में चञ्चलता रहती है। वहाँ यदि सम्हल-सम्हल कर बोल-चाल न रखे, तो शरीर इन्द्रियों की अनावश्यक क्रिया होगी। और मुख से हँसी-मखौल, कटु, निन्दा, चुगुली, असत्य राग-द्वेष कृत और व्यर्थ बातें मुख से बहुत निकल जायँगी। शीघ्रता पूर्वक अनुचित वचनों को बोल देने से पीछे पछताना पड़ता है। अतः प्रथम ही सावधान रहकर बोलना चाहिये। प्रमाद, विनोद और हँसी मखौल में वचनों की अधिक चञ्चलता होती है, इसका दृढ़ त्याग करना चाहिये।

शिक्षासार—शान्ति इच्छुक साधकों को वाक्य-संयम का दृढ़ अभ्यास करना अत्यन्त आवश्यक है। व्यर्थ-अनुचित वचनों का त्याग होकर वाक्य-संयम की सिद्धि तभी होगी, जब यह निश्चय बना लिय जायगा कि—जिसके

बिना नहीं चलेगा, मात्र उतना ही बोलूँगा-मुख्य आवश्कता से अधिक नहीं बोलूँगा। ये जीभ बड़ी हरामजादी है, इसको वश करना बहुत आवश्यक है।

१३०—(साखी—२७७)

करु बँहिया बल आपनी, छाड़ बिरानो आश।
जाके आँगन नदिया बहै, सो कस मरै पियास॥

अपने बाहुँ-बल का भरोसा करो, पराये की आशा छोड़ दो। जिसके आँगन में ही स्वच्छ, शीतल और मिष्ट जल युक्त नदी बहती है, वह प्यासा क्यों मरे? ॥ २७७ ॥

व्याख्या—मनुष्य को कोई भी काम करना हो, उसे अपने बाँहु-बल का भरोसा रखना चाहिये। पराये की आशा बिल्कुल छोड़ देना चाहिये। जो अपना काम पराये की आशा पर छोड़ देता है, उसका काम ठीक-ठीक नहीं होता और होता भी है, तो अधूरा या उल्टा-पल्टा। अपने कल्याण का कार्य तो दूसरे की आशा पर छोड़ा ही नहीं जा सकता। सद्गुरु-सन्तजन तो केवल मार्ग बतायेंगे, पुरुषार्थ करके चलना तो साधक को ही पड़ेगा। यद्यपि बिना पथ-प्रदर्शक-गुरु के साधक कर ही क्या सकता है? अतएव सद्गुरु-सन्तों का उपकार साधक के ऊपर अमित है। परन्तु पुरुषार्थ तो साधक को ही करना पड़ेगा। कहा है—

दोहा—एक वृक्ष दो पक्षी बैठे, एक गुरू यक चेला।

अपनी करनी गुरू उतरिंगे, अपनी करनी चेला ॥

जो लोग अपना विवेक-वैराग्यादि का सद्पुरुषार्थ त्याग कर कल्पित देवी-देवादि या परोक्ष कर्ता-भास के भरोसे रहते हैं। उनका कल्याण कभी भी नहीं हो सकता। अपने सद्पुरुषार्थ से ही मन-इन्द्रियों पर संयम, दुर्गुणों का त्याग और सद्गुणों का ग्रहण होकर स्वरूप-स्थिति होती है। किसी के आँगन में ही नदी हो और फिर भी वह प्यासा मरे, तो उसकी बड़ी मूर्खता है। इसी प्रकार मनुष्य को कल्याण सम्बन्धी साधन-सामग्री (स्वरूपज्ञान, सद्गुण, सदाचरणों) की प्राप्ति निकट सत्संग में सरलता पूर्वक हो सकती है। सत्संग रूपी गंगा उसके सामने ही बह रही है, उसे विवेकी-पारखी, सन्तों की खोज करके अपने जीवन को कृतार्थ कर लेना चाहिये। ऐसा उत्तम अवसर शीघ्र मिलना दुर्लभ है। किसलिये हम अपना कल्याण-साधन न करें ? जन्म-जन्म के संकटों से छूटने के लिये हमें चाहिये कि हम सब निर्बलता को त्याग कर अपने अखण्ड ज्ञान स्वरूप का बल स्मरण कर कल्याण-साधन के क्षेत्र में डट जायँ। इसी कर्तव्य में श्रेष्ठता, सुख और चतुरता है और सब व्यर्थ तुच्छ एवं दुःखप्रद हैं।

मनुष्य को अपने व्यावहारिक कामों में भी दूसरे के भरोसे पर नहीं रहना चाहिये। इसके विषय में एक छोटा-सा कल्पित दृष्टान्त देते हैं, मनन कीजिये—

दृष्टान्त—एक किसान अपने पुत्र को साथ लिये हुए धान के खेत में टहलने गया। देखा तो धान पक गया है। अतः पिता ने पुत्र से कहा कि आज जाकर मजदूरों को कह दो कि कल आकर इस धान को काट कर खलिहान(बियारा) में उठा ले चलें। उस खेत में अपने बाल-बच्चों के सहित एक चूहा रहता था। बच्चों ने चूहे से कहा—पिता जी! इस खेत से अब निकल चलिये, नहीं तो कल धान कट जाने पर हम लोगों को भी वे सब पकड़ कर मार डालेंगे। चूहे ने कहा—घबराओ मत, अभी कल खेत नहीं कट सकता। क्योंकि किसान अभी मजदूरों के भरोसे पर है। दो दिन पर किसान पुनः खेतमें आया तो देखा धान ज्यों-का-त्यों खड़ा है। इसलिये पुनः पुत्र से कहा—क्यों जी! तू ने मजदूरों को धान काटने के लिये नहीं कहा था? पुत्र ने कहा—मैं कहा था, परन्तु मजदूरों को छुट्टी न रहने से नहीं आये। किसान ने कहा—अच्छा, आज जाकर अपने चाचा के यहाँ कह दो कि कल आकर हमारा धान कटा लें, तब उनका भी कोई काम समय से करा लिया जायगा। अब तो चूहे के बच्चों ने कहा—पिता जी! अब इस खेत से भाग चलो, अब अवश्य इसका खेत कल कट जायगा। चूहे ने कहा—तुम अभी मत घबराओ। अभी वह दूसरे के भरोसे पर है, अभी उसका खेत नहीं कट सकता है। दो दिन के पश्चात् किसान पुनः खेत में आया, तो धान

ज्यों-का-त्यों खड़ा है। किसान ने पुनः पुत्र से पूछा। पुत्र ने बतलाया—चाचा यहाँ कहे थे, परन्तु उन्हें भी अपना धान काटना था। इसलिये नहीं आये। किसान ने कहा—अच्छा भाई! कल तुमही इस धान को काट डालो। चूहे के बच्चों ने पुनःचूहे से खेत से चले चलने के लिये कहा। परन्तु चूहे ने पुनः वही बात कहा कि अभी वह पुत्र के भरोसे है, अतः कल भी उसका खेत नहीं कट सकता है। दो दिन के पश्चात् पुनः किसान आया, तो धान वैसे ही खेत में खड़ा था। किसान ने कहा—क्योंजी! तू कल धान नहीं काटा? पुत्र ने कहा—मैं अकेले इतने बड़े खेत के धान को कैसे काट सकता था। किसान ने कहा—अच्छा! अब मैं स्वयं इसे काट डालूँगा। इतना सुनकर किसान के चले जाने पर चूहे ने अपने बच्चों से कहा—अच्छा, अब इस खेत से आज भाग चलो। क्योंकि अब किसान दूसरे की आशा-भरोसा छोड़कर स्वयं कल धान काटने को कहा है। अतः अब कल धान अवश्य कट जायगा। ऐसा कहकर बाल-बच्चों-सहित चूहा उस खेत से भाग गया। और दूसरे दिन आकर किसान खेत के सारे धान को काट कर उठा भी ले गया।

यह दृष्टान्त कल्पित है, क्योंकि चूहा मनुष्य के समान नहीं बोल सकते। यहाँ सिद्धान्त में यह लेना है कि जबतक मनुष्य दूसरे की आशा-भरोसा पर अपना काम छोड़े रहता

है, तब तक उसका काम नहीं होता है। अपना काम अपने हाथ से करने से ही पूर्ण होता है। साधक को तो पराये की आशा सर्वथा त्यागकर स्वावलम्बी होना महान् आवश्यक है सभी वस्तु-व्यक्ति से सर्वथा नैराश्य दृढ़ स्वावलम्बी ही अपना उद्धार कर सकता है।

शिक्षासार—पराये की आशा त्याग कर अपना व्यवहार-परमार्थ स्वयं करना चाहिये।

शब्द—

हमारे मन अपनो काज सुधारो।
घर धन नारि पुत्र तन यौवन, इक दिन होहिं परारो॥१॥
अपनी करनी पार उतरनी, नहिं कोइ अन्य सहारो ॥२॥
भोग-रोग तजि योग सम्हारो, भजन करन को वारो॥३॥
कह अभिलाष चतुर सोई जग में, जो निज बन्ध निवारो॥४॥

१३१—(साखी—२७८)

वो तो वैसा ही हुआ, तू मति होहु अयान।
वो निर्गुणिया तैं गुणवन्ता, मत एकहिं में सान॥

वह तो अज्ञानी ही है, तुम भी उसके साथ अज्ञानी मत बनो। क्योंकि वह सद्गुण-रहित है और तुम सद्गुणी हो, दोनों को एक में मत सानो॥ २७८॥

व्याख्या—किसी को अपने ऊपर अपराध करते देखकर तुम भी उसके प्रति अपराध न करो। "हनी को हना, पाप

दोष न गना।" इस अज्ञान मय सिद्धान्त को छोड़ दो। तुम्हें यदि कोई गाली दे, कटु कहे तथा गर्म-नर्म सुनावे या तुम्हारे धन, जन, मान आदि की अधिक हानि करे, तो तुम भी वैसे न करो। क्योंकि यदि वैसे तुम भी करने लगोगे। तब तो उसी अज्ञानी के समान तुम भी हो जाओगे। एक कुत्ता ने भूँका दूसरा भी भूँकने लगा और दोनों में लड़ाई हो गयी। फिर उसमें मनुष्यता किसी में न रह गयी। देखो वह दुर्गुणी होने से तुम्हारे ऊपर घात किया, और जब तुम भी उस पर घात करने लगे, तब तुम भी उसी के समान दुर्गुणी सिद्ध हो गये। अतएव वह जो तुम्हें अपने मन, वाणी और कर्म से दुःख देता है, तो वह दुर्गुणी एवं अज्ञानी है और तुम सद्‌गुणी तथा ज्ञानी हो। अतः उसी के समान तुम न बन जाओ। बच्चे के हानि करने पर कोई उसके ऊपर क्रोध करता है? कोई नहीं। इसी प्रकार जो तुम्हें हानि पहुँचाता है, वह अवश्य बच्चे के समान नादान है। यदि नादान न होता, तो ऐसा पाप क्यों करता वह तो दूसरे को कष्ट पहुँचाकर अपना स्वयं लोक-परलोक बिगाड़ता है। अतः नादान होने से वह क्षमा का पात्र है। अथवा यह भी सोचना चाहिये कि मेरे से भी जब कभी भूल होती है, तब मैं भी अन्य से क्षमा चाहता हूँ, अतः मुझे भी अन्य के प्रति क्षमा करना चाहिये। यह भली-भाँति सोच लेना चाहिये कि यदि अपराध का बदला लेने

से लाभ दीखे, तो भी लाभ नहीं है। बल्कि वास्तव में महान हानि है और क्षमा करने से यदि हानि दीखे, तो भी समझना चाहिये कि क्षमा करने से अपनी हानि नहीं होगी। बल्कि वास्तव में लाभ ही होगा। क्षमा न धारण करने से जो दुर्दशा संसार में क्रोधियों की होती है, वह प्रत्यक्ष है।

शिक्षासार—

दोहा—क्षमा बड़ेन को चाहिये, छोटे को उत्पात।
क्या विष्णू को घट गयी, भृगु ने मारी लात॥
गम समान भोजन नहीं, जो कोइ गम को खाय।
अम्बरीष गम खाइया, दुर्वासा बिललाय॥

१३२—(साखी—२८०)

साधू होना चाहिये, पक्का होय के खेल।
कच्ची सरसो पेरि के, खरी भया न तेल॥

दयादि पक्के सद्गुणों को धारण करके सच्चा साधु होना चाहिये। अन्यथा जैसे कच्ची सरसो पेरने से न तेल होता और न खरी होती है। तैसे साधु-गुण-रहित केवल साधु का भेष मात्र धरने से न इधर के रहते न उधर के रहते ॥२८०॥

व्याख्या—सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब का यह महावाक्य है कि 'साधु होना चाहिये।' परन्तु किस प्रकार होना चाहिये? 'पक्का हो करके' जो मुमुक्षु पूर्ण विरक्ति लेवें, उन्हें चाहिये वे स्त्री-विषयासक्ति, गृह-कुटुम्ब, नात-गात, सगा,

सम्बन्ध, गाँव-देश, धन-जमीन, का बिल्कुल सदा के लिये त्याग करके वैराग्यशील विवेकी सद्गुरु की शरण में आजायँ। फिर कभी भी पूर्व कुटुम्ब, धन, घर आदि की ओर मोह-ममता न बढ़ावें। बल्कि वहाँ से विषवत् उपरामता रखें और काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, मद, मान, ईर्ष्या, कपट, टेढ़ापन आदि सर्वथा त्याग करके शम, दम, दया, शील, क्षमा, सत्य, धैर्य, विचार, ब्रह्मचर्य, गुरु-भक्ति, सन्त-सेवा, विवेक, वैराग्यादि साधनों में रात-दिन रत रहें। इस प्रकार जीवन पर्यन्त यदि ऐसा न करके जो लोग नकल मात्र का केवल साधु का भेष पहन लिये और घर, धन, जमीन, कुटुम्ब, स्त्री, पुत्रादि का मोह नहीं छूटा तथा गुरु-भक्ति, गुरु-आज्ञा पालन, सन्त-सेवा, शम, दम, विवेक-वैराग्य, सहन, क्षमादि सद्गुण युक्त साधन रत नहीं रह पाते। अर्थात् उनका साधन-भक्ति में मन न लग कर गृह-कुटुम्ब या भोगों में मन लगा है। तो वे उसी कच्ची सरसों के समान हुए जो न उससे तेल हुआ न खरी। तैसे न तो ये गृहस्थी में रह कर गृह-धर्म का पालन, भक्ति, सन्त-सेवा, दान परोपकारादि ही कर पाये और न तो इधर सत्संग, साधन तथा गुरु आज्ञा-पालन ही कर पाये। यथा—

"हलुये हुए न माड़े, दोनों दीन से गये पाँड़े।"
"इत कुल की करनी तजे, उत न भजे भगवान्।
तुलसी अधवर के भये, ज्यों बबूर को पान॥"

"दुविधा में दोनों गये, माया मिली न राम।" इत्यादि

शिक्षासार—सीघ्र साधु का भेष नहीं लेना चाहिये। ब्रह्मचर्य धारण करके बहुत दिन घर ही में साधन भक्ति करना चाहिये। गुरु के पास जाकर भी बहुत दिन तक ब्रह्मचारी रूप से रहना चाहिये, पूर्ण वैराग्य-बल प्राप्त होने पर ही साधु भेष लेना चाहिये। और जब साधुभेष लेवे, तब बिल्कुल संसार से विमुख होकर गुरु-आज्ञा-पालन और साधन-रत रहना चाहिये। अधजर सती के समान स्वांग रच कर अपनी हँसी नहीं करानी चाहिये। क्योंकि—

दोहा—सती लहर घड़ी एक है, शूर लहर घड़ी चार।
साधु लहर है जन्म भर, मरै विचार विचार॥

१३३—(साखी—२८१)

सिहों केरी खोलरी, मेढ़ा पैठा धाय।
वाणी ते पहिचानिये, शब्दहिं देत लखाय॥

मृतक-सिंह के चाम के खोलरी को किसी ने एक भेंड़ा को पहिना दिया। सिंह-चर्म के संयुक्त भेड़ा इधर-उधर दौड़ने लगा। (उसे देखकर और भयभीत होकर सब लोग भागने लगे, इतने में एक विचारशील ने कहा—अरे भाई! भागो मत) उसकी बोली से उसे पहचानो, उसका शब्द ही उसके स्वरूप को बतलाता है। (भें-भें बोलने से प्रतीत होता है कि भेंड़ा है) ॥ २८१ ॥

व्याख्या—ऊपर के दृष्टान्त का सिद्धान्त यह है कि सिंहवत् साधु-गुरु के भेष में भेड़ावत् विषयी पामर और नाना प्रकार के अज्ञानी मनुष्य भी घुस जाते हैं। और वे उत्तम साधु का भेप धारणकर भोले लोगों से पुजवाते हैं। परन्तु सज्जनों को चाहिये कि उनके आचरण और वाणी-वचन उनकी परीक्षा करें। उनके आचरण और वचन से उनका पता चल जायगा कि 'ये सच्चे साधु हैं कि कच्चे।' जो सच्चा होगा, वह माया त्यागी, सदाचारी, पूर्ण वैराग्य-वान् होगा और जो कच्चा होगा, वह मायासक्त दुर्व्यसनी, दुराचरण युक्त और रागी होगा।

इस साखी का दूसरा अर्थ यह भी है कि सिंह वत् मनुष्य आकार के खोलरी में पशु आचरण वाला मनुष्य भी पैठा है। उसके आचरण या वचन से उसे मनुष्य या पशु मानिये, क्योंकि उसके आचरण वचन से उसके मनुष्यता या पशुता का स्पष्टीकरण हो जायगा। यदि सच्चा मनुष्य होगा तो दया, शील, क्षमा, सत्य, धैर्य, विचार, अहिंसा, सन्तोष, शुद्धाहार को धारण करने वाला तथा सब प्रकार से शुद्धाचारी-परोपकारी होगा और उसी प्रकार उसके वचन भी हित-प्रिय होंगे। यदि मनुष्य की खोल में पशु होगा, तो हिंसकी, अभक्ष्य-सेवी, नशेबाज, व्यभिचारी, निर्दयी, निःशील, क्रूर, अधैर्य, अविचारी, तृष्णालु, परअपकारी तथा सब प्रकार दुष्टाचारी होगा और उसी प्रकार उसके

अहितकर बुरे वचन भी होंगे।

शिक्षासार—साधु-भेष में रहे हुए साधु या असाधु तथा मनुष्य के खोल में रहे हुए मनुष्य या पशु को उसके आचरण और वचन से उसकी परीक्षा करके असाधु और पशु-मानव का संग त्याग कर साधु या सज्जन-मनुष्य का संग करना चाहिये।

१३४-(साखी—२८२)

जेहि खोजत कल्पौ गया, घटहि माहि सो मूर।
बाढ़ी गर्भ गुमान ते, ताते परिगई दूर॥

जिस अपने वास्तविक ध्येय पूर्ति के लिये अपने से भिन्न कल्पना को खोजते-खोजते अनन्तों कल्प बीत गये। उन सब कल्पनाओं की जड़ अर्थात् सब की कल्पना करनेवाला अपना चेतन स्वरूप इस अपने शरीर ही में विराजमान है। परन्तु मद और मान के बढ़ जाने से अपना स्वरूप-ज्ञान दूर पड़ गया, अथवा अपने को छोड़कर दूर खोजने लगा॥२८२॥

व्याख्या—दुःखों से सर्वथा निवृत्ति, नित्य-स्थिति (मोक्ष) जीव का वास्तविक ध्येय है। इस ध्येय की पूर्ति के लिये भूल वश यह अपने अखण्ड चेतन स्वरूप को त्याग कर बाहर जड़-पदार्थों में या शून्य में विषय या कल्पित वस्तु को खोज रहा है। विषय देह के मद वश और मत, पथ, ग्रन्थों के मान वश पक्षपात करके निर्णय-सत्संग न

मान कर यह सपने से दूर विषय-कल्पनाओं में उत्तरोत्तर भटकता चला जा रहा है।

सिक्षासार—बाह्य विषय-कल्पना, परोक्ष-प्रत्यक्ष भास को हटा कर जब तक अपरोक्ष (स्वयं प्रत्यक्ष) स्वरूप पर दृष्टि न करेगा, तब तक जीव दुःखों में भटकता ही रहेगा।

१३५—(साखी—२८३)

दश द्वारे का पीजरा, तामें पक्षी पौन।
रहिबे को अचरज अहै, जात अचम्भौ कौन ॥

दश खुले द्वार शरीर रूपी पिजड़े में प्राणवायु रूपी पक्षी रहता है। इसके रहने में ही आश्चर्य है, चले जाने में क्या आश्चर्य है ॥२८३॥

व्याख्या—दो आँख, दो कान, दो नाक, मुख, गुदा और उपस्थ ये नौ द्वार बड़े-बड़े बिल्कुल खुले-खुले हैं और एक द्वार लोगों ने शिर के ऊपर तलवे में माना है। उसको मिला कर दश द्वार हुए। इस प्रकार दश या मुख्य नौ द्वार जिस शरीर में हरक्षण खुले रहते हैं। उस शरीर-पिंजड़े में यह प्राण पखेरू रहता है। यही बड़ा आश्चर्य है। उसके उड़ जाने में कौन-सा आश्चर्य है। जबकि सब द्वार खुले ही हैं। प्राण या श्वास,वायु रूप है। चेतन जीव उससे भिन्न है। क्योंकि प्राण का ग्रहण-त्याग करने वाला जीव उसका द्रष्टा है। अतः उससे अवश्य भिन्न रहेगा। शरीर छूटने पर

नाक से आता-जाता हुआ यह स्थूल प्राण तो वायु में मिल जाता है। परन्तु अन्य तत्त्वयुक्त विशेष वायु तत्त्व से निर्मित सूक्ष्म प्राण जिसे सूक्ष्म-शरीर या अतिवाहिक शरीर भी कहते हैं, जिसमें सब अध्यास, कर्मबीज निहित (स्थित) रहते हैं। वह चेतन के आधार में अनादि से रहा हुआ है। स्थूल-शरीर छूटते समय उसी का आधार लेकर अर्थात् सूक्ष्म-शरीर या सूक्ष्म प्राण वायु रूपी सवारी का अवलम्ब लेकर जीव खानियों में गमनागमन करता है।

शिक्षासार—शरीर के रहने में ही आश्चर्य है, शरीर के मृतक होने में आश्चर्य नहीं है। अतः क्षण-भंगुर शरीर की आशा छोड़ देनी चाहिये।

१३६—(साखी—२८४)

रामहि सुमिरे रण भिरै, फिरै और की गैल।
मानुष केरी खोलरी, ओढ़े फिरत है बैल॥

राम को भजते हैं और युद्ध करके प्राणियोंका वध करते हैं, अतः राम-भक्त कहलाकर अन्य बाम-मार्ग का आचरण धारण करते हैं। मानो मनुष्य का खोल बैल ओढ़े फिरते हैं॥ २८४॥

व्याख्या—जो लोग सर्वत्र राम मान कर उसको भजते भी हैं और लोगों से युद्ध करके जीवों का वध भी करते हैं। वे अपना मार्ग त्याग कर बाम (टेढ़े) मार्ग में जा रहे हैं।

क्योंकि जब राम सर्वत्र है, तब जिस प्राणी को मारा जाता है, क्या उसमें राम नहीं है ? फिर क्या भक्ति का यही रूप है कि एक ओर तो राम को भजना और दूसरी ओर राम का गला काटना ? कदापि नहीं। यदि कहिये न्याय पूर्वक युद्धकरते हुए ज्ञानी मुक्त हो जायगा। तो यह महान् अन्धेर और अज्ञानता का लक्षण है। विचारना चाहिये कि ज्ञानी का युद्ध करने का हेतु क्या है ? यदि वह क्षण-भङ्गुर-राज्य भोग की वासना नहीं त्यागा है,तो कौन ज्ञानी है ? ज्ञानी का जीवन-निर्वाह तो बिना युद्ध किये हो सकता है या निर्वाह न हो तो भी प्राण-त्याग करके भी अहिंसा-धर्म का पालन ज्ञानी करते हैं। गीता-रामायण आदि ग्रन्थों में काम, क्रोध और लोभ को नर्क का द्वार बतलाया गया है। और बिना क्रोध या प्रतिहिंसा की भावना हुए युद्ध या हिंसा की ही नहीं जा सकती। अतः किसी प्रकार भी भरसक और जान-बूझ कर हिंसा करने वाला और मैथुन करने वाला मनुष्य ज्ञानी नहीं कहा जा सकता। बल्कि वह तो पूरा अज्ञानी है। कामी और क्रोधी का मोक्ष नहीं होता।

अपने-अपने वर्ण-धर्म को पालन करने मात्र से जो मोक्ष मानते हैं, वे बड़ी भूल में हैं। वर्ण-धर्म तो एक साधारण-धर्म है। जब तक विषय-हिंसा और दुराचरण का त्याग हो कर स्वरूपज्ञान एवं स्वरूपस्थिति न होगी। तब तक मोक्ष

करोड़ों कोस दूर है। कितने ही वाच्य-ज्ञानी विषय भोगते हुए अपने को अलिप्त बतला कर और युद्ध आदि में जीव-वध करके अपने को कल्याण रूप बतलाने की भूल प्रकट करते हैं। देव, औतार आदि कुछ भी संज्ञा देकर इन्द्र-कृष्णादि किसी भी मनुष्य को कहा जाय। हिंसा-विषय परोक्ष-कल्पना और दुराचार त्याग कर स्वरूपज्ञान पूर्वक निर्वासनिक स्थिति बिना मोक्ष किसी का भी नहीं हो सकता। इसी प्रकार मुसलमान भी जर्रे-जर्रे में खुदा मान कर और फिर भी जीव-वध करते हैं। इधर खुदा को नमस्कार करते हैं, उधर खुदा से पूर्ण जीवों का वध करते हैं। धन्य है इनके खुदा की इबादत और मानना। इसी प्रकार संसार में देखा जाता है, बहुत लोग राम या खुदा को सर्वत्र मानते हैं। परन्तु फिर भी जीव वध, चोरी, घूसखोरी, बेईमानी, ठगी, धोखेबाजी, असत्य-भाषण आदि करते रहते हैं। इन सब पापों को वे किससे छिपा कर करते हैं? यदि ईश्वर या खुदा से छिपावें तो व्यर्थ है (छिप नहीं सकता) क्योंकि उसे सर्वत्र सर्वान्तर्यामी मानते हैं। इससे प्रतीत होता है कि इन लोगों को मनुष्यों का डर लगा रहता है। अतः मनुष्य से छिपाते भी हैं। इसलिये जो दुराचरण करता है, उसे कभी नहीं कहा जा सकता कि वह राम या खुदा को मानता है। और जो सदाचारी है, वह जानो राम-खुदा आदि सबको जान-मान लिया। अतएव अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह,

अस्तेय, सत्य, पवित्रता, शम, दम, दया, दान, परोपकार, शील, क्षमा, धैर्य, विचार, विवेक, वैराग्य, गुरु-भक्ति, समता, सन्तोषादि सदाचरण और सद्गुण धारण करनेवाले की ही बड़ाई है और वही मोक्ष का अधिकारी है। अतएव खुदी-खुदा और स्वस्वरूप रमैयाराम अपना जानकर उक्त सर्व सदाचरण सद्गुण युक्त स्वस्वरूप में स्थित होना चाहिये और उपरोक्त सद्-आचरणों से रहित केवल वचन मात्र का ज्ञानी-उपासक अपने को बतला कर हिंसा-विषयादि करके भी जो अपना मोक्ष मानता है। उसको समझ लो कि वह मनुष्य की खोलरी ओढ़े हुए बैल ही है। हाँ ! अन्यायी को दमन करके अपने राज्य की सुरक्षा करने के लिये न्याय पूर्वक युद्ध करना राजा का धर्म माना गया है। परन्तु यह राज-धर्म है, मोक्ष-धर्म नहीं। मोक्ष-धर्म इससे पृथक् है।

शिक्षासार—हिंसा-विषय और दुराचरण का त्यागी ही मनुष्य है और मोक्ष का अधिकारी है। हिंसा-विषय और दुराचरण युक्तमनुष्य तो मनुष्य के आकार में पशु है।

१३७—(साखी—२८६)

गुरु सीढ़ी ते उतरे, शब्द बिमूखा होय।
ताको काल घसीटिं हैं, राखि सके नहिं कोय॥

जो गुरु के ज्ञान, आचरण और न्याय से पतित हो

कर सार शब्द (निर्णय) से विमुख होता है। उसको वाम-वंचक और मन-वासना रूपी काल घसीट कर नर्क में डुबायेंगे, कोई उसे नर्क जाने से रोक नहीं सकता ॥२८६॥

व्याख्या—जो उत्तम साधु-भेष धारण करके और ज्ञान-वैराग्य मार्ग में थोड़ा-बहुत चलकर के पुनः संसार विषय में गिरते हैं। उनको विषयी-श्रमिक नर-नारी और मन-वासनायें घसीट कर ऐसे बुरे कर्मों में फँसा देती हैं कि जिससे उनका किसी प्रकार उद्धार न हो सके। बल्कि घोर नर्क-वास हो जाय। यद्यपि वह पुनः सम्हल सकता है। परन्तु कल्याण-मार्ग से गिरे हुए साधकों को पुनः उठते हुए प्रायः कहीं भी देखा-सुना नहीं गया है।

शिक्षासार—इस साखी को स्मरण रखकर साधारण साधकों को सावधान रहना चाहिये। नहीं बड़ी अवदशा होगी और विवेकी पुरुष को तो संसार हैजा-रोग रूप या भयंकर ही प्रतीत होता है और कल्याण-मार्ग ही सर्व सुख-मय दर्शता है, जैसा कि वास्तव में वह है।

१३८—(साखी—२८६)

जहँ गाहक तहँ हौं नहीं, हौं तहँ गाहक नाहिं।
बिना विवेक भटकत फिरै, पकारि शब्द को छाहिं॥

जिसके अन्तःकरण में जिज्ञासा होगी, उसके अन्तःकरण में अभिमान न होगा, और जिसके अन्तःकरण में अभिमान

है, उसके अन्तःकरण में जिज्ञासा नहीं होती है। वह तो बिना विवेक शब्द का पक्ष पकड़कर भ्रमता फिरता है॥ २८९

व्याख्या—जो यथार्थ ज्ञान का इच्छुक होगा, जिसे दुःखों से छूटने की उत्कंठा होगी। वह तो विवेकी-सन्तों की सेवकाई करेगा, उनसे नम्र रहेगा। भला ! उसमें अभिमान कैसे हो सकता है ? अतएव जिसमें अभिमान है,यथार्थ निर्णय नहीं मानता,समझलो,उसे यथार्थ ज्ञान की जिज्ञासा नहीं है, वह किसी मत-पथ-ग्रन्थ के अभिमान-पक्ष में पड़ा है। वह यथार्थ विवेक को त्याग कर किसी कल्पित शब्द, साखी, दोहा, चौपाई, श्लोक (ग्रन्थ) आदि के छाहिं नाम पक्ष को पकड़ कर यथार्थ ज्ञान से हीन होकर चंचलता पूर्वक भ्रम रहा है।

शिक्षासार—जिसे यथार्थ ज्ञान की जिज्ञासा और मोक्ष की इच्छा होगी,वह किसी प्रकार हठ-पक्ष और अभिमान न करके विवेकी साधु-गुरु से सदैव नम्र रहेगा। सब सहकर दासातन करते हुए अपना कल्याण करेगा।

१३९—(साखी--२९०)

नग पषाण जग सकल है, पारख बिरला कोय।
नग ते उत्तम पारखी, जग में बिरला होय॥

पर्वत-पत्थर वत् सारा संसार जड़-चेतन मय है, परन्तु इनका पारख (यथार्थ-ज्ञान) किसी बिरले को है। रत्नों

से उत्तम उसका पारखी होता है, परन्तु ऐसे पारखी जगत् में कहीं कोई-कोई होते हैं ॥२९०॥

व्याख्या—जैसे नग अर्थात् पर्वत में उत्तम-मध्यम अनेक प्रकार के पत्थर रहते हैं। तैसे इस संसार में चार खानि के अनेक प्रकार के जीव हैं। इसके अतिरिक्त कल्याण-साधन करने योग्य नर-शरीर में भी अनेक प्रकार के जीव हैं। कोई सतोगुणी, कोई रजोगुणी, कोई तमोगुणी तथा कर्मी, उपासक योगी, ज्ञानी, विज्ञानी, आस्तिक-नास्तिक आदि। परन्तु जड़-चेतन का भिन्न-भिन्न ज्ञान करने वाला और यथार्थ स्वरूप का पारखी कोई विरला ही है। जैसे लाल, पन्ना, हीरा, पोखराज, नीलम इत्यादि रत्नों का पारखी उन रत्नों से सदैव बड़ा है। इसी प्रकार जीवों के नाना मत, पथ की कल्पनाओं और गुण-दोषों को परख कर केवल सद्गुण ग्रहण कर अपने पारख चैतन्य स्वरूप में निष्ठ तथा अन्य को पारख-ज्ञान देने वाले पारखी सन्तों की सब में बड़ाई है। ऐसे सन्त संसार में कहीं-कहीं मिलते हैं।

शिक्षासार—जड़ और चेतन ये दो पदार्थ अनादि और नित्य तथा दोनों सर्वथा भिन्न हैं—इनका यथार्थ पारखी कोई विरला है। अथवा सब मनुष्यों में पारखी (विवेकी) सन्तों की ही बड़ाई है।

१४०—(साखी—२९१)

सपने सोया मनवा, खोलि जो देखै नैन।

जीव परा बहु लूट में, न कुछ लेन न देन ॥

सोया हुआ मनुष्य स्वप्न देखता है कि मैं राजा-रंक या सुखी-दुखी हो रहा हूँ, अतः स्वप्न-द्रष्टा जीव बहुत लूट नाम आनन्द या क्लेश में पड़ा रहता है। परन्तु जाग्रत होकर और नेत्र खोलकर देखे, तो स्वप्न* के पदार्थों से न कुछ लेना है न देना (न कुछ हानि है न लाभ) ॥ २९१ ॥

व्याख्या—उपरोक्त दृष्टान्तानुसार जैसे स्वप्न की हानि-लाभ से मनुष्य की हानि-लाभ नहीं और स्वप्न के सुख-दुःख से वास्तव में मनुष्य सुखी-दुखी जाग्रत में नहीं होता। इसी प्रकार यह जीव मोह रूपी रात्रि में सोया है। यह स्त्री-पुत्र, घर, धन, जाति-वर्ण, मत, पथ, तथा पञ्च विषय भोगों का नाना स्वप्न देख रहा है। मायावी पदार्थों को प्राप्त करके यह जीव बहुत लूट में अर्थात् आनन्द में लीन है। परन्तु यह नहीं समझता कि यह स्वप्न की सम्पत्ति किस काम की है? बल्कि इससे अधिक अज्ञान ही पुष्ट होकर जीव जन्मादिक दुःखों का भागी होता है। अथवा वर्ण, धन, कुटुम्ब आदि से हीन होकर जीव बहुत लूट अर्थात् दुःख में पड़ा रहता है। परन्तु यह भी अज्ञान है। अपने स्वरूप में सुख-दुःख या मायावी पदार्थ कुछ भी नहीं है। इन स्वप्न के

---

* दोहा—स्वप्ने होय भिखार नृप, रंक नाक पति होय।
जागे हानि न लाभ कछु, तिमि प्रपच जिय जोय ॥
(रामायण)

पदार्थों से जीव का क्या लेना-देना है? इनसे जीव का क्या लाभ है? अर्थात् कुछ नहीं। अनन्तों धन, पुत्र, स्त्री, घर, वर्ण, जाति, सुन्दर शरीर आदि मिलकर छूट गये। परन्तु जीव दुःख ही में पड़ा रह गया।

शिक्षासार—माया-स्वप्न में भूलना नहीं चाहिये। विवेक से ही जीव को सुख है। कहा है—

शब्द—

खलक सब रैन का सपना। समझ मन कोइ नहीं अपना॥
कठिन है मोह की धारा। बहा सब जात संसारा॥
घड़ा ज्यों नीर का फूटा। पत्र ज्यों डार से टूटा॥
ऐसे नर जात जिन्दगानी। अजहुँ तो चेत अभिमानी॥
निरखि मत भूल तन गोरा। जगत में जीवना थोरा॥
तजो मद लोभ चतुराई। रहो निःशंक जग माहीं॥
सजन परिवार सुत दारा। सभी एक रोज है न्यारा॥
निकसि जब प्राण जावेंगे। कोई नहि काम आवेंगे॥
सदा जिन जानि यह देही। लगा निज रूप से नेही॥
कहत कब्बीर अविनाशी। लिये यम काल की फाँसी॥

१४१—(साखी—२८२)

नष्ट का राज है, नफर क बरते तेज।
सार शब्द टकसार है, कोइ हृदया माहि विवेक॥

शरीर-व्यवहार का जहाँ तक पसारा है सब नाशवान्

असत् है, केवल मन के मनन करने से ही वह सत्य सुख रूप भासता है। बीजक में निर्णय-वचन हैं, उसका जो कोई हृदय में विवेक करे (तो मन का नाश होकर जीव का कल्याण हो) ॥ २९२ ॥

व्याख्या—शरीर, धन, स्त्री, पुत्र, घर, जगह, जमीन, मठ, मन्दिर, विद्या, वाणी, पद, शासन, मान, बड़ाई, स्वामित्व, अधिकार तथा पञ्च-विषय भोग जहाँ तक माया का राज्य है। सब नाशवान् क्षण-भङ्गुर हैं। इनमें नफर नाम मन का तेज अर्थात् मनन बरते एवं करने से ही ये जड़, क्षण-भङ्गुर पदार्थ सत्य सुखरूप भासते हैं। इस मन ने ही मृतक (जड़) वस्तुओं (देहादि) को अमृत और जीवित बना रखा है। अमङ्गल काया और दृश्य-पदार्थों को यह मन ही मङ्गल रूप माने रहता है। मन की अविद्या ने ही जड़, क्षण-भङ्गुर, अपवित्र और दुःखरूप देहादि पदार्थों में स्वत्व, नित्य, शुद्ध और सुखरूप का प्रतीत कराया है। इस बीजक सद्ग्रन्थमें सार शब्दों अर्थात् निर्णय वचनों का उल्लेख है। अतएव जो कोई इन वचनों का भाव पूर्वक विवेक करेगा। तो उसके मन का तेज नाम मनन क्षीण हो जायगा और मन के अमन होते ही दृश्य पदार्थों की तुच्छता देखने में आ जायगी। अतः वह माया के मोह से छूट कर मुक्त हो जायगा।

शिक्षासार—सांसारिक वस्तुयें अत्यन्त तुच्छ हैं, इसे

मन ही ने उच्च, सुख रूप माना है। अतः विवेक पूर्वक मन के नाश कर देने पर जगत् से प्रबल वैराग्य होकर जीव का कल्याण हो जाता है।

१४२--(साखी--२९३)

जब लग बोला तब लग ढोला, तौलौं धन व्यवहार।
ढोला फूटा बोला गया, कोइ न झाँके द्वार॥

जब तक बोलता चेतन जीव इस काया में है, तब तक यह ढोला नाम काया स्थिर है, तभी तक धन आदि मायावी पदार्थों का व्यवहार भी रहता है। परन्तु जब बोलता चेतन निकल गया और शरीर नष्ट हो गया फिर कोई भी उसके मुख को नहीं देखना चाहता ॥२९३॥

व्याख्या—यह बात साधारण व्यक्ति भी जान सकता है कि चेतन जीव के रहने से ही ये जड़ मन, बुद्धि-इन्द्रिय और शरीरादि क्रिया करते हैं। चेतन के निकल जाने पर यह साढ़ेतीन हाथ की काया कुछ भी नहीं कर सकती। और जीव के देह में रहते तक ही धन-माया का भी व्यवहार रहता है। शरीर छूट जाने पर जीव के साथ एक कौड़ी भी नहीं जाती। परन्तु तो भी भूला मनुष्य अपने धन से धर्म-परोपकार करके आगन्त नहीं बनाता। हे मनुष्य! जब तक तेरा श्वास आता-जाता है, तभी तक तू इस धन का बड़ी कठिनता से मालिक है (जीवित रहते लोग धन को छीन

लेते या वह नाश हो जाता है।) अन्यथा शरीर के छूटने पर तो इस धन में से एक पैसा भी तुम्हारा नहीं है।

"तुलसी धन-धाम शरीर लै।" शरीर के नाश होने उपरान्त धन-धाम जीव के काम में नहीं आते। जैसे चेतन निकला कि काया खराब हुई और उधर सञ्चित-धन को लूटने वाले लूट लिये। फिर कोई मृतक के मुख को देखना तक स्वीकार नहीं करता और अधिक क्या करेगा? वश शीघ्र मृतक-शरीर को जला, गाड़ या जल-प्रवाह कर देते हैं।

शिक्षासार—प्यारे मनुष्यो! क्षण-भंगुर काया नाश होने के प्रथम ही सावधान होकर अपना कल्याण-साधन कर लो। जिससे अन्त में पश्चाताप न करना पड़े।

१४३—(साखी—२६४)

कर बन्दगी विवेक की, भेष धरे सब कोय।
सो बन्दगी बहिजान दे, जहाँ शब्द विवेक न होय॥

विवेक सम्पन्न सन्त की भक्ति करो, साधु का भेष तो (कामी, क्रोधी, लालची, भ्रमिक) सब धर लेते हैं। जिनके घट में सार-शब्दों का विवेक न हो, उनकी सेवा-भक्ति करना छोड़ दो ॥२९४॥

व्याख्या—यहाँ बन्दगी का भाव केवल नमस्कार करना नहीं है। नमस्कार-दण्डवत् इत्यादि शिष्टाचार भाव तो

कोई भी त्यागी साधु का भेष देखकर कर लेना चाहिये। यहाँ बन्दगी का अभिप्राय है—सेवा-भक्ति, पूजा-उपासना। तो सेवा-भक्ति, पूजा-उपासना उन्हीं की करनी चाहिये और उन्हीं को गुरु मानना चाहिये। जिनके हृदय में पारख-विवेक हो। जो सदाचरण युक्त स्वस्वरूप में स्थित हों या स्थिति-मार्ग में गमन-शील हों। और जिसके हृदय में विवेक न हो, यथार्थ बोध न हो और सदाचरण युक्त न चलता हो। उसकी भक्ति-सेवा करना निःसंकोच होकर छोड़ दो। विवेकी-सन्त से जीव का कल्याण है, कुछ भेष मात्र से कल्याण नहीं है।

शिक्षासार—वाचिक-ज्ञानी, चंचल भेष-धारी का संग त्याग कर विवेकी-सन्त का आधार पकड़ो।

१४४—(साखी—२९५)

सुर नर मुनि और देवता, सात दीप नौ खण्ड।
कहहिं कबीर सब भोगिया, देह धरे को दण्ड॥

सात द्वीप नौ खण्ड युक्त इस संसार में जहाँ तक सुर-नर, मुनि एवं देवता हुए। सद्गुरु श्री कबीर साहेब कहते हैं—सभी ने अपने प्रारब्ध-कर्मों के फलों को भोगे हैं और भोगते हैं॥२९५॥

व्याख्या—सुर नाम सतोगुणी, नर अर्थात् रजोगुणी, मुनि एवं वन-वासी मननशील, देवता नाम हरि, हर, शिव,

इन्द्रादि जितने भी देहधारी इस संसार में हुए और हैं तथा होंगे। उन सबों को प्रारब्ध कर्मों के सुख-दुःख भोगों को भोगना पड़ा है और भोगना पड़ता है तथा भोगना पड़ेगा। प्रारब्ध कर्म-भोग बिना भोग किये नहीं समाप्त होता। इस पर यदि बोधवान् के सञ्चित कर्म बोध से दग्ध होने में शंका हो तो उसका समाधान इस साखी में जो श्रीपूरण साहेब त्रिज्या में किये हैं, उसको यहाँ अविकल रूप से उद्धृत कर देते हैं, देखिये—

"सुर, नर, मुनि, देवता आदि जेते देहधारी भये सो सबने देह धरे का दण्ड भोगे, दण्ड भोगे बिना छुटते नहीं। तब विचार करने की और सत्संग करने की विशेषताई क्या ? ये शंका। विचार और सत्संग की विशेषता ऐसी है कि गुरु विचार उदय होने से संचित कर्मका नाश होता है और क्रियमाण कर्म हो सकता नहीं, क्योंकि विचार से सब मानन्दी मिथ्या ठहरी, ताते मानंदी कर्म भी मिथ्या ठहरा, ताते हो सकता नहीं। जब क्रियमान नहीं तब आगे देह भी नहीं। जब बीज नाश हुआ तब वृक्ष भी नहीं। अब रहा प्रारब्ध, सो ताका रूप देह बनी है। सो भोगे से नाश होवेगी। फिर आगे कुछ नहीं, ये विचार की विशेषताई।"

(त्रिज्या से)

शिक्षासार—प्रारब्ध कर्म के सुख-दुःखों को ज्ञानी-

अज्ञानी सबको भोगना पड़ता है। परन्तु ज्ञानी के सञ्चित कर्मों का सर्वथा नाश होकर कर्म-बन्धनों से भविष्य के लिये वे मुक्त हो जाते हैं।

१४७—(साखी—२६८)

जो तू चाहे मूझ को, छाड़ सकल की आश।
मुझ ही ऐसा होय रहो, सब सुख तेरे पास॥

यदि तू मेरे समान जीवन्मुक्ति-स्थिति-सुखासीन होना चाहता है, तो सब की आशा परित्याग कर मेरे समान आचरण युक्त हो रहो। फिर जीवन्मुक्ति का सब सुख तुम्हारे निकट उपस्थित हो जायँगे॥ २६८॥

व्याख्या—शिष्य के प्राप्ति संकेत करते हुए सद्गुरु का कहना है—भाई! यदि तुम मेरे समान इसी जीवन में परम् पद, अक्षयपद, अमृतपद एवं मोक्षपद में स्थित होकर और सर्व दुःखों से छूट कर परम् शान्ति चाहते हो, तो बाह्य जगत् की आशा-वासना सर्वथा त्याग दो। धन, पुत्र, स्त्री, घर, जाति, पाँति, मठ, मन्दिर, लोक, वेद, कल्पित स्वर्ग, सालोक्यादि, चतुर्मुक्ति, मान, बड़ाई, शरीर एवं सम्पूर्ण संसार की आशा सर्वथा त्याग कर मेरे तुल्य नैराश्य हो जाओ। इस प्रकार संसार-शरीर से उदासीन होकर प्रारब्धिक सुख-दुःखों को भोगते रहो और स्वस्वरूप में रमण करो। फिर तो अक्षय परम् पद में तुम्हारी निरन्तर दृढ़ स्थिति रहेगी।

शिक्षासार—दृश्य; वर्ग से सर्वथा नैराश्य होकर अपने चेतन स्वरूप में स्थित हो जाना ही मोक्ष पद है।

१४६—(साखी—२९९)

साधु भया तो क्या भया, बोलै नाहिं विचार।
हतै पराई आतमा, जीभ बाँधि तरवार॥

साधु का रूप बनाने से क्या हुआ, जबकि विचार पूर्वक नहीं बोलता। और जीभ में कटुता या भ्रम का तलवार बाँधकर परायी जान को मारता है॥ २९९॥

व्याख्या—जो लोग साधु का भेष तो बना लिये, परन्तु विचार पूर्वक वचन नहीं बोलते। कटु, खर्स, अश्लील, कुतर्क, निन्दा, चुगुली, शासन युक्त और अनुमान-कल्पना-भ्रम उत्पादक वाक्य बोलते हैं। और जीवों को दुःख या बन्धन देते हैं। उनका साधु-भेष धरना व्यर्थ है। वे तो हाथ का तलवार रखकर जीभ में तलवार बाँध लिये हैं। ऐसे भेष-धारियों से जिज्ञासुओं को सावधान रहना चाहिये।

शिक्षासार—साधु को सत्य, प्रिय, मिष्ट, मान-रहित, निर्णय सहित एवं युक्ति-युक्त बोलना चाहिये।

१४७—(साखी—३०१)

मधुर वचन है औषधी, कटुक वचन है तीर।
श्रवण द्वार ह्वै संचरे, साले सकल शरीर॥

मीठा वचन औषध के तुल्य है, और कटु वचन वाण के समान है। यह कान द्वारा भीतर प्रवेश करता है, और सारे शरीर में शूल उत्पन्न करता है ॥ ३०१

व्याख्या—कितना ही मनुष्य दुखी हो, परन्तु उससे यदि मीठा वचन बोल दिया जाय, तो वह तुरन्त प्रसन्न हो जाता है। इसलिये मधुर वचन को यहाँ सद्‌गुरु ने औषधवत् बतलाया है। परन्तु टेढ़ा वचन तो पैना वाणके समान है। टेढ़ा वचन यदि किसी के प्रति बोल दिया जाय, तो उसके कान द्वारा घुस कर वह सारे शरीर में असह्य शूल-सन्ताप उत्पन्न करता है। इसलिये कहा है—

"वचन वाण मत मारिये, वरु शिर लेहु उतार।
सज्जन दुख अपने सहैं, औरन को उपकार ॥"

दोहा—"तुलसी मीठे वचन से, सुख उपजै चहु ओर।
वशीकरण यक मन्त्र है, तजिये वचन कठोर ॥"

शिक्षासार—कटुता का सर्वथा त्याग कर मिष्ट भासी बनो।

१४८—(साखी—३०४)

ये मर जीवा अमृत पीवा, क्या धसि मरसि पतार।
गुरु की दाया साधु की संगत, निकरि आव यहि दार॥

हे विषयासक्त जीव! तू विवेक-ज्ञान रूप अमृत पीले, विषय के गर्त में पतन होकर क्यों जड़ाध्यासी हो रहा है?

सद्गुरु की कृपा (बोध) से और सन्तों के सत्संग बल से इस पारख भूमिका रूप मोक्ष-द्वार पर आजा ॥ ३०४ ॥

व्याख्या—यह अमृत जीव अनादि विषयासक्ति वश स्वरूप स्थिति से रहित मृतक अर्थात् जड़ाध्यासी हो रहा है। इसलिये साहेब ने इसे मरजीवा कहा है। परन्तु साहस देते हुए ग्रन्थकर्ता कहते हैं—हे जीव ! तू पारखज्ञान और विवेक रूप अमृत पीले। विषय-वासना और योग-कर्मादि रूप गड्ढे में धँस कर क्यों मरता है ? देखो ! सच्चे विवेकी वैराग्य प्रिय सद्गुरु की खोज करके उनसे यथार्थ स्वरूप का बोध प्राप्त करो। और सद्गुरु के बोध रूप कृपा से और सन्तों के सत्संग के बल से सब बन्धनों को परख-परख कर मिटा डालो और संसार-शरीर आदि की वासना मिटाकर इस मोक्ष-द्वार कल्याण-स्थल रूप सद्साधन के मार्ग पर शीघ्र आ जाओ।

शिक्षासार—विषयासक्ति जीतकर मोक्ष प्राप्त करना चाहिये।

१४६—(साखी—३०५)

केतेहि बुन्द हलफो गये, केते गये बिगोय।
एक बुन्द के कारणे, मानुष काहेक रोय॥

कितने वीर्य के बुन्द माता के गर्भ में नष्ट हो गये, और कितने बुन्द तो यों ही नष्ट हो गये। इसी प्रकार वीर्य

के एक बुन्द रूप शरीर के प्रयोजन से हे मनुष्य ! तू क्यों रोता है ? ॥३०५॥

व्याख्या—हे जीव ! तुम्हारे अनेक शरीर अनेक बार गर्भ में नष्ट हो गये । कितने शरीर जन्म-काल में नष्ट हुए, कितने बाल्य, कुमार, युवा, अधेड़ आदि में छूटे, कितने ही शरीर राज्य-सुख भोगते हुए छूटे और कितने ही शरीर दरिद्रता-दुःख भोगते-भोगते नष्ट हुए । इसी प्रकार वर्तमान का शरीर भी प्रारब्धानुसार व्यतीत हो जायगा । फिर हे मनुष्य ! वीर्य के एक बुन्द रूप तुच्छ काया के अधीन होकर क्यों शोकातुर हो रहा है ? इस शरीर का निर्वाह सद्पुरुषार्थ और प्रारब्धाधीन स्वयम् हो जायगा । रोग-संकट आदि अवस्था कर्मानुसार सब बीत जायँगे । चिन्ता-शोक करना छोड़ दो ।

अथवा—

तुम्हारे कितने वीर्य के बुन्द स्त्री के उदर में जाकर नष्ट हो गये और कितने ही बुन्द यों ही स्खलित होकर विनष्ट हो गये । उन्हीं बुन्दों में से एक बुन्द का पिण्ड तुम्हारे पुत्र का शरीर भी था । सो हे मनुष्य ! एक वीर्य के बुन्द रूप पुत्र-शरीर के त्याग में विकल होकर क्यों रोता है ?

तात्पर्य यह है कि जो पुत्र का शरीर है वह पिता के वीर्य का एक बुन्द है । ऐसे वीर्य के बुन्द पुरुष के कितनों ही नष्ट हो जाते हैं । यदि पुत्र ही मर गया, तो समझ

लेना चाहिये कि यह भी वीर्य का एक बुन्द था। नष्ट हो गया तो क्या चिन्ता ? जीव॰ तो अविनाशी ही है, वह न मर सकता है और न किसी का पुत्र-पिता ही हो सकता है। वह शाश्वत् पुराण पुरुष है।

शिक्षासार—शरीर-पुत्र आदि की चिन्ता त्याग कर भजन करना चाहिये।

१५०—(साखी—३०८)

साँचे श्राप न लागे, साँचे काल न खाय।
साँचहि साँचा जो चलै, ताको काह नशाय॥

सत्य को श्राप नहीं लगता, सत्य को काल नहीं खाता। जो सदैव सत्य-ही-सत्य आचरण में चलता है, उसकी कौन हानि पहुँचा सकता है ? (कोई नहीं) ॥ ३०८॥

व्याख्या—सत्य यह जीव है, यह त्रय-काल बाध रहित नित्य है। इसको कोई श्राप देकर नष्ट नहीं कर सकता। और न इस चैतन्य को काल अर्थात् कल्पना, मृत्यु या समय ही नष्ट कर सकते हैं। और जो विवेक-वैराग्यादि सद्गुण युक्त चलता है, उसकी कोई किञ्चिन्मात्र भी हानि नहीं कर सकता। सत्य की सदैव जय होती है।

शिक्षासार—सदैव सत्य का पक्ष पकड़ना चाहिये।

---

१ "चौपाई—याको माय न याको बापा। यह तो स्वतः आपही आपा॥ नि०

१५१—(साखी—३०४)

पूरा साहेब सेइये, सब विधि पूरा होय।
ओछे से नेह लगाय के, मूलहु आवै खोय ॥

पूरे स्वामी का सेवन करो, फिर सब प्रकार से तुम्हारा पूर्ण हो जायगा। तुच्छ व्यक्ति से प्रेम लगाने से तो पासकी बुद्धि भी नष्ट कर आओगे ॥३०९॥

व्याख्या विवेक-वैराग्यादि सद्गुण युक्त जो पारखी सद्गुरु हैं, वे पूरे साहेब हैं। जिनको सब वासनाओं से निवृत्त होकर जीवन्मुक्त होना हो, उन्हें चाहिये वे उन्हीं पारखी सद्गुरु की शरण में जाकर विधिवत् सेवा, आज्ञा-पालनादि करें। इस प्रकार मन, वच, एवं कर्म से वैराग्य-वान् पारखी सद्गुरु का सेवन करने से तथा साधन में चलने से उस जिज्ञासु का सब प्रकार भ्रम मिटकर पूर्ण जीवन्मुक्ति स्थिति बन जायगी और यदि ऐसा न करके पारख-विवेक से हीन भ्रमिक विषयी मनुष्यों और कल्पनाओं से प्रेम करेगा, तो अपने पास में रही हुई बुद्धि को भी नष्ट कर बैठेगा।

शिक्षासार—भली भाँति परख कर श्रेष्ठ पुरुष अर्थात् वैराग्यवान् पारखी को अपना उद्धारक-गुरु चुनना चाहिये।

१५२—(साखी—३१२)

मैं चितवत हौं तोहिं को, तू चितवत है वोहिं।
कहहिं कबीर कैसे बनिहैं, मोहिं तोहिं औ वोहिं ॥

हे जिज्ञासु ! मैं तेरे को देख रहा हूँ, परन्तु तू तो कल्पना-माया को देख रहा है। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—मेरा, तेरा और उसका एक साथ रहना कैसे बनेगा ? ॥३१२

व्याख्या—त्रिविध तापों से पीड़ित जीवों को जानकर जिज्ञासु या मुमुक्षु जीव के प्रति सद्गुरु दया दृष्टि पूर्वक देखते हैं और अपने ज्ञान द्वारा जीव का उद्धार करना चाहते हैं। परन्तु यह मनुष्य तो सब कल्पना-माया त्यागकर सद्गुरु की ओर अपना दृढ़ता पूर्वक मुख करता नहीं। बल्कि यह (उस) माया भोग कल्पना और मान-बड़ाई आदि भौतिक पदार्थों की ओर देखता रहता है। इस पर सद्गुरु कहते हैं—भाई ! हमारा, तुम्हारा और माया-कल्पना का नहीं पट सकता। जब तक तुम माया कल्पना की ओर लक्ष्य रखोगे, तब तक हमारा तुम्हारा नहीं बैठ सकता।

शिक्षासार—माया-कल्पना का लक्ष्य-मोह त्यागकर जिज्ञासु को एकङ्गा होकर सद्गुरु की शरण में कल्याण-साधन करना चाहिये।

१५२—(साखी—३१५)

अपनी कहै मेरी सुनै, सुनि मिलि एकै होय।
हमरे देखत जग जात है, ऐसा मिला न कोय॥

अपनी शंका मुझसे कहे, मेरा समाधान सुने, और श्रवण मनन करके मेरे यथार्थ स्वरूप-ज्ञान में एकतान दृढ़ स्थित

हो जाय। हमारे देखते-देखते जगत् जीव पतन-पथ में चले जा रहे हैं, परन्तु ऐसा उत्तम मुमुक्षु नहीं मिलता (अथवा- बहुत कम मिलते हैं।) ॥३१५॥

व्याख्या—जिसे अपना कल्याण इष्ट हो, उन्हें चाहिये कि वे सच्चे वैराग्यशील सद्‌गुरु के सामने अपनी शंकायें उपस्थित करें और सद्‌गुरु से प्रेम और शान्त पूर्वक समाधान सुनें, पश्चात् मननकरके यथार्थ स्वरूपज्ञान को दृढ़कर उसमें स्थित हो जावें। ऐसे मुमुक्षु जीव धन्य हैं, ऐसे विरले-बिरले होते हैं।

शिक्षासार—शंका-समाधान करके सद्‌गुरु के ज्ञानपर लक्ष्य देना चाहिये।

१५४—(साखी—३१६)

देश विदेशे हौं फिरा, गाँव गाँव की खोरि।
ऐसा जियरा न मिला, लेवै फटकि पछोरि॥

देश-विदेश एवं ग्राम-ग्राम के गली-गली में मैंने पर्यटन किया। परन्तु ऐसा जिज्ञासु मनुष्य न मिला, जो यथार्थ ज्ञान को विचार पूर्वक ग्रहण कर ले॥ ३१६ ॥

व्याख्या—कल्याण के सच्चे बिरही बहुत कम होते हैं। बाहरी दिखावे के लोग अधिक भूखे रहते हैं। निर्मान, वैराग्यशील सच्चे ज्ञानी के निकट ज्ञानोपदेश सुनने के लिये बिरले

ही लोग आते हैं। और आने वालों में विरले ही सत्योपदेश ग्रहण करते हैं।

शिक्षासार—सन्तों के ज्ञानोपदेश का आदर करने से ही यथार्थ स्वरूपज्ञान होता है।

१५५—(साखी—३१७)

मैं चितवत हौं तोहिं को, तू चितवत कछु और।
नालत ऐसे चित्त पर, एक चित्त दुइ ठौर॥

हे जिज्ञासु! मैं तेरे को देखता हूँ, परन्तु तू तो अन्य माया-कल्पना को ही देखता है। तेरे को धिक्कार है, जो अपने एक चित्त को दो स्थलों पर फँसाता है॥ ३१७॥

व्याख्या—जीव के दुःख छुड़ाने के लिये सद्गुरु जीव की ओर कृपा पूर्वक देखते हैं। परन्तु यह जीव सद्गुरु के ज्ञान को त्याग कर माया-कल्पना की ओर देखता है। अर्थात् जिज्ञासु आधा मन इधर गुरु-ज्ञान की ओर रखता है और आधा मन उधर संसार* की ओर रखता है। इस पर सद्गुरु कहते हैं—भाई! यह आधा मन इधर आधा मन उधर रखना ठीक नहीं है। उधर से मन सर्वथा हटा कर इधर जब तक दृढ़ता पूर्वक नहीं लगाओगे, तब तक कल्याण से सैकड़ों कोस दूर रहोगे।

---

*—"दुई चित सज्जन लोग हैं, मम संग औ जग मोह।
तेहि ते तेहि शिर भार पड़ि, मैं नहिं चाहत ओह॥ मार्तण्ड"

शिक्षासार—जगत् से विमुख होकर गुरुज्ञान के सम्मुख होना चाहिये।

१५६—(साखी—३२४)

मरते मरते जग मुवा, मुये न जाना कोय।
ऐसा होय के ना मुवा, जो बहुरि न मरना होय ॥

मरते-मरते संसार के सभी मनुष्य मरते रहते हैं, परन्तु ये सब कोई भी मरने का अच्छा नियम नहीं जानते। ऐसा हो करके नहीं मरते, जिससे पुनः न मरना पड़े ॥३२४॥

व्याख्या—इतर त्रयखानि के लिये तो कोई बात ही नहीं है। परन्तु मनुष्य खानि में यह स्ववशता है कि वह यदि विवेक-वैराग्यादि धारण कर और जगत् की सम्पूर्ण सुख-आशा के बीज को नष्ट करके स्वरूपज्ञान पूर्वक शरीर त्याग करे। तो उसे पुनः शरीर धरना-छोड़ना न पड़े। परन्तु यथार्थ पारख बिना ऐसा (सर्व आशा-बीज दग्ध कर ज्ञान पूर्वक मरना रूप अमर जीवन) कोई जानते नहीं। इसलिये बारम्बार जन्म-मृत्यु के चक्कर में घूमा करते हैं।

शिक्षासार—सत्संग द्वारा यथार्थ स्वरूप-ज्ञान प्राप्त कर और समस्त सुख-आशा-बीज नष्ट करके देह त्यागना चाहिये, जिससे परम गति हो।

१५७— साखी—३२५)

मरते मरते जग मुवा, बहुरि न किया विचार।

एक सयानी आपनी, परवश मुवा संसार ॥

मरते-मरते जगत् के मनुष्य सब मरे ही जाते हैं, परन्तु पुनः वे विचार नहीं करते। जो सब आशाओं को जीत कर अपने विवेक की श्रेष्ठता लेकर शरीर त्यागता है, वह धन्य है, आशा-वासना के वश होकर सब संसारी मनुष्य तो मर ही रहे हैं, इनकी क्या श्रेष्ठता है ? ॥ ३२५ ॥

व्याख्या—संसार में शरीर युक्त कोई भी अमर होकर नहीं रहता। सब की एक दिन मृत्यु होती है। परन्तु संसार के लोग विचार नहीं करते कि जब एक दिन इस शरीर का अवश्य त्याग करना पड़ेगा, तब प्रथम ही क्यों न वासना-विहीन होकर अपना कल्याण कर लें। जो शरीर में रहते-रहते सब प्राणी-पदार्थों, देश-समाज और सब परिस्थितियों की आशा-वासना सर्वथा त्याग कर स्वरूपस्थिति करते हुए शरीर त्यागता है, वह धन्य है। उस पुरुष का इस दुःखालय, यमसदन, नर्कवास तथा क्षण-भङ्गुर जगत्-शरीर में पुनः आना नहीं होता। वह सदैव के लिये परमधाम स्वस्वरूप में दृढ़ स्थित हो जाता है। उसके अतिरिक्त अन्य सब संसारी जीव वासनाओं-उमङ्गों के अधीन हो-होकर प्राण त्यागते हैं। और पुनः-पुनः जन्मादि के भागी होते हैं।

शिक्षासार—इस संसार में सुख, आनन्द का नाम मात्र भी नहीं है। यहाँ हरक्षण पीड़ा, संकट और क्लेश हैं।

शारीरिक-वास बड़ा कष्ट-प्रद है। मन और तन के अग्नि में जीव को सदैव जलना पड़ता है। इसलिये इस संसार और शरीरादि सर्व दृश्यों की वासनाओं को निर्दयता पूर्वक विषवत् त्यागकर जीवन पर्यन्त स्वरूप में शान्त रहते हुए मुक्त हो जाना चाहिये। मनुष्यों के ध्येय की पूर्ति का साधन विवश नहीं है। उसकी महत्त्वाकांक्षा किसी व्यक्ति-वस्तु (प्राणी-पदार्थ) पर नहीं अवलम्बित है। उसका ध्येय, उसकी महत्त्वाकांक्षा रूपी शान्ति उसके स्वरूप में ही निहित (स्थित) है। केवल भेद मन की चञ्चलता का है। वासना-हीन करके मन की चञ्चलता को दमन कर दे। फिर वह स्वयम् परम,शान्त पूर्णकाम एवं मंगल मूल दुःखों से सर्वदा सर्वथा मुक्त स्थित रह जायगा। यह दृढ़ता पूर्वक ध्यान में जमा लेना चाहिये कि जीने-भोगने की सर्वथा आशा छोड़ कर जो मरेगा, वही मुक्त होगा। जो जीने-भोगने की आशा लेकर मरेगा, उसे जीने-भोगने के लिये पुनः शरीर में अवश्य आना पड़ेगा। अतः जीने-भोगने की आशा आज इसी ही क्षण सर्वथा त्याग देना चाहिये।

१५८—(साखी – ३२६)

शब्द है गाहक नहीं, वस्तु है महगे मोल।
बिना दाम काम नहिं आवै, फिरे से डामाडोल॥

निर्णय शब्द हैं,परन्तु उसके ग्राहक नहीं हैं, वह निर्णय

वचन (यथार्थ ज्ञान) बहुत अधिक मूल्य का है। बिना दाम दिये वह काम में नहीं आता, ऐसे अधूरे जिज्ञासु अज्ञानी होकर भ्रमते हैं ॥३२६॥

व्याख्या—संसार में विवेकी-पारखी सन्त भी हैं और उनके यथार्थ निर्णय वचन भी हैं। जिसके धारण करने से जीव का परम् कल्याण हो जाता है। परन्तु ऐसे यथार्थ ज्ञान के ग्राहक कम होते हैं। उस यथार्थ ज्ञान रूप पदार्थ का मूल्य अधिक लगता है। उसका मूल्य है श्रद्धा, विश्वास और सचाई पूर्वक कल्याण की दृढ़ भावना। इसके बिना वह यथार्थ ज्ञान कोई काम में नहीं आता। फलतः जिज्ञासु अज्ञानी ही बना रहता है। बहुत से लोग सन्तों के पास जाते हैं, उनकी परीक्षा लेने, उनकी योग्यता देखने और गुण-ग्राह्य का लक्ष्य न होने से उनमें दोषों को ढूँढते हैं। फिर ऐसे अधूरे जिज्ञासुओं का क्या सुधार-उद्धार होगा ?

शिक्षासार—श्रद्धा-विश्वास और मुमुक्षता पूर्वक सत्संग करके गुण-ग्राही होना चाहिये।

१५९—(साखी—३३०)

बोलत ही पहिचानिये, साहु चोर का घाट।
अन्तर घट की करनी, निकरै मुख की बाट॥

अच्छे और बुरे का लक्षण उसके बोलते ही पहचानने में आ जाता है। क्योंकि हृदय के भीतर की जो वासना

रहती है, वह मुख के द्वार से प्रकट हो जाती है ॥३३०॥

व्याख्या—सच्चे सन्त का और कच्चे सन्त का तथा अच्छे मनुष्य का और बुरे मनुष्य का लक्षण तभी पहचानने में आ जाता है, जब वह अपने मुख से अपना मन्तव्य कहने लगता है। क्योंकि जिसके हृदय में जो बात रहती है, वह मुख से प्रकट हो ही जाती है। अतएव मनुष्य के बातचीत से उसकी परीक्षा करनी चाहिये।

शिक्षा सार—मनुष्य की पहचान उसकी बोली है।

१६०—(साखी—३३१)

दिल का महरमि कोई न मिलिया, जो मिलिया सो गर्जी ।
कहहिं कबीर असमानहिं फाटा, क्योंकर सीवै दर्जी ॥

हृदय का भेदी (सच्चा निष्ठक) कोई नहीं मिला (बहुत कम मिले), जो मिला सो स्वार्थी मिला। सद्‌गुरु श्रीकबीर साहेब कहते हैं—अन्तःकरण फट जाने पर विचारवान् कहाँ तक मिलावें ॥ ३३१ ॥

व्याख्या—ऐसे जिज्ञासु-मुमुक्षु बहुत कम मिलते हैं, जो अपने मन का सब भेद मिटाकर विवेकी एवं वैराग्यवान् साधु-गुरु के अधीन हो जाँय। और साधु-गुरु से निश्छल हो कर उनके हार्दिक ज्ञान के महरमी अर्थात् जानकार हो जायँ। बल्कि उत्तम-उत्तम भोजन-वस्त्र, भोग-पदार्थ और मान-बड़ाई तथा ऋद्धि-सिद्धि-प्राप्ति की नाना वासना लेकर

स्वार्थी होकर गुरु से मिलते हैं। जैसे आकाश के फटने पर दर्जी क्या सीयेगा ? यद्यपि दृष्टान्त असम्भव है। यहाँ साहेब का मन्तव्य है आकाश नाम अन्तःकरण और दर्जी नाम विचारवान्। सो जब जिसके अन्तःकरण में नाना लोक-परलोक, मान-भोग की वासना होने से साधु-गुरु से अन्तःकरण नहीं मिलता। तो विचारवान् कहाँ तक समझा कर मिलावेंगे ?

शिक्षासार—उद्धारक साधु-गुरु से निष्छल प्रेम करना चाहिये।

१६१—(साखी—३३२)

ई जग जरते देखिया, अपनी अपनी आग।
ऐसा कोई ना मिला, जासो रहिये लाग॥

अपने-अपने अज्ञान रूपी अग्निमें सारे जगत् के प्राणियों को जलते देखा। ऐसा कोई न मिला, जिसके पीछे लगकर इस अज्ञान दुःखाग्नि से बचा जा सके॥३३२॥

व्याख्या—नाना धोखा, भ्रम और विषयों की कल्पना रूपी अग्नि सब प्राणियों के घट में लग रही है। उस अपनी-अपनी विषय-कल्पना की अग्नि में सब प्राणी निरन्तर जल रहे हैं। निर्विषयी, विवेकी पारखी साधु-गुरु के अतिरिक्त ऐसा कोई शीतल नहीं है कि उसके पीछे लग कर बचा जा सके।

शिक्षासार—जो विषय-कल्पना से रहित स्थिर मन

वाला जितेन्द्रिय जगत् से सर्वथा नैराश्य है, वही परम् सुखी शीतल है। उसी के पीछे लगने से शान्ति मिलेगी।

१६२—(साखी—३३३)

बना बनाया मानवा, बिना बुद्धि बेतूल।
कहा लाल लै कीजिये, बिना वास का फूल॥

नकली रूप से बना-बनाया हुआ मनुष्य मानव-बुद्धि बिना, मानवता की तुलना से रहित है। सुगन्धी से रहित सुन्दर लाल फूल ले करके क्या किया जायगा? ॥३३३॥

व्याख्या—सेमर का फूल जैसे देखने में बड़ा सुन्दर होता है, परन्तु उसमें सुगन्धी न होने से वह सर्वथा निरर्थक है। इसी प्रकार जो नकली मनुष्य है। अर्थात् जो केवल हाथ-पैर आदि मानव का आकार-प्रकार तो धारण कर लिया है। परन्तु दया, क्षमा, सत्य, धैर्य, विवेक, विचारादि मानव-बुद्धि नहीं धारण किया। वह मनुष्य की तुलना में नहीं है। वह बिना सींग-पूँछ का पशु है।

शिक्षासार—केवल मानव-तन पाने से ही कोई मानव नहीं हो सकता,जब तक उसमें मानवता न आ जाय, मानवता कहते हैं,इन निम्न सदगुण-सदाचरणोंकी धारणा को—दया, शील, क्षमा,सत्य, धैर्य, विचार, विवेक, वैराग्य, गुरु-भक्ति, समता, सन्तोष, शान्ति, अहिंसा, शौच, अपरिग्रह, शुद्धाहार (हिंसा-मांसाहार का त्याग) इत्यादि।

१६३—(साखी—३३४)

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हृदया साँच है, ताके हृदया आप॥

सत्य के बराबर तपस्या नहीं है, असत्य के समान पाप नहीं है। जिसके हृदय में सत्य का प्रकाश है, उसके हृदय में अपने आप चेतन का स्वराज्य है ॥३३४॥

व्याख्या—भास, अध्यास, अनुमान, कल्पना, शरीरादि असत्य वस्तुओं की प्रियता और असत्य-भाषण असत्य-क्रिया (दुराचरण), इसके समान पाप संसार में अन्य कुछ नहीं है। और सत्य चैतन्य का ज्ञान उसके स्थितप्रद सद्गुण, सत्य-भाषण, सत्य रहनी आदि, इसके समान अन्य कोई तपस्या नहीं है। अतएव मन, वचन और कर्म से सत्यपालन करते हुए जिसके हृदय में सत्य चैतन्य स्वरूप स्थिति का प्रकाश है। उसके हृदय में अपने आप का स्वतन्त्र स्वराज्य है। अर्थात् सत्य स्वरूप में स्थित पुरुष ही स्वाधीन, स्वावलम्ब, स्वतन्त्र, जगत् से नैराश्य और मुक्त है।

शिक्षासार—असत्य विजाति पक्ष त्यागकर सत्य स्वरूप और सत्याचरण का दृढ़ अवलम्ब लेना चाहिये।

१६४—(साखी—३३५)

कारे बड़े कुल ऊपजे, जोरे बड़ी बुधि नाहिं।
जैसा फूल उजारि का, मिथ्या लगि झरि जाहिं॥

उत्तम मनुष्य-जाति में शरीर धारण करने से क्या हुआ ? जब श्रेष्ठ मनुष्य की बुद्धि नहीं आयी। जैसे निर्जन जङ्गल में फूल लगा और व्यर्थ ही झड़गया ॥३३५॥

व्याख्या—अन्य तीन खानितों से उत्तम मोक्ष-साधन करने योग्य यह मनुष्य-शरीर है, परन्तु इस उत्तम मनुष्य कुल में उत्पन्न होने से कोई लाभ नहीं होता, जब तक मनुष्य की श्रेष्ठ बुद्धि न आजाय। जैसे किसी मनुष्य-रहित जङ्गल में फूल लगा और व्यर्थ ही झड़ गया। तैसे नर-शरीर प्राप्तकर भी मानव-बुद्धि बिना नष्ट हो गया। उससे जीव का किञ्चिन्मात्र भी उद्धार नहीं हुआ। बल्कि नाना कर्म करके जीव और दुःख का भागी हो गया।

शिक्षासार—मानव-बुद्धि धारण करने से मानव-मानव है, अन्यथा मानव-दानव या पशु है।

१६५—(साखी—३४०)

जन्म-मरण बालापना, चौथे वृद्ध अवस्था आय।
जस मूसा को तकै बिलाई, अस यम जीव घात लगाय ॥

जन्म-मरण के चक्र में पड़े हुए जीव की बाल्य से चौथी वृद्ध अवस्था आ जाती है, परन्तु भूल में वह अपना कल्याण-साधन नहीं करता। जैसे चूहे को खाने की दृष्टि से बिल्ली देखती है, तैसे प्राणी के ऊपर मृत्यु घात लगाये रहती है ॥ ३०४ ॥

व्याख्या—विषयों की आसक्ति-वश प्राणी जन्मता है और मरता है तथा पुनः जन्म लेता है। बाल्यपन, जवानी और अधेड़ गत होते हुए चौथी वृद्धावस्था एवं अत्यन्त जर-जर पन भी आ जाता है। परन्तु मनुष्य के मन की माया (आशा-वासना और उमंग) नहीं छूटती और न वह अपना कल्याण-साधन ही करता है। इतने में चूहे पर बिल्ली के समान प्राणी पर मृत्यु धावा बोल देती है और संसार से पुनः प्राणी को चल देना पड़ता है।

जैसे चूहे को बिल्ली दबोच कर फाड़ खाती है, तैसे अज्ञानी मनुष्य को मृत्यु दबोच कर फाड़खाती है। परन्तु ज्ञानी को मृत्यु कैसे मिलती है। जैसे देश का एक राष्ट्र-पति बाहर दौड़ा से जब आकर वायुयान या मोटर से उतरता है, तब आदर और प्रीति पूर्वक जैसे नौकर जाकर राष्ट्रपति महोदय का कोट या शेरवानी उतारता हैं। तैसे ज्ञानी का शरीर मृत्यु आदर पूर्वक विसर्जन करती है। अज्ञानी को मृत्युकाल में महान मनस्ताप होता है। परन्तु विवेकी को शारीरिक कष्ट भले हो, किन्तु मन से तो वह परम् प्रसन्न रहता है। क्योंकि आज उसका देह-सम्बन्धरूप सम्पूण संताप मिटकर वह सदैव के लिये निर्द्वन्द्व मुक्त होता है।

मोह-मुग्ध मनुष्य को भावी दुःखों का चेत नहीं रहता। वह अपने ऊपर काल का आक्रमण नहीं देखता। वह यह

नहीं जानता कि मैं काल का चबैना हूँ। वह प्रमाद में ही कल्याण-दायी उत्तम नर-देह को नष्ट कर देता है।

शिक्षासार—अपने मृत्यु को निकट देखकर मनुष्य को सावधान हो जाना चाहिये।

शब्द—

बीत गये दिन भजन बिना रे।
बाल अवस्था खेल गँवाई, जब ज्वानी तब नारि तनारे ॥
जाके कारन मूल गँवायों, अजहुँ न गई मन की तृष्ना रे ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो, पार उतर गये सन्त जनारे ॥

१६६—(साखी—३४५)

सोई नूर दिलपाक है, सोई नूर पहिचान।
जाके किये जग हुआ, सो बेचून क्यों जान ॥

हृदय में वही चैतन्य नूर अर्थात् प्रकाशवान् शुद्ध है, उसी ज्ञान-प्रकाश शुद्ध स्व-स्वरूप चैतन्य को परखो। जिस चेतन की कल्पना से खानी-वाणी रूप जगत्* हुआ है, उसको निराकार क्यों समझते हो ॥३४५॥

व्याख्या—हृदय में निवास करने वाला जो सब का ज्ञाता चैतन्य है, वही परम् पवित्र है, उसी को नूर या ज्ञान-प्रकाश मात्र कहा जाता है। उस चेतन को कोई निराकार

---

* खानी-वाणी रूपी मनोमय जगत् जीव की कल्पना से हुआ। यह जड़-चेतन मय एवं ब्रह्माण्ड रूप जगत् नहीं।

कहते हैं। परन्तु यह अज्ञान है। क्योंकि निराकार शून्य को कहते हैं और शून्य अभाव को कहते हैं। अतएव चैतन्य निराकार नहीं बल्कि ज्ञानाकार अखण्ड-द्रव्य एवं पदार्थ है। उसने ही अपनी भूल वश स्त्री, पुत्र, घर, धन, शरीर तथा देवी-देवादि नाना खानी-वाणी रूप जगत् प्रपंच का निर्माण किया है। फिर वह बेचून अर्थात् निराकार कैसे हो सकता है? अथवा जिस कल्पित बेचून-बेनमून तथा निराकार-निर्गुण कर्ता से सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति मानते, हो, तुम्हारा भ्रम है। जगत्-कर्ता कोई नहीं है। जगत् प्रवाह रूप स्वयं अनादि वस्तु है। इसकी कभी उत्पत्ति नहीं है।

शिक्षासार—सब की कल्पना करने वाला अपना चैतन्य स्वरूप है। वही अखण्ड-शुद्ध-बुद्ध है। उसी को यथार्थ रूप से पहचानो।

१६७—(साखी—३५३)

साखी आँखी ज्ञान की, समुझि देखु मन माहिं।
बिन साखी संसार का, झगरा छूटत नाहिं॥

मन में समझ करके देखो, यह साखी प्रकरण ज्ञान रूप आँख देने वाला है। संसार में बिना साक्षी का झगड़ा नहीं छूटता ॥३५३॥

व्याख्या—जैसे बिना साक्षी (गवाह) के झगड़ा नहीं मिटता। इसी प्रकार बिना साक्षी चैतन्य का ज्ञान प्राप्त

किये मत-मतान्तरों का झगड़ा नहीं छूटता। इस साक्षी चैतन्य का यथार्थ स्वरूप-ज्ञान इस साखी-प्रकरण में वर्णन किया गया है। अतएव स्वरूप-ज्ञान-प्राप्ति के लिये यह प्रकरण अत्यन्त लाभकारी मनन करने योग्य है।

शिक्षासार—इस प्रकरण के भावयुक्त मनन करने से यथार्थ स्वरूप-ज्ञान सरल हो जायगा।

बीजक-पाठ-फल साख

बीजक कहिये साख धन, धन का कहै सँदेश।
आतम धन जेहि ठौर है, वचन कबीर उपदेश ॥१॥
देखे बीजक हाथ लै, पावै धन तेहि शोध।
याते बीजक नाम भौ, माया मन को बोध ॥२॥
आस्ति आत्मा राम है, मन माया-कृत नास्ति।
याकी पारख लहै यथा, बीजक गुरु मुख आस्ति ॥३॥
पढ़ै गुनै अति प्रीति युत, ठहरि के करै विचार।
थिरता बुधि पावै सही, वचन कबीर निरधार ॥४॥
सार शब्द टकसार है, बीजक याको नाम।
गुरु की दया से परख भई, वचन कबीर तमाम ॥५॥
पारख बिन परिचय नहीं, बिन सत्संग न जान।
दुविधा तजि निर्भय रहै, सोई सन्त सुजान ॥६॥
नीर क्षीर निर्णय करै, हंस लक्ष सहिदान।

दया रूप थिर पद रहै, सो पारख पहिचान ॥७॥
देह मान अभिमान से, निरहंकारी होय।
वर्ण कर्म कुल जाति से, हंस निन्यारा होय ॥८॥
जग विलास है देह को, साधो! करो विचार।
सेवा साधन मन कर्म ते, यथा भक्ति उर धार ॥९॥

शब्द—

हमारे मन रहनी नीक धरो ॥टेक॥

बिन रहनी नहिं ज्ञान काम दे, नहिं भव बन्ध टरो।
नहिं चित शान्त होत नित एकरस, प्रतिक्षण जीव जरो॥१॥
सत भाषण सन्तोष क्षमा, समता विराग जबरो।
भोग त्याग नित निरस रूख मन, भजन विचार करो ॥२॥
तजि परवृत्ति निवृत्ति को साधो, मन को परख करौ।
राग द्वेष ममता सबन्ध तजि, ह्वै असंग विचरो ॥३॥
पर के दोष कभी न देखो, अपनी सोच करो।
प्रति क्षण मन से परखि पार रहि, यहि अभ्यास करो ॥४॥
तन प्राणी पदार्थ अरु जग से, ह्वै निराश सबरो।
महा भयानक देह ग्रन्थि से, तू अभिलाष तरो ॥५॥

बीजक-शिक्षा संक्षिप्त-संग्रह सप्तम् सोपान साम्-
हिक-विषय-साखी टीका-व्याख्या- युक्त समाप्त
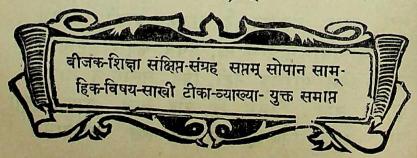
॥ सोपान फल ॥

अब मिला मोक्ष का मुख्य द्वार ।
मानव-तन साधन थल सुयोग ।
इसका फल है नहिं विषय भोग ॥
तिसमें पाना निज रूप ज्ञान ।
जिसको मिल जाये यह महान ॥
है भाग्य महा उसका अपार ॥अब०॥१॥

बीजक पढ़ें जाना सद्रहस्य ।
गो-मन-स्वभाव कर लिया वश्य ॥
सब जड़-विजाति का किया त्याग ।
रह गया शेष पारख अदाग ॥
प्रारब्ध-वेग तक मन-निवार ॥अब०॥२॥

निःसार तुच्छ अरु त्यक्त भास ।
मैं पूर्ण काम पारख प्रकाश ॥
मिट गयी विषय-तृष्णा अतृप्त ।
मैं-में ही मैं हूँ नित्य तृप्त ॥
कट गया दृश्य-द्रष्टा लगार ॥अब०॥३॥

गजल—गुरु कबीर एवं बीजक की महिमा ।

बीजक हमारा प्यारा, मन से नहीं भुलावे ।
जीवन के इक सहारा, सद्गुरु कबीर भावें ।। टेक १।।
खानी वो बानि बन्धन, संसार में प्रबल है ।
तिस बंध से छुड़ाकर, स्थिर परख प्रखावें ।।१।।
सब वेद शास्त्र बानी, अज्ञान ज्ञान सानी ।
चिज्जड़ पिछान करके बीजक बिलग बतावे ।।२।।
पूरण प्रकाश टीका, तिरजा अमोल मणि जो ।
अध्यास नाश करके, स्थिति स्वतः करावे ।।३।।
उपकार क्या कहूँ मैं, बीजक कबीर प्रभु का ।
दिल जनता हि होगा, मति अल्प क्या सुनावे ।।४।।
जड़ सृष्टि देह सुख जो, भ्रम भास ब्रह्म बानी ।
सब से पृथक अमानी, पारख प्रकाश पावे ।।५।।
सूरत प्रभू की दाया, यह दिव्य ज्ञान पाया ।
सद्गुरु कबीर बीजक, अभिलाष मन बसावे ।।६।।

स्थान बड़हरा महात्मा श्री रामसूरत साहेब के आधार में प्रकाशित धार्मिक पुस्तकें—

१— विवेक प्रकाश सटीक	मूल्य	७.००
२—बीजक शिक्षा संक्षिप्त संग्रह	,,	५.००
३—रहनि प्रबोधिनी सटीक	,,	३.५०
४—वैराग्य संजीवनी	,,	१.५०
५—सरलशिक्षा	,,	२.००
६—स्त्री-बाल-शिक्षा	,,	१.५०
७—विवेक प्रकाश मूल	,,	१.००
८—अहिंसा शुद्धाहार	,,	०.६२
९—भजन प्रवेशिका	,,	०.६२
१०—रहनि प्रबोधिनी मूल	,,	०.३६
११—आदेश प्रभा	,,	०.३६
१२—सन्तमहिमा (बड़ी)	,,	०.५०
१३—सन्तमहिमा (छोटी)	,,	०.२०
१४—सरल बोध	,,	०.२५
१५—बोधसार	,,	०.५०
१६—बीजक के पचीस पद	,,	०.१६

मिलने के दो पता—

१—सन्त सेवक कमल सिंह,

मु० दर्री, पो हसदा मानिक चौरी

जि० रायपुर (म० प्रां०)

२—बाबू बैजनाथ प्रसाद बुक्सेलर,

राजादरवाजा वाराणसी—१

मुद्रक—श्री विश्वेश्वर प्रेस, बुलानाला वाराणसी।

विवेकवान् सद्गुरु-सन्तों का सत्संग-भक्ति, सदैव सदाचार में प्रीति, मृत्यु का ध्यान, शम-दम साधनों द्वारा विषय-वासनाओं एवं देहाभिमान से निवृत्ति होकर निराधार शुद्ध स्व-स्वरूप चैतन्य में अविचल सन्तुष्टि—मनुष्य जीवन की सार्थकता है।